पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला १०

यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन
न्यायतीर्थ, काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य,
जैनदर्शनाचार्य, एम ए, पी-एच डी

सच्चं लोगम्मि सारभूय

सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति
अमृतसर

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत

YAŚASTILAKA KĀ SĀMSKRITIKA ADHYAYANA

(A Cultural Study of the Yaśastılaka)

by

Dr Gokul Chandra Jain, M A, Ph D

प्रकाशक

सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति,
गुरु बाजार,
अमृतसर

प्राप्ति-स्थान

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान,
जैनाश्रम,
हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–५

प्रकाशन-वर्ष

सन् १९६७

मूल्य

बीस रुपये

मुद्रक

सन्मति मुद्रणालय,
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी

प्रकाशकीय

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान, वाराणसी के छोटालाल केशवजी शाह शोधछात्र रहे हैं। प्रस्तुत प्रवन्ध 'यशस्तिलक का सास्कृतिक अध्ययन' सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति द्वारा प्रकाशित चौथा शोध-प्रवन्ध है। डॉ० जैन समिति के चौथे सफल शोधछात्र हैं।

इस शोध-छात्रवृत्ति का कुछ लम्बा इतिहास हो गया है। वम्बई में स्व० सेठ छोटालाल केशवजी शाह से १९४८ में पांच हजार रुपये शोधकार्य के लिए मिले थे। पहले एक अन्य शोधछात्र को यह कार्य दिया गया। दुर्भाग्यवश तीन बार के परिश्रम के बाद भी उनका प्रवन्ध विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत नही हुआ। तदनन्तर यह छात्रवृत्ति श्री गोकुलचन्द्र जैन को दी गयी। सन् १९६० में कार्य आरम्भ हुआ और प्रवन्ध तैयार होकर दिसम्वर १९६४ में वनारस हिन्दू विश्वविद्यालय को परीक्षार्थ प्रस्तुत कर दिया गया। प्रवन्ध स्वीकृत हुआ तथा उसके उपलक्ष में श्री जैन को पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई।

'यशस्तिलक' एक महान् ग्रन्थ है। उसकी अनेक विशेषताएँ हैं। यह ग्रन्थ अपने काल में और बाद में भी आदरणीय रहा है। यह प्रवन्ध यशस्तिलक की सास्कृतिक सामग्री का विवेचन प्रस्तुत करता है। इससे पूर्व भी विद्वानो ने इस ग्रन्थ की ओर ध्यान दिया है। डॉ० हन्दिकी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डॉ० जैन ने अपने प्रवन्ध में एक स्थान पर लिखा है कि यशस्तिलक के अध्ययन का यह श्रीगणेश मात्र है। डॉ० हन्दिकी जैसे अनेक विद्वान् जव यशस्तिलक के परिशीलन में प्रवृत्त होगे, तभी उसकी वहुमूल्य सामग्री का ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखा-प्रशाखाओ में उपयोग किया जा सकेगा।

यशस्तिलककार सोमदेव सूरि की आस्था जैन है, परन्तु उनके लेखन का दृष्टिकोण विस्तृत है। सन्यस्त व्यक्तियो के लिए अनेक शब्दो का प्रयोग किया है। इनमें जैन नाम भी है।

साग-सब्जी के उल्लेखो में आलू जैसे जनप्रिय साग का अभाव है। इससे इस वात की पुष्टि होती है कि आलू भारतीय नही है। विदेश से आकर यहाँ भी फूला-फला है।

समिति स्व० सेठ छोटालाल केशवजी शाह के परिवार का आभार मानती है कि उन्होंने अपने प्रियजन की स्मृति में प्रस्तुत ग्रन्थ को प्रकाशित करवाने का खर्च अपने पास से दिया है। स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, जो समिति की जैन साहित्य निर्माण-योजना के प्रेरक थे और डॉ० जैन के निर्देशक भी, के प्रति भी यह समिति हार्दिक आभार प्रकट करती है। पा० वि० शोध सस्थान के अध्यक्ष को भी समिति धन्यवाद देती है कि उनके निर्देशन में सस्थान उन्नतिशील हो रहा है।

फरीदाबाद
२४ ७ १९६७

– हरजसराय जैन
मत्री

प्राथमिक

सन् १९५६ में एक धार्मिक परीक्षा के निमित्त मैंने पहली बार यशस्तिलक पढा था, और तभी लगा था कि इस में बहुत कुछ ऐसा है, जो अबूझा बच जाता है। तब से वह बहुत कुछ जानने की साध मन में बनी रही।

काशी आने के बाद प्रो० हन्दिकी की 'यशस्तिलक एण्ड इडियन कल्चर' पुस्तक सामने आयी तथा डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का सम्पर्क मिला तो वह साध और भी जगी।

जुलाई १९६० में डॉ० अग्रवाल के निर्देशन में प्रस्तुत प्रबन्ध की रूपरेखा बनी और दिसम्बर १९६४ में प्रबन्ध प्रस्तुत रूप में तैयार होकर हिन्दू विश्व-विद्यालय को परीक्षार्थ प्रस्तुत कर दिया गया। पुस्तक रूप में प्रकाशित होते समय भी मैंने इसमें आशिक परिवर्तन ही किये है। इससे यह भी ज्ञात होगा कि शोध-प्रबन्ध को अनावश्यक विस्तार और मोटापा देना अनिवार्य नही है।

मैंने यशस्तिलक की अधिकतम सामग्री को निकाल कर उसके विषय में भरसक पूर्ण जानकारी देने का प्रयत्न किया है। सोमदेव के लेखन की यह विशे-षता है कि आगे-पीछे वह अपने शब्द-प्रयोग आदि के विषय में जानकारी देते चलते हैं, फिर भी जिस विषय का सोमदेव ने केवल उल्लेख मात्र किया है उसके विषय में सोमदेव के पूर्ववर्ती, समकालीन तथा उत्तरवर्ती मनीषियोके ग्रन्थो से जानकारी प्राप्त की गयी है और उन सबको प्राचीन साहित्य, कला एव पुरा-तत्त्व की साक्षी पूर्वक जाँचा-परखा है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में सगृहीत सपूर्ण सामग्री तथा उसकी प्रमाणक सामग्री मैंने मूल स्रोतों से स्वय ही सगृहीत की है। आधुनिक अनुसधाताओ के ग्रन्थो से जो सामग्री ली है, उसका यथास्थान उल्लेख किया है। मैं पूर्णतया सचेष्ट रहा हूँ कि प्राचीन ग्रन्थों के किसी भी अप्रामाणिक सस्करण या किसी भी अमान्य नयी कृति का उपयोग सदर्भ ग्रन्थ के रूप में न किया जाये। इस प्रकार प्रस्तुत प्रबन्ध की प्रत्येक सामग्री, उसके प्रस्तुतीकरण और विवेचन के लिए मैं अपने को उत्तरदायी अनुभव करता हूँ। यदि कही कोई भूल-चूक भी हुई हो तो वह भी मेरी ही कहना चाहिये।

अपनी कृति के विषय में स्वयं कुछ कहना उचित नही लगता। यदि मनीषी विद्वान् यह अनुभव करेंगे कि प्रस्तुत प्रबन्ध आधुनिक साहित्यिक अनुसधान की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है और इसके माध्यम से यशस्तिलक की महनीय सामग्री का भविष्य के शोध-प्रबन्धो, इतिहास-ग्रन्थो तथा शब्द-कोशो में उपयोग किया जा सकेगा, तो मै अपने प्रयत्न को सार्थक समझूँगा। इस प्रबन्ध में मैंने उन्ही विषयो को लिया है, जो प्रो० हन्दिकी के ग्रन्थ में नही आ पाये। इस दृष्टि से यह प्रबन्ध तथा प्रो० हन्दिकी का ग्रन्थ दोनो मिलकर यशस्तिलक के साहित्यिक, दार्शनिक तथा सास्कृतिक अध्ययन को पूर्णता देंगे।

एक शोध-प्रबन्ध सोमदेव के राजनीतिक विचारो पर प्रो० पुष्पमित्र जैन ने आगरा विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किया है। इस में विशेष रूप से सोमदेव के द्वितीय ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत का अध्ययन किया गया है। यशस्तिलक की भी राजनीतिक सामग्री का उपयोग किया गया है। सोमदेव के समग्र अध्ययन की दिशा में यह एक पूरक इकाई का काम करेगा।

इन अध्ययन ग्रन्थो के वाद भी यह कहना उचित नही होगा कि सोमदेव का पूर्ण अध्ययन हो चुका। मै तो इसे श्रीगणेश मात्र कहता हूँ। वास्तव में विभिन्न दृष्टिकोणो से सोमदेव की सामग्री का पृथक्-पृथक् अध्ययन-विवेचन आवश्यक है।

सोमदेव के समग्र अध्ययन के लिए इस समय जो सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण कार्य अपेक्षित है, वह है सोमदेव के दोनो उपलब्ध ग्रन्थो के प्रामाणिक सस्करण तैयार करने का। ऐसे सस्करण जिनमें इन ग्रन्थो से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रकाशित और अप्रकाशित सामग्री का उपयोग किया गया हो। अपने अनुसधान काल में मुझे निरन्तर इस की तीव्र अनुभूति होती रही है। अभी तक दोनो ग्रन्थो के जो पूर्ण सस्करण निकले है, वे अशुद्धि-पुज तो है ही, अनेक दृष्टियो से अपूर्ण और अवैज्ञानिक भी है। इस के अतिरिक्त उन को प्रकाशित हुये भी इतना समय वीत गया कि बाजार में एक भी प्रति उपलब्ध नही होती।

यशस्तिलक का एक ऐसा सस्करण मै स्वय तैयार कर रहा हूँ, जिसमें श्रीदेव-के प्राचीन टिप्पण, श्रुतसागर की सस्कृत टीका तथा आधुनिक अनुसधानों का तो पूर्ण उपयोग किया ही जायेगा, हिन्दी अनुवाद और सास्कृतिक भाष्य भी साथ में रहेगा।

नीतिवाक्यामृत के सपादन का कार्य पटना के श्री श्रीधर वासुदेव सोहानी ने करने की रुचि दिखायी है। आशा है वे इसे अवश्य करेंगे। यदि किन्ही कारणो वश न कर पाये, तो यशस्तिलक के वाद इसे भी मै पूरा करने का प्रयत्न करूँगा।

सोमदेव की उपलब्धियो का अधिकाधिक उपयोग हो, यह मेरी भावना है। उन के शास्त्र में मेरी महती निष्ठा है। लगभग पाँच वर्षों तक उस में डूबे रहने पर भी मुझे सोमदेव से कही भी असहमत नही होना पडा। मेरी आस्था कभी तनिक भी नही डिगी। अपने सस्करण में मैं यह बताना चाहता हूँ कि सोमदेव ने एक भी शब्द का व्यर्थ प्रयोग नही किया, और उनके हर प्रयोग का एक विशेष अर्थ है।

अन्त में सोमदेव के ही पुण्यस्मरण पूर्वक श्रद्धेय डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के प्रति श्रद्धा से अभिभूत हूं, जिनके स्नेह, निर्देशन और प्रेरणा से प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रणयन सम्भव हुआ। खेद है कि प्रकाशित रूप में देखने के लिए वे हमारे बीच नही है। उन्हें इस रूप में इसे देखकर हार्दिक प्रसन्नता होती।

श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति के श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी ने दो वर्ष तक फेलोशिप और पुस्तकालय आदि की सुविधाएँ प्रदान की, उस के लिए सस्था के मन्त्री लाला हरजसराय जैन तथा प० कृष्णचन्द्राचार्य का हृदय से कृतज्ञ हूँ। डॉ० राय कृष्णदास, वाराणसी, डॉ० वी० राघवन्, मद्रास, डॉ० वी० एस० पाठक, वाराणसी, डॉ० आनन्दकृष्ण, वाराणसी, डॉ० ई० डी० कुलकर्णी, पूना, डॉ० कुमारी प्रेमलता शर्मा, वाराणसी आदि अनेक विद्वानो और मित्रो का सहयोग उपलब्ध हुआ, उन सबका कृतज्ञ हूँ। प्रबन्ध में सदर्भ रूप से जिन प्राचीन और नवीन कृतियों का उपयोग किया गया है उन सभी के कृतिकारो का भी हृदय से कृतज्ञ हूँ। प्रबन्ध को प्रकाशित करने में पार्श्वनाथ विद्याश्रम के निदेशक डॉ० मोहनलाल मेहता ने पूर्ण रुचि ली तथा शोध-सहायक प० कपिलदेव गिरि ने पुस्तक की विस्तृत शब्दानुक्रमणिका तैयार की, इसके लिए दोनो का आभारी हूँ। इनके अतिरिक्त भी जाने-अनजाने जिनसे सहयोग प्राप्त हुआ उन सब के प्रति आभारी हूँ।

सत्यशासनपरीक्षा के बाद पुस्तक रूप में प्रकाशित यह मेरी द्वितीय कृति है। आशा है, विज्ञ-जन इसमें रही त्रुटियों की ओर ध्यान दिलाते हुए इसका समुचित मूल्याकन करेंगे।

दिसम्बर १९६७ }

छोटालाल केशवजी शाह

श्री छोटालाल भाई का जन्म वि० स० १९३५ की आषाढ कृष्णा १३ गुरुवार के दिन सोनगढ के समीप दाठा ग्राम में हुआ था। दो वर्ष के बालक को छोडकर इन के पिता श्री केशवजी भाई स्वर्गवासी हो गये। माता श्री पुरीबाई ने इन को तथा इन के छोटे भाई छगनलाल भाई को पालियाद में प्रारम्भिक शिक्षण हेतु शाला में प्रविष्ट कराया। सातवी गुजराती उत्तीर्ण करके श्री छोटालाल भाई स० १९५० में व्यवसाय के लिए बम्बई आ गये। पहले-पहल नौकरी की। इसके पश्चात् ई० सन् १९१३ में मुकादमी तथा क्लीयरिंग एजेण्ट का धन्धा शुरू किया। व्यवसाय में आप को कई बार आर्थिक कठिनाइयाँ भी आयी परन्तु उद्यम, लगन और प्रामाणिकता के कारण आप ने अच्छी सफलता प्राप्त की। सन् १९१७ में करनाक बन्दर, बम्बई में लोहे की दुकान की और लोहे के प्रमुख व्यापारी के रूप में प्रख्यात हुए।

सेठ श्री छोटालाल भाई वडे धर्म-प्रेमी और श्रद्धालु थे। साधु-मुनिराजो के प्रति आप की बहुत भक्ति थी। धार्मिक समारोहो के अवसर पर आप मुक्त हस्त से धन का सदुपयोग करते थे। उस समय बम्बई क्षेत्र में चीचपोकली के सिवाय अन्य कोई उपाश्रय नही था। इतनी दूर जाने में नगर-निवासियो को असुविधा होती थी अत आपने और कतिपय अग्रगण्य बन्धुओं ने सवत् १९६१ में हनुमान गली में सेठ मगलदास नाथुभाई की वाडी में पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० सा० का चातुर्मास करवाया। उस समय रत्न चिन्तामणि स्था० जैन मित्र मण्डल तथा जैन शाला की स्थापना में सेठ श्री का प्रमुख हाथ रहा। आप इन के प्रारम्भिक मत्री रहे। कादावाडी में स्थानक निर्माणार्थ आप की ओर से रु० ५०००) प्रदान किये गये। प० श्री रत्नचन्द्रजी ज्ञानमन्दिर को ५०००), वढवाण केम्प बोर्डिंग को ३०००), पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी को ५०००), बोटाद गवर्नमेन्ट अस्पताल के बाल विभाग को २०००), ब्यावर साहित्य प्रचारक समिति को ५००), आम्बिल ओली, वढवाण केम्प को ५००)—इस प्रकार अनेक सस्थाओं को आपने मुक्त हस्त से दान दिया। दीक्षा प्रसग पर वरघोडा आदि में तथा अन्य समारोहो पर आपने हजारों रुपयों का सदुपयोग किया। आप की उदारता अनुकरणीय रही। आप के पास आशा लेकर आया हुआ कोई व्यक्ति खाली हाथ नहीं लौटा।

सन् १९४७ में भारत-पाकिस्तान के विभाजन के समय पाकिस्तान से जैन मुनियो को लाने के वास्ते आप ने खास तौर से चार्टर्ड वायुयान भेजा था।

सेठ श्री की धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरबाई धार्मिक कार्यो में सेठ सा० को सहयोग देती थी। तीन पुत्र और दो पुत्रियो को छोडकर स० १९८० में कस्तूर-वाई का स्वर्गवास हो गया। सेठ साहब ने नई शादी की। नई धर्मपत्नी भी धार्मिक वृत्ति वाली थी। सन् १९४२ में इनका भी स्वर्गवास हो गया।

सन् १९४८ में सेठ सा० को लकवा हो गया। अनेक उपायो के बावजूद भी विशेष सुधार नही हो सका। सन् १९५९ में सेठ सा० देवलाली वायु-परिवर्तन हेतु गये थे। वही ६ जनवरी १९५९ को सेठ सा० का स्वर्गवास हो गया।

सेठ सा० के व्यवसाय को उनके पुत्रो में से तीसरे सुपुत्र श्री धीरजलाल भाई सँभाल रहे है। सेठ सा० के तीनो पुत्र भी अपनी धार्मिक वृत्ति से सेठ छोटालाल भाई की स्मृति-सौरभ में वृद्धि कर रहे हैं।

■

विषय-सूची

■

परिचय

मतिसुरभेरभवदिद सूक्तिपय सुकृतिना पुण्यै ।

—यशस्तिलक

सोमदेव दशमी शती के एक बहुप्रज्ञ विद्वान् थे। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और प्रकाण्ड पाण्डित्य का पता उनके प्राप्त साहित्य तथा ऐतिहासिक तथ्यो से लगता है। वे एक उद्भट तार्किक, सरस साहित्यकार, कुशल राजनीतिज्ञ, प्रबुद्ध तत्त्वचिन्तक, सफल समाजशास्त्री, समान्य जन-नेता और क्रान्तदृष्टा धर्माचार्य थे। उनकी निर्मल प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी थी। वे बिम्बग्राहिणी प्रतिभा के धनी थे। ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओ के तलस्पर्शी अध्ययन में उनकी दृढ निष्ठा थी। बडे-बडे राजतन्त्रो के निकट सपर्क से उनके ज्ञान-कोष में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और विभिन्न सस्कृतियो की प्रभूत जानकारी सगृहीत हुई थी। जैन साधु की प्रवास-प्रवृत्ति के कारण सहज ही उन्हें लोकानुवीक्षण का सुयोग प्राप्त हुआ। विद्या-गोष्ठियो तथा वाग्युद्धो ने उनकी विद्वत्ता को और अधिक विस्तार और निखार दिया। धार्मिक क्रान्ति ने उन्हें समान्य जन-नेता और सफल समाजशास्त्री बनाया। शास्त्रो के निरन्तर स्वाध्याय और विद्वान् मनीषियो के अहर्निश सान्निध्य से उनकी व्युत्पत्ति अजस्र रूप से वृद्धिगत होती रही।

इस प्रकार सोमदेव की प्रज्ञा के अथाह सागर में ज्ञान को अनेक सरितायें व्युत्पत्ति की अपार जलराशि ला-लाकर उडेलती रही। और तब उनके प्रज्ञा-पुरुष ने एक ऐसे शास्त्र-सर्जन का शुभ सकल्प किया जो समस्त विषयो की व्युत्पत्ति का साधन हो (यद्व्युत्पत्त्यै सकलविषये, पृ० ५१८)। यशस्तिलक उनके इसी पुनीत सकल्प का मधुर फल है। जीवनभर तर्क की सूखी घास खानेवाली उनकी प्रज्ञा-सुरभि ने जो यह काव्य का मधुर दुग्ध दिया, उसे उन्होने सुकृतिजनों के पुण्य का फल माना है (पृ० ६)।

इस विशिष्ट कृति के लिए उन्होंने महाराज यशोधर के लोकप्रिय चरित्र को पृष्ठभूमि के रूप में चुना। केवल गद्य या केवल पद्य इसके लिए उन्हें पर्याप्त नही लगा। इसलिए उन्होने यशस्तिलक में दोनो का समावेश किया है। कही-कही कथनोपकथन भी आये हैं। पूरे ग्रन्थ में दो हजार तीन सौ ग्यारह पद्य तथा शेष भाग गद्य है। स्वय सोमदेव ने गद्य और पद्य दोनो को मिलाकर आठ हजार श्लोकप्रमाण बताया है (एतामष्टसहस्रीम्, पृ० ४१८ उत्त०)। पूरा ग्रन्थ प्रौढ सस्कृत में रचा गया है और आठ आश्वासो में विभक्त

गतिरा्रभेरभवदिद सूवितपथ सुकृतिना पुण्यै ।

—यशस्तिलक

सोमदेव दशमी शती के एक बहुप्रज्ञ विद्वान् थे। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और प्रकाण्ड पाण्डित्य का पता उनके प्राप्त साहित्य तथा ऐतिहासिक तथ्यो से लगता है। वे एक उद्भट तार्किक, सरस साहित्यकार, कुशल राजनीतिज्ञ, प्रबुद्ध तत्त्वचिन्तक, सफल समाजशास्त्री, ममान्य जन-नेता और क्रान्तदृष्टा धर्माचार्य थे। उनकी निर्मल प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी थी। वे बिम्बग्राहिणी प्रतिभा के धनी थे। ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओ के तलस्पर्शी अध्ययन में उनकी दृढ निष्ठा थी। बडे-बडे राजतन्त्रो के निकट सपर्क से उनके ज्ञान-कोष में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और विभिन्न सस्कृतियो की प्रभूत जानकारी सगृहीत हुई थी। जैन साधु की प्रवास-प्रवृत्ति के कारण सहज ही उन्हे लोकानुवीक्षण का सुयोग प्राप्त हुआ। विद्या-गोष्ठियो तथा वाग्युद्धो ने उनकी विद्वत्ता को और अधिक विस्तार और निखार दिया। धार्मिक क्रान्ति ने उन्हे समान्य जन-नेता और सफल समाजशास्त्री बनाया। शास्त्रो के निरन्तर स्वाध्याय और विद्वान् मनीषियों के अहर्निश सान्निध्य से उनकी व्युत्पत्ति अजस्र रूप से वृद्धिगत होती रही।

इस प्रकार सोमदेव की प्रज्ञा के अथाह सागर में ज्ञान की अनेक सरितायें व्युत्पत्ति की अपार जलराशि ला-लाकर उडेलती रही। और तब उनके प्रज्ञा-पुरुष ने एक ऐसे शास्त्र-मर्जन का शुभ सकल्प किया जो समस्त विषयो की व्युत्पत्ति का साधन हो (यद्व्युत्पत्यै सकलविषये, पृ० ५१८)। यशस्तिलक उनके इसी पुनीत सकल्प का मधुर फल है। जीवनभर तर्क की सूखी घास खानेवाली उनकी प्रज्ञा-सुरभि ने जो यह काव्य का मधुर दुग्ध दिया, उसे उन्होने सुकृतिजनों के पुण्य का फल माना है (पृ० ६)।

इस विशिष्ट कृति के लिए उन्होने महाराज यशोधर के लोकप्रिय चरित्र को पृष्ठभूमि के रूप में चुना। केवल गद्य या केवल पद्य इसके लिए उन्हें पर्याप्त नही लगा। इसलिए उन्होने यशस्तिलक में दोनो का समावेश किया है। कही-कहीं कथनोपकथन भी आये हैं। पूरे ग्रन्थ में दो हजार तीन सौ ग्यारह पद्य तथा शेष भाग गद्य है। स्वय सोमदेव ने गद्य और पद्य दोनो को मिलाकर आठ हजार श्लोकप्रमाण बताया है (एतामष्टसहस्रीम्, पृ० ४१८ उत्त०)। पूरा ग्रन्थ प्रौढ सस्कृत में रचा गया है और आठ आश्वासो में विभक्त

है। प्रथम आश्वास कथावतार या कथा की पृष्ठभूमि के रूप में है। और अन्त के तीन आश्वासों में उपासकाध्ययन अर्थात् जैन गृहस्थ के आचार का विस्तृत वर्णन है। यशोधर की वास्तविक कथा बीच के चार आश्वासो में स्वय यशोधर के मुँह से कहलायी गयी है। बाण की कादम्बरी की तरह कथा जहां से प्रारभ होती है, उसकी परिसमाप्ति भी वही आकर होती है। महाराज शूद्रक की सभा में लाया गया वैशम्पायन शुक कादम्बरी की कथा कहना प्रारभ करता है और कथावस्तु तीन जन्मो में लहरिया गति से घूमकर फिर यथास्थान पहुँच जाती है। सम्राट मारिदत्त द्वारा आयोजित महानवमी के अनुष्ठान में अपार जनसमूह के बीच बलि के लिए लाया गया परिव्रजित राजकुमार यशस्तिलक की कथा का प्रारभ करता है और रथ के चक्र की तरह एक ही फेरे में आठ जन्मो की कहानी पूरी होकर अपने मूल सूत्र से फिर जुड जाती है।

साहित्यिक दृष्टि से यशस्तिलक एक महनीय कृति है। यशस्तिलक के पूर्व लगभग एक सहस्र वर्षों में संस्कृत साहित्यरचना का जो क्रमिक विकास हुआ, उसका और अधिक परिष्कृत रूप यशस्तिलक में दृष्टिगोचर होता है।

एक उत्कृष्ट काव्य के विशेष गुणो के अतिरिक्त यशस्तिलक में ऐसी प्रचुर सामग्री है, जो इसे प्राचीन भारत के सास्कृतिक इतिहास तथा ज्ञान-विज्ञान की अनेक विधाओ से जोडती है। पुरातत्त्व, इतिहास, कला और साहित्य के साथ तुलना करने पर इसकी प्रामाणिकता और उपयोगिता भी परिपुष्ट होती है। इस दृष्टि से भी यशस्तिलक कालिदास और बाण की परपरा में महत्त्वपूर्ण नवीन कडी जोडता है। कालिदास और बाणभट्ट ने अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थो में भारतीय सस्कृति के सग्रथन का जो कार्य प्रारभ किया था, सोमदेव ने उसे और अधिक आगे बढाया। एक बडी विशेषता यह भी है कि सोमदेव ने जिस विषय का स्पर्श भी किया उसके विषयमें पर्याप्त जानकारी दी। इतनी जानकारी कि यदि उसका विस्तार से विश्लेषण किया जाये तो प्रत्येक विषय का एक लघुकाय स्वतत्र ग्रन्थ बन सकता है। नि सदेह सोमदेव को अपने इस सकल्प की पूर्ति में पूर्ण सफलता मिली कि उनका शास्त्र समस्त विषयो की व्युत्पत्ति का साधन बने। दशमी शताब्दी तक की अनेक साहित्यिक और सास्कृतिक उपलब्धियो का मूल्याकन तथा उस युग का एक सम्पूर्ण चित्र यशस्तिलक में उतारा गया है। वास्तव में यशस्तिलक जैसे महनीय ग्रन्थ की रचना दशमी शती की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। स्वय सोमदेव के शब्दो में यह एक महान् अभिधानकोश है (अभिधाननिधानेऽस्मिन्, पृ० ४१८ उत्त०)।

यशस्तिलक में सामग्री की जितनी विविधता और प्रचुरता है, उतनी ही उसकी विवेचन-शैली और शब्द-सम्पत्ति की दुरूहता भी। इसलिए जिस वैदुष्य और यत्न पूर्वक सोमदेव ने यशस्तिलक की रचना की, शायद ही उससे कम वैदुष्य और प्रयत्न उसके हार्द को समझने में लगे। सम्भवतया इसी दुरूहता के कारण यशस्तिलक साधारण पाठकों की पहुँच से दूर बना आया, फिर भी दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत, राजस्थान और गुजरात के शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध यशस्तिलक की हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ और बाद के साहित्यकारों पर यशस्तिलक का प्रभाव इसके प्रमाण हैं कि पिछली शताब्दियों में यशस्तिलक का सम्पूर्ण भारतवर्ष में मूल्यांकन हुआ, किन्तु वास्तव में लगभग सहस्र वर्षों में जितना प्रसार होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ। और इसका बहुत बड़ा कारण इसकी दुरूहता ही लगता है।

इस शताब्दी में पीटरसन, विन्टरनित्ज और कीथ जैसे पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान यशस्तिलक की महत्ता और उपयोगिता की ओर आकर्षित हुआ है। भारतीय विद्वानों ने भी अपनी इस निधि की ओर अब दृष्टि डाली है।

सम्पूर्ण यशस्तिलक श्रुतसागर की अपूर्ण संस्कृत टीका के साथ अभी तक केवल एक ही बार लगभग पैंसठ वर्ष पूर्व (सन् १९०१, १९०३) प्रकाशित हुआ था जो अब अप्राप्य है। प्रो० कृष्णकान्त हन्दिकी का अध्ययन ग्रन्थ शोलापुर से सन् १९४९ में 'यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर' नाम से प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रो० हन्दिकी ने विशेष रूप से यशस्तिलक की धार्मिक और दार्शनिक सामग्री का विद्वत्तापूर्ण अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उन्होंने जिस जिस विषय को लिया है, उसके विषय में निःसन्देह सोमदेव के प्रति पूरी निष्ठा, विद्वत्ता और श्रम पूर्वक पर्याप्त और प्रामाणिक जानकारी दी है।

यशस्तिलक के जो और आंशिक संस्करण निकले हैं तथा सोमदेव और यशस्तिलक पर जो फुटकर कार्य हुआ है, उस सबका लेखा जोखा लगाकर देखने पर भी मेरी समझ से यशस्तिलक के सही अध्ययन का यह श्रीगणेश मात्र है। श्रीगणेश मंगलमय हुआ यह परम शुभ एवं आनन्द का विषय है। वास्तव में प्रो० हन्दिकी जैसे अनेक विद्वान् जब यशस्तिलक के परिशीलन में प्रवृत्त होंगे तभी उसकी बहुमूल्य सामग्री का ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं में उपयोग किया जा सकेगा। यशस्तिलक तो विविध प्रकार की बहुमूल्य सामग्री का अक्षय भंडार है। अध्येता ज्यों-ज्यों इसके तल में पैठता है, उसे और-और सामग्री उपलब्ध होती जाती है। इसी कारण स्वयं सोमदेव ने विद्वानों को निरन्तर

आनुपूर्वी से इसका विमर्श करते रहने की मन्त्रणा दी है (अजस्रमनुपूर्वश कृती विमृशन्, उत्त० पृ० ४१८)।

काशी विश्वविद्यालय द्वारा पी एच० डी० के लिए स्वीकृत अपने शोध प्रब ध में मैंने यशस्तिलक की सास्कृतिक सामग्री को वर्गीकृत रूप में पाच अध्यायो में निम्नप्रकार प्रस्तुत किया है—

१ यशस्तिलक के परिशीलन की पृष्ठभूमि
२ यशस्तिलककालीन सामाजिक जीवन
३ ललितकलायें और शिल्पविज्ञान
४ यशस्तिलककालीन भूगोल
५ यशस्तिलक की शब्द-सम्पत्ति

प्रथम अध्याय मे वह सामग्री दी गयी है जो यशस्तिलक के परिशीलन की पृष्ठभूमि के रूप मे अनिवार्य है। इस अध्याय में तीन परिच्छेद हैं। परिच्छेद एक मे यशस्तिलक का रचनाकाल, यशस्तिलक का साहित्यिक और सास्कृतिक स्वरूप, यशस्तिलक पर अब तक हुये कार्य का लेखा-जोखा, सोमदेव का जीवन और साहित्य सोमदेव और कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार तथा देवसघ के विषय में सक्षेप में आवश्यक जानकारी दी गयी है।

यशस्तिलक का रचनाकाल स्वय सोमदेव ने चैत्र शुक्ल त्रयोदशी शक सवत् ८८१ अर्थात् सन् ९५९ ई० दे दिया है। इससे यशस्तिलक के परिशीलन की वे सभी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं, जो समय की अनिश्चितता के कारण साधारणतः भारतीय वाङ्मय के अनुशीलन में उपस्थित होती हैं।

साहित्यिक स्वरूप का विश्लेषण करते हुये मैंने लिखा है कि यशस्तिलक की रचना गद्य और पद्य में हुई है और साहित्य की इस सम्मिलित विधा को समीक्षको ने चम्पू कहा है। स्वय सोमदेव ने यशस्तिलक को महाकाव्य कहा है। वास्तव में यह अपने प्रकार की एक विशिष्ट कृति है और अपने ही प्रकार की एक स्वतत्र विधा। एक उत्कृष्ट काव्य के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं।

यशस्तिलक का सास्कृतिक स्वरूप और भी विराट है। श्रीदेव ने यशस्तिलक-पजिका में यशस्तिलक में आये सत्ताइस विषय गिनाये हैं। मैंने लिखा है कि यदि श्रीदेव के अनुसार ही यशस्तिलक के विषयो का वर्गीकरण किया जाये तो उनकी सूची में भूगोल आदि कई विषय और भी जोडने होंगे। इस सामग्री की सबसे बडी विशेषता इसकी पूर्णता और प्रामाणिकता है।

यशस्तिलक और सोमदेव पर अब तक हुये कार्य का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुये यशस्तिलक और नीतिवाक्यामृत के अब तक प्रकाशित सस्करण, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित शोध-निबन्ध तथा प्रो० हन्दिकी के समीक्षा ग्रन्थ की जानकारी दी गयी है।

सोमदेव के जीवन और साहित्य का जो परिचय उपलब्ध होता है, उससे उनके उज्ज्वल पक्ष का ही पता चलता है। नीतिवाक्यामृत और यशस्तिलक उनकी उपलब्ध रचनायें हैं। षण्णवतिप्रकरण आदि चार अन्य ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं।

नीतिवाक्यामृत के सस्कृत टीकाकार ने सोमदेव को कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार नरेश महेन्द्रदेव का अनुज बताया है। यशस्तिलक के दो पद्य भी महेन्द्रदेव और सोमदेव के सम्बन्धो की ओर सकेत करते हैं। उनका अनुपलब्ध ग्रन्थ महेन्द्रमातलिसजल्प और सोमदेव का देवान्त नाम भी शायद इस ओर इगित है। महेन्द्रपालदेव द्वितीय तथा सोमदेव के सम्बन्धो में कालिक कठिनाई भी नही आती। यशस्तिलक में राजनीति और शासन का जो विशद वर्णन है, उससे सोमदेव का विशाल राज्यतन्त्र और शासन से परिचय स्पष्ट है। इतनी सब सामग्री होते हुये भी मेरी समझ से सोमदेव को प्रतिहार नरेश महेन्द्रपालदेव का अनुज मानने के लिए अभी और अधिक ठोस साक्ष्यो की अपेक्षा बनी रहती है।

यशस्तिलक चालुक्यवंशीय अरिकेसरी के प्रथम पुत्र वद्यग की राजधानी गगाधारा में रचा गया था। अरिकेसरिन् तृतीय के एक दानपत्र से सोमदेव और चालुक्यो के सम्बन्धो का और भी दृढ निश्चय हो जाता है। चालुक्य वश दक्षिण के महाप्रतापी राष्ट्रकूटो के अधीन सामन्त पदवी धारी था। यशस्तिलक राष्ट्रकूट सस्कृति को एक विशाल दर्पण की तरह प्रतिबिम्बित करता है। जिस तरह बाणभट्ट ने हर्षचरित और कादम्बरी में गुप्त युग का चित्र उतारने का प्रयत्न किया, उसी तरह सोमदेव ने यशस्तिलक में राष्ट्रकूट युग का।

सोमदेव देव सघ के साधु थे। अरिकेसरी के दानपत्र में उन्हें गौड सघ का कहा गया है। वास्तव में ये दोनों एक ही सघ के नाम थे। देव सघ अपने युग का एक विशिष्ट जैन साधुसघ था। सोमदेव के गुरु, नेमिदेव ने सैकडो महावादियो को वाग्युद्ध में पराजित किया था। सोमदेव को यह सब विरासत

में मिला। यही कारण है कि उनके लिए भी वादीभपञ्चानन, तार्किकचक्रवर्ती आदि विशेषण प्रयुक्त किये गये है।

इस सम्पूर्ण समाग्री को प्रमाणिक साक्ष्यो के साथ पहले परिच्छेद में दिया गया है।

परिच्छेद दो मे यशस्तिलक की सक्षिप्त कथा दी गयी है तथा उसकी सास्कृतिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। महाराज यशोधर के आठ जन्मो की कहानी का सूत्र यशस्तिलक के प्रासगिक विस्तृत वर्णनो में कही खो न जाये, इसलिए सक्षिप्त कथा का ज्ञान लेना आवश्यक है।

कथा के माध्यम से सिद्धान्त और नीति की शिक्षा की परम्परा प्राचीन है। यशस्तिलक की कथा का उद्देश्य हिंसा के दुष्प्रभाव को दिखाकर जनमानस में अहिंसा के उच्च आदर्श की प्रतिष्ठा करना था। यशोधर को आटे के मुर्गे की बलि देने के कारण छह जन्मो तक पशुयोनि में भटकना पडा तो पशुबलि या अन्य प्रकार की हिंसा का तो और भी दुष्परिणाम हो सकता है। सोमदेव ने बडी कुशलता के साथ यह भी दिखाया है कि सकल्पपूर्वक हिंसा करने का त्याग गृहस्थ को विशेष रूप से करना चाहिए। कथावस्तु की यही सास्कृतिक पृष्ठभूमि है।

परिच्छेद तीन में यशोधरचरित्र की लोकप्रियता का सर्वेक्षण है। यशोधर की कथा मध्ययुग से लेकर बहुत बाद तक के साहित्यकारो के लिए एक प्रिय और प्रेरक विषय रहा है। कालिदास ने अवन्ति जनपद के उदयन कथा कोविद ग्रामवृद्धो की बात कही थी, यशोधर कथा के विशेषज्ञ मनीषी आठवी शती के भी बहुत पहले से लेकर लगभग आजतक यशोधर की कथा कहते आये। उद्योतन सूरि (७७९ ई०) ने प्रभञ्जन के यशोधरचरित्र का उल्लेख किया है। हरिभद्र की समराइच्चकहा में यशोधर की कथा आयी है। बाद के साहित्यकारो ने प्राकृत, सस्कृत अपभ्रश, पुरानी हिन्दी गुजराती, राजस्थानी, तमिल और कन्नड भाषाओ में यशोधरचरित्र पर अनेक ग्रन्थो की रचना की। प्रो०पी०एल० वैद्य ने जसहरचरिउ की प्रस्तावना में उन्तीस ग्रन्थो की जानकारी दी थी। मेरे सर्वेक्षण से यह सख्या चौवन तक पहुँची है। अनेक शास्त्र भण्डारो की सूचियाँ अभी भी नही बन पायी। इसलिए सम्भव है अभी और भी कई ग्रन्थ यशोधर कथा पर उपलब्ध हो।

द्वितीय अध्याय में यशस्तिलककालीन सामाजिक जीवन का विवेचन है। इसमे बारह परिच्छेद हैं।

परिच्छेद एक में समाज गठन और यशस्तिलक में उल्लिखित

सामाजिक व्यक्तियों के विषय में जानकारी दी गयी है। सोमदेवकालीन समाज अनेक वर्गों में विभक्त था। वर्ण-व्यवस्था की प्राचीन श्रौत-स्मार्त मान्यतायें प्रचलित थीं। समाज और साहित्य दोनों पर इन मान्यताओं का प्रभाव था। ब्राह्मण के लिए यशस्तिलक में ब्राह्मण, द्विज, विप्र, भूदेव, श्रोत्रिय, वाडव, उपाध्याय, मौहूर्तिक, देवभोगी, पुरोहित और त्रिवेदी शब्द आये हैं। ये नाम प्राय उनके कार्यों के आधार पर थे।

क्षत्रिय के लिए क्षत्र और क्षत्रिय शब्द आये हैं। पौरुष सापेक्ष्य और राज्य संचालन आदि कार्य क्षत्रियोचित माने जाते थे।

वैश्य के लिए वैश्य, वणिक, श्रेष्ठि और सार्थवाह शब्द आये हैं। ये देशी व्यापार के अतिरिक्त टाडा बांधकर विदेशी व्यापार के लिए जाते थे। श्रेष्ठ व्यापारी को राज्य की ओर से राज्यश्रेष्ठी पद दिया जाता था।

शूद्र के लिए यशस्तिलक में शूद्र, अन्त्यज और पामर शब्द आये हैं। प्राचीन मान्यताओं की तरह सोमदेव के समय भी अन्त्यजों का स्पर्श वर्जनीय माना जाता था और वे राज्य संचालन आदि के अयोग्य समझे जाते थे।

अन्य सामाजिक व्यक्तियों में सोमदेव ने हलायुधजीवि, गोप, व्रजपाल, गोपाल, गोध, तक्षक, मालाकार, कौलिक, ध्वजिन्, निपाजीव, रजक, दिवाकीर्ति, आस्तरक, संवाहक, धीवर, चर्मकार, नट या शैलूष, चाण्डाल, शबर, किरात, वनेचर और मातंग का उल्लेख किया है। इस परिच्छेद में इन सब पर प्रकाश डाला गया है।

परिच्छेद दो में जैनाभिमत वर्णव्यवस्था और सोमदेव की मान्यताओं पर विचार किया गया है। सिद्धान्त रूप से जैन धर्म में वर्णव्यवस्था की श्रौत-स्मार्त मान्यतायें स्वीकृत नहीं हैं। कर्मग्रन्थों में वर्ण, जाति और गोत्र की व्याख्या प्रचलित व्याख्याओं से सर्वथा भिन्न है। इसी प्रकार जैन ग्रन्थों में चतुर्वर्ण की व्याख्या भी कर्मणा की गयी है। सिद्धान्त रूप से मान्यताओं का यह रूप होते हुए भी व्यवहार में जैन समाज में भी श्रौत स्मार्त मान्यतायें प्रचलित थीं। इसलिए सोमदेव ने चिन्तन दिया कि गृहस्थ के लौकिक और पारलौकिक दो धर्म हैं। लोकधर्म लौकिक मान्यताओं के अनुसार तथा पारलौकिक धर्म आगमों के अनुसार मानना चाहिए। प्राचीन कर्मग्रन्थों से लेकर सोमदेव तक के जैन साहित्य के परिप्रेक्ष्य में इस विषय पर विचार किया गया है।

परिच्छेद तीन में आश्रम-व्यवस्था और संन्यस्त व्यक्तियों का विवेचन है। आश्रम-व्यवस्था की प्राचीन मान्यतायें प्रचलित थीं। ब्रह्मचर्य आश्रम

की समाप्ति पर सोमदेव ने गोदान का उल्लेख किया है। बाल्यावस्था में सन्यस्त होने का निषेध किया जाता रहा है, पर इसके भी पर्याप्त अपवाद रहे हैं। यशस्तिलक के प्रमुख पात्र अभयरुचि और अभयमति भी छोटी अवस्था में प्रव्रजित हो गये थे। सन्यस्त व्यक्तियों के लिए आजीवक, कर्मन्दी, कापालिक, कौल, कुमारश्रमण, चित्रशिखण्डि, ब्रह्मचारी, जटिल, देशयति, देशक, नास्तिक, परिव्राजक, पाराशर, ब्रह्मचारी, भविल, महाव्रती, महासाहसिक, मुनि, मुमुक्षु, यति, यागज्ञ, योगी, वैखानस, शंसितव्रत, श्रमण, स्नातक, साधु और सूरि शब्दो का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त सोमदेव ने कुछ और नामो की व्युत्पत्तियाँ दी हैं। इनमें से अधिकाश अपने अपने सम्प्रदाय विशेष को व्यक्त करते हैं। इनके विषय में सक्षेप में जानकारी दी गयी है।

परिच्छेद चार में पारिवारिक जीवन और विवाह की प्रचलित मान्यताओं पर प्रकाश डाला गया है। सोमदेवकालीन भारत में सयुक्त परिवार प्रणाली का प्रचलन था। सोमदेव ने चिरपरिचित पारिवारिक सम्बन्ध पति, पत्नी, पुत्र आदि का सुन्दर वर्णन किया है। बालक्रीडाओ का जैसा हृदयग्राही वर्णन यशस्तिलक में है, वैसा अन्यत्र कम मिलता है। स्त्री के भगिनी, जननी, दूतिका, सहचरी, महानसकी, धातृ, भार्या आदि रूपो पर प्रकाश डाला गया है।

यशस्तिलक में विवाह के दो प्रकारो का उल्लेख है। प्राचीन राजे-महाराजे तथा बहुत बडे लोगो में स्वयवर की प्रथा थी। स्वयवर के आयोजन की एक विशेष विधि थी। माता-पिता द्वारा जो विवाह आयोजित होते थे, उनमें भी अनेक बातो का ध्यान रखा जाता था। सोमदेव ने बारह वर्ष की कन्या तथा सोलह वर्ष के युवक को विवाह योग्य बताया है। बाल विवाह की परम्परा स्मृतिकाल से चली आयी थी। स्मृति ग्रन्थो में अरजस्वला कन्या के ग्रहण का उल्लेख है। अलबरूनी ने भी लिखा है कि भारतवर्ष में बाल विवाह की प्रथा थी। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

परिच्छेद पाँच मे यशस्तिलक मे आयी खान-पान विषयक सामग्री का विवेचन है। सोमदेव की इस सामग्री की त्रिविध उपयोगिता है। एक तो इससे खाद्य और पेय वस्तुओ की लम्बी सूची प्राप्त होती है, दूसरे दशमी शती में भारतीय परिवारो, विशेषकर दक्षिण भारत के परिवारों की खान-पान व्यवस्था का पता चलता है। तीसरे ऋतुओ के अनुसार सतुलित और स्वास्थ्यकर भोजन की व्यवस्थित जानकारी प्राप्त होती है। पाक विद्या के विषय में भी सोमदेव ने पर्याप्त जानकारी दी है। शुद्ध और ससग भेद से त्रेसठ प्रकार के व्यजन बनाय

जा सकते हैं। सूपशास्त्र विशेषज्ञ पौरोगव का भी उल्लेख है। बिना पकाये खाद्य सामग्री में गोधूम, यव, दीदिवि, श्यामाक, शालि, कलम, यवनाल, चिपिट, सक्तू, मुद्ग, माष, विरसाल तथा द्विदल का उल्लेख है। भोजन के साथ जल किस अनुपात में पीना चाहिए, जल को अमृत और विष क्यों कहा जाता है, ऋतुओं के अनुसार वापी, कूप, तडाग, कहाँ का जल पीना उपयुक्त है, जल को प्रसिद्ध कैसे किया जाता है, इसकी जानकारी विस्तार से दी गयी है।

मसालों में दरद, क्षपारस, मरिच, पिप्पली, राजिका तथा लवण का उल्लेख है। स्निग्ध पदार्थ, गोरस तथा अन्य पेय सामग्री में घृत, आज्य, तैल, दधि, दुग्ध, नवनीत, तक्र, कलि या अवन्नि-सोम, नारिकेलफलाम्भ, पानक तथा शर्कराढ्यपय का उल्लेख है। घृत, दुग्ध, दधि तथा तक्र के गुणों को सोमदेव ने विस्तार से बताया है। मधुर पदार्थों में शर्करा, शिता, गुड तथा मधु का उल्लेख है। साग-सब्जी और फलों की तो एक लम्बी सूची आयी है– पटोल, कोहल, कारवेल, वृन्ताक, वान, कदल, जीवन्ती, कन्द, किसलय, बिस, वास्तूल, तण्डुलीय, चिल्ली, चिर्भटिका, मूलक, आर्द्रक, धात्रीफल, एर्वारु, अलाबू, कर्कारु, मालूर, चक्रक, अग्निदमन, रिंगणीफल, आम्र, आम्रातक, पिचुमन्द, सोभाजन, वृहतीवार्ताक, एरण्ड, पलाण्डु, वल्लक, रालक, कोकुन्द, काकमाची, नागरंग, ताल, मन्दर, नागवल्ली, वाण, आसन, पूग, अक्षोल, खर्जूर, लवली, जम्बीर, अश्वत्थ, कपित्थ, नमेरु, पारिजात, पनस, ककुभ, वट, कुरवक, जम्बू, दर्दरीक, पुण्ड्रेक्षु, मृद्वीका, नारिकेल, उदम्बर तथा प्लक्ष।

तैयार की गयी सामग्री में भक्त, सूप, शष्कुली, समिध या समिता, यवागू, मोदक, परमान्न, खाण्डव, रसाल, आमिक्षा, पक्वान्न, अवदश, उपदेश, सर्पिषिस्नात, अंगारपाचित, दध्नापरिप्लुत, पयसा-विशुष्क तथा पपट के उल्लेख हैं।

मांसाहार तथा मांसाहार निषेध का भी पर्याप्त वर्णन है। जैन मांसाहार के तीव्र विरोधी थे, किन्तु कौल कापालिक आदि सम्प्रदायों में मांसाहार धार्मिक रूप से अनुमत था। वध्य पशु, पक्षी तथा जलजन्तुओं में मेष, महिष, मय, मातंग, मितद्रु, कुम्भीर, मकर, मालूर, कुलीर, कमठ, पाठीन, भेरुण्ड, क्रौंच, कोक, कुक्कुट कुरर, कलहंस, चमर, चमूरु, हरिण, हरि, वृक, वराह, वानर तथा गोखुर के उल्लेख हैं। मांसाहार का ब्राह्मण परिवारों में भी प्रचलन था। यज्ञ और श्राद्ध के नाम पर मांसाहार की धार्मिक स्वीकृति मान ली गयी थी। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

की समाप्ति पर सोमदेव ने गोदान का उल्लेख किया है। बाल्यावस्था में सन्यस्त होने का निषेध किया जाता रहा है, पर इसके भी पर्याप्त अपवाद रहे हैं। यशस्तिलक के प्रमुख पात्र अभयरुचि और अभयमति भी छोटी अवस्था में प्रव्रजित हो गये थे। सन्यस्त व्यक्तियों के लिए आजीवक, कर्मन्दी, कापालिक, कौल, कुमारश्रमण, चित्रशिखण्डि, ब्रह्मचारी, जटिल, देशयति, देशक, नास्तिक, परिव्राजक, पाराशर, ब्रह्मचारी, भविल, महाव्रती, महासाहसिक, मुनि, मुमुक्षु, यति, यागज्ञ, योगी, वैखानस, शसितव्रत, श्रमण, साधक, साधु और सूरि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त सोमदेव ने कुछ और नामों की व्युत्पत्तियां दी हैं। इनमें से अधिकांश अपने अपने सम्प्रदाय विशेष को व्यक्त करते हैं। इनके विषय में संक्षेप में जानकारी दी गयी है।

परिच्छेद चार में पारिवारिक जीवन और विवाह की प्रचलित मान्यताओं पर प्रकाश डाला गया है। सोमदेवकालीन भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली का प्रचलन था। सोमदेव ने चिरपरिचित पारिवारिक सम्बन्ध पति, पत्नी, पुत्र आदि का सुन्दर वर्णन किया है। बालक्रीडाओं का जैसा हृदयग्राही वर्णन यशस्तिलक में है, वैसा अन्यत्र कम मिलता है। स्त्री के भगिनी, जननी, दूतिका, सहचरी, महानसकी, धातृ, भार्या आदि रूपों पर प्रकाश डाला गया है।

यशस्तिलक में विवाह के दो प्रकारों का उल्लेख है। प्राचीन राजे-महाराजे तथा बहुत बड़े लोगों में स्वयंवर की प्रथा थी। स्वयंवर के आयोजन की एक विशेष विधि थी। माता-पिता द्वारा जो विवाह आयोजित होते थे, उनमें भी अनेक बातों का ध्यान रखा जाता था। सोमदेव ने बारह वर्ष की कन्या तथा सोलह वर्ष के युवक को विवाह योग्य बताया है। बाल विवाह की परम्परा स्मृतिकाल से चली आयी थी। स्मृति ग्रन्थों में अरजस्वला कन्या के ग्रहण का उल्लेख है। अलबरूनी ने भी लिखा है कि भारतवर्ष में बाल विवाह की प्रथा थी। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

परिच्छेद पाँच में यशस्तिलक से आयी खान-पान विषयक सामग्री का विवेचन है। सोमदेव की इस सामग्री की त्रिविध उपयोगिता है। एक तो इससे खाद्य और पेय वस्तुओं की लम्बी सूची प्राप्त होती है, दूसरे दशमी शती में भारतीय परिवारों, विशेषकर दक्षिण भारत के परिवारों की खान-पान व्यवस्था का पता चलता है। तीसरे ऋतुओं के अनुसार सतुलित और स्वास्थ्यकर भोजन की व्यवस्थित जानकारी प्राप्त होती है। पाक विद्या के विषय में भी सोमदेव ने पर्याप्त जानकारी दी है। शुद्ध और संसर्ग भेद से त्रेसठ प्रकार के व्यंजन बताये

जा सकते हैं। सूपशास्त्र विशेषज्ञ पौरोगव का भी उल्लेख है। विना पकायी खाद्य सामग्री में गोधूम, यव, दीदिवि, श्यामाक, शालि, कलम, यवनाल, चिपिट, सक्तू, मुद्ग, माष, विरसाल तथा द्विदल का उल्लेख है। भोजन के साथ जल किस अनुपात में पीना चाहिए, जल को अमृत और विष क्यों कहा जाता है, ऋतुओं के अनुसार वापी, कूप, तडाग, कहाँ का जल पीना उपयुक्त है, जल को ससिद्ध कैसे किया जाता है, इसकी जानकारी विस्तार से दी गयी है।

मसालों में दरद, क्षपारस, मरिच, पिप्पली, राजिका तथा लवण का उल्लेख है। स्निग्ध पदार्थ, गोरस तथा अन्य पेय सामग्री में घृत, आज्य, तैल, दधि, दुग्ध, नवनीत, तक्र, कलि या अवन्ति-सोम, नारिकेलफलाभ, पानक तथा शर्कराढ्यपय का उल्लेख है। घृत, दुग्ध, दधि तथा तक्र के गुणों को सोमदेव ने विस्तार से बताया है। मधुर पदार्थों में शर्करा, शिता, गुड तथा मधु का उल्लेख है। साग-सब्जी और फलों की तो एक लम्बी सूची आयी है– पटोल, कोहल, कारवेल, वृन्ताक, वान, कदल, जीवन्ती, कन्द, किसलय, बिस, वास्तूल, तण्डुलीय, चिल्ली, चिर्भटिका, मूलक, आर्द्रक, धात्रीफल, एर्वारु, अलाबू, कर्कारु, मालूर, चक्रक, अग्निदमन, रिंगणीफल, आम्र, आम्रातक, पिचुमन्द, सोभाजन, वृहतीवार्ताक, एरण्ड, पलाण्डु, वल्लक, रालक, कोकुन्द, काकमाची, नागरंग, ताल, मन्दर, नागवल्ली, वाण, आमन, पूग, अक्षोल, खर्जूर, लवली, जम्बीर, अश्वत्थ, कपित्थ, नमेरु, पारिजात, पनस, ककुभ, वट, कुरवक, जम्बू, दर्दरीक, पुण्ड्रेक्षु, मृद्वीका, नारिकेल, उदम्बर तथा प्लक्ष।

तैयार की गयी सामग्री में भक्त, सूप, शष्कुली, समिध या समिता, यवागू, मोदक, परमान्न, खाण्डव, रसाल, आमिक्षा, पक्वान्न, अवदंश, उपदेश, सर्पिषिस्नात, अंगारपाचित, दध्नापरिप्लुत, पयसा-विशुष्क तथा पपट के उल्लेख हैं।

मांसाहार तथा मांसाहार निषेध का भी पर्याप्त वर्णन है। जैन मांसाहार के तीव्र विरोधी थे, किन्तु कौल कापालिक आदि सम्प्रदायों में मांसाहार धार्मिक रूप से अनुमत था। वध्य पशु, पक्षी तथा जलजन्तुओं में मेष, महिष, मय, मातंग, मितद्रु, कुभीर, मकर, मालूर, कुलीर, कमठ, पाठीन, भेरुण्ड, क्रौंच, कोक, कुकुंट कुरर, कलहंस, चमर, चमूरु, हरिण, हरि, वृक, वराह, वानर तथा गोखुर के उल्लेख हैं। मांसाहार का ब्राह्मण परिवारों में भी प्रचलन था। यज्ञ और श्राद्ध के नाम पर मांसाहार की धार्मिक स्वीकृति मान ली गयी थी। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

परिच्छेद छह में स्वास्थ्य, रोग और उनकी परिचर्या विषयक सामग्री का विवेचन है। खान पान और स्वास्थ्य का अनन्य संबध है। जठराग्नि पर भोजनपान निर्भर करता है। मनुष्यो की प्रकृति भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। ऋतु के अनुसार प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है। इसलिए भोजन-पान आदि की व्यवस्था ऋतुओ के अनुसार करना चाहिए। भोजन का समय, सहभोजन, भोजन के समय वर्जनीय व्यक्ति, भोज्य और अभोज्य पदार्थ, विद-युक्त भोजन, भोजन करने की विधि। नीहार या मलमूत्रविसर्जन, अभ्यग, उद्वर्तन, व्यायाम तथा स्नान इत्यादि के विषय में यशस्तिलक में पर्याप्त सामग्री आयी है। इस सबका इस परिच्छेद में विवेचन किया गया है।

रोगो में अजीर्ण, अजीर्ण के दो भेद विदाहि और दुजर, दृग्मान्द्य, वमन, ज्वर, भगन्दर, गुल्म तथा सितश्वित्र के उल्लेख हैं। इनके कारणो तथा परिचर्या के विषय में भी प्रकाश डाला गया है।

ओषधियो में मागधी, अमृता, सोम, विजया, जम्बूक, सुदर्शना, मरुद्भव, अर्जुन, अभीरु, लक्ष्मी, वृती तपस्विनि, चन्द्रलेखा, कलि, अर्क, अरिभेद, शिव-प्रिय, गायत्री, ग्रन्थिपर्ण तथा पारदरस की जानकारी आयी है। सोमदेव ने आयुर्वेद के अनेक पारिभाषिक शब्दो का भी प्रयोग किया है। इस सब पर इस परिच्छेद में प्रकाश डाला गया है।

परिच्छेद सात में यशस्तिलक में उल्लिखित वस्त्रों तथा वेशभूषा का विवेचन है। सोमदेव ने बिना सिले वस्त्रो में नेत्र, चीन, चित्रपटी, पटोल, रल्लिका, दुकूल, अशुक तथा कौशेय का उल्लेख किया है। नेत्र के विषय में सर्व प्रथम डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने हर्षचरित के सांस्कृतिक अध्ययन में विस्तार से जानकारी दी थी। नेत्र का प्राचीनतम उल्लेख कालिदास के रघुवश का है। बाण ने भी नेत्र का उल्लेख किया है। उद्योतनसूरि कृत कुवलयमाला (७७९ ई०) में चीन से आने वाले वस्त्रो में नेत्र का भी उल्लेख है। वर्णरत्नाकर में इसके चौदह प्रकार बताये हैं। चौदहवी शती तक बंगाल में नेत्र का प्रचलन था। नेत्र की पाचूडी ओढी और बिछायी जाती थी। जायसी ने पदमावत में कई बार नेत्र का उल्लेख किया है। गोरखनाथ के गीतों तथा भोजपुरी लोक गीतों में नेत्र का उल्लेख मिलता है। चीन देश से आने वाले वस्त्र को चीन कहा जाता था। भारत में चीनी वस्त्र आने के प्राचीनतम प्रमाण ईसा पूर्व पहली शताब्दी के मिलते हैं। डॉ० मोतीचन्द्र ने इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। कालिदास ने शाकुन्तल में चीनांशुक का उल्लेख

किया है। बृहत्कल्पसूत्र की वृत्ति में इसकी व्याख्या आयी है। चीन और बाह्लीक से और भी कई प्रकार के वस्त्र आते थे। चित्रपट सम्भवतया वे जामदानी वस्त्र थे, जिनकी बिनावट में ही पशु पक्षियों या फूल-पत्तियों की भांत डाल दी जाती थी। बाण ने चित्रपट के तकियों का उल्लेख किया है। पटोल गुजरात का एक विशिष्ट वस्त्र था। आज भी वहाँ पटोला साडी का प्रचलन है। रल्लिका रल्लक नामक जंगली बकरे के ऊन से बना बेशकीमती वस्त्र था। युवानच्वाग ने भी इसका उल्लेख किया है। वस्त्रों में सबसे अधिक उल्लेख दुकूल के हैं। आचारांग-चूर्णि तथा निशीथ-चूर्णि में दुकूल की व्याख्या आयी है। पौण्ड्र तथा सुवर्णकुड्या के दुकूल विशिष्ट होते थे। दुकूल की बिनाई, दुकूल का जोड़ा पहनने का रिवाज, हंसमिथुन लिखित दुकूल के जोड़े, दुकूल के जोड़े पहनने की अन्य साहित्यिक साक्षी, दुकूल की साड़ियाँ, पलंगपोश, तकियों के गिलाफ, दुकूल और क्षौम वस्त्रों में अन्तर और समानता इत्यादि का इस परिच्छेद में पर्याप्त विवेचन किया गया है। अंशुक एक प्रकार का महीन वस्त्र था। यह कई प्रकार का होता था। सफेद तथा रंगीन सभी प्रकार का अंशुक बनता था। भारतीय और चीनी अंशुक की अपनी-अपनी विशेषतायें थी। कौशेय कोशकार कीडों से उत्पन्न रेशम से बनता था। इन कीडों की चार योनियाँ बतायी गयी हैं। उन्ही के अनुसार कौशेय भी कई प्रकार का होता था।

पहनने के वस्त्रों में सोमदेव ने कंचुक, वारबाण, चोलक, चण्डातक, उष्णीष, कौपीन, उत्तरीय, चीवर, आवान, परिधान, उपसंव्यान और गुह्या का उल्लेख किया है। कंचुक एक प्रकार के लम्बे कोट को कहा जाता था और स्त्रियों की चोली को भी। सोमदेव ने चोली के अर्थ में कंचुक का उल्लेख किया है। वारबाण घुटनों तक पहुँचने वाला एक शाही कोट था। भारतीय वेशभूषा में यह सासानी ईरान की वेशभूषा से आया। वारबाण पहलवी भाषा का संस्कृत रूप है। शिल्प तथा मृण्मूर्तियों मे वारबाण के अङ्कन मिलते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों वारबाण पहनते थे। वारबाण जिरहबख्तर को भी कहते थे, किन्तु सोमदेव ने कोट के अर्थ में ही प्रयोग किया है। भारतीय साहित्य में वारबाण के उल्लेख कम ही मिलते हैं। चोलक भी एक प्रकार का कोट था। यह और कोटों की अपेक्षा सबसे अधिक लम्बा और ढीला बनता था। इसे सब वस्त्रों के ऊपर पहनते थे। उत्तर-पश्चिम भारत में नौशे के समय चोला या चोलक पहनने का रिवाज अब भी है। भारत में चोलक सम्भवतया मध्य एशिया से शक लोगों के साथ आया और यहाँ की वेशभूषा में समा गया। भारतीय शिल्प में इन

प्रकार के कोट पहने मूर्तियां मिलती हैं। चण्डातक एक प्रकार का घघरीनुमा वस्त्र था। इसे स्त्री और पुरुष दोनों पहनते थे। उष्णीष पगडी को कहते थे। भारत में विभिन्न प्रकार की पगडियां बांधने का रिवाज प्राचीनकाल से चला आया है। छोटे चादर या दुपट्टा को कौपीन कहते थे। उत्तरीय ओढनेवाला चादर था। चीवर बौद्ध भिक्षुओ के वस्त्र कहलाते थे। आश्रमवासी साधुओ के वस्त्रो के लिए सोमदेव ने आवान कहा है। परिधान पुरुष की धोती को कहते थे। बुन्देलखण्ड की लोकभाषा में इसका परदनिया रूप अब भी सुरक्षित है। उपसव्यान छोटे अगोछे को कहते थे। गुह्या कछुटिया या लगोट था। हसतूलिका रुई भरे गद्दे को कहा जाता था। उपधान तकिया के लिए बहु-प्रचलित शब्द था। कन्था पुराने कपडो को एक साथ सिलकर बनायी गयी रजाई या गदगी थी। नमत ऊनी नमदे थे। निचोल विस्तर पर विछाने का चादर कहलाता था। सिचयोल्लोच चन्द्रातप या चदोवा को कहते थे। इस परिच्छेद मे इन समस्त वस्त्रो के विषय में प्रमाणक सामग्री के साथ पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

परिच्छेद आठ मे यशस्तिलक मे उल्लिखित आभूषणों का परिचय दिया गया है। भारतीय अलकारशास्त्र की दृष्टि से यह सामग्री महत्त्वपूर्ण है। सोमदेव ने शिर के आभूषणो में किरीट, मौलि, पट्ट और मुकुट का उल्लेख किया है। किरीट, मौलि और मुकुट भिन्न भिन्न प्रकार के मुकुट थे। किरीट प्राय इन्द्र तथा अन्य देवी देवताओ के मुकुट को कहा जाता था। मौलि प्राय राजे पहनते थे तथा मुकुट महामामन्त। पट्ट सिर पर बाधने का एक विशेष आभूषण था, जो प्राय सोने का बनता था। बृहत्सहिता में पांच प्रकार के पट्ट बताये हैं।

कर्णाभूषणो में सोमदेव ने अवतस, कर्णपूर, कर्णिका, कर्णोत्पल तथा कुडल का उल्लेख किया है। अवतस प्राय पल्लव या पुष्पो के बनते थे। सोमदेव ने पल्लव, चम्पक, कचनार, उत्पल तथा कैरव के बने अवतसो के उल्लेख किये हैं। एक स्थान पर रत्नावतसो का भी उल्लेख है। कर्णपूर पुष्प के आकार का बनता था। देशी भाषा में अभी इसे कनफूल कहा जाता है। कर्णिका तालपत्र के आकार का कर्णाभूषण था। आजकल इसे तिर्कोना कहते हैं। उत्पल के आकार का बना कर्ण का आभूषण कर्णोत्पल कहलाता था। कुण्डल कुड्मल तथा गोल बाली के आकार के बनते थे। इसमें कानों को लपेटने के लिए एक पतली जजीर भी लगी रहती थी। बुदेलखड में इस प्रकार के कुण्डलो का देहातों में अब भी रिवाज है।

गले में पहनने के आभूषणों में एकावली, कंठिका, मौलिकदाम, हार तथा हारयष्टि का उल्लेख है। एकावली मोतियों की इकहरी माला को कहते थे। सोमदेव ने इसे समस्त पृथ्वीमंडल को वश में करने के लिए आदेशमाला के समान कहा है। गुप्त युग से ही विशिष्ट आभूषणों के विषय में अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हो गयी थी। एकावली के विषय में बाण ने एक रोचक किंवदन्ती का उल्लेख किया है। कंठिका कंठी को कहते थे। हार अनेक प्रकार के बनते थे। सोमदेव ने आठ बार हार का उल्लेख किया है। हारयष्टि संभवतया आगुल्फ लम्बा हार कहलाता था। मौलिकदाम मोतियों की माला को कहते थे।

भुजा के आभूषणों में अंगद और केयूर का उल्लेख है। केयूर भुजा के शीर्ष भाग में पहना जाता था। अंगद बहुत चुस्त होने के कारण ही संभवतया अंगद कहलाता था। स्त्री और पुरुष दोनों अंगद पहनते थे। कलाई के आभूषणों में कंकण और वलय का उल्लेख है। कंकण प्राय. सोने आदि के बनते थे और वलय सींग, हाथीदांत या कांच के। हाथ की अंगुली में पहना जाने वाला गोल छल्ला ऊर्मिका कहलाता था। अंगुलीयक भी अंगुली में पहना जानेवाला आभूषण था। कटि के आभूषणों में कांची, मेखला, रसना, सारसना तथा घर्घरमालिका का उल्लेख है। ये सब करधनी के ही भिन्न-भिन्न प्रकार थे। मंजीर, हिंजीरक, नूपुर, तुलाकोटि और हंसक पैरों में पहनने के आभूषण थे। इस परिच्छेद में इन सब आभूषणों के विषय में विस्तार से जानकारी दी गई है।

परिच्छेद नव में केश विन्यास, प्रसाधन सामग्री तथा पुष्प प्रसाधन की सुकुमार कला का विवेचन है। शिर धोने के बाद स्त्रियां सुगंधित धूप के धुये से केशों को धूपायित करती थी। इससे केश भंभरे हो जाते थे। भंभरे केशों को अपनी रुचि के अनुसार अलकजाल, कुन्तलकलाप, केशपाश, चिकुरभंग, धम्मिलविन्यास, मौली, सीमन्तसन्तति, वेणीदंड, जटाजूट या कबरी की तरह सँवार लिया जाता था। केश सँवारने के ये विभिन्न प्रकार थे। कला, शिल्प और मृण्मूर्तियों में इनका अंकन मिलता है। इस परिच्छेद में इन सबका परिचय दिया गया है।

प्रसाधन सामग्री में अंजन, अलक्तक, कज्जल, अगुरु, कंकोल, कुंकुम, कर्पूर, चन्द्रकवल, तमालदलधूलि, ताम्बूल, पटवास, मनःसिल, मृगमद, यक्षकर्दम, हरिरोहण, तथा सिन्दूर का उल्लेख है। पुष्पप्रसाधन में पुष्पों के बने विभिन्न प्रकार के अलंकारों के नाम आये हैं। जैसे— अवतंसकुवलय, कमलकेयूर,

कदलीप्रवालमेखला, कर्णोत्पल, कर्णपूर या कर्णफूल, मृणालवलय, पुन्नागमाला, वधूकनूपुर, शिरीषजघालकार, शिरीषकुसुमदाम, विचकिलहारयष्टि तथा कुरबक-मुकुलस्रक। इन सबके विषय में प्रस्तुत परिच्छेद में जानकारी दी गयी है।

परिच्छेद दश मे शिक्षा और साहित्य विषयक सामग्री का विवेचन है। बाल्यावस्था शिक्षा का उपयुक्त समय माना जाता था। गुरुकुल प्रणाली शिक्षा का आदर्श थी। शिक्षा समाप्ति के बाद गोदान दिया जाता था। शिक्षा के अनेक विषयों का सोमदेव ने उल्लेख किया है। अमृतमति महारानी की द्वारपालिका को समस्त देशो की भाषा और वेश की जानकार कहा गया है। तर्कशास्त्र, पुराण, काव्य, व्याकरण, गणित, शब्दशास्त्र, धर्माख्यान, प्रमाणशास्त्र, राजनीति गज और अश्व शिक्षा, रथ, वाहन और शस्त्रविद्या, रत्नपरीक्षा, सगीत, नाटक, चित्रकला, आयुर्वेद, युद्धविद्या तथा कामशास्त्र शिक्षा के प्रमुख विषय थे। इन्द्र, जैनेन्द्र, चन्द्र, अपिशल, पाणिनी तथा पतजलि के व्याकरणो का अध्ययन अध्यापन होता था। पाणिनी के विषय में सोमदेव ने एक महत्त्व पूर्ण जानकारी दी है। इनके पिता का नाम पणि या पाणि था। इसीलिए इन्हें पणिपुत्र भी कहा जाता था। गणित को सोमदेव ने प्रसख्यान शास्त्र कहा है। सोमदेव के समय प्रमाणशास्त्र के रूप में अकलक न्याय की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। राजनीति में गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पाराशर, भीम, भीष्म तथा भारद्वाज रचित नीतिशास्त्रो का उल्लेख है। सोमदेव ने गजविद्या में यशोधर को रोमपाद की तरह कहा है। रोमपाद के अतिरिक्त गजविद्या विशेषज्ञो में इभचारी, याज्ञवल्क्य, वाद्धलि (वाहलि), नर, नारद, राजपुत्र तथा गौतम का उल्लेख है। कुल मिलाकर यशस्तिलक में गजविद्या विषयक प्रभूत सामग्री है। गजोत्पत्ति की पौराणिक अनुश्रुति, उत्तम गज के गुण, गजो के भद्र, मन्द, मृग और सकीर्ण भेद, गजो की मदावस्था, उसके गुण दोष और चिकित्सा, गज-परिचारक, गजशिक्षा इत्यादि के विषय में सोमदेव ने विस्तार से लिखा है। मैंने उपलब्ध गजशास्त्रो से इसकी तुलना करके देखा है कि यह सामग्री एक स्वतन्त्र गजशास्त्र के लिए पर्याप्त है। गजशास्त्र की तरह अश्वशास्त्र पर भी सोमदेव ने विस्तार से प्रकाश डाला है। राजाश्व के वर्णन में केवल एक प्रसग में ही पर्याप्त जानकारी दे दी है। रैवत और शालिहोत्र अश्वशास्त्र विशेषज्ञ माने जाते थे। सोमदेव ने अश्व के इकतालीस गुणो की परीक्षा करना अपेक्षित बताया है। यशस्तिलक में इन सभी गुणो के विषय में पर्याप्त जानकारी दी गयी है। अश्वशास्त्र के साथ तुलना करने पर यह

सामग्री और भी महत्त्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध होती है। रत्नपरीक्षा में शुकनास का उल्लेख है। वैद्यक या आयुर्वेद में काशिराज धन्वन्तरि, चारायण, निमि, धिषण तथा चरक का उल्लेख है। रोग और उनकी परिचर्या नामक परिच्छेद में इनके विषय में विशेष जानकारी दी है। संसर्गविद्या या नाट्यशास्त्र, चित्रकला, तथा शिल्पशास्त्र विषयक सामग्री भी यशस्तिलक में पर्याप्त और महत्त्वपूर्ण है। ललित-कलायें और शिल्प विज्ञान नामक तीसरे अध्याय में इस सामग्री का विवेचन किया गया है। कामशास्त्र को सोमदेव ने कन्तुसिद्धान्त कहा है। यशस्तिलक में इसकी सामग्री बिखरी पड़ी है। भोगावलि राजस्तुति को कहते थे। काव्य और कवियो में सोमदेव ने अपने पूर्ववर्ती अनेक महाकवियो का उल्लेख किया है। उर्व, भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमेण्ठ, कण्ठ, गुणाढ्य, व्यास, भास, वोस, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, कुमार, माघ तथा राजशेखर का एक साथ एक ही प्रसङ्ग में उल्लेख है। सोमदेव द्वारा उल्लिखित ग्रहिल, नीलपट, त्रिदश, कोहल, गणपति, शंकर, कुमुद तथा केकट के विषय में अभी हमें विशेष जानकारी नहीं उपलब्ध होती। वररुचि का भी एक पद्य उद्धृत किया गया है। दार्शनिक और पौराणिक शिक्षा और साहित्य की तो यशस्तिलक खान है। प्रो० हन्दिकी ने इस सामग्री का विस्तार से विवेचन किया है, हमने उसकी पुनरावृत्ति नहीं की।

परिच्छेद ग्यारह में आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। सोमदेव ने कृषि, वाणिज्य, सार्थवाह, नौ सन्तरण और विदेशी व्यापार, विनिमय के साधन, न्यास आदि के विषय में पर्याप्त सामग्री दी है। काली जमीन विशेष उपजाऊ होती है। सुलभ जल, सहज प्राप्य श्रमिक, कृषि के उपयोगी उपकरण, कृषि की विशेष जानकारी तथा उचित कर कृषि की समृद्धि में कारण होते हैं। तभी वसुन्धरा पृथ्वी चिन्तामणि की तरह सस्य सम्पत्ति लुटाती है।

वाणिज्य में सोमदेव ने स्थानीय तथा विदेशी व्यापार का उल्लेख किया है। स्थानीय व्यापार के लिए प्राय प्रत्येक चीज का अलग-अलग बाजार या हाट होता था। बडे बडे व्यापारिक केन्द्र पेण्ठास्थान कहलाते थे। देश देश के व्यापारी आकर इन पेण्ठास्थानो में अपना रोजगार करते थे। पेण्ठास्थानो का सचालन राज्य की ओर से होता था या किसी विशेष व्यक्ति द्वारा। इनमें व्यापारियो को हर तरह की सुविधा दी जाती थी। मध्य युग में जो व्यापारिक प्रगति हुई उसमें इन व्यापारिक मडियो का विशेष हाथ था।

भारतवर्ष में व्यापार करने के लिए जिस प्रकार विदेशी सार्थ आते थे उसी

प्रकार भारतीय सार्थ टाडा बांधकर विदेशी व्यापार के लिए निकलते थे। सोमदेव ने ताम्रलिप्ति तथा सुवर्णद्वीप के व्यापार को जानेवाले सार्थों का उल्लेख किया है।

सोमदेव के युग में वस्तु विनिमय तथा मुद्रा के माध्यम से विनिमय की प्रणाली थी। पिछडे क्षेत्रो में वस्तु विनिमय चलता था। मुद्राओ में सोमदेव ने निष्क, कार्षापण तथा सुवर्ण का उल्लेख किया है। निष्क वैदिक युग में एक स्वर्णाभूषण था, किन्तु बाद में एक नियत स्वर्ण मुद्रा बन गया। मनुस्मृति में निष्क को चार स्वर्ण या तीन सौ बीस रत्ती के बराबर कहा गया है। कार्षापण चांदी का सिक्का था। मनुस्मृति में इसे राजतपुराण और धरण कहा है। पुराण का वजन बत्तीस रत्ती होता था। कार्षापण की फुटकर खरीद भी होती थी। सुवर्ण निष्क की तरह एक सोने का सिक्का था। अनगढ सोने को हिरण्य कहते थे, और जब उसी के सिक्के ढाल लिए जाते तो वे सुवर्ण कहलाते थे। मनुस्मृति के अनुसार स्वर्ण का वजन अस्सी रत्ती या सोलह मापा होता था।

सोमदेव ने न्यास या धरोहर रखने का भी उल्लेख किया है। आचार, व्यवहार तथा विश्वास के लिए विश्रुत व्यक्ति के यहां न्यास रखा जाता था। यदि न्यास रखने वाले की नियत खराब हो जाये और वह समझ ले कि न्यास रखनेवाले के पास ऐसा कोई प्रमाण नही, जिसके आधार पर वह कह सके कि उसने अमुक वस्तु उसके पास न्यास रखी है, तो वह न्यास को हडप जाता था।

भृति या सेवावृत्ति के विषय में लोगो की भावना अच्छी नही थी। विवश होकर आजीविका के लिए सेवावृत्ति स्वीकार भले ही कर ली जाये, किन्तु उसे अच्छा नही माना जाता था। ग्यारहवें परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन है।

परिच्छेद बारह मे यशस्तिलक मे उल्लिखित शस्त्रास्त्रों का विवेचन है। सोमदेव ने छत्तीस प्रकार के शस्त्रास्त्रो का उल्लेख किया है। इन उल्लेखो की एक बडी विशेषता यह है कि इनसे अधिकाश शस्त्रास्त्रो का स्वरूप, उनके प्रयोग करने के तरीके तथा कतिपय अन्य बातो पर भी प्रकाश पडता है। धनुष, असिधेनुका, कर्तरी, कटार, कृपाण, खड्ग, कौक्षेयक या करवाल, तरवारि, भुसुण्डी, मण्डलाग्र, असिपत्र, अशनि, अंकुश, कणय, परशु, या कुठार, प्रास, कुन्त, भिन्दिपाल, करपत्र, गदा, दुस्फोट या मुसल, मुद्गर, परिघ, दण्ड, पट्टिस, चक्र, भ्रमिल, यष्टि, लागल, शक्ति, त्रिशूल, शकु, पाश, वागुरा, क्षेपणिहस्त तथा गोलधर के विषय में इस परिच्छेद में पर्याप्त जानकारी दी गयी है।

तृतीय अध्याय मे ललित कलाओं तथा शिल्प-विज्ञान विपयक सामग्री का विवेचन है। इसमें सब चार परिच्छेद हैं।

परिच्छेद एक में संगीत, वाद्य यन्त्र तथा नृत्यकला का विवेचन है। सोमदेव ने यशोधर को गीतगन्धर्वचक्रवर्ती कहा है। यशोधर का हस्तिपक, जिसकी ओर महारानी आकृष्ट हुई, सगीत में माहिर था। सगीत और स्वरलहरी का अनन्य सम्बन्ध है। सोमदेव ने सप्त स्वरो का उल्लेख किया है।

वाद्य यन्त्रो में यशस्तिलक के उल्लेख विशेष महत्त्व के हैं। वाद्यो के लिए सम्मिलित शब्द आतोद्य था। सगीतशास्त्र की तरह सोमदेव ने भी वाद्यो के घन, सुषिर, तत और अवनद्ध, ये चार भेद बताये हैं। सोमदेव ने तेईस वाद्य-यन्त्रो की जानकारी दी है। शख, काहला, दुन्दुभि, पुष्कर, ढक्का, आनक, भम्भा, ताल, करटा, त्रिविला, डमरुक, रुञ्जा, घण्टा, वेणु, वीणा, झल्लरी, वल्लकी, पणव, मृदग, भेरी, तूर, पटह, और डिण्डिम, इन सभी के विषय में यशस्तिलक की सामग्री से पर्याप्त प्रकाश पडता है। सगीतशास्त्र के अन्य ग्रन्थो के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर इन वाद्य-यन्त्रो का इस परिच्छेद में पूरा परिचय दिया गया है।

नृत्यकला विपयक सामग्री भी यशस्तिलक में पर्याप्त है। सोमदेव ने लिखा है कि सम्राट यशोधर नाट्यशाला में जाकर कुशल अभिनेताओ के साथ अभिनय देखते थे। नाट्य प्रारम्भ होने के पूर्व रगपूजा की जाती थी। सोमदेव ने इसका विस्तार से वर्णन किया है।

यशस्तिलक में नृत्य के लिए नृत्य, नृत्त, नाट्य, लास्य, ताण्डव, तथा विधि शब्द आये हैं। नृत्य, नृत्त और नाट्य देखने में समानार्थक शब्द लगते हैं, किन्तु वास्तव में इनमें पर्याप्त अन्तर था। दशरूपक में धनजय ने इनके पारस्परिक भेदों को स्पष्ट किया है। नाट्य दृश्य होता है, इसलिए इसे 'रूप' भी कहते हैं और रूपक अलकार की तरह आरोप होने के कारण रूपक भी। काव्यो में वर्णित धीरोद्धत आदि प्रकृति के नायको, नायिकाओ तथा अन्य पात्रो का आगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक अभिनयो द्वारा अवस्थानुकरण नाट्य कहलाता है। यह रसाश्रित होता है। नृत्य भावाश्रित और केवल दृश्य होता है। ताल और लय के आश्रित किये जानेवाले नर्तन को नृत्त कहते हैं। इसमें अभिनय का सर्वथा अभाव रहता है। लास्य और ताण्डव नृत्त के ही भेद हैं। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विशद विवेचन किया गया है।

परिच्छेद दो मे यशस्तिलक की चित्रकला विषयक सामग्री का विवेचन है। सोमदेव ने विभिन्न प्रकार के भित्तिचित्रों तथा धूलिचित्रों का उल्लेख किया है। प्रजापतिप्रोक्त चित्रकर्म का सन्दर्भ विशेष महत्त्व का है। उसका एक पद्य उद्धृत किया गया है।

भित्तिचित्र बनाने की एक विशेष प्रक्रिया थी। भित्तिचित्र बनाने के लिए भीत का लेप कैसा होना चाहिए, उसे कैसे बनाना चाहिए, उस पर लिखाई करने के लिए जमीन कैसे तैयार करना चाहिए—इत्यादि का मानसोल्लास में विस्तृत वर्णन है। सोमदेव ने दो प्रकार के भित्तिचित्रों का उल्लेख किया है— व्यक्तिचित्र और प्रतीकचित्र। एक जिनालय में बाहुबलि, प्रद्युम्न, सुपार्श्व अशोक राजा और रोहिणी रानी तथा यक्ष मिथुन के चित्र बनाये गये थे। प्रतीक चित्रों में तीर्थंकर की माता के सोलह स्वप्नों के चित्र थे। श्वेताम्बर साहित्य में इनकी संख्या चौदह बतायी है। ऐरावत हाथी, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, लटकती हुई पुष्पमालायें, चन्द्र, सूर्य, मत्स्ययुगल, पूर्ण कुम्भ, पद्मसरोवर, सिंहासन, समुद्र, फणयुक्त सर्प, प्रज्वलित अग्नि, रत्नों का ढेर और देवविमान ये सोलह स्वप्न तीर्थंकर की माता बालक के गर्भ में आने के पहले देखती है। प्राचीन पाण्डु-लिपियों में भी इनका चित्रांकन मिलता है।

रंगावली या धूलिचित्रों का सोमदेव ने छह बार उल्लेख किया है। चित्रकला में रंगावली को क्षणिक चित्र कहते हैं। इसके धूलिचित्र और रसचित्र, ये दो भेद हैं। आजकल इसे रंगोली या अल्पना कहा जाता है। प्रत्येक मांगलिक अवसर पर रंगोली बनाने का प्रचलन भारतवर्ष में अभी भी है।

प्रजापतिप्रोक्त चित्रकर्म का एक विशेष प्रसंग में उल्लेख है। पद्य का तात्पर्य है कि जो कलाकार प्रभामण्डल युक्त तथा नव भक्तियों सहित तीर्थंकर अर्थात् तीर्थंकर सभा या समवसरण का चित्र बना सकता है, वह सम्पूर्ण पृथ्वी का भी चित्र बना सकता है।

चित्रकला के अन्य उल्लेखों में ध्वजाओं पर बने चित्र, दीवालों पर बने सिंह तथा गवाक्षों से झांकती हुई कामिनियों के उल्लेख हैं। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

परिच्छेद तीन मे यशस्तिलक की वास्तु शिल्प विषयक सामग्री का विवेचन किया गया है। सोमदेव ने विभिन्न प्रकार के शिखर युक्त चैत्यालय गगनचुम्बी महाभागभवन, त्रिभुवनतिलक नामक राजप्रासाद, लक्ष्मीविलासतामरस नामक आस्थानमण्डप, श्रीसरस्वतीविलासकमलाकर नामक राजमंदिर, दिव-

लयविलोकनविलास नामक क्रीडाप्रासाद, करिविनोदविलोकनदोहद नामक वासभवन, गृहदीर्घिका, प्रमदवन तथा यन्त्रधारागृह का विस्तृत वर्णन किया है।

चैत्यालयो के शिखरो ने सोमदेव का विशेष ध्यान आकृष्ट किया। सोमदेव ने लिखा है कि शिखर क्या थे मानो निर्माण कला के प्रतीक थे। शिखरो की अटनि पर सिंह निर्माण किया जाता था। मणिमुकुर युक्त ध्वजस्तंभ और स्तभिकायें, सचित्र ध्वजदण्ड, रत्नजटित काचन कलश, चद्रकान्त के बने प्रणाल, उज्ज्वल आमलासार कलश और उन पर खेलती हुई कलहंस श्रेणी, विटकों पर बैठे शुकशावक, इन सबके कारण शिखर और अधिक आकर्षण का केन्द्र बन रहे थे। सोमदेव की इस सामग्री को वास्तुसार, प्रासादमण्डन तथा अपराजितपृच्छा की तुलना पूर्वक स्पष्ट किया गया है।

त्रिभुवनतिलक प्रासाद के वर्णन में सोमदेव ने प्राचीन वास्तु-शिल्प की अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनायें दी हैं। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में सूर्य और अग्निमन्दिर की तरह इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, चन्द्र आदि के भी मन्दिरो का निर्माण किया जाता था।

आस्थानमण्डप को सोमदेव ने लक्ष्मीविलास नाम दिया है। गुजरात के बडौदा आदि स्थानो में विलास नामान्तक भवनो की परम्परा अब तक सुरक्षित है। मुगल वास्तु में जिसे दरबारे आम कहा जाता था, उसी के लिए प्राचीन नाम आस्थानमण्डप था। सोमदेव ने इसका विस्तृत वर्णन किया है।

आस्थानमण्डप के ही निकट गज और अश्वशालायें बनायी जाती थी। राजभवन के निकट इन शालाओ के बनाने की परम्परा भी प्राचीन थी। राजा को प्रात गजदर्शन शुभ बताया गया है, यह इसका एक बडा कारण प्रतीत होता है। फतेहपुर सीकरी के प्राचीन महलो में इस प्रकार की वास्तु का दर्शन अब भी देखा जाता है।

सरस्वतीविलासकमलाकर सम्राट का निजी वासभवन था। क्रीडा पर्वतक की तलहटी में बनाये गये दिग्वलयविलोकन प्रासाद में सम्राट अवकाश के क्षणो को आनदपूर्वक बिताते थे। करिविनोदविलोकनदोहद आजकल के स्पोर्ट्स-स्टेडियम के सदृश था। मनसिजविलासहसनिवासतामरस नामक भवन पटरानी का अन्त पुर था। यह सप्ततलप्रासाद का सबसे ऊपरी भाग था। इसके वर्णन में सोमदेव ने बहुमूल्य और प्रचुर सामग्री की जानकारी दी है। रजत-वातायन, अमलक-देहली, जातरूप-भित्तियां, मरकतपराग निर्मित रगावलि, सचरणशील

हेमकन्यकायें, तुहिनतरु के वलीक, कूर्चस्थान इत्यादि का विश्लेषण किया गया है।

दीर्घिका और प्रमदवन के विषय में भी सोमदेव ने पर्याप्त जानकारी दी है। दीर्घिका राजभवन में एक ओर से दूसरी ओर दौडती हुई वह लबी नहर थी, जिसे बीच-बीच में रोककर, पुष्करणी, गधोदककूप, क्रीडावापि आदि मनोरञ्जन के साधन बना लिए जाते थे और अन्त में जाकर दीर्घिका प्रमदवन को सीचती थी। दीर्घिका तथा प्रमदवन दोनो के प्राचीन वास्तु-शिल्प की यह विशेषता बहुत समय तक जारी रही और भारत के बाहर भी इसके उल्लेख मिलते है। इस परिच्छेद में इस सबके विषय में विस्तृत जानकारी दी गयी है।

परिच्छेद चार में यन्त्र-शिल्प विषयक सामग्री का विवेचन है। यन्त्रधारागृह के प्रसग में सोमदेव ने अनेक प्रकार के यान्त्रिक उपादानो का उल्लेख किया है। कुछ सामग्री अन्य प्रसगो में भी आयी है।

यन्त्रधारागृह के निर्माण की परम्परा का क्रमशः विकास हुआ है। समरागण सूत्रधार में पाँच प्रकार के वारिगृहो के उल्लेख हैं। सोमदेव ने यन्त्रधारागृह का विस्तार से वर्णन किया है। वहाँ यन्त्रजलधर या मायामेघ की रचना की गयी थी। विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियो के मुँह से निकलता हुआ जल दिखाया गया था। यन्त्रपुत्तलिकायें, यन्त्रवृक्ष आदि की रचना की गयी थी। यन्त्र-धारागृह का प्रमुख आकर्षण यन्त्रस्त्री थी, जिसके हाथ छूने पर नखाग्रो से, स्तन छूने पर चूचुको से, कपोल छूने पर नेत्रो से, सिर छूने पर कर्णावतसो से, कटि छूने पर करधनि की डोरियो से तथा त्रिवली छूने पर नाभि से चन्दन चर्चित जल की धारायें बहने लगती थी। सोमदेव ने पखा झलनेवाली तथा ताम्बूल-वाहिनी यान्त्रिक पुत्तलिकाओ का भी उल्लेख किया है। अन्त पुर के प्रसग में यन्त्रपर्यंक का उल्लेख है। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में यशस्तिलककालीन भूगोल पर प्रकाश डाला गया है। यशस्तिलक में सैतालिस जनपद, चालीस नगर और ग्राम, पाँच बृहत्तर भारत के देश, पन्द्रह वन और पर्वत तथा बारह झील और नदियो के उल्लेख हैं। इसमें कुछ सामग्री ऐसी भी हैं जो सोमदेव के युग में अस्तित्व में नही थी। ऐसी सामग्री को सोमदेव ने परम्परा से प्राप्त किया था। इस सम्पूर्ण सामग्री का पाँच परिच्छेदो में विवेचन किया गया है।

परिच्छेद एक में यशस्तिलक मे उल्लिखित सैंतालिस जनपदो का परिचय है। अवन्ति, अश्मक, अन्ध्र, इन्द्रकच्छ, कम्बोज, कर्णाट या कर्णाटक, करहाट, कलिंग, क्रथकैशिक, कांची, काशी, कीर, कुरुजागल, कुन्तल, केरल, कोग, कोशल, गिरिकूटपत्तन, चेदि, चेरम, चोल, जनपद, डहाल, दशार्ण, प्रयाग, पल्लव, पांचाल, पाण्डु या पाण्ड्य, भोज, बर्बर, मद्र, मलय, मगध, यौधेय, लम्पाक, लाट, वनवासि, वग या वगाल, वगी, श्रीचन्द्र, श्रीमाल, सिन्धु, सूरसेन, सौराष्ट्र, यवन तथा हिमालय इन सैंतालिस जनपदो में से यशस्तिलक में कई एक का एक बार और अधिकाश का एक से अधिक बार उल्लेख हुआ है। इस परिच्छेद में इन सबका परिचय दिया गया है।

परिच्छेद दो में यशस्तिलक मे उल्लिखित चालीस नगर और ग्रामों का परिचय है। अहिच्छत्र, अयोध्या, उज्जयिनी, एकचक्रपुर, एकानसी, कनकगिरि, ककाहि, काकन्दी, काम्पिल्य, कुशाग्रपुर, किन्नरगीत, कुसुमपुर, कौशाम्बी, चम्पा, चुकार, ताम्रलिप्ति, पद्मावतीपुर, पद्मनिखेट, पाटलिपुत्र, पोदनपुर, पौरव, बलवाहनपुर, भावपुर, भूमितिलकपुर, उत्तरमथुरा, दक्षिण-मथुरा या मदुरा, मायापुरी, मिथिलापुर, माहिष्मती, राजपुर, राजगृह, वलभी, वाराणसी, विजयपुर, हस्तिनापुर, हेमपुर, स्वस्तिमति, सोपारपुर, श्रीसागर या श्रीसागरम्, सिंहपुर तथा शखपुर, इन चालीस नगर और ग्रामो के विषय में यशस्तिलक में जानकारी आयी है। इस परिच्छेद में इनका परिचय दिया गया है।

परिच्छेद तीन में यशस्तिलक मे उल्लिखित बृहत्तर भारतवर्ष के पाँच देश– नेपाल, सिंहल, सुवर्णद्वीप, विजयार्ध तथा कुलूत का परिचय दिया गया है।

परिच्छेद चार मे यशस्तिलक में उल्लिखित पन्द्रह वन और पर्वतों का परिचय है। सोमदेव ने कालिदासकानन, कैलास, गन्धमादन, नाभिगिरी, नेपालशैल, प्रागद्रि, भीमवन, मन्दर, मलय, मुनिमनोहरमेखला, विन्ध्य, शिखण्डिताण्डव, सुवेला, सेतुबन्ध और हिमालय का उल्लेख किया है। इन सबके विषय में इस परिच्छेद में जानकारी दी गयी है।

परिच्छेद पाँच में यशस्तिलक में उल्लिखित सरोवर तथा नदियों का परिचय दिया गया है। सोमदेव ने मानस या मानसरोवर झील तथा गगा, यमुना, नर्मदा, जलवाहिनी, गोदावरी, चन्द्रभागा, सरस्वती, सरयू, शोण, सिन्धु तथा सिप्रा नदी का उल्लेख किया है। इस परिच्छेद मे इनके बारे में जानकारी प्रस्तुत की गयी है।

पचम अध्याय यशस्तिलक की शब्द सम्पत्ति विषयक है। यशस्तिलक सस्कृत के प्राचीन, अप्रसिद्ध, अप्रचलित तथा नवीन शब्दो का एक विशिष्ट कोश है। सोमदेव ने प्रयत्नपूर्वक ऐसे अनेक शब्दो का यशस्तिलक में सग्रह किया है। वैदिक काल के बाद जिन शब्दो का प्रयोग प्राय समाप्त हो गया था, जो शब्द कोश ग्रन्थो में तो आये हैं, किन्तु जिनका प्रयोग साहित्य में नही हुआ या नही के बराबर हुआ, जो शब्द केवल व्याकरण ग्रन्थो में सीमित थे तथा जिन शब्दो का प्रयोग किन्ही विशेष विषयो के ग्रन्थो में ही देखा जाता था, ऐसे अनेक शब्दो का सग्रह यशस्तिलक में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त यशस्तिलक में ऐसे भी बहुत से शब्द हैं, जिनका सस्कृत साहित्य में अन्यत्र प्रयोग नही मिलता। कुछ शब्दों का तो अर्थ और ध्वनि के आधार पर सोमदेव ने स्वय निर्माण किया है। लगता है सोमदेव ने वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक, व्याकरण, कोश, आयुर्वेद, धनुर्वेद, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, ज्योतिष तथा साहित्यिक ग्रन्थो से चुनकर विशिष्ट शब्दो की पृथक् पृथक् सूचियाँ बना ली थी और यशस्तिलक में यथास्थान उनका उपयोग करते गये। यशस्तिलक की शब्द सम्पत्ति के विषय में सोमदेव ने स्वय लिखा है कि 'काल के कराल व्याल ने जिन शब्दो को चाट डाला उनका मैं उद्धार कर रहा हूँ। शास्त्र-समुद्र के तल में डूबे हुये शब्द-रत्नो को निकालकर मैंने जिस बहुमूल्य आभूषण का निर्माण किया है, उसे सरस्वती देवी धारण करे' (पृ० २६६ उ० प्र०)।

प्रस्तुत प्रबन्ध में मैंने ऐसे लगभग एक सहस्र शब्द दिये हैं। आठ सौ शब्द इस अध्याय में हैं तथा दो सौ से भी अधिक शब्द अन्य अध्यायो में यथास्थान दिये है। इस अध्याय में शब्दो को वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक आदि श्रेणियों में वर्गीकृत न करके अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया है। शब्दो पर मैंने तीन प्रकार से विचार किया है—(१) कुछ शब्द ऐसे हैं, जिन पर विशेष प्रकाश डालना उपयुक्त लगा। ऐसे शब्दों का मूल सदर्भ, अर्थ तथा आवश्यक टिप्पणी दी गयी है। (२) सोमदेव के प्रयोग के आधार पर जिन शब्दो के अर्थ पर विशेष प्रकाश पडता है, उन शब्दो के पूरे सदर्भ दे दिये हैं। (३) जिन शब्दो का केवल अर्थ देना पर्याप्त लगा, उनका सदर्भ सकेत तथा अर्थ दिया है।

शब्दों पर विचार करने का आधार श्रीदेव कृत टिप्पण तथा श्रुतसागर की अपूर्ण सस्कृत टीका तो रहे ही हैं, प्राचीन शब्द कोश तथा मोनियर विलियम्स और प्रो० आप्टे के कोशो का भी उपयोग किया गया है। स्वय सोमदेव का प्रयोग भी प्रसगानुसार शब्दो के अर्थ को खोलता चलता है। श्लिष्ट, क्लिष्ट,

अप्रचलित तथा नवीन शब्दो के कारण यशस्तिलक दुरूह अवश्य लगता है, किन्तु यदि सावधानीपूर्वक इसका सूक्ष्म अध्ययन किया जाये तो क्रम-क्रम से यशस्तिलक के वर्णन स्वय ही आगे पीछे के सदर्भो को स्पष्ट करते चलते हैं। इस प्रकार यशस्तिलक की कुञ्जी यशस्तिलक में ही निहित है। सोमदेव की इस बहुमूल्य सामग्री का उपयोग भविष्य में कोश ग्रन्थो में किया जाना चाहिए।

इस तरह उपर्युक्त पांच अध्यायो के पच्चीस परिच्छेदो में प्रस्तुत प्रबन्ध पूर्ण होता है।

•

अध्याय एक

यशस्तिलक के परिशीलन की पृष्ठभूमि

परिच्छेद एक

यशस्तिलक और सोमदेव सूरि

यशस्तिलक

सोमदेव सूरि कृत यशस्तिलक महाराज यशोधर के जीवनचरित्र को आधार बनाकर गद्य और पद्य में लिखा गया एक महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थ है। इसमें आठ आश्वास या अध्याय हैं। पूरे ग्रन्थ में दो हजार तीन सौ ग्यारह पद्य तथा शेष गद्य है। सोमदेव ने गद्य और पद्य दोनों को मिलाकर आठ हजार श्लोक प्रमाण बताया है।[1]

यशस्तिलक का रचनाकाल निश्चित है, इसलिए इसके अनुशीलन में वे अनेक कठिनाइयाँ नहीं आतीं, जो समय की अनिश्चितता के कारण प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुशीलन में साधारणतया उपस्थित होती हैं। सोमदेव ने यशस्तिलक के अन्त में स्वयं लिखा है कि चैत्र शुक्ल त्रयोदशी शक संवत् ८८१ (९५९ ई०) को जिस समय श्री कृष्णराजदेव पाण्ड्य, सिंहल, चोल, चेर आदि राजाओं को जीतकर मेलपाटी सेना शिविर में थे, उस समय उनके चरणकमलोपजीवी, चालुक्यवंशीय अरिकेसरी के प्रथम पुत्र सातवद्दिग (वद्यग) की राजधानी गंगधारा में यह काव्य रचा गया।[2]

राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज तृतीय के एक दानपत्र में भी सोमदेव के विवरण के समान ही कृष्णराजदेव की दिग्विजय का उल्लेख है।[3] यह दानपत्र सोमदेव

---

१ एतामष्टसहस्रीम्। —पृ० ४१८ उत्त०

२ शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेष्वष्टस्वेकाशीत्यधिकेषु गतेषु अङ्कतः (८८१) सिद्धार्थसंवत्सरान्तर्गतचैत्रमासमदनत्रयोदश्यां पाण्ड्य सिंहल चोल-चेरमप्रभृतीन्महीपतीन् प्रसाध्य मेल्पाटीप्रवर्धमानराज्यप्रभावे श्रीकृष्णराजदेवे सति तत्पादपद्मोपजीविनः समधिगतपञ्चमहाशब्दमहासामन्ताधिपतेश्चालुक्यकुलजन्मनः सामन्तचूडामणेः श्रीमदरिकेसरिणः प्रथमपुत्रस्य श्रीमद्वद्यगराजस्य प्रवर्धमानवसुधारायां गंगधारायां विनिर्मापितमिदं काव्यमिति। —यश० उत्त०, पृ० ४१८

३ कृष्णादक्षिणदिग्जयोद्यतधिया चौलान्वयोन्मूलनम्।
तद्भूमिं निजभृत्यवर्गपरितश्चेरमपाण्ड्यादिकान्॥
येनोच्चैः सह सिंहलेन करदान् सन्मण्डलाधीश्वरान्।
न्यस्ता कीर्तिलताङ्कुरप्रतिकृतिस्तम्भश्च रामेश्वरे॥
—एपिग्राफिया इंडिका, भा० ४, अध्याय ६-७, दी करहाट प्लेट्स इन्सक्रिप्शन।

के यशस्तिलक की रचना के कुछ ही सप्ताह पूर्व फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी शक संवत् ८८० (९ मार्च सन् ९५९ ई०) को मेलपाटी (वर्तमान मेलाडी जो उत्तर अर्काट की वादिवाश तहसील में है) में लिखा गया था।[४]

राष्ट्रकूट मध्ययुग में दक्षिण भारत के महाप्रतापी नरेश थे। धारवाड कर्नाटक तथा वर्तमान हैदराबाद प्रदेश पर राष्ट्रकूटो का अखण्ड राज्य था। लगभग आठवी शती के मध्य से लेकर दशमी शती के अन्त तक राष्ट्रकूट सम्राट न केवल भारतवर्ष में, प्रत्युत पश्चिम के अरब साम्राज्य में भी अत्यन्त प्रसिद्ध थे। अरबो के साथ उन्होने विशेष मैत्री का व्यवहार रखा और उन्हे अपने यहाँ व्यापार की सुविधाएँ दी। इस वश के राजाओ का विरुद वल्लभराज प्रसिद्ध था जिसका रूप अरब लेखको से बल्हरा पाया जाता है।[५]

राष्ट्रकूटो के राज्य में साहित्य, कला, धर्म और दर्शन की चतुर्मुखी उन्नति हुई। उस युग की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर अनेक ग्रन्थो की रचना की गयी। यशस्तिलक उसी युग की एक विशिष्ट कृति है। यह अपने प्रकार का एक विशिष्ट ग्रन्थ है। एक उत्कृष्ट काव्य के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं। कथा और आख्यायिका के श्लिष्ट, रोमाचकारी और रोचक वर्णन, गद्य और पद्य के सम्मिश्रण का रुचि वैचित्र्य, रूपक के प्रभावकारी और हृदयग्राही सरल कथनोपकथन, महाकाव्य का वृत्तविधान, रससिद्धि, अलकृत चित्राकन तथा प्रसाद और माधुर्य युक्त सरस शैली, सुरुचिपूर्ण कथावस्तु और साहित्यकार के दायित्व का कलापूर्ण निर्वाह, यह यशस्तिलक का साहित्यिक स्वरूप है। गद्य का पद्यो जैसा सरल विन्यास, प्राकृत छन्दो का सस्कृत में अभिनव प्रयोग तथा अनेक प्राचीन अप्रसिद्ध शब्दो का सकलन यशस्तिलक के साहित्यिक स्वरूप की अतिरिक्त विशेषतायें हैं। सस्कृत साहित्य सर्जन के लगभग एक सहस्र वर्षो में सुबन्धु, बाण और दण्डि के ग्रन्थो में गद्य का, कालिदास, भवभूति और भारवि के महाकाव्यो में पद्य का तथा भास और शूद्रक के नाटकों में रूपक रचना का जो विकास हुआ, उसका और अधिक परिष्कृत रूप यशस्तिलक में उपलब्ध होता है।

काव्य के विशेष गुणो के अतिरिक्त यशस्तिलक में ऐसी प्रचुर सामग्री है, जो इसे प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास की विभिन्न विधाओ से जोडती है,

---

४ वही

५ अल्तेकर—राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स (विशेष विवरण के लिए)

पुरातत्व, कला, इतिहास और साहित्य की सामग्री के साथ तुलना करने पर इसकी प्रामाणिकता और उपयोगिता और भी परिपुष्ट होती है। एक बड़ी विशेषता यह भी है कि सोमदेव ने जिस विषय का स्पर्श भी किया उस विषय में पर्याप्त जानकारी दी। इतनी जानकारी कि यदि उसका विस्तार से विश्लेषण किया जाये तो प्रत्येक विषय का एक लघुकाय स्वतन्त्र ग्रन्थ तैयार हो सकता है। यशस्तिलक पर श्रीदेव कृत यशस्तिलकपंजिका नामक एक संक्षिप्त संस्कृत टीका है। इसे संस्कृत टिप्पण कहना अधिक उपयुक्त होगा। यद्यपि इनके समय का ठीक पता नहीं चलता, फिर भी ये सोमदेव से अधिक बाद के नहीं लगते। सोलहवीं शती में श्रुतसागर सूरि ने यशस्तिलकचन्द्रिका नामक संस्कृत टीका लिखी। यह लगभग साढे चार आश्वासो पर है। संभवतया वे इसे पूरा नहीं कर सके। श्रीदेव ने पंजिका में यशस्तिलक के विषयों को इस प्रकार गिनाया है[७]—

१ छन्द, २ शब्द निघण्टु, ३ अलंकार, ४ कला, ५ सिद्धान्त, ६ सामुद्रिक ज्ञान, ७ ज्योतिष, ८ वैद्यक, ९ वेद, १० वाद, ११ नाट्य, १२ काम, १३ गज, १४ अश्व, १५ आयुध, १६ तर्क, १७ आख्यान, १८ मंत्र, १९ नीति, २० शकुन, २१ वनस्पति, २२ पुराण, २३ स्मृति, २४ मोक्ष, २५ अध्यात्म, २६ जगत्स्थिति और २७ प्रवचन।

यदि श्रीदेव के अनुसार ही यशस्तिलक के विषयों का वर्गीकरण किया जाये तो इस सूची में कई विषय और जोड़ने होंगे। जैसे—भूगोल, वास्तुशिल्प, यन्त्रशिल्प, चित्रकला, पाक विज्ञान, वस्त्र और वेशभूषा, प्रसाधन सामग्री और आभूषण, कला-विनोद, शिक्षा और साहित्य, वाणिज्य और सार्थवाह, सुभाषित आदि।

इस सूची के कई विषयों का समावेश सोमदेव ने यशस्तिलक में प्रयत्नपूर्वक किया है। उनका उद्देश्य था कि दशमी शताब्दि तक की अनेक साहित्यिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों का मूल्यांकन तथा उस युग का सम्पूर्ण चित्र अपने ग्रन्थ में

---

७ छन्दः शब्दनिघण्ट्वलंकृतिकलासिद्धान्तसा-
मुद्रकज्योतिर्वैद्यकवेदवादभरतानङ्गद्विपाश्वायुधम्।
तर्काख्यानकमन्त्रनीतिशकुनक्ष्मारुट्पुराणस्मृति-
श्रेयोऽध्यात्मजगत्स्थितिप्रवचनीव्युत्पत्तिरत्रोच्यते॥
—यशस्तिलकपंजिका श्लोक २

उतार दें। नि सन्देह सोमदेव को अपने इस उद्देश्य में पूर्ण सफलता मिली। यशस्तिलक जैसे महनीय ग्रन्थ की रचना दशमी शती की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। सामग्री की इस विविधता और प्रचुरता के कारण यशस्तिलक को स्वयं सोमदेव के शब्दों में एक महान् अभिधान कोश कहना चाहिए।[८]

यशस्तिलक में सामग्री की जितनी विविधता और प्रचुरता है, उतनी ही उसकी शब्द सम्पत्ति और विवेचन शैली की दुरूहता भी। इसलिए जिस वैदुष्य और यत्न के साथ सोमदेव ने यशस्तिलक की रचना की, शायद ही उससे कम वैदुष्य और प्रयत्न यशस्तिलक के हार्द को समझने में लगे। सम्भवतया इस दुरूहता के कारण ही यशस्तिलक साधारण पाठकों की पहुँच से दूर बना आया, पर दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत, राजस्थान और गुजरात के शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध यशस्तिलक की हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ इस बात की प्रमाण हैं कि पिछली शताब्दियों में भी यशस्तिलक का सम्पूर्ण भारतवर्ष में मूल्यांकन हुआ।

बीसवीं शती में पीटरसन और कीथ जैसे पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान यशस्तिलक की महत्ता और उपयोगिता की ओर आकर्षित हुआ है। भारतीय विद्वानों ने भी अपनी इस निधि की ओर अब दृष्टि डाली है।

सम्पूर्ण यशस्तिलक श्रुतसागर सूरि की अपूर्ण संस्कृत टीका के साथ दो जिल्दों में अब तक केवल एक बार लगभग साठ वर्ष पूर्व निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हुआ था। तीन आश्वासों का पूर्व खण्ड सन् १९०१ में और पाँच आश्वासों का उत्तर खण्ड सन् १९०३ में। पूर्व खण्ड सन् १९१६ में पुनर्मुद्रित भी हुआ था। इस संस्करण में पाठ की अनेक अशुद्धियाँ हैं। उत्तर खण्ड में तो अत्यधिक हैं। सन् १९४६ में बम्बई से केवल प्रथम आश्वास श्री जे० एम० क्षीरसागर द्वारा अंगरेजी टिप्पण आदि के साथ सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ था। सन् १९४९ में शोलापुर से प्रो० कृष्णकान्त हन्दिकी का 'यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर' प्रकाश में आया। इसमें प्रो० हन्दिकी ने यशस्तिलक की सांस्कृतिक–विशेषकर धार्मिक और दार्शनिक सामग्री का विद्वत्तापूर्ण अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

सन् १९६० में वाराणसी से पं० सुन्दरलाल शास्त्री ने हिन्दी अनुवाद के साथ प्रथम तीन आश्वासों का सम्पादन करके प्रकाशन किया है। अन्त में लगभग

---

८ अभिधाननिधानेऽस्मिन्।– पृ० ४१८ उत्त०

उतने ही श्रीदेव के टिप्पण भी दे दिये हैं। इस संस्करण में सम्पादक ने मूल पाठ को प्राचीन प्रतियों से बहुत कुछ शुद्ध किया है।

पिछले ५-६ दशकों में पत्र-पत्रिकाओं में भी सोमदेव और यशस्तिलक पर विद्वानों के कई लेख प्रकाशित हुये हैं, जिनमें स्व० पं० नाथूराम प्रेमी, स्व० पं० गोविन्दराम शास्त्री, डॉ० वी० राघवन् तथा डॉ० ई० डी० कुलकर्णी के लेख विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

यशस्तिलक के अंतिम तीन आश्वासों का पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री ने संपादन और हिन्दी अनुवाद किया है, जो सन् १९६४ के अन्त में उपासकाध्ययन नाम से प्रकाशित हुआ है। प्रारम्भ में संपादक ने छयानवे पृष्ठों की हिन्दी प्रस्तावना भी दी है। पं० जिनदास शास्त्री, सोलापुर ने श्रुतसागर सूरि की टीका की पूर्ति स्वरूप संस्कृत टीका लिखी है, वह भी इसके अन्त में मुद्रित हुई है।

यशस्तिलक पर अब तक जितना कार्य हुआ उसका यह संक्षिप्त लेखा-जोखा है। यशस्तिलक की महनीयता को देखते हुये यह कार्य अत्यल्प है और इसके बाद भी यशस्तिलक में बहुत-सी सामग्री ऐसी बच रहती है जिसका विवेचन नितान्त आवश्यक है। और जिसके बिना यशस्तिलक की सम्पूर्ण सामग्री का भारतीय सांस्कृतिक इतिहास और साहित्य की नवीन उपलब्धियों में उपयोग नहीं किया जा सकता। प्रो० हन्दिकी ने अपने ग्रन्थ में यशस्तिलक के जिन विषयों की विवेचना की है, वह निःसंदेह महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने जिस-जिस विषय को लिया है, उसके विषय में सोमदेव की ही तरह पूरी निष्ठा, विद्वत्ता और श्रमपूर्वक पर्याप्त और प्रामाणिक जानकारी दी है।

मेरी समझ में यशस्तिलक के सही अध्ययन का यह श्रीगणेश मात्र है। श्रीगणेश मंगलमय हुआ यह परम शुभ एवं आनंद का विषय है। प्रो० हन्दिकी जैसे अनेक विद्वान् जब यशस्तिलक के परिशीलन में प्रवृत्त होंगे, तभी उसकी बहुमूल्य सामग्री का ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं में उपयोग किया जा सकेगा। यशस्तिलक तो विविध प्रकार की बहुमूल्य सामग्री का भंडार है। अध्येता ज्यों ज्यों इसके तल में पैठता है, उसे और और सामग्री उपलब्ध होती जाती है। इसी कारण स्वयं सोमदेव ने विद्वानों को निरन्तर आनुपूर्वी से इसका विमर्श करते रहने की मंत्रणा दी है (अजस्रमनुपूर्वश कृती विमृशन्, यश० उत्त०, पृ० ४१८)।

सोमदेव सूरि

यशस्तिलक आचार्य सोमदेव का कीर्तिस्तभ है। यह उनकी तलस्पर्शिनी विमल प्रज्ञा, बिम्बग्राहिणी सर्वतोमुखी प्रतिभा तथा प्रशस्त प्रकाण्ड पाडित्य का मूर्तिमान स्मारक है। वे एक महान तार्किक, सरस साहित्यकार, कुशल राजनीतिज्ञ, प्रबुद्ध तत्त्वचितक और उच्चकोटि के धर्माचार्य थे। उनके लिए प्रयुक्त होने वाले स्याद्वादाचलसिंह, तार्किकचक्रवर्ती, वादीभपचानन, वाक्कल्लोलपयोनिधि, कविकुलराजकुजर, अनवद्यगद्यपद्यविद्याधरचक्रवर्ती आदि विशेषण उनकी उत्कृष्ट प्रज्ञा और प्रभावकारी व्यक्तित्व के परिचायक हैं।[९]

सोमदेव ने यशस्तिलक में लिखा है कि वे देवसघ के साधु श्री नेमिदेव के शिष्य तथा यशोदेव के प्रशिष्य थे।[१०]

सोमदेव ने अपना यशस्तिलक चालुक्यवशीय अरिकेसरी के प्रथम पुत्र वद्दिग की राजधानी गगधारा में पूर्ण किया था। यह वश राष्ट्रकूटो के अधीन सामन्त पदवीधारी था। अरिकेसरिन् तृतीय के दानपत्र में कहा गया है कि 'अरिकेसरी' ने अपने पिता वद्दिग के 'शुभधामजिनालय' नामक मन्दिर की मरम्मत आदि करके शक सवत् ८८८ (सन् ९६६ ई०) के बाद वैशाख मास की पूर्णिमा को बुधवार के दिन श्री सोमदेवसूरि को सब्बिदेश सहस्रान्तर्गत रेपाक द्वादशो में का वनिकटुपुल (वर्तमान बोटुडपुल्ल, हैदराबाद के करीमनगर जिले में) नामक ग्राम त्रिभोगाभ्यन्तरसिद्धि और सर्वं नमस्य सहित जलधारा छोडकर दिया।[११]

---

९ स्याद्वादाचलसिंह-तार्किकचक्रवर्ति-वादीभपचानन वाक्कल्लोलपयोनिधि-कविकुल राजकुँजरप्रभृतिप्रशस्तिप्रशस्तालकारेण। —नीतिवाक्यामृत प्रशस्ति।

१० श्रीमानस्ति स देवसघतिलको देवो यश पूर्वक,
शिष्यस्तस्य बभूव सद्गुणनिधि श्रीनेमिदेवाह्वय।
तस्याश्चर्यतप स्थितेस्त्रिनवतेर्जेतुर्महावादिनाम्,
शिष्योऽभूदिह सोमदेव इति यस्तस्यैष काव्यक्रम ॥
—यश० उत्त०, पृ० ४१८

११ निजपितु श्रीमद्वद्यगस्य शुभधामजिनालयाख्यस्य (ते) खण्डस्फुटितनवसुधा कर्मबलिनिवेद्यार्थं शकाब्देष्वष्टाशीत्यधिकेष्वष्टशतेषु गतेषु (प्रव)र्त्तमानक्षयसवत्सरवैसाखपो (पौ) र्णमास्या (स्या) बुधवासरे तेन श्रीमदरिकेसरिणा अनन्तरोक्ताय तस्मै श्रीसोमदेवसूरये सब्बिदेशसहस्रान्तर्गतरेपाकद्वादशग्रामीमध्येकुरुतुवृत्ति वनिकटुपुलनामा ग्राम त्रिभोगाभ्यान्तरसिद्धिसर्वनमस्यसोदकधारन्दत्त।
—जैन साहित्य और इतिहास में उद्धृत, पृ० १९५

इस दानपत्र में भी सोमदेव को, यशस्तिलक के उल्लेख के समान ही नेमिदेव का शिष्य तथा यशोदेव का प्रशिष्य बताया है। अन्तर केवल इतना है कि सोमदेव ने यशोदेव को देवसंघ का लिखा है जब कि इस दानपत्र में उन्हें गौडसंघ का कहा गया है।[१२]

देवसंघ और गौडसंघ दो नाम एक ही मुनि संघ के प्रतीत होते हैं। संभवतः यशोदेव, नेमिदेव, सोमदेव आदि देवान्त नामों के कारण इस संघ का नाम देवसंघ पड़ा हो तथा देश के आधार पर, द्रविड देश का द्रविडसंघ, पुन्नाट देश का पुन्नाटसंघ, तथा मथुरा का माथुरसंघ आदि की तरह गौड देश के वासी होने से गौडसंघ नाम हो गया हो। अपने देश से बाहर जाने के बाद मुनिसंघ प्रायः उसी देश के नाम से प्रसिद्ध हो जाते थे।[१३]

यशस्तिलक के अतिरिक्त सोमदेव का दूसरा ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत उपलब्ध है। यह कौटिल्य के अर्थशास्त्र की तरह एक विशुद्ध राजनीतिक ग्रन्थ है। इसमें बत्तीस समुद्देश हैं, जिनमें राजनीति सम्बन्धी विषयों को सूत्रशैली में लिपिबद्ध किया गया है।

नीतिवाक्यामृत पर दो टीकायें हैं। एक प्राचीन संस्कृत टीका है। इसके लेखक का नाम और समय का पता नहीं चलता। मंगलाचरण से हरिबल नाम अनुमानित किया जाता है। टीका प्राचीन ज्ञात होती है। दूसरी टीका कन्नड कवि नेमिनाथ की है। यह संस्कृत टीका की अपेक्षा बहुत संक्षिप्त है।

नीतिवाक्यामृत मूल मात्र बंबई से सन् १८८० में प्रकाशित हुआ था। सन् १९२२ में माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बंबई से संस्कृत टीका सहित भी प्रकाशित हुआ। और सन् १९५० में पं० सुन्दरलाल शास्त्री ने मूल का हिन्दी अनुवाद के साथ भी प्रकाशन कराया। एक इटालियन अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

नीतिवाक्यामृत की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि सोमदेव ने षण्णवतिप्रकरण, युक्तिचिन्तामणिस्तव तथा महेन्द्रमातलिसंजल्प की भी रचना की थी।[१४]

---

१२ श्रीगौडसंघे मुनिमान्यकीर्तिर्नाम्ना यशोदेव इति प्रजज्ञे।—वही, श्लोक १५

१३ प्रेमी—जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ११, कि० २, पृ० ११।

१४ इति" षण्णवतिप्रकरण युक्तिचिन्तामणिस्तव महेन्द्रमातलिसंजल्प यशोधर महाराजचरितमहाशास्त्रवेधसा सोमदेवसूरिणा विरचितं नीतिवाक्यामृतं समाप्तमिति। —नीतिवाक्यामृत प्रशस्ति।

चालुक्यवंशीय अरिकेसरिन् तृतीय के दान पत्र में सोमदेव को स्याद्वादोपनिषद् का भी कर्ता कहा गया है।[१५] अब तक इन ग्रन्थों का कोई पता नहीं चला। कहा नहीं जा सकता कि ये महान् ग्रन्थ-रत्न काल के कराल गाल में समा गये या किसी सुनसान एवं उपेक्षित शास्त्र भण्डार में पड़े किसी सहृदय अन्वेषक की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सोमदेव सूरि और कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार

नीतिवाक्यामृत की प्रशस्ति में एक और भी महत्त्वपूर्ण सूचना है। इसमें सोमदेव को 'वादीन्द्रकालानलश्रीमन्महेन्द्रदेवभट्टारकानुज'[१६] लिखा है। अर्थात् प्रतिपक्षी इन्द्र के लिए काल रूपी अग्नि के समान श्री महेन्द्रदेव महाराज के लघुभ्राता। इस पद में भट्टारक शब्द का प्रयोग आदरवाची है, जिसका अर्थ महाराज या सरकार बहादुर किया जा सकता है। शेष सब स्पष्ट है। देखना यह है कि ये इन्द्र तथा महेन्द्रदेव कौन थे?

नीतिवाक्यामृत के संस्कृत टीकाकार ने लिखा है कि नीतिवाक्यामृत की रचना कान्यकुब्ज (कन्नौज) नरेश महेन्द्रदेव के आग्रह पर की गयी।[१७]

यशस्तिलक से भी कान्यकुब्ज नरेश महेन्द्रदेव के साथ सोमदेव का परिचय और सम्बन्ध प्रतीत होता है। यशस्तिलक के मंगल पद्य में श्लेष द्वारा कन्नौज और महेन्द्रदेव का उल्लेख किया गया है—

"श्रियं कुवलयानन्दप्रसादितमहोदयः।
देवश्चन्द्रप्रभः पुष्याज्जगन्मानसवासिनीम्॥"

इस पद्य के दो अर्थ हैं—एक चन्द्रप्रभ के पक्ष में और दूसरा कन्नौज नरेश देव या महेन्द्रदेव के पक्ष में।

---

१५ अपि च यो भगवानादर्शसमस्तविद्यानां विरचयिता यशोधरचरितस्य कर्ता स्याद्वादोपनिषदः कवि (कवयि) ता चान्येषामपि सुभाषितानाम्।
—प्रेमी–जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १९०

१६ नीतिवाक्यामृत प्रश०, पृ० ४०६

१७ रघुवंशावस्थायिपराक्रमपालितस्य कर्णकुब्जेन महाराजश्रीमहेन्द्रदेवेन पूर्वाचार्यकृतार्थशास्त्रदुरवबोधग्रन्थगौरवखिद्यमानमनेन सुबोधललितलघुनीतिवाक्यामृतरचनासु प्रवर्तित।

पहला अर्थ–जिनका महान् उदय पृथ्वीमण्डल को आनन्दित करनेवाला है, ऐसे चन्द्रप्रभ भगवान् संसार के मानस में निवास करनेवाली लक्ष्मी को पुष्ट करें।

दूसरा अर्थ–पृथ्वीमण्डल के आनन्द के लिए प्रसादित किया है कन्नौज (महोदय) को जिसने ऐसे महेन्द्रदेव संसार के मनुष्यों के मन में निवास करनेवाली लक्ष्मी को पुष्ट करें।

उक्त पद्य में प्रयुक्त 'महोदय' शब्द को मेदनी कोषकार भी कन्नौज के अर्थ में बताता है (महोदय कान्यकुब्जे)। हेमनाममाला में भी कान्यकुब्ज को महोदय कहा गया है (कान्यकुब्ज महोदयम्)।

यशस्तिलक के एक दूसरे पद्य में भी सोमदेव ने अपना तथा महेन्द्रदेव का नाम एवं सम्बन्ध श्लिष्ट रूप में निर्दिष्ट किया है—

"सोऽयमाशार्पितयशाः महेन्द्रामरमान्यधीः।
देयात्ते सततानन्दं वस्त्वभीष्टं जिनाधिपः॥" (१।२२०)

इस पद्य के भी दो अर्थ हैं–पहला जिनेन्द्रदेव के अर्थ में और दूसरा सोमदेव के पक्ष में।

पहला अर्थ–सभी दिशाओं में जिनका यश फैला है तथा समस्त नरेन्द्रों और देवेन्द्रों के द्वारा जिनके ज्ञान की पूजा की जाती है, ऐसे जिनेन्द्र भगवान् निरन्तर आनन्द स्वरूप (मोक्ष रूपी) अभीष्ट वस्तु प्रदान करें।

दूसरा अर्थ–समस्त दिशाओं में जिनकी कीर्ति फैल गयी है तथा महेन्द्रदेव के द्वारा जिनकी विद्वत्ता का सम्मान किया गया है, ऐसे सोमदेव निरन्तर आनन्द देनेवाली (काव्य रूप) अभीष्ट वस्तु प्रदान करें।

तीसरा अर्थ महेन्द्रदेव के सम्बन्ध में भी हो सकता है। अर्थात् जिनका यश समस्त दिशाओं में फैल गया है तथा जिनकी बुद्धि का लोहा देवता लोग भी मानते हैं, ऐसे महेन्द्रदेव आप सबको निरन्तर आनन्द और अभीष्ट वस्तु प्रदान करें।

इस पद्य के प्रत्येक चरण के प्रथम अक्षर को मिलाने से 'सोमदेव' नाम निकलता है तथा द्वितीय चरण में महेन्द्र पद स्पष्ट है।

यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार श्रुतसागर सूरि ने इस पद्य से संकेतित

चालुक्यवंशीय अरिकेसरिन् तृतीय के दान पत्र में सोमदेव को स्याद्वादोपनिषद् का भी कर्ता कहा गया है।[१५] अब तक इन ग्रन्थों का कोई पता नहीं चला। कहा नहीं जा सकता कि ये महान् ग्रन्थ-रत्न काल के कराल गाल में समा गये या किसी सुनसान एवं उपेक्षित शास्त्र भण्डार में पड़े किसी सहृदय अन्वेषक की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सोमदेव सूरि और कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार

नीतिवाक्यामृत की प्रशस्ति में एक और भी महत्त्वपूर्ण सूचना है। इसमें सोमदेव को 'वादीन्द्रकालानलश्रीमन्महेन्द्रदेवभट्टारकानुज'[१६] लिखा है। अर्थात् प्रतिपक्षी इन्द्र के लिए काल रूपी अग्नि के समान श्री महेन्द्रदेव महाराज के लघुभ्राता। इस पद में भट्टारक शब्द का प्रयोग आदरवाची है, जिसका अर्थ महाराज या सरकार बहादुर किया जा सकता है। शेष सब स्पष्ट है। देखना यह है कि ये इन्द्र तथा महेन्द्रदेव कौन थे?

नीतिवाक्यामृत के संस्कृत टीकाकार ने लिखा है कि नीतिवाक्यामृत की रचना कान्यकुब्ज (कन्नौज) नरेश महेन्द्रदेव के आग्रह पर की गयी।[१७]

यशस्तिलक से भी कान्यकुब्ज नरेश महेन्द्रदेव के साथ सोमदेव का परिचय और सम्बन्ध प्रतीत होता है। यशस्तिलक के मंगल पद्य में श्लेष द्वारा कन्नौज और महेन्द्रदेव का उल्लेख किया गया है—

> "श्रियं कुवलयानन्दप्रसादितमहोदयः।
> देवश्चन्द्रप्रभः पुष्याज्जगन्मानसवासिनीम् ॥"

इस पद्य के दो अर्थ हैं—एक चन्द्रप्रभ के पक्ष में और दूसरा कन्नौज नरेश देव या महेन्द्रदेव के पक्ष में।

---

१५ अपि च यो भगवानादर्शोऽस्मरतविद्यानां विरचयिता यशोधरचरितस्य कर्ता स्याद्वादोपनिषदः कवि (कवयि) ता चान्येषामपि सुभाषितानाम्।
—प्रेमी—जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ९१०

१६ नीतिवाक्यामृत प्रश०, पृ० ४०६

१७ रघुवंशावरथाधिपपराक्रमपालितस्य कर्णकुब्जेन महाराजश्रीमहेन्द्रदेवेन पूर्वाचार्यकृतार्थशास्त्रदुरवबोधग्रन्थगौरवखिन्नमानसेन सुबोधललितलघुनीतिवाक्यामृतरचनासु प्रवर्तितः।

पहला अर्थ–जिनका महान् उदय पृथ्वीमण्डल को आनन्दित करनेवाला है, ऐसे चन्द्रप्रभ भगवान् ससार के मानस में निवास करनेवाली लक्ष्मी को पुष्ट करें।

दूसरा अर्थ–पृथ्वीमण्डल के आनन्द के लिए प्रसादित किया है कन्नौज (महोदय) को जिसने ऐसे महेन्द्रदेव ससार के मनुष्यो के मन में निवास करनेवाली लक्ष्मी को पुष्ट करें।

उक्त पद्य में प्रयुक्त 'महोदय' शब्द को मेदनी कोषकार भी कन्नौज के अर्थ में बताता है (महोदय कान्यकुब्जे)। हेमनाममाला में भी कान्यकुब्ज को महोदय कहा गया है (कान्यकुब्ज महोदयम्)।

यशस्तिलक के एक दूसरे पद्य में भी सोमदेव ने अपना तथा महेन्द्रदेव का नाम एव सम्बन्ध श्लिष्ट रूप में निर्दिष्ट किया है—

"सोऽयमाशार्पितयशाः महेन्द्रामरमान्यधीः।
देयात्ते सततानन्द वस्त्वभीष्टं जिनाधिपः॥" (१।२२०)

इस पद्य के भी दो अर्थ हैं–पहला जिनेन्द्रदेव के अर्थ में और दूसरा सोमदेव के पक्ष में।

पहला अर्थ–सभी दिशाओं में जिनका यश फैला है तथा समस्त नरेन्द्रो और देवेन्द्रों के द्वारा जिनके ज्ञान की पूजा की जाती है, ऐसे जिनेन्द्र भगवान् निरन्तर आनन्द स्वरूप (मोक्ष रूपी) अभीष्ट वस्तु प्रदान करें।

दूसरा अर्थ–समस्त दिशाओ में जिनकी कीर्ति फैल गयी है तथा महेन्द्रदेव के द्वारा जिनकी विद्वत्ता का सम्मान किया गया है, ऐसे सोमदेव निर तर आनन्द देनेवाली (काव्य रूप) अभीष्ट वस्तु प्रदान करें।

तीसरा अर्थ महेन्द्रदेव के सम्बन्ध में भी हो सकता है। अर्थात् जिनका यश समस्त दिशाओ में फैल गया है तथा जिनकी बुद्धि का लोहा देवता लोग भी मानते हैं, ऐसे महेन्द्रदेव आप सबको निरन्तर आनन्द और अभीष्ट वस्तु प्रदान करें।

इस पद्य के प्रत्येक चरण के प्रथम अक्षर को मिलाने से 'सोमदेव' नाम निकलता है तथा द्वितीय चरण में महेन्द्र पद स्पष्ट है।

यशस्तिलक के सस्कृत टीकाकार श्रुतसागर सूरि ने इस पद्य से सकेतित

होनेवाले सोमदेव नाम का तो टीका में उल्लेख किया है,[१८] किन्तु आश्चर्य है कि न तो श्लिष्टार्थ को ही लिखा और न महेन्द्रदेव के नाम का भी कोई संकेत किया, यही कारण है कि विद्वानो को इस पद्य में से महेन्द्रदेव नाम निकालना मुश्किल लगता है।[१९] इसी तरह प्रथम पद्य के द्वितीय अर्थ का भी टीकाकार ने कोई निर्देश नही किया।[२०]

महेन्द्रमातलिसंजल्प का संकेत

नीतिवाक्यामृत की प्रशस्ति के उल्लेखानुसार सोमदेव ने 'महेन्द्रमातलिसंजल्प' नामक ग्रन्थ की भी रचना की थी। यद्यपि यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नही हुआ फिर भी इसके नाम से प्रतीत होता है कि यह एक राजनीति विषयक ग्रन्थ होगा, जिसमें महेन्द्रदेव और उनके सारथी के संवाद रूप में राजनीति सम्बन्धी विषयो का वर्णन होगा। 'मातलि' और 'महेन्द्र' दोनो ही शब्द श्लिष्ट हैं। 'मातलि' शब्द का प्रयोग इन्द्र के सारथी तथा सारथी मात्र के लिए भी होता है। इसी तरह 'महेन्द्र' शब्द देवराज इन्द्र तथा कन्नौज नरेश महेन्द्रदेव दोनो का बोध कराता है।

उपर्युक्त विवरण से प्रतीत होता है कि सोमदेव का कन्नौज नरेश महेन्द्रदेव के साथ निकट का सम्बन्ध था। ये महेन्द्रदेव कौन थे, कब हुए तथा सोमदेव और इनके बीच किस-किस प्रकार के सम्बन्ध थे, इत्यादि बातो पर विचार करना आवश्यक है।

सोमदेव और महेन्द्रदेव के सम्बन्धो का ऐतिहासिक मूल्यांकन

कन्नौज के इतिहास में महेन्द्रदेव या महेन्द्रपालदेव नाम के दो राजा हुए हैं।[२१] महेन्द्रपाल देव प्रथम और महेन्द्रपाल देव द्वितीय।

---

१८ अस्य श्लोकस्य चतुर्षु चरणेषु पूर्वो वर्णो गृह्यते, तेन 'सोमदेव' इति नाम भवति।
—यश० श्लो० २२० की सं० टी०, पृ० ११४।

१९ हन्दिकी–यशस्तिलक एण्ड इंडियन कल्चर, ४६४

२० इन दोनों पद्यों के श्लिष्टार्थ का पता सर्वप्रथम स्व० प्रज्ञाचक्षु पं० गोविन्दराम जी शास्त्री ने लगाया था जिसका उल्लेख स्व० प्रेमी जी ने जैन साहित्य और इतिहास में किया है। शास्त्री जी ने बनारस आने पर मुझसे भी इसकी चर्चा की थी।

२१ दी एज ऑव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३३, ३७

महेन्द्रपालदेव प्रथम

महेन्द्रपालदेव प्रथम का समय ८८५ ई० से ९०७-८ ईसवी तक माना जाता है। यह महाराज भोज ८३६-८८५ ई० के बाद राजगद्दी पर बैठा था। महाकवि राजशेखर को बालकवि के रूप में इसका संरक्षण प्राप्त था।[२३] राजशेखर त्रिपुरी के युवराजदेव द्वितीय के समय (९९० ई०) करीब ९० वर्ष की अवस्था में विद्यमान थे।[२४] सोमदेव ने अपने यशस्तिलक में महाकवियों के उल्लेख के प्रसंग में राजशेखर को अन्तिम महाकवि के रूप में उल्लिखित किया है।[२५] यशस्तिलक को सोमदेव ने ९५९ ई० में रचकर समाप्त किया था।[२६] यह उनके परिपक्व जीवन की रचना है। यह बात उनके इस कथन से भी झलकती है कि जिस तरह गाय सूखा घास खाकर मधुर दूध देती है, उसी तरह मेरी बुद्धि रूपी गौ ने जीवन भर तर्क रूपी सूखी घास खायी, फिर भी सज्जनों के पुण्य से यह (यशस्तिलक) काव्य रूपी मधुर दुग्ध उत्पन्न हुआ।[२७] इतना होने पर भी यशस्तिलक की समाप्ति के समय सोमदेव को पचास वर्ष से अधिक का नहीं माना जा सकता, क्योंकि ९६० ई० में राजशेखर ६० वर्ष के थे और सोमदेव ने उन्हें महाकवि के रूप में उल्लिखित किया है। यदि राजशेखर को सोमदेव से ८-१० वर्ष भी ज्येष्ठ न माना जाये तो सोमदेव द्वारा राजशेखर को महाकवि कहना कठिन है। सोमदेव स्वयं एक महाकवि थे। एक महाकवि के द्वारा दूसरे को महाकवि जितना आदर देने के लिए साधारणतया इतना अन्तर भी कम है।

इस प्रकार सोमदेव का आविर्भाव ९०८-९ ई० के आसपास मानना चाहिए। महेन्द्रपालदेव प्रथम का समय जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, ९०७-८ ई० तक माना जाता है। इस समय सोमदेव का या तो जन्म ही न हुआ होगा या फिर अवस्था अत्यल्प रही होगी। इसलिए इन महेन्द्रपालदेव के आग्रह पर नीतिवाक्यामृत की रचना का प्रश्न नहीं उठता।

---

२२ वही, पृ० ३३

२३ २४ दी क्रोनोलॉजिकल आर्डर ऑव राजशेखराज वर्क्स, पृ० ३६५-३६६

२५ यशस्तिलक पृ० ११३ उत्त०

२६ वही पृ० ४१७ उत्त०

२७ आजन्मसमभ्यस्ताच्छुष्कात्तर्कात्तृणादिव ममास्य ।
मतिसुरभेरभवदिदं सूक्तिपयः सुकृतिनां पुण्यैः ॥ यश० आ० १।१७

होनेवाले सोमदेव नाम का तो टीका में उल्लेख किया है,[१८] किन्तु आश्चर्य है कि न तो श्लिष्टार्थ को ही लिखा और न महेन्द्रदेव के नाम का भी कोई संकेत किया, यही कारण है कि विद्वानों को इस पद्य में से महेन्द्रदेव नाम निकालना मुश्किल लगता है।[१९] इसी तरह प्रथम पद्य के द्वितीय अर्थ का भी टीकाकार ने कोई निर्देश नहीं किया।[२०]

महेन्द्रमातलिसंजल्प का संकेत

नीतिवाक्यामृत की प्रशस्ति के उल्लेखानुसार सोमदेव ने 'महेन्द्रमातलि-संजल्प' नामक ग्रन्थ की भी रचना की थी। यद्यपि यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ फिर भी इसके नाम से प्रतीत होता है कि यह एक राजनीति विषयक ग्रन्थ होगा, जिसमें महेन्द्रदेव और उनके सारथी के संवाद रूप में राजनीति सम्बन्धी विषयों का वर्णन होगा। 'मातलि' और 'महेन्द्र' दोनों ही शब्द श्लिष्ट हैं। 'मातलि' शब्द का प्रयोग इन्द्र के सारथी तथा सारथी मात्र के लिए भी होता है। इसी तरह 'महेन्द्र' शब्द देवराज इन्द्र तथा कन्नौज नरेश महेन्द्रदेव दोनों का बोध कराता है।

उपर्युक्त विवरण से प्रतीत होता है कि सोमदेव का कन्नौज नरेश महेन्द्रदेव के साथ निकट का सम्बन्ध था। ये महेन्द्रदेव कौन थे, कब हुए तथा सोमदेव और इनके बीच किस-किस प्रकार के सम्बन्ध थे, इत्यादि बातों पर विचार करना आवश्यक है।

सोमदेव और महेन्द्रदेव के सम्बन्धों का ऐतिहासिक मूल्यांकन

कन्नौज के इतिहास में महेन्द्रदेव या महेन्द्रपालदेव नाम के दो राजा हुए हैं।[२१] महेन्द्रपाल देव प्रथम और महेन्द्रपाल देव द्वितीय।

---

१८ अस्य श्लोकस्य चतुर्षु चरणेषु पूर्वो वर्णो गृह्यते, तेन 'सोमदेव' इति नाम भवति।
—यश० श्लो० २२० की सं० टी०, पृ० १९५।

१९ हन्दिकी–यशस्तिलक एण्ड इंडियन कल्चर, ४६४

२० इन दोनों पद्यों के श्लिष्टार्थ का पता सर्वप्रथम स्व० प्रज्ञाचक्षु पं० गोविन्दराम जी शास्त्री ने लगाया था जिसका उल्लेख स्व० प्रेमी जी ने जैन साहित्य और इतिहास में किया है। शास्त्री जी ने बनारस आने पर मुझसे भी इसकी चर्चा की थी।

२१ दी एज ऑव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३३, ३७

महेन्द्रपालदेव प्रथम

महेन्द्रपालदेव प्रथम का समय ८८५ ई० से ९०७-८ ईसवी तक माना जाता है। यह महाराज भोज ८३६-८८५ ई० के बाद राजगद्दी पर बैठा था। महाकवि राजशेखर को बालकवि के रूप में इसका सरक्षण प्राप्त था।[२३] राजशेखर त्रिपुरी के युवराजदेव द्वितीय के समय (९९० ई०) करीब ९० वर्ष की अवस्था में विद्यमान थे।[२४] सोमदेव ने अपने यशस्तिलक में महाकवियो के उल्लेख के प्रसग में राजशेखर को अन्तिम महाकवि के रूप में उल्लिखित किया है।[२५] यशस्तिलक को सोमदेव ने ९५९ ई० में रचकर समाप्त किया था।[२६] यह उनके परिपक्व जीवन की रचना है। यह बात उनके इस कथन से भी झलकती है कि जिस तरह गाय सूखा घास खाकर मधुर दूध देती है, उसी तरह मेरी बुद्धि रूपी गो ने जीवन भर तर्क रूपी सूखी घास खायी, फिर भी सज्जनो के पुण्य से यह (यशस्तिलक) काव्य रूपी मधुर दुग्ध उत्पन्न हुआ।[२७] इतना होने पर भी यशस्तिलक की समाप्ति के समय सोमदेव को पचास वर्ष से अधिक का नही माना जा सकता, क्योंकि ९९० ई० में राजशेखर ९० वर्ष के थे और सोमदेव ने उन्हे महाकवि के रूप में उल्लिखित किया है। यदि राजशेखर को सोमदेव से ८-१० वर्ष भी ज्येष्ठ न माना जाये तो सोमदेव द्वारा राजशेखर को महाकवि कहना कठिन है। सोमदेव स्वय एक महाकवि थे। एक महाकवि के द्वारा दूसरे को महाकवि जितना आदर देने के लिए साधारणतया इतना अन्तर भी कम है।

इस प्रकार सोमदेव का आविर्भाव ९०८-९ ई० के आसपास मानना चाहिए। महेन्द्रपालदेव प्रथम का समय जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, ९०७-८ ई० तक माना जाता है। इस समय सोमदेव का या तो जन्म ही न हुआ होगा या फिर अवस्था अत्यल्प रही होगी। इसलिए इन महेन्द्रपालदेव के आग्रह पर नीतिवाक्यामृत की रचना का प्रश्न नहीं उठता।

---

२२ वही, पृ० ३३

२३ २४ दी क्रोनोलॉजिकल आर्डर ऑव राजशेखराज वर्क्स, पृ० २६५-२६६

२५ यशस्तिलक पृ० ११२ उत्त०

२६ वही पृ० ४१७ उत्त०

२७ आजन्मसमभ्यस्ताच्छुष्कात्तर्कात्तृणादिव ममास्य ।
मतिसुरभेरभवदिदं सूक्तिपय सुकृतिना पुण्यै ॥ -यश० आ० १।१७

महेन्द्रपालदेव द्वितीय

महेन्द्रपालदेव द्वितीय का समय ९४५-६ ई० माना जाता है।[२८] सोमदेव इस समय सम्भवतया ३५-३९ वर्ष के रहे होंगे। इसलिए महेन्द्रपालदेव द्वितीय और सोमदेव के पारस्परिक सम्बन्धों में कालिक कठिनाई नहीं आती।

इन्द्र तृतीय

प्रथम महेन्द्रदेव के पुत्र और द्वितीय महेन्द्रदेव के पितृव्य महीपालदेव (९१४-९१७ ई०) का राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय (नित्यवर्ष) के साथ युद्ध हुआ था। चडकौशिक नाटक की प्रस्तावना में आर्य क्षेमीश्वर ने लिखा है—

"आदिष्टोऽस्मि श्रीमहीपालदेवेन यस्येमा पुराविदः प्रशस्तिगाथा-मुदाहरन्ति—

यः संसृत्य प्रकृतिगहनामार्यचाणक्यनीतिं
जित्वा नन्दान्कुसुमनगरं चन्द्रगुप्तो जिगाय।
कर्णाटत्वं ध्रुवमुपगतानद्य तानेव हन्तुं
दोर्दाढ्यः सः पुनरभवच्छ्रीमहीपालदेवः॥"

अर्थात् उन महीपालदेव ने मुझे आज्ञा दी है, पुराविद लोग जिनकी इस प्रशस्ति गाथा को उद्धृत करते हैं कि जिस चन्द्रगुप्त ने स्वभाव से गहन चाणक्य-नीति का सहारा लेकर नन्दों को जीतकर कुसुमपुर (पटना) में प्रवेश किया, वही चन्द्रगुप्त कर्णाटक में जनमे हुए उन्हीं नन्दों (राष्ट्रकूटों) को मारने के लिए महीपालदेव के रूप में अवतरित हुआ है।

इससे ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूटों पर चढ़ाई करते समय महीपालदेव ने आर्य चाणक्य की नीति (अर्थशास्त्र) का अवलम्बन किया था और आर्य क्षेमीश्वर उसे प्रकृति गहन बतलाते हैं तब आश्चर्य नहीं कि महीपाल देव के उत्तराधिकारी महेन्द्रपालदेव ने सोमदेव से कह कर सरल नीतिग्रन्थ नीतिवाक्या-मृत की रचना करायी हो।[२९]

नीतिवाक्यामृत का रचनाकाल

यद्यपि नीतिवाक्यामृत के रचनाकाल तथा रचना स्थान का ठीक पता नहीं

---

२८ दी एज ऑव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३७

२९ पं० नाथूराम प्रेमी–सोमदेव सूरि और महेन्द्रदेव, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ११, किरण २

चलता फिर भी नीतिवाक्यामृत यशस्तिलक के पूर्व की रचना है, यह उपलब्ध साक्ष्यो के आधार पर निर्णीत किया जाता है।[३०]

यशस्तिलक राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज तृतीय के चालुक्य वंशीय सामन्त वद्यग के आश्रित गगधारा में सन् ९५९ ई० में पूर्ण हुआ था जिसका उल्लेख सोमदेव ने स्वय किया है। यशस्तिलक में सोमदेव के गुरु नेमिदेव को तिरानवे महावादियो को जीतने वाला कहा है जब कि नीतिवाक्यामृत में पचपन महावादियो को जीतने वाला। इससे नीतिवाक्यामृत यशस्तिलक के पूर्व की रचना ठहरता है। नीतिवाक्यामृत की रचना के समय नेमिदेव ने पचपन महावादियो को पराजित किया हो उसके बाद यशस्तिलक की रचना के समय तक अडतीस वादियो को और भी जीत लिया हो। यदि नीतिवाक्यामृत बाद में रचा गया होता तो ये सख्याये विपरीत होती अर्थात् यशस्तिलक की पचपन और नीतिवाक्यामृत की तिरानवे।[३१]

दूसरे यदि नीतिवाक्यामृत यशस्तिलक के बाद का होता तो चूंकि वह शुद्ध राजनीतिक ग्रन्थ है, इसलिए किसी राष्ट्रकूट या चालुक्य राजा के लिए ही लिखा जाता और उसका उल्लेख भी अवश्य होता, किन्तु ऐसा कोई उल्लेख नही है। इससे प्रतीत होता है कि नीतिवाक्यामृत यशस्तिलक के पूर्व रचा गया।

उपर्युक्त साक्ष्यो के परिप्रेक्ष्य में नीतिवाक्यामृत के टीकाकार का यह कथन जांचने-देखने पर ठीक प्रतीत होता है कि प्रतिपक्षी इन्द्र के लिए कालाग्नि के समान कान्यकुब्ज नरेश महेन्द्रदेव के आग्रह पर उनके अनुज सोमदेव ने नीतिवाक्यामृत की रचना की।

लगता है महेन्द्रदेव द्वितीय के गद्दी पर बैठने के उपरान्त सोमदेव साधु हो गये हो। क्योंकि प्राचीन इतिहास में प्राय ऐसा देखा गया है कि एक भाई के हाथ में शासन सूत्र आने पर दूसरा भाई यदि उसका विरोध नही करना चाहता तो सन्यस्त हो जाता था, या राज्य छोडकर अन्यत्र चला जाता था। सोमदेव के साथ भी यही सम्भावना हो सकती है। या यह भी सम्भव है कि सोमदेव महेन्द्रदेव के सगे भाई न होकर दूर के रिश्ते के भाई रहे हो।

---

३० डाक्टर वी० राघवन्-नीतिवाक्यामृत आदि के रचयिता सोमदेव सूरि, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १० किरण २

३१ त्रिनवतेर्जेतुर्महावादिनाम्-। -यश० पृ० ४१८
पंचपंचाश महावादिविजयोपार्जितकीर्तिम दाकिनीपवित्रितत्रिभुवनस्य।
-नीति० प्रशस्ति।

एक अतिरिक्त प्रमाण के रूप में सोमदेव का देवान्त नाम भी इस बात का द्योतक है कि सोमदेव का गुर्जर प्रतिहार नरेशो से पारिवारिक सम्बन्ध रहा। यद्यपि साधु होने के बाद पहले का नाम प्रायः बदल दिया जाता है, किन्तु सम्भव है शब्द या अर्थ परिवर्तन के साथ सोमदेव ने किसी तरह अपना नाम भी सुरक्षित रख लिया हो।

यह कहा जा सकता है कि सोमदेव जिस सघ के साधु थे वह सघ ही देवान्त नाम वाला था। इसलिए सोमदेव का नाम भी देवान्त रखा गया। यह भी उतनी ही सम्भावना के रूप में ग्रहण किया जा सकता है, जितनी सम्भावना के रूप में प्रथम बात।

अन्त में पर्भनी शिलालेख के उल्लेख पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। इस शिलालेख में सोमदेव के दादा गुरु को गौडसघ का कहा गया है।[३२]

स्व० पण्डित नाथूराम प्रेमी श्रमणवेलगोला के शिलालेख में उल्लिखित गोल या गोल्ल से गौड की पहचान करते हैं। प्रो० हन्दिकी दक्षिण कनारा की गौड जाति से गौड सघ के सम्बन्ध की सम्भावना प्रकट करते हैं। वास्तव में सोमदेव और गुर्जर प्रतिहारो के सम्बन्धो पर विचार करते हुए ये दोनो सम्भावनाएँ ठीक नही लगती। कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारो का साम्राज्य दूर-दूर तक था। दो गौड जनपद इसके अन्तर्गत थे। पश्चिम बङ्गाल को भी उस समय गौड कहा जाता था और उत्तर कोशल अर्थात् अवध के एक भाग को भी। बहुत सम्भव है कि यशोदेव उत्तर कोशल के रहे हो। अथवा प्रो० हन्दिकी के सुझावानुसार यदि गौड सघ और यशोदेव का सम्बन्ध दक्षिण कनारा की गौड जाति से भी मान लिया जाय तो भी इससे सोमदेव के महेन्द्रदेव के अनुज होने न होने पर प्रभाव नही पडता। राष्ट्रकूट और गुर्जर प्रतिहारो के पारिवारिक सम्बन्ध इतिहास में सुविदित हैं। सम्भव है महेन्द्रदेव द्वितीय के गद्दी पर बैठने के बाद सोमदेव दक्षिण भारत चले गये हो और कालान्तर में वही गौड सघ में मुनि हो गये हों।

निष्कर्ष रूप में यह स्वीकार न भी किया जाये कि सोमदेव महेन्द्रदेव के अनुज थे, तो भी यशस्तिलक से यह स्पष्ट है कि सोमदेव का सम्बन्ध विराट

---

३२ श्री गौडसघेमुनिमान्यकीर्तिनाम्ना यशोदेव इति प्रजज्ञे।
-प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास में उद्धृत, पृ० १०

३३ ओझा-राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० १४०

राज्यशासन से दीर्घकाल तक रहा है। दक्षिण भारत में राष्ट्रकूटो के सपर्क में भी वे बहुत काल तक रहे प्रतीत होते हैं। यशस्तिलक में राज्यतन्त्र और उसके विभिन्न अवयवो के जो वर्णन हैं, वे सोमदेव के चित्रग्राहिणी प्रतिभा द्वारा स्वयं गृहीत चित्र हैं। इतने स्पष्ट और सागोपाग वर्णन विना इसके सम्भव न थे। बाण ने अपने युग के महान् प्रतापी सम्राट हर्ष के राज्यतन्त्र का चित्राकन अपने हर्षचरित में किया था, सोमदेव ने अपने युग के महाप्रतापी राष्ट्रकूटो के राज्यतन्त्र का चित्राकन अपने महनीय ग्रन्थ यशस्तिलक में किया।

•

परिच्छेद दो

यशस्तिलक की कथावस्तु और उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

पहले बताया है कि पूरा यशस्तिलक आठ आश्वासो या अध्यायो में विभक्त है। प्रथम आश्वास कथावतार या कथा की पृष्ठभूमि के रूप में है और अन्त के तीन आश्वासो में उपासकाध्ययन अर्थात जैन गृहस्थ के आचार का विस्तृत वर्णन है। यशोधर की वास्तविक कथा बीच के चार आश्वासों में स्वय यशोधर के मुँह से कहलायी गयी है। बाण की कादम्बरी की तरह कथा जहाँ से आरम्भ होती है, उसकी परिसमाप्ति भी वही आकर होती है। महाराज शूद्रक की सभा में लाया गया वैशम्पायन शुक कादम्बरी की कथा कहना प्रारम्भ करता है और कथावस्तु तीन जन्मो में लहरिया गति से घूमकर फिर यथास्थान पहुँच जाती है। सम्राट मारिदत्त द्वारा आयोजित महानवमी के अनुष्ठान में अपार जन समुदाय के बीच बलि के लिए लाया गया परिव्रजित राजकुमार यशस्तिलक की कथा का आरम्भ करता है और रथ के चक्र की तरह एक ही फेरे में आठ जन्मो की कहानी पूरी होकर अपने मूल सूत्र से फिर जुड जाती है। आठ जन्मो की लम्बी कहानी का सूत्र यशस्तिलक के प्रासगिक विस्तृत वर्णनो में कही खो न जाये, इसलिए सक्षिप्त कथा का जान लेना आवश्यक है। सम्पूर्ण कथावस्तु इस प्रकार है—

कथावस्तु

यौधेय नाम का एक जनपद था। उसकी राजधानी राजपुर थी। वहाँ मारिदत्त राज्य करता था। एक दिन उसे वीरभैरव नामक कौल आचार्य ने बताया कि चण्डमारी देवी के सामने सभी प्रकार के पशु-युगल के साथ सर्वाङ्ग सुन्दर मनुष्य युगल की अपने हाथ से बलि करने से विद्याधर लोक को जीतने वाले चक्र की प्राप्ति होती है। मारिदत्त विद्याधर लोक की विजय करने और वहाँ की कमनीय कामनियो के कटाक्षावलोकन की उत्सुकता को रोक न सका। उसने चण्डमारी के मन्दिर में महानवमी के आयोजन को अपूर्व उत्साह और धूमधाम के साथ मनाने की घोषणा कर दी। तैयारियाँ होने लगी। छोटे-बडे सभी तरह के पशुओ के जोडे उपस्थित किये गये। कमी थी केवल सर्वाङ्ग सुदर मनुष्य युगल की। चारो ओर ऐसे युगल की खोज में राज्य कर्मचारी भेज दिये गये।

उसी समय राजधानी के निकट सुदत्त नाम के महात्मा आकर ठहरे। उनके साथ उनके दो अल्प वयस्क शिष्य भी थे। ये दोनो भाई-बहिन अल्प अवस्था में ही राज्य त्याग कर साधु हो गये थे। साधु वेश में उनका राजसी तेज और कमनीयता अक्षुण्ण थी। मध्याह्न में वे दोनो अपने गुरु की आज्ञा लेकर नगर में भिक्षा के लिए गये। वहाँ उनकी राज्य कर्मचारियो से भेंट हो गयी। राज्य कर्मचारी बिना किसी रहस्य का उद्घाटन किये ही बहाना बना कर उन दोनो को चण्डमारी के मन्दिर में ले गये।

मारिदत्त सर्वांग सुन्दर नर युगल की प्राप्ति से उल्लसित हो उठा। उसकी विद्याधर लोक को जीतने की इच्छा साकार जो होनी थी। हर्षातिरेक में उसने कोश से तलवार निकाल ली, किन्तु साधु वेश, सौम्य प्रकृति और मृत्यु के सामने खडा होने पर भी उनके अपूर्व धैर्य को देख कर उसका हाथ रुक गया। बोला—मैं तुम्हारा परिचय जानना चाहता हूँ। मुनिकुमार ने कहा—साधु का क्या परिचय। फिर भी कौतूहल हो तो सुनो। [प्रथम आश्वास]

भरत क्षेत्र में अवन्ति नाम का एक जनपद है। उसकी राजधानी उज्जयिनी शिप्रा नदी के किनारे बसी है। वहाँ राजा यशोध राज्य करता था। उसकी चन्द्रमति नाम की रानी थी। उन दोनो के यशोधर नाम का एक पुत्र हुआ। एक दिन राजा ने अपने सिर पर सफेद बाल देखे। उन्हें देखकर उसे वैराग्य हो गया और उसने अपने पुत्र को राज्य देकर सन्यास ले लिया। यशोधर का राज्याभिषेक और अमृतमति के साथ पाणिग्रहण संस्कार शिप्रा के तट पर एक विशाल मण्डप में धूमधाम से सम्पन्न हुआ। [द्वितीय आश्वास]

राज्य संचालन में यशोधर का जीवन सुखपूर्वक बीतने लगा।

[तृतीय आश्वास]

एक दिन राजा यशोधर रानी अमृतमति के साथ विलास करके लेटा ही था कि रानी उसे सोया समझ धीरे से पलग से उतरी और दासी के कपडे पहन कर महल से निकल पडी। यशोधर इस रहस्य को जानने के लिए चुपके से उसके पीछे हो गया। उसने देखा कि रानी गजशाला में पहुँचकर अत्यन्त गन्दे विजयमकरध्वज नामक महावत के साथ नाना प्रकार से विलास कर रही है। उसके आश्चर्य, क्रोध और घृणा का ठिकाना न रहा। वह क्रोध से तिलमिला उठा और यह सोच कर कि दोनो का एक साथ ही काम तमाम कर दे, उसने कोश से तलवार निकाल ली। पर एक क्षण कुछ सोच कर उलटे पैर लौट पडा

और महल में आकर पलग पर पुन' लेट गया। महावत के साथ रति करने के बाद रानी लौट आयी और यशोधर के साथ पलग पर इस तरह चुपके से सो गयी मानो कुछ हुआ भी न हो।

इस घटना से यशोधर के मन को बडी ठेस लगी। उसका दिल टूट गया। ससार की असारता के विचार उसके मन में बार-बार आने लगे।

सवेरे प्रतिदिन के अनुसार जब यशोधर राजसभा में पहुँचा तो उसकी माता चन्द्रमति ने उसे उदास देख कर उदासी का कारण पूछा। यशोधर ने बात टालने की दृष्टि से कहा कि उसने आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में एक स्वप्न देखा है कि वह अपने राजकुमार यशोमति को राज्य देकर सन्यस्त हो वन को चला गया है। इसलिए वह अपनी कुल परम्परा के अनुसार राजकुमार को राज्य देकर साधु होना चाहता है।

यह सुनकर राजमाता चिन्तित हुई और उसने कुल देवी चडमारी के मदिर में बलि चढाकर स्वप्न की शान्ति करने का उपाय बताया। यशोधर पशु हिंसा के लिए किसी भी मूल्य पर तैयार नही हुआ तो राजमाता ने कहा कि आटे का मुर्गा बना कर उसी की बलि करेंगे। यशोधर को विवश होकर यह मानना पडा। उसने सोचा कि कही राजमाता पुत्र के द्वारा अवज्ञा होने पर कोई अनिष्ट न कर बैठे, इसलिए उसने माँ की बात मान ली। एक ओर चडमारी के मन्दिर में बलि का आयोजन, दूसरी ओर कुमार यशोमति के राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी।

अमृतमति को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो वह हृदय से प्रसन्न हो उठी। फिर भी दिखावा करती हुई बोली—स्वामिन्! मुझे छोडकर आप सन्यास लें, यह ठीक नही। अत कृपा करके मुझे भी अपने साथ वन ले चलें।

यशोधर कुलटा रानी की इस ढिठाई से तिलमिला उठा। उसे गहरी चोट लगी, फिर भी बात को पी गया। मन्दिर में जाकर उसने आटे के मुर्गे की बलि चढायी। इससे उसकी माँ तो प्रसन्न हुई, किन्तु रानी को दु ख हुआ कि कही राजा का वैराग्य क्षणिक न हो। उसने बलि किये हुए उस आटे के मुर्गे के प्रसाद को पकाते समय उसमें विष मिला दिया, जिसके खाने से यशोधर और उसकी माँ, दोनो की मृत्यु हो गयी। [चतुर्थ आश्वास]

मृत्यु के बाद दोनो माँ और बेटे छ जन्मो तक पशुयोनि में भटकते रहे। पहले जन्म में यशोधर मोर हुआ और उसकी माँ चन्द्रमति कुत्ता। दूसरे जन्म में

यशोधर हिरण हुआ और चन्द्रमति सांप। तीसरे जन्म में वे शिप्रा नदी में जल जन्तु हुए। यशोधर एक बडी मछली हुआ और चन्द्रमति मगर। चौथे जन्म में दोनो अज युगल (बकरा बकरी) हुए। पांचवें जन्म में यशोधर पुन' बकरा हुआ तथा चन्द्रमति कलिंग देश में भैसा हुई। छठे जन्म में यशोधर मुर्गा और चन्द्रमति मुर्गी हुई।

मुर्गा-मुर्गी का मालिक वसन्तोत्सव में कुक्कुट युद्ध दिखाने के लिए उन्हे उज्जयिनी ले गया। वहां सुदत्त नाम के आचार्य ठहरे हुए थे। उनके उपदेश से उन दोनो को अपने पूर्व जन्मो का स्मरण हो गया और उन्हें अपने किये पर पश्चात्ताप होने लगा। अगले जन्म में मरकर वे दोनो राजा यशोमति के यहां उसकी रानी कुसुमावलि के गर्भ से युगल भाई-बहन के रूप में पैदा हुए। उनके नाम क्रमश अभयरुचि और अभयमति रखे गये।

एक बार राजा यशोमति सपरिवार आचार्य सुदत्त के दर्शन करने गया और वहां अपने पूर्वजों की परलोक यात्रा के सम्बन्ध में पूछा। आचार्य सुदत्त ने अपने दिव्यज्ञान के प्रभाव से जानकर बताया कि तुम्हारे पितामह यशोर्घ अपनी तपस्या के प्रभाव से स्वर्ग में सुख भोग रहे हैं और तुम्हारी माता अमृतमति विष देने के पाप के कारण नरक में है। तुम्हारे पिता यशोधर तथा उनकी माता चन्द्रमति आटे के मुर्गे की वलि देने के पाप के कारण छ' जन्मो तक पशुयोनि में भटककर अपने पाप का प्रायश्चित्त करके तुम्हारे पुत्र और पुत्री के रूप में उत्पन्न हुए हैं।

आचार्य सुदत्त ने उनके पूव जन्मों की कथा सुनायी जिसे सुनकर उन बालको को ससार के स्वरूप का ज्ञान हो गया और इस डर से कि बडे होने पर पुन ससार चक्र में न फँस जायें, उन्होने बाल्यावस्था में ही दीक्षा ले ली।

इतना कह कर अभयरुचि ने कहा, राजन्! हम दोनो वही भाई-बहन हैं। हमारे वे आचार्य सुदत्त इसी नगर के पास आकर ठहरे हैं। हम लोग उनकी आज्ञा लेकर भिक्षा के लिए नगर में आये थे कि आपके कर्मचारी हमें पकडकर यहां ले आये। [पचम आश्वास]

इतनी कथा पांच आश्वासो में समाप्त होती है। इसके आगे तीन आश्वासों में सोमदेव ने उपासकाध्ययन (श्रावकाचार) का वर्णन किया है। बाणभट्ट की कादम्बरी की तरह यशस्तिलक की कथा का जहां से आरम्भ होता है वही उसकी परिसमाप्ति भी। कथा के सूत्र को जोडने के लिए सोमदेव ने आगे इतना और कहा है कि–राजा मारिदत्त यह वृत्तान्त सुनकर आश्चर्यचकित हो गया और

बोला-मुनिकुमार, हमें शीघ्र ही अपने गुरु के निकट ले चलें। हमें उनके दर्शनों की तीव्र उत्कंठा हो रही है।

इसके बाद सब लोग आचार्य सुदत्त के पास पहुँचे और उनके उपदेश से प्रभावित होकर धर्म में दीक्षित हो गये। धर्म के प्रभाव से सारा यौधेय सुख, शान्ति और समृद्धि से ओतप्रोत हो गया।

यशस्तिलक की इस सम्पूर्ण कथावस्तु को सोमदेव ने एक स्थान पर केवल एक पद्य में सजो कर रख दिया है—

"आसीच्चन्द्रमतिर्यशोधरनृपस्तस्यास्तनूजोऽभवत्
तौ चण्ड्या' कृतपिष्टकुक्कुटबलीत्क्ष्वेडप्रयोगान्मृतौ ॥
श्वा केकी पवनाशनश्च पृषत. ग्राहस्तिमिश्छागिका
भर्तास्यास्तनयश्च गर्वरपतिर्जातौ पुन. कुक्कुटौ ॥"
—पृ० २५६, उत्त०

चन्द्रमति नामकी रानी थी। उसका पुत्र यशोधर हुआ। उन दोनों ने चण्डमारी देवी के सामने आटे के मुर्गे की बलि दी और विष के दिये जाने से उन दोनों की मृत्यु हो गयी। इसके बाद अगले जन्मों में क्रम से कुत्ता और मोर, सांप और सेही, मगर और महामत्स्य, बकरा बकरी, फिर बकरा-बकरी और अन्त में मुर्गा-मुर्गी हुए।

इस तरह यशस्तिलक की कथा को एक ओर एक पद्य में सग्रथित किया गया है, दूसरी ओर इसी कथा को पूरे यशस्तिलक में नियोजित किया गया है।

कथावस्तु की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

काव्य के माध्यम से जन मानस में नैतिक जागरण की प्रक्रिया प्राचीन काल से चली आयी है। काव्य से एक ओर पाठक का मनोरंजन होता रहता है, दूसरी ओर बिना किसी बोझ के अनजाने ही उसके मानस-पटल पर नैतिक धरातल की पृष्ठभूमि भी तैयार होती रहती है। इसीलिए मम्मट ने इसे कान्तासम्मित उपदेश कहा। जिस प्रकार कान्ता (स्त्री) अपने पति का मन बहलाती हुई खुशी-खुशी उससे अपनी बात मनवा लेती है, उसी प्रकार काव्य पाठक का मनोरञ्जन करता हुआ उसे सदुपदेश भी दे देता है।

काव्यशास्त्र की इस मौलिक प्रेरणा ने ही साहित्यकार पर सामाजिक चरित्र विकास का उत्तरदायित्व ला दिया। फिर तो काव्य के माध्यम से धर्म और तत्त्वज्ञान की भी शिक्षा दी जाने लगी। महाकवि अश्वघोष के सौंदरानन्द महा-

काव्य और बुद्धचरित की पृष्ठभूमि बौद्ध चिन्तन और तत्त्वज्ञान को जनमानस तक पहुँचाने की मूल प्रेरणा से ही निर्मित हुई है। जैन साहित्य का एक बहुत बड़ा भाग इसी धरातल पर आधारित है।

सोमदेव सूरि का यशस्तिलक दशवीं शताब्दी (६५९ ई०) के मध्य में लिखा गया संस्कृत साहित्य का एक ऐसा ही ग्रन्थ है, जिसकी मूल प्रेरणा शुद्ध रूप से नैतिक धरातल पर प्रतिष्ठित हुई है। कथाकार को जनमानस में अहिंसा के उत्कृष्टतम रूप की प्रतिष्ठा करना अभीष्ट था, जिसे उसने एक लोकप्रिय कथा-पुरुष के चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया। यशस्तिलक का चरितनायक सम्राट यशोधर हिंसा का तीव्र विरोधी है, इसलिए जब उसकी माँ उससे पशुबलि देने की बात कहती है तो वह बिगड़ खड़ा होता है और कठोर शब्दों में बलि का खण्डन करता है। बाद में माँ के आग्रह और तीव्र प्रेरणा के कारण आटे के मुर्गे की बलि देना मंजूर कर लेता है। बलि देने के तात्कालिक दुष्परिणाम स्वरूप यशोधर की रानी उस आटे के मुर्गे में विष मिलाकर माँ बेटे को बलि के प्रसाद के रूप में खिला देती है, जिससे उन दोनों की तत्काल मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के बाद दोनों छ जन्मों तक पशुयोनि में भटकते रहते हैं। अन्त में सद्-गुरु का सान्निध्य पाकर जब उन्हें अपने इस पाप का बोध होता है और उसके लिए वे पश्चात्ताप करते हैं तब कहीं उन्हें फिर से मनुष्य भव की प्राप्ति होती है।

इस तरह यशस्तिलक की कथावस्तु हिंसा और अहिंसा के द्वन्द्व की कहानी है। आचार्य सोमदेव एक उच्चकोटि के जैन साधु थे। अतएव उनका अहिंसा के प्रति तीव्र अनुराग स्वाभाविक था। कथा के माध्यम से वे अहिंसा संस्कृति को सम्पूर्ण जनमानस में बिठा देना चाहते थे। यशस्तिलक की कथा के द्वारा उन्होंने लोगों को दिखाया कि जब आटे के मुर्गे की भी हिंसा करने से लगातार छ: जन्मों तक पशुयोनि में भटकना पड़ा तो साक्षात् पशु हिंसा करने का कितना विपाक परिणाम होगा, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। कथावस्तु की यही सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि यशस्तिलक की कथा का नायक एक सम्राट है। साम्राज्य में कितने तरह की हिंसा नहीं होती? पशुओं की बात तो दूर रही, युद्धों में नर संहार की भी सीमा नहीं रहती। ऐसी स्थिति में एक आटे के मुर्गे की बलि देने के कारण उसे छ जन्मों तक पशुयोनि में भटकना कहाँ तक तर्कसंगत है?

सोमदेव का ध्यान उपर्युक्त तथ्य की ओर अवश्य गया होगा, क्योंकि अहिंसा संस्कृति के क्रमिक विकास को दृष्टि में रखते हुए उक्त कथावस्तु की योजना की गयी है। अहिंसा के उत्कृष्ट स्वरूप की साधना साधु ही कर सकता है जो त्रस और स्थावर समस्त जीवों की हिंसा से विरत है। गृहस्थ इतनी साधना नहीं कर सकता। उसे अपने आश्रित प्राणियों के भरण-पोषण के लिए नाना प्रकार का आरम्भ करना पड़ता है, तरह-तरह के उद्योग करने होते हैं तथा अपने विरोधियों का प्रतिरोध और विनाश करना होता है। वह यदि कुछ साधना कर सकता है तो केवल यह कि जानबूझकर (संकल्पपूर्वक) किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। इन चार प्रकार की हिंसाओं को शास्त्रीय शब्दों में निम्न-लिखित नाम दिये गये हैं—

१ आरम्भी हिंसा, २. उद्योगी हिंसा, ३ विरोधी हिंसा, ४ संकल्पी हिंसा।

गृहस्थ इन चार प्रकार की हिंसाओं में से अंतिम अर्थात् संकल्पी हिंसा का त्यागी होता है। यशस्तिलक के कथानायक ने संकल्पपूर्वक आटे के मुर्गे की बलि की थी, जिसका कि उसे त्यागी होना चाहिए था। यही कारण है कि उसे इसका विपाक फल भोगना पड़ा।

कथा की इस योजना के पीछे एक और भी महत्त्वपूर्ण तथ्य छिपा हुआ है। यशोधर को उक्त हिंसा के प्रतिफल छः जन्मों तक पशुयोनि में ही क्यों भटकना पड़ा, नरक में भी तो जा सकता था ?

यशोधर ने आटे का मुर्गा चढ़ाकर उससे समस्त जीवों की बलि करने का फल प्राप्त होने की कामना की।[1] निःसन्देह यह देवता के साथ बहुत बड़ा छल था। छल-कपट (माया) तिर्यंचगति के कर्म बन्धन का कारण है (माया तैर्यग्योनस्य, तत्त्वार्थसूत्र ६।१६)। यही कारण है कि यशोधर को ऐसे तिर्यंचगति कर्म का बन्ध हुआ, जिसे वह छ जन्मों में भोग पाया।

इस प्रकार यशस्तिलक की कथावस्तु अहिंसा संस्कृति की विशाल पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित हुई है। इससे एक ओर सोमदेव के साहित्यकार ने जनमानस के

---

१ सर्वेषु सत्त्वेषु हतेषु यन्मे भवेत्फलं देवि तदत्र भूयात्।
इत्याशयेन स्वयमेव देव्याः पुरः शिरस्तस्य चकर्त शस्त्र्या॥
यश० पृ० १६२ उत्त०

चरित्र विकास की नैतिक जिम्मेदारी पूर्ण की, दूसरी ओर अहिंसा की प्रतिष्ठा से धार्मिक नेता का दायित्व।

एक बात और जो ध्यान में आती है वह यह कि सम्भवतया १० वीं शताब्दी में बलि प्रथा का बहुत ही जोर था। छोटे से छोटे पशु-पक्षी से लेकर बड़े से बड़े पशु की बलि देने में भी लोगो को हिचकिचाहट नहीं होती थी। दक्षिण भारत मे जहाँ कौल और कापालिक सम्प्रदाय विशेष पनपे, वहाँ बलि प्रथा का जोर होना स्वाभाविक था। सोमदेव ने यशस्तिलक में जिस तीव्रता के साथ और जिन कठोर शब्दों में बलि प्रथा का विरोध किया है, वह कथावस्तु की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का दूसरा अङ्ग है। बलि प्रथा का विरोध करना अहिंसा के विकास के लिए नितांत आवश्यक था। उसी के लिए सोमदेव ने कथा के माध्यम से जन सामान्य के सामने बलि के दुष्परिणामो को प्रस्तुत किया और लोगो को यह महसूस करने के लिए बाध्य किया कि बलि करना निंद्य और निकृष्ट काम ही नही घृणास्पद, अतएव परित्याज्य भी है।

•

यशोधरचरित्र की लोकप्रियता

यशोधरचरित्र मध्ययुग के साहित्यकारों का प्रिय और प्ररक विषय रहा है। यद्यपि कथावस्तु के मूल उत्स के विषय में अभी निश्चयपूर्वक कहना कठिन है, फिर भी अब तक उपलब्ध प्रकाशित तथा अप्रकाशित सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि लगभग सातवीं शती के अन्त से लेकर उन्नीसवीं शती तक यशोधरचरित्र पर ग्रन्थ रचना होती रही। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी, गुजराती, तमिल, कन्नड आदि भारतीय भाषाओं में इस कथा को आधार बनाकर लिखे गये अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। अपभ्रंश जसहरचरिउ की भूमिका में प्रो० पी० एल० वैद्य ने उनतीस ग्रन्थों की सूचना दी है। इधर उपलब्ध जानकारी से यह संख्या चौवन तक पहुँच जाती है। अनेक शास्त्र-भण्डारों की सूचियाँ अभी तक नहीं बन पायी, इसलिए अभी भी यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इस सूची के अतिरिक्त और नवीन ग्रन्थ यशोधरचरित्र पर न मिले। अब तक प्राप्त जानकारी का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१ उद्योतन सूरि ने कुवलयमाला कहा (७७९ ई०) में प्रभंजन द्वारा रचित यशोधरचरित्र की सूचना दी है।[1] यद्यपि यह ग्रन्थ अब तक प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु यह सत्य है कि प्रभंजन ने यशोधरचरित्र की रचना की थी। वासवसेन ने भी प्रभंजन का उल्लेख किया है।[2]

२ हरिभद्र सूरि के प्राकृत ग्रन्थ समराइच्च कहा में यशोधर की कथा आयी है। हरिभद्र उद्योतन सूरि के गुरुओं में से थे। इनका समय आठवीं शती का मध्यकाल माना जाता है।

---

१ सत्तूण जो जसहरो जसहर-चरिएण जणवए पयडो।
कलि मल पभंजणो च्चिय पभंजणो आसि रायरिसी॥
—कुवलयमाला, पृ० ३।३१

२ सर्वशास्त्रविदा मान्यै सर्वशास्त्रार्थपारगै।
प्रभंजनादिभि पूर्वं हरिषेणसमन्वितै॥
—पी० एल० वैद्य —जसहरचरिउ, भूमिका, पृ० २५

३ हरिभद्र के बाद दशवी शती मे सोमदेव ने सस्कृत में विशालकाय यशस्तिलक लिखा।

४ सोमदेव के समकालीन विद्वान् पुष्पदन्त ने अपभ्र श में जसहरचरिउ की रचना की।

५ पुष्पदन्त और सोमदेव के बाद वादिराजकृत यशोधरचरित्र की जानकारी मिलती है। श्रुतसागर ने वादिराज को सोमदेव का शिष्य बताया है।[३] स्वय वादिराज की सूचना के अनुसार उन्होने यशोधरचरित्र की रचना के पूर्व शक सवत् ९४७ (१०२५ ई०) में पार्श्वनाथचरित की रचना की थी।[४]

६ वादिराज के बाद वासवसेन का उल्लेख किया जाना चाहिए। वासवसेन ने सस्कृत में आठ अध्यायो में यशोधरचरित्र लिखा।

७ वासवसेन के समकालीन वत्सराज ने भी यशोधर-कथा पर ग्रन्थ लिखा। गन्धर्व कवि ने वासवसेन तथा वत्सराज दोनो का उल्लेख किया है। इसलिए इनका समय १४ वी शती से पूर्व का अनुमाना जाता है।

८ वासवसेन ने अपने पूर्ववर्ती प्रभजन और हरिषेण का उल्लेख किया है। हरिषेण के काव्य के विषय में कोई जानकारी नही मिलती। सस्कृत कथाकोष के रचयिता हरिषेण से इनकी पहचान की जाती है किन्तु पर्याप्त साक्ष्यो के अभाव में निश्चित रूप से यह नही माना जा सकता कि वासवसेन के द्वारा उल्लिखित हरिषेण यही हैं।

९ वासवसेन की शैली और विधा पर ही सम्भवतया सकलकीर्ति ने अपना सस्कृत यशोधरचरित्र लिखा। सकलकीर्ति के शिष्य ज्ञानभूषण ने सवत् १५६० में अपनी तत्त्वज्ञानतरगिणी की रचना की थी। इसी आधार पर सकलकीर्ति का समय १४५० ई० के लगभग अनुमाना जाता है।

१० सकलकीर्ति की ही शैली और विधा पर सोमकीर्ति ने सस्कृत में यशोधरचरित्र की रचना की। स्वय सोमकीर्ति ने इसका रचनाकाल सवत् १५३६ (१४७९ ई०) दिया है।

---

३ स वादिराजोऽपि सोमदेवाचार्यस्य शिष्य। वादीभसिंहोऽपि मदीय शिष्य श्री वादिराजोऽपि मदीय शिष्य। इत्युक्तत्वाच्च।—यश० २।१२६ सं० टी०

४ श्री पार्श्वनाथकाकुत्स्थचरित येन कीर्तितम्।
तेन श्रीवादिराजेनारब्धा याशोधरी कथा॥
—पी० एल० वैद्य—वही पृ० १५

११ माणिक्यसूरि ने संस्कृत के अनुष्टुप् पद्यों में १० अध्यायों में यशोधर चरित्र की रचना की। इनके समय आदि के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती। माणिक्यसूरि ने हरिभद्र का अपने पूर्ववर्ती रूप में स्मरण किया है।

१२ पद्मनाभ ने नौ अध्यायों में संस्कृत यशोधरचरित्र लिखा। इसकी प्राचीनतम प्रति संवत् १५३८ की मिलती है, जो आमेर (राजस्थान) के शास्त्र-भंडार में सुरक्षित है। इनके समय इत्यादि का ठीक पता नहीं चलता।

१३ पूर्णभद्र ने संस्कृत के ३११ पद्यों में सम्भवतः में यशोधरचरित्र लिखा। इनके सम्बन्ध में भी कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती।

१४ क्षमाकल्याण ने संस्कृत गद्य में यशोधरचरित्र लिखा, जो कि आठ अध्यायों में समाप्त होता है। क्षमाकल्याण ने अपने यशोधरचरित्र के प्रारम्भ में हरिभद्र के प्राकृत यशोधरचरित्र का उल्लेख किया है।[१] क्षमाकल्याण ने अपनी कृति सं० १८३९ (१७८२ ई०) में पूर्ण की थी।

१५ भण्डारकर इंस्टीट्यूट में एक और पाण्डुलिपि यशोधरचरित्र की है, जिसके प्रारम्भ के कुछ पृष्ठ नहीं हैं और इसलिए उसके लेखक का भी पता नहीं चलता। ग्रन्थ ४ अध्यायों में समाप्त होता है। यह पाण्डुलिपि सन् १५२४ ई० की है।

रायबहादुर हीरालाल की ग्रन्थ-सूचि के अनुसार यशोधरचरित्र पर निम्न लिखित विद्वानों ने भी ग्रन्थ लिखे—

१६ मल्लिभूषण नं० ७७८८

१७ ब्रह्मनेमिदत्त नं० ७८००

१८ पद्मनाथ नं० ७८०५। सम्भवतया उपरि-उल्लिखित पद्मनाभ और पद्मनाथ एक ही हैं।

१९ श्रुतसागर ने चार अध्यायों में संस्कृत में यशोधरचरित्र लिखा। ये श्रुतसागर यशस्तिलक के टीकाकार ही हैं। सब की प्रार्थना पर इन्होंने अपने ग्रन्थ की रचना की थी। ग्रन्थ के अन्त में प्रशस्ति इस प्रकार दी गयी थी—

श्रीमत्कुंदकुंदविदुषो देवेन्द्रकीर्तिर्गुरुः।
पट्टे तस्य मुमुक्षुरक्षणगुणो विद्यादिनंदीश्वरः ॥

---

१ श्री हरिभद्रमुनी द्रैर्विहित प्राकृतमय तथान्यकृतम्
तदहम् गद्यमय तत् कुर्वे सर्वावबोधकृते ॥

तत्पादपावनपयोधरमत्तभृगः, श्रीमल्लिभूपगणगुरुर्गरिमाप्रधानः ।
सप्रेरितोऽहममुनाभयरुच्यभिख्ये भट्टारकेण चरिते श्रुतसागराख्यः ॥[६]

इनका समय १६वी शती माना जाता है ।

२० हेमकुजर ने ३७० श्लोको मे सस्कृत में यशोधरकथा लिखी ।

२१ जन्न कवि ने सन् १२०९ में गद्य और पद्य में चार अवतारो (अध्यायो) में कन्नड में यशोधरचरित्र लिखा ।

२२ पूर्णदेव ने सस्कृत में यशोधरचरित्र लिखा । इसके रचनाकाल का पता नही चलता । स० १८४४ की एक पाण्डुलिपि आमेर शास्त्र-भण्डार मे सुरक्षित है ।[७]

२३ श्री विजयकीर्ति ने सस्कृत गद्य में यशोधरचरित्र लिखा । इसके रचनाकाल या लिपिकाल का पता नही चलता ।[८]

२४ ज्ञानकीर्ति ने सवत् १६५९ में सस्कृत यशोधरचरित्र लिखा । इसकी प्राचीनतम प्रति सवत् १६६१ की उपलब्ध है । यह आमेर शास्त्र-भडार में सुरक्षित है ।[९]

२५-२८ बडा मदिर, जयपुर के शास्त्र-भडार में सस्कृत यशोधरचरित्र की चार ऐसी भी पाण्डुलिपियाँ है, जिनके लेखक का पता नही चलता । इनमें रचनाकाल भी नही है । एक का लिपिकाल सवत् १७१५ तथा एक का १८०१ दिया है । चारो की शास्त्र सख्या इस प्रकार हैं ।[१०]

(१) वेष्टन सख्या १४४६ (सवत् १८०१ की प्रति)
(२) वेष्टन सख्या १४४८
(३) वेष्टन सख्या १४४९
(४) वेष्टन सख्या १४५० (सवत् १७५० की प्रति)

---

६ राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की सूची, भाग २, पृ० २८८
७ आमेर शास्त्र भण्डार सूची, पृ० ११७
८ वही
९ वही, पृ० ११६
१० वही, पृ० २२८

२९ देवसूरि ने ३५० श्लोकों में यशोधरचरित्र लिखा। इनके समय आदि का पता नहीं चलता (जैन ग्रन्थावलि, पृ० २३०)।

३० सोमकीर्ति ने पुरानी हिन्दी में यशोधररास लिखा। इसके रचना काल का पता नहीं चलता। यह संवत् १६६१ के लिखे एक गुटके में उपलब्ध है।[११]

३१ परिहरानन्द ने हिन्दी पद्यों में संवत् १६७० में यशोधरचरित लिखा। इसकी संवत् १८३९ की पाण्डुलिपि बधीचन्द्रजी का मंदिर, जयपुर में सुरक्षित है।[१२]

३२ साह लोहट ने पद्मनाभ के यशोधरचरित के आधार पर हिन्दी यशोधरचरित्र लिखा। इसका रचनाकाल संवत् १७२१ है। इसकी संवत् १८०३ की प्रति उपलब्ध है।[१३]

३३ खुशालचन्द्र ने संवत् १७८१ में हिन्दी में यशोधरचरित्र लिखा। इसकी प्राचीनतम प्रति संवत् १८०१ की उपलब्ध है।[१४]

३४ अजयराज ने हिन्दी में यशोधर चौपई लिखी। इसकी संवत् १८३९ की पाण्डुलिपि उपलब्ध है।[१५]

३५ गारवदास ने हिन्दी पद्यों में यशोधरचरित्र लिखा। इसका रचनाकाल संवत् १५८१ है।[१६]

३६ पन्नालाल ने हिन्दी गद्य में यशोधरचरित्र लिखा। इसका रचनाकाल संवत् १९३२ है।[१७]

३७ एक प्रति हिन्दी यशोधरचरित्र की जैन मन्दिर संघी जी के शास्त्र भंडार, जयपुर में वेष्टन संख्या ६११ में है। इसके लेखक, रचनाकाल आदि का पता नहीं चलता।[१८]

११ वही, पृ० २७६
१२ राजस्थान के शास्त्र भंडारों की सूची, भाग ३ पृ०७१
१३ आमेर शास्त्र भंडार सूची, पृ० ११६
१४ वही
१५ राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की सूची, भाग ३, पृ० ७७
१६ वही, भाग ४, पृ० १६१
१७ वही, पृ० १६२
१८ वही, पृ० १६२

३८ यशोधर-जयमाल नाम से हिन्दी में एक रचना एक गुटके में उपलब्ध है। इसके रचयिता या रचनाकाल का पता नही चलता।

३९ सोमदत्तसूरि ने हिन्दी में यशोधररास लिखा। इसके रचनाकाल आदि का पता नही चलता। यह बधीचन्दजी का मदिर, जयपुर में गुटका सख्या ४८, वेष्टन सख्या १०१३ (ख) मे सुरक्षित है।[१९]

४० यशोधरचरित्र भाषा नाम से एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है, जिसके रचयिता आदि का पता नही चलता।

४१ प० लक्ष्मीदास ने पुरानी हिन्दी में यशोधरचरित्र लिखा। लक्ष्मीदास ने अपनी कृति के प्रारम्भ में कहा है कि उन्होने पद्मनाभ की शैली और विधा के आधार पर यशोधरचरित्र की रचना की।

४२ जिनचन्द्रसूरि ने पुरानी गुजराती में यशोधरचरित्र लिखा। सम्भवतया जिनचन्द्रसूरि १६वी शती के विद्वान् थे।

४३ देवेन्द्र ने पुरानी गुजराती में यशोधररास लिखा।

४४ लावण्यरत्न ने स० १५७३ (१५१६ ई०) में गुजराती में यशोधर-चरित्र लिखा।

४५ लावण्यरत्न के समान ही मनोहरदास ने भी स० १६७६ (१६१९ ई०) में गुजराती में यशोधरचरित्र लिखा।

४६ ब्रह्मजिनदास ने स० १५२० (१४६३ ई०) में यशोधररास लिखा।

४७ इसी तरह जिनदास ने स० १६७० (१६१३ ई०) में यशोधररास लिखा।

४८ विवेकराज ने सवत् १५७३ में यशोधररास लिखा।

४९ यशोधरकथा चतुष्पदी के नाम से एक और गुजराती पाण्डुलिपि प्राप्त होती है। इसके रचयिता आदि का पता नहीं चलता।[२०]

५० एक अज्ञात लेखक ने तमिल भाषा में यशोधरचरित्र लिखा। इसका समय १०वी शताब्दी है और सम्भवत यह वादिराज की कृति है।

---

१९ वही, भाग ३, पृ० १२६

२० लिंबडीना जैन ज्ञानभण्डारनी हस्तलिखित प्रतियानु सूचीपत्र, पृ० १२३

५१ श्री चन्द्रनवर्णी ने कन्नड में यशोधरचरित्र लिखा। ये श्रुतमुनि के पौत्र प्रशिष्य शुभचन्द्र के पुत्र थे। रचनाकाल या लिपिकाल का पता नही चलता।[२१]

५२ कवि चन्द्रम ने भी कन्नड में यशोधरचरित्र लिखा। इनके भी समय आदि का पता नही चलता।[२२]

५३-५४ इनके अतिरिक्त और भी दो पाण्डुलिपियाँ कन्नड में यशोधरचरित्र की उपलब्ध होती है। इनके रचयिता आदि का पता नही चलता।[२३]

•

---

२१ कन्नड़प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थसूची, पृ० १२६

२२, वही

२३ वही

अध्याय दो

यशस्तिलककालीन सामाजिक जीवन

वर्ण-व्यवस्था और समाज-गठन

यशस्तिलककालीन भारतीय समाज छोटे-छोटे अनेक वर्गों में बँटा हुआ था। आदर्श रूप में उन दिनों भी वर्णाश्रम-व्यवस्था की वैदिक मान्यताएँ प्रचलित थीं। यशस्तिलक से इस प्रकार की पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। विभिन्न प्रसंगों पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों तथा अपने-अपने वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक सामाजिक व्यक्तियों के उल्लेख आये हैं। सोमदेव ने एकाधिक बार वर्णशुद्धि के विषय में भी सूचनाएँ दी हैं।[1]

वर्णाश्रम-व्यवस्था की वैदिक मान्यताओं का प्रभाव सामाजिक जीवन के रग-रग में इस प्रकार बैठ गया था कि इस व्यवस्था का घोर विरोध करने वाले जैन-धर्म के अनुयायी भी इसके प्रभाव से न बच सके। दक्षिण भारत में यह प्रभाव सबसे अधिक पड़ा, इसका साक्षी वहाँ उत्पन्न होने वाले जैनाचार्यों का साहित्य है। सोमदेव के पूर्व नवी शताब्दि में ही आचार्य जिनसेन ने उन सभी वैदिक नियमोपनियमों का जैनीकरण करके उन पर जैनधर्म की छाप लगा दी थी, जिन्हें वैदिक प्रभाव के कारण जैन समाज भी मानने लगा था। जिनसेन के करीब सौ वर्ष बाद सोमदेव हुए। वे यदि विरोध करते तो भी सामाजिक जीवन में से उन मान्यताओं का पृथक् करना सम्भव न था, इसलिए यशस्तिलक में उन्होंने यह चिन्तन दिया कि 'गृहस्थों का धर्म दो प्रकार का है—लौकिक तथा पारलौकिक। लौकिक धर्म लोकाश्रित है तथा पारलौकिक आगमाश्रित, इसलिए लौकिक धर्म के लिए वेद (श्रुति) और स्मृतियों को प्रमाण मान लेने में कोई हानि नहीं है।'[2] प्राचीन जैन साहित्य की पृष्ठभूमि पर सोमदेव के इस चिन्तन का पर्यालोचन विशेष महत्व का है।

---

१. भजन्ति साकर्यमिमानि देहिना न यत्र वर्णाश्रमधर्मवृत्तय ।—पृ० १,
लोचनेषु वर्णसंकरो न कुलाचारेषु ।—पृ० २०८
शुद्धवर्णाश्रमचरितविराजितैः ।—पृ० १८३ उत्त०

२. द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः ।
लोकाश्रयो भवेदाद्य परः स्यादागमाश्रयः ॥
जातयोऽनादयः सर्वास्तत्क्रियापि तथाविधा ।
श्रुतिः शास्त्रान्तरं वास्तु प्रमाणं कात्र नः क्षतिः ॥—पृ० ३७३ उत्त०

चतुर्वर्ण

ब्राह्मण—यशस्तिलक में ब्राह्मण के लिए ब्राह्मण (११६-११८, १२६ उत्त०), द्विज (९०, १०५, १०८, १०४ उत्त०, ४५७ पू०), विप्र (४५७ पू०), भूदेव (८८ उत्त०), श्रोत्रिय (१०३ उत्त०), वाडव (१३५ उत्त०), उपाध्याय (१३१ उत्त०), मौहूर्तिक (३१६ पू० १४० उत्त०), देवभोगी, (१४० उत्त०) तथा पुरोहित (३१६ पू०, ३४५ उत्त०) शब्द आये है। एक स्थान पर (२१०) त्रिवेदी ब्राह्मण का भी उल्लेख है।

उन दिनो समाज मे ब्राह्मणो की खूब प्रतिष्ठा थी। राजा भी इस बात में गौरव अनुभव करता था कि ब्राह्मणो में उसकी मान्यता है।[३] पितृतर्पण आदि सामाजिक क्रिया-काण्डो में भी ब्राह्मण ही आगे रहता था।[४] श्राद्ध के लिए ब्राह्मणो को घर बुलाकर भोजन कराया जाता था।[५] विशिष्ट ब्राह्मणो को दान देने की प्रथा थी[६]। श्राद्ध तथा मृत्यु के बाद की अन्य क्रियाएँ करानेवाले ब्राह्मणो के लिए भूदेव शब्द आया है।[७] सम्भवत श्रोत्रिय ब्राह्मण आचार की दृष्टि से सबसे श्रेष्ठ माने जाते थे, किन्तु उनमें भी मादक द्रव्यो का उपयोग होने लगा था।[८] बलि आदि कार्य के विषय में पूरी जानकारी रखने वाले, वेदो के जानकार ब्राह्मणो को वाडव कहते थे।[९] दशकुमारचरित में भी ब्राह्मण के लिए वाडव शब्द का प्रयोग हुआ है।[१०] अध्यापन कार्य कराने वाले ब्राह्मण उपाध्याय कहलाते थे।[११] शुभ मुहूर्त का शोधन करने वाले ब्राह्मण मौहूर्तिक कहे जाते थे।[१२] मुहूर्त शोधन का कार्य करते समय वे उत्तरीय मे अपना मुह

---

३ त्रिवेदीवेदिभिर्मान्य ।—पृ० २१०

४ पितृसन्तर्पणार्थं द्विजसमाजमत्रभवतोऽकाराय समर्पयामास ।—पृ० २१८ उत्त०

५ भुक्ता च श्राद्धामन्त्रितैर्भूदेवै ।—पृ० ८८

६ ददाति दान द्विजपुगवेभ्य ।—४१७

७ श्राद्धामन्त्रितै भूदेवै —पृ० ८८ पृ०, कार्यान्तामनयोर्भूदेवमदोहसाक्षिणी क्रिया । -पृ० १९२ उत्त० ।

८ अशुचिनि मदनद्रव्यैर्निपात्यते श्रोत्रियो यद्वत ।—पृ० १०३ उत्त०

९ वेदविद्भिर्वाडवै ।—पृ० १३५ उत्त०

१० वाडवाय प्रचुरतर धन दत्वा ।—दशकुमार० ११५

११ अध्यापयन्नुपाध्याय ।—पृ० १३१ उत्त०

१२ राज्याभिषेकदिवसगणनाय मौहूर्तिकान् । पृ० १४० उत्त०

ढँक लेते थे।[13] मन्दिर में पूजा के लिए नियुक्त ब्राह्मण देवभोगी कहलाता था।[14] राज्य के मांगलिक कार्यों के लिए नियुक्त प्रधान ब्राह्मण पुरोहित कहलाता था।[15] यह प्रात काल ही राज-भवन में पहुंच जाता था।

ब्राह्मण के लिए ब्राह्मण और द्विज बहु प्रचलित शब्द थे। विप्र, श्रोत्रिय, वाडव, देवभोगी तथा त्रिवेदी का यशस्तिलक में केवल एक-एक बार उल्लेख हुआ है। मौहूर्तिक तथा भूदेव का दो-दो बार तथा पुरोहित का चार बार उल्लेख हुआ है।

क्षत्रिय—क्षत्रिय वर्ण के लिए क्षत्र और क्षत्रिय दो शब्दों का व्यवहार हुआ है। प्राणियों की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म माना जाता था[16]। पौरुष सापेक्ष कार्य तथा राज्य संचालन क्षत्रियोचित कार्य माने जाते थे। सम्राट् यशोधर को अहिच्छत्र के क्षत्रियों का शिरोमणि कहा गया है।[17]

वैश्य—व्यापारी वर्ग के लिए यशस्तिलक में वैश्य, वणिक, श्रेष्ठी और सार्थवाह शब्द आए हैं। व्यापारी वर्ग राज्य में व्यापार करने के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए विदेशों से भी सम्बन्ध रखते थे। सुवर्णद्वीप जाकर अपार धन कमाने वाले व्यापारियों का उल्लेख आया है।[18]

कुशल व्यापारी को राज्य की ओर से राज्यश्रेष्ठी पद दिया जाता था।[19] उसे विशापति भी कहते थे।[20]

शूद्र—शूद्र अथवा छोटी जातियों के लिए यशस्तिलक में शूद्र, अन्त्यज तथा पामर शब्द आए हैं। अन्त्यजों का स्पर्श वर्जनीय माना जाता था। पामरों की सन्तान उच्च कार्य के योग्य नहीं मानी जाती थी।[21]

---

१३ उत्तरीयदुकूलाञ्चलपिहितबिम्बिना मौहूर्तिकसमाजेन।—पृ० ३१६ पू०

१४ समाज्ञापय देवभोगिनम्।—पृ० १४० उत्त०

१५ द्वारे तवोत्सवमतिश्च पुरोहितोऽपि।—पृ० ३६१ पू०

१६ भूतसंरक्षणं हि क्षत्रियाणां महान् धर्म।—पृ० ९५ उत्त०

१७ अहिच्छत्रक्षत्रियशिरोमणि।—पृ० ५६७ पू०

१८ सुवर्णद्वीपमनुससार। पुनरगण्यपण्यविनिमयेन तत्रत्यमचिन्त्यम'त्माभिमत वस्तुस्कन्धमादाय।—पृ० ३४५ उत्त०

१९ अजमार राजश्रेष्ठिन्—पृ० २६१ उत्त०

२० स विशापतिरेवमूचे।—पृ० २६१ उत्त०

२१ अ त्यजै स्पृष्टा।—पृ० ४४७

अन्य सामाजिक व्यक्ति

सामाजिक कार्य करने वाले अन्य व्यक्तियो में निम्नलिखित उल्लेख आये हैं—

१ हलायुधजीवि (५६) हल चलाकर आजीविका करनेवाले ।

२ गोप (३९१) कृषि करने वाले ।

गोप की पत्नी गोपी या गोपिका कहलाती थी । पत्नी पति के कृषि काय में भी हाथ बटाती थी । सोमदेव ने धान के खेतो में जाती हुई गोपिकाओ का उल्लेख किया है (शालिवप्रेपु यान्त्य गोपिका, १८) । गोप और हलायुधजीवि मे सम्भवतया यह अन्तर था कि गोप वे कहलाते थे, जिनकी अपनी निजी खेती होती थी तथा हलायुधजीवि उनको कहते थे, जो अपने हल ले जाकर दूसरो के खेत जोतकर अपनी आजीविका चलाते थे ।

३ व्रजपाल (५६) गायें पालनेवाले ।

४ गोपाल (३४० उत्त०) ग्वाला ।

ग्वालो की बस्ती को गोष्ठ कहते थे ।[२२] सम्भवतया व्रजपाल उन्हे कहते थे, जिनके पास गायो तथा अन्य पशुओ का पूरा व्रज (बडा भारी समुदाय) होता था तथा गोपाल वे कहलाते थे, जो अपने तथा दूसरो के पशु चराते थे ।

५ गोध (१३१ उत्त०) गडरिया ।

बकरियाँ तथा भेडें पालनेवाले को गोध कहते थे ।[२३]

६ तक्षक (२७१) कारीगर या राजमिस्त्री ।[२४]

७. मालाकार (३९३) माली ।

मालाकार या माली की कला का सोमदेव ने एक सुन्दर चित्र खीचा है । मन्त्री राजा से कहता है कि राजन्, मालाकार की तरह कटकितो को बाहर रोककर या लगाकर, घनो को विरले करके, उखाडे गये को पुन रोपकर, पुष्पित हुए से फूल चुनकर, छोटो को बडाकर, ऊँचो का झुकाकर, स्थूलो को कृश करके तथा अत्यन्त उच्छृखल या ऊबड-खाबड को गिराकर पृथ्वी का पालन करें ।[२५]

---

२२ गोष्ठीनमनुसृत ।—पृ० ३४० उत्त०

२३ त गोधमेवमभ्यधात् ।—पृ० १३१ उत्त०

२४ कार्यं किमत्र सदनादिपु तक्षकाद्यै ।—पृ० २७१

२५ वृक्षान्कण्टकिनो बहिर्नियमयन् विश्लेपयन्सहिता
नुत्खातप्रतिरोपयन्कुसुमिता श्चिन्वल्लघून्वर्धयन् ।
उच्चान्सनमय पृथूश्च कृशयन्नत्युच्छ्रितान्पातयन्
मालाकार इव प्रयोगनिपुणो राजन्महीं पालय ॥—पृ० ३९३

८ कौलिक (१२६) जुलाहा या बुनकर

कौलिक के एक औजार नलक का भी उल्लेख है। यह धागो को सुलझाने का औजार था जो एक ओर पतला तथा दूसरी ओर मोटा जघाओ के आकार का होता था।[२६]

९ ध्वजिन् या ध्वज (४३०) श्रुतदेव ने इसका अर्थ तेली किया है।[२७] मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति मे सोम या सुरा वेचने वाले के अर्थ में ध्वज या ध्वजिन् शब्द का प्रयोग हुआ है।[२८]

१० निपाजीव (३९०) कुम्भकार।

निपाजीव निश्चल आसन पर बैठकर चक्र घुमाता तथा उस पर घडे बनाता है। यशस्तिलक में एक मन्त्री राजा से कहता है कि हे राजन्, जिस प्रकार निपाजीव घडा बनाने के लिए निश्चल आसन पर बैठकर चक्र घुमाता है उसी तरह आप भी अपने आसन (सिहासन या शासन) को स्थिर करके दिक्पालपुर रूपी घडे बनाने के लिए अर्थात् चारो दिशाओ में राज्य करने के लिए चक्र घुमाओ (सेना भेजो)।[२९]

११. रजक (२५४) धोबी अर्थात् कपडे धोनेवाला।

रजक की स्त्री रजकी कहलाती थी। सोमदेव ने जरा (बुढापे) को रजकी की उपमा दी है, जिस तरह रजकी गन्दे कपडो को साफ कर देती है, उसी तरह जरा भी काले केशो को सफेद कर देती है।[३०]

१२. दिवाकीर्ति (४०३, ४३१) नाई या चाण्डाल।

सोमदेव ने लिखा है कि दिवाकीति को सेनापति बना देने के कारण कलिङ्ग में अनग नामक राजा मारा गया था।[३१] मनुस्मृति में चाण्डाल अथवा नीच जाति के लिए दिवाकीर्ति शब्द आया है।[३२] नैषधकार ने नाई के अर्थ में इसका प्रयोग किया है।[३३] यशस्तिलक के सस्कृत टीकाकार ने भी दिवाकीर्ति

२६ कौलिकनलकाकारे ते जघे साप्रत जाते।—पृ० १२६

२७ ध्वजकुलजात तिलतुदकुलोत्पन्न।—पृ० ४३०

२८. सुरापाने सुराध्वज, मनुस्मृति ४।८५, याज्ञवल्क्य स्मृति १।१४१

२९. निपाजीव इव स्वामिन्स्थिरीकृतनिजासन।
चक्र भ्रमय दिक्पालपुरभाजनसिद्धये।—पृ० ३९०

३० कृष्णच्छवि साथ शिरोरुहश्रीर्जरारजक्या क्रियतेऽवदाता।—पृ० २५४

३१ कलिंगेष्वनगो नाम दिवाकीर्ते सेनाधिपत्येन वधमवाप।—पृ० ४३१

३२ मनुस्मृति ५।८५

३३ दिनमिव दिवाकीर्तिस्तीक्ष्णै क्षुरै सवितु करै।—नैषध, १९।५५

का अर्थ नाई तथा चाण्डाल दोनो किये हैं।[३४] नाई के लिए नापित शब्द भी आता है (२४५ उत्त०)।

१३ आरतरक (४०३) शय्यापालक।

१४ सवाहक (४०३) पैर दबानेवाला।

दिवाकीति, आस्तरक और सवाहक ये तीनो अलग-अलग राज परिचारक हाते थे। सोमदेव ने तीनो का एक ही प्रसङ्ग में उल्लेख किया है। सम्भवतया दिवाकीर्ति का मुख्य कार्य बाल बनाना, आस्तरक का मुख्य कार्य बिस्तर, गद्दी आदि ठीक करना तथा सवाहक का मुख्य काय पैर दबाना, तैल मालिश करना आदि होता था। कौटिल्य ने आस्तरक तथा सवाहक दोनो का उल्लेख किया है।[३५] समृद्ध परिवारो मे भी ये परिचारक रखे जाते थे। चारुदत्त के सवाहक ने अपने स्वामी के धनहीन हो जाने पर स्वयमेव काम छोड दिया था।[३६]

१५ धीवर (२१६, ३३५ उत्त०) मछली पकडने वाले।

धीवर के लिए कैवर्त शब्द (२१६, उत्त०) भी आया है। इनका मुख्य धन्धा मछली पकडना था। कैवर्ता के नव उपकरणा के नाम यशस्तिलक में आए है।[३७]

१ लगुड—लाठी या डण्डा
२ गल—मछली मारने का लोहे का काँटा
३ जाल—मछली पकडने का जाल
४ तरी—नाव
५ तर्प—घास का बना घोडा
६ तुवरतरग—तूवीं पर बनाया गया फलक या पटिया
७ तरण्ड—फलक या तैरने वाला पटिया
८ वेडिका—छोटी नाव या डोगी
९ उडुप—परिहार नौका

---

३४ दिवाकीर्तिर्नापितस्य।—पृ० ४३१ स० टी०। दिवाकीर्ति—चाण्डालस्य वा।-४०३

३५ अर्थशास्त्र भाग १, अध्याय १२

३६ सवाहक —चालित्तावशेशे अ तस्सि जूदोवजीवो म्हि सवुत्ते।
—मृच्छकटिक, अङ्क २

३७ कैवर्ता —लगुडगलजालव्यग्रपाणय तरीतर्पतुवरतरगतरण्डवेडिकोडुपसम्पन्नपरिकरा।—पृ० २१६ उत्त०

१६ चर्मकार (१२५) चमार या चमड़े का व्यापार करनेवाला। चमकार के साथ उसके एक उपकरण दृति का भी उल्लेख है।[३८] दृति का अर्थ श्रुतसागर ने चर्मप्रसेविका किया है।[३९] दृति का अर्थ प्राय पानी भरने वाला चमड़े का थैला या ममक किया जाता है।[४०] लगता है दृति कच्चे चमड़े को पकाने के लिए थैला बनाकर तथा उसमे पानी और अन्य पकाने वाली सामग्री भरकर टांगे गये चमड़े को कहते थे। इसमें से पानी टपटप गिरता रहता है। देहातों मे चमड़ा पकाने की यही प्रक्रिया है। सोमदेव के उल्लेख से भी लगभग इसी स्वरूप का बोध होता है।[४१] मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति के उल्लखो से भी इसका समर्थन होता है।[४२]

१७ नट या शैलूष (२२८ उत्त०, २६१)

इसका मुख्य पेशा तरह-तरह के चित्ताकर्षक वेष धारण करके लोगो को खेल दिखाकर आजीविका चलाना था।[४३] नटो के पेशे का एक पद्य में सम्पूर्ण चित्र खीचा गया है। नट के खेल में जोर-जोर से बाजा बजाया जाता था (आनकनिनदनदत् रम्य)। स्त्रियां गीत गाती थी (गीतकान्त)। नट आभूषण पहने होता था, खासकर गले का हार (हाराभिराम) और जोर-जोर से नर्तन करता था (प्रोत्तालानर्तनीतिर्नट, २२८ उत्त०)।

१८ चाण्डाल (२५४, २५७)

एक उपमा मे चाण्डाल का उल्लेख है। सफेद केश को चाण्डाल के दण्ड (डडे) की उपमा दी गयी है।[४४] एक स्थान पर कहा गया है कि वर्णाश्रम, जाति, कुल आदि की व्यवस्था तो व्यवहार से होती है, वास्तव में राजा के लिए जैसा विप्र वैसा चाण्डाल।[४५]

---

३८ चर्मकारदृतिद्युतिम्।—पृ० १२५

३९ दृतिश्चर्मप्रसेविका।—वही, स० टी०

४० आप्टे—सस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी

४१ यो कृशोऽभूत्पुरा मध्यो वलित्रयविराजित।
सोऽद्य द्रवद्रसो धत्ते चर्मकारदृतिद्युतिम्॥—पृ० १२५

४२ इन्द्रियाणा तु सर्वेषा यद्येक क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेपादादिवोदकम्॥—मनुस्मृति, २।९९, याज्ञवल्क्य ३।२६

४३ शैलूषयोषिदिव सस्तुतिरेनसेषा, नाना विडम्बयति चित्रकरै प्रपंचै।
प्रपंचैर्नानावेषै।—पृ० २६१, स० टी०

४४ चाण्डालदण्ड इव।—पृ० २५४

४५. वर्णाश्रमजातिकुलस्थितिरेषा देव सवृतेर्नान्या।
परमार्थतश्च नृपते को विप्र कश्च चाण्डाल॥—पृ० २५७

इसी प्रसङ्ग में 'भाल' शब्द का उल्लेख है। श्रुतसागर ने उसका अर्थ चाण्डाल किया है।[४६] चाण्डाल अछूत माना जाता था और समाज में उसका अत्यन्त निम्न स्थान था। सोमदेव ने चाण्डाल का स्पर्श हो जाने पर मन्त्र जपने का उल्लेख किया है।[४७]

१६ शवर (२८१, उत्त० ६०)

शवर एक जगली जाति थी। इसे भी अस्पृश्य माना जाता था।[४८] शवर की स्त्री को शवरी कहते थे। शवर परिवार गरीब होते थे। ठड आदि से बचने के लिए उनके पास पर्याप्त वस्त्र आदि नही होते थे। सोमदेव ने लिखा है कि ठड में प्रात काल शिशु को निश्चेष्ट देखकर शवरी उसे पिलाने के लिए हाथ में फलो का रस लिए उसे मरा हुआ समझकर रोती है।[४९]

२०. किरात (२२० उत्त०)

किरात भी एक जगली जाति थी। इसका मुख्य पेशा शिकार था। यशस्तिलक में सम्राट यशोधर जब शिकार के लिए गये तब उनके साथ अनेक किरात शिकार के विविध उपकरण लेकर साथ में जाते है।[५०]

२१ वनेचर (५६)

वनेचर शब्द से ही यह स्पष्ट है कि यह जगली जाति थी। किरातार्जुनीय में वनेचर का उल्लेख आया है।[५१]

२२ मातग (३२७ उत्त०)

यह भी एक जगली जाति थी। यशस्तिलक से ज्ञात होता है कि विन्ध्याटवी में मातङ्गो की बस्तियाँ थीं। इनमें मद्य-मास का प्रयोग बहुत था। अकेला आदमी मिल जाने पर ये उसे भी मद्य-मास पिला-खिला देते थे।[५२]

●

---

४६ प्रकृतिशुचिर्भालमध्येऽपि। भालमध्येऽपि चाण्डालमध्येऽपि।—पृ० ४५७ सं०टी०

४७ चाण्डालशवरादिभि, आप्लुत्य दण्डवत् सम्यग्जपेन्मन्त्रमुपोषित।
—पृ० २८१, उत्त०

४८ वही

४९ प्रातर्डिम्भविचेष्टितुण्डकलनानीहारकालागमे,
हस्तन्यस्तफलद्रवा च शवरी बाष्पातुर रोदिति।—पृ० ६०

५० अनणुकोणैरकूणितपाणिभि किरातै परिवृत।—पृ० २२०

५१ स वर्णिलिङ्गी विदित समाययौ, युधिष्ठिर द्वैतवने वनेचर।—१।१

५२ विन्ध्याटवीविषये मातङ्गैरुपलब्ध उक्त।—पृ०३२७ उत्त०

सोमदेव सूरि और जैनाभिमत वर्ण-व्यवस्था

सोमदेव सूरि ने यशस्तिलक में जैन चिन्तकों के सामने सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में एक प्रश्न उपस्थित किया है—

द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः।
लोकाश्रयो भवेदाद्यः परः स्यादागमाश्रयः ॥
जातयोऽनादयः सर्वास्तत्क्रियापि तथाविधाः।
श्रुतिः शास्त्रान्तरं वास्तु प्रमाणं कात्र नः क्षतिः ॥
(पृ० २७३ उत्त०)

—गृहस्थों के दो धर्म हैं एक लौकिक दूसरा पारलौकिक। लौकिक धर्म लोकाश्रित है और पारलौकिक आगमाश्रित। जातियाँ अनादि हैं तथा उनकी क्रियाएँ भी अनादि है, इसलिए इस विषय में श्रुति (वेद) और शास्त्रान्तर (स्मृति आदि) को प्रमाण मान लेने में हमारी क्या हानि है।

इस प्रसङ्ग में आये श्रुति और शास्त्र शब्द को अन्यथा न समझा जाये, इसलिए स्वयं सोमदेव ने उक्त दोनों शब्दों को स्पष्ट कर दिया है—

श्रुतिर्वेदमिह प्राहुर्धर्मशास्त्रं स्मृतिर्मता।
(पृ० २७८)

—वेद को श्रुति कहते हैं और धर्मशास्त्र को स्मृति।

उपर्युक्त प्रश्न को प्रस्तुत करने के बाद सोमदेव ने अपना निर्णय निम्नलिखित शब्दों में दे दिया है—

सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम् ॥
(पृ० २७३)

—जिस विधि से सम्यक्त्व की हानि न हो तथा व्रत में दूषण न लगे, ऐसी प्रत्येक लौकिक विधि जैनों के लिए प्रमाण है।

इस पृष्ठभूमि पर विकसित होने वाला सोमदेव का चिन्तन उनके दूसरे ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत में अधिक स्पष्ट रूप से सामने आया है। उसके त्रयी समुद्देश में

किया गया वर्ण-व्यवस्था सम्बन्धी वर्णन स्मृति प्रतिपादित तत्-तत् विषयों का सूत्रीकरण मात्र है। ब्राह्मण आदि चार वर्ण, उनके अलग-अलग कार्य, सामाजिक और धार्मिक अधिकार आदि का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है।[१]

जैन सिद्धान्तों के साथ वर्ण-व्यवस्था तथा उसके आधार पर सामाजिक व्यवस्था का प्रतिपादन करने वाले मन्तव्यों का किसी भी तरह सामंजस्य नहीं बैठता। सोमदेव स्वयं जैन सिद्धान्तों के मर्मज्ञ विद्वान् थे। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा किया गया यह वर्णन सिद्धान्तों में अन्तर्विरोध उपस्थित करता हुआ प्रतीत होता है।

सोमदेव के पूर्वकालीन साहित्य को देखने से पता चलता है कि जैन चिन्तक बहुत पहले से ही सामाजिक वातावरण और वैदिक साहित्य से प्रभावित हो चले थे, उसी प्रभाव में आकर उन्होंने अनेक वैदिक मन्तव्यों को जैन सांचे में ढालने का प्रयत्न किया। यहाँ तक कि बाद के अनेक सैद्धान्तिक ग्रन्थों पर यह प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

मूल में जैनधर्म वर्ण-व्यवस्था तथा उसके आधार पर सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार नहीं करता। सिद्धान्त ग्रन्थों में वर्ण और जाति शब्द नामकर्म के प्रभेदों में आये हैं। वहाँ वर्ण शब्द का अर्थ रंग है, जिसके कृष्ण, नील आदि पांच भेद हैं। प्रत्येक जीव के शरीर का वर्ण (रंग) उसके वर्ण-नामकर्म के अनुसार बनता है।[२] इसी तरह जाति नामकर्म के भी पांच भेद हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। संसार के सभी जीव इन पाँच जातियों में विभक्त हैं। जिसके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय है उसकी एकेन्द्रिय जाति होगी। मनुष्य के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र—ये पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं, इसलिए उसकी जाति पंचेन्द्रिय है। पशु के भी पांचों इन्द्रियाँ हैं, इसलिए उसकी भी पंचेन्द्रिय जाति है।[३] इस तरह जब जाति की दृष्टि से मनुष्य और पशु में भी भेद नहीं तब वह मनुष्य-मनुष्य का भेदक तत्त्व कैसे माना जा सकता है? वर्ण (रंग) की अपेक्षा अन्तर हो सकता है, किन्तु वह ऊँच-नीच तथा स्पृश्य-अस्पृश्य की भावना पैदा नहीं करता।

गोत्रकर्म के उच्च गोत्र और नीच गोत्र दो भेद भी आत्मा की आभ्यन्तर

---

१ तुलना, नीतिवाक्यामृत त्रयी समुद्देश तथा मनुस्मृति, अध्याय १०

२ कर्मविपाकनामक प्रथम कर्मग्रन्थ गाथा ३९

३ वही गाथा ३२

शक्ति की अपेक्षा किये गये है।[४] ये वर्ण, जाति और गोत्र धर्म धारण करने में किसी भी प्रकार की रुकावट पैदा नही करते। प्रत्येक पर्याप्तक भव्य जीव चौदहवें गुणस्थान तक पहुँच सकता है।[५] पांचवें गुणस्थान से आगे के गुणस्थान मुनि के ही हो सकते है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि कोई भी मनुष्य चाहे वह लोक में शूद्र कहलाता हो या ब्राह्मण, स्वेच्छा से धर्म धारण कर सकता है।

सैद्धान्तिक ग्रन्थो में सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी मन्तव्या का वर्णन नहा है। पौराणिक अनुश्रुति भी चतुर्वर्ण को सामाजिक व्यवस्था का आधार नही मानती।

अनुश्रुति के अनुसार सभ्यता के आदि युग में, जिसे शास्त्रीय भाषा मे कर्मभूमि का प्रारम्भ कहा जाता है, ऋषभदेव ने असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य का उपदेश दिया। उसी आधार पर सामाजिक व्यवस्था बनी।[६] लोगा ने स्वेच्छा से कृषि आदि कार्य स्वीकृत कर लिये। कोई काय छोटा-बडा नहीं समझा गया। इसी तरह कोई भी काय धर्म धारण करने मे रुकावट नही माना गया।

बाद के साहित्य में यह अनुश्रुति तो सुरक्षित रही, किन्तु उसके साथ मे वर्ण-व्यवस्था का सम्बन्ध जोडा जाने लगा। नवमी शती में आकर जिनसेन ने अनेक वैदिक मन्तव्यो पर भी जैन छाप लगा दी।

जटासिंहनन्दि (७वी शता, अनुमानित) ने चतुर्वर्ण की लौकिक और श्रौत-स्मार्त मान्यताओ का विस्तारपूर्वक खण्डन करके लिखा है कि—कृतयुग में तो वर्ण भेद था नही, त्रेतायुग में स्वामी-सेवक भाव आ चला था। इन दोनो युगो की अपेक्षा द्वापर युग में निकृष्ट भाव होने लगे और मानव समूह नाना वर्णो में विभक्त हो गया। कलियुग में तो स्थिति और भी बदतर हो गयी। शिष्ट लोगो ने क्रिया-विशेष का ध्यान रखकर व्यवहार चलाने के लिए दया, अभिरक्षा, कृषि और शिल्प के आधार पर चार वर्ण कहे है, अन्यथा वर्ण-चतुष्टय बनता ही नही।[७]

४, कषायप्राभृत, अध्याय १, सूत्र ८
५ वही, अध्याय १, सूत्र ८
६ स्वयम्भूस्तोत्र, आदिनाथ स्तुति, श्लोक २
७ वरागचरित २५।६ ११

किया गया वर्ण-व्यवस्था सम्बन्धी वर्णन स्मृति प्रतिपादित तत्-तत् विषयों का सूत्रीकरण मात्र है। ब्राह्मण आदि चार वर्ण, उनके अलग-अलग कार्य, सामाजिक और धार्मिक अधिकार आदि का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है।[1]

जैन सिद्धान्तों के साथ वर्ण-व्यवस्था तथा उसके आधार पर सामाजिक व्यवस्था का प्रतिपादन करने वाले मन्तव्यों का किसी भी तरह सामंजस्य नहीं बैठता। सोमदेव स्वयं जैन सिद्धान्तों के मर्मज्ञ विद्वान् थे। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा किया गया यह वर्णन सिद्धान्तों में अन्तर्विरोध उपस्थित करता हुआ प्रतीत होता है।

सोमदेव के पूर्वकालीन साहित्य को देखने से पता चलता है कि जैन चिन्तक बहुत पहले से ही सामाजिक वातावरण और वैदिक साहित्य से प्रभावित हो चले थे, उसी प्रभाव में आकर उन्होंने अनेक वैदिक मन्तव्यों को जैन साँचे में ढालने का प्रयत्न किया। यहाँ तक कि बाद के अनेक सैद्धान्तिक ग्रन्थों पर यह प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

मूल में जैनधर्म वर्ण-व्यवस्था तथा उसके आधार पर सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार नहीं करता। सिद्धान्त ग्रन्थों में वर्ण और जाति शब्द नामकर्म के प्रभेदों में आये हैं। वहाँ वर्ण शब्द का अर्थ रंग है, जिसके कृष्ण, नील आदि पांच भेद हैं। प्रत्येक जीव के शरीर का वर्ण (रंग) उसके वर्ण-नामकर्म के अनुसार बनता है।[2] इसी तरह जाति नामकर्म के भी पाँच भेद हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। संसार के सभी जीव इन पाँच जातियों में विभक्त हैं। जिसके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय है उसकी एकेन्द्रिय जाति होगी। मनुष्य के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र—ये पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं, इसलिए उसकी जाति पंचेन्द्रिय है। पशु के भी पाँचों इन्द्रियाँ हैं, इसलिए उसकी भी पंचेन्द्रिय जाति है।[3] इस तरह जब जाति की दृष्टि से मनुष्य और पशु में भी भेद नहीं तब वह मनुष्य-मनुष्य का भेदक तत्त्व कैसे माना जा सकता है? वर्ण (रंग) की अपेक्षा अन्तर हो सकता है, किन्तु वह ऊँच-नीच तथा स्पृश्य-अस्पृश्य की भावना पैदा नहीं करता।

गोत्रकर्म के उच्च गोत्र और नीच गोत्र दो भेद भी आत्मा की आभ्यन्तर

---

1. तुलना, नीतिवाक्यामृत त्रयी समुद्देश तथा मनुस्मृति, अध्याय १०
2. कर्मविपाकनामक प्रथम कर्मग्रन्थ गाथा ३६
3. वही गाथा ३२

शक्ति की अपेक्षा किये गये है।[४] ये वर्ण, जाति और गोत्र धर्म धारण करने में किसी भी प्रकार की रुकावट पैदा नही करते। प्रत्येक पर्याप्तक भव्य जीव चौदहवें गुणस्थान तक पहुँच सकता है।[५] पाँचवें गुणस्थान से आगे के गुण-स्थान मुनि के ही हो सकते है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि कोई भी मनुष्य चाहे वह लोक में शूद्र कहलाता हो या ब्राह्मण, स्वेच्छा से धर्म धारण कर सकता है।

सैद्धान्तिक ग्रन्थो में सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी मन्तव्यों का वर्णन नही है। पौराणिक अनुश्रुति भी चतुर्वर्ण को सामाजिक व्यवस्था का आधार नही मानती।

अनुश्रुति के अनुसार सभ्यता के आदि युग में, जिसे शास्त्रीय भाषा मे कर्मभूमि का प्रारम्भ कहा जाता है, ऋषभदेव ने असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य का उपदेश दिया। उसी आधार पर सामाजिक व्यवस्था बनी।[६] लोगों ने स्वेच्छा से कृषि आदि कार्य स्वीकृत कर लिये। कोई कार्य छोटा-बडा नही समझा गया। इसी तरह कोई भी कार्य धर्म धारण करने मे रुकावट नही माना गया।

बाद के साहित्य में यह अनुश्रुति तो सुरक्षित रही, किन्तु उसके साथ मे वर्ण-व्यवस्था का सम्बन्ध जोडा जाने लगा। नवमी शती मे आकर जिनसेन ने अनेक वैदिक मन्तव्यो पर भी जैन छाप लगा दी।

जटासिंहनन्दि (७वी शती, अनुमानित) ने चतुर्वर्ण की लौकिक और श्रौत-स्मार्त मान्यताओं का विस्तारपूर्वक खण्डन करके लिखा है कि—कृतयुग में तो वर्ण भेद था नही, त्रेतायुग में स्वामी-सेवक भाव आ चला था। इन दोनो युगो की अपेक्षा द्वापर युग में निकृष्ट भाव होने लगे और मानव समूह नाना वर्णो में विभक्त हो गया। कलियुग में तो स्थिति और भी बदतर हो गयी। शिष्ट लोगो ने क्रिया-विशेष का ध्यान रखकर व्यवहार चलाने के लिए दया, अभिरक्षा, कृषि और शिल्प के आधार पर चार वर्ण कहे है, अन्यथा वर्ण-चतुष्टय बनता ही नही।[७]

४, कषायप्राभृत, अध्याय १ सूत्र ८
५ वही, अध्याय १, सूत्र ८
६ स्वयम्भूस्तोत्र, आदिनाथ स्तुति, श्लोक २
७ वरांगचरित २५।११

रविषेणाचार्य (६७६ ई०) ने पूर्वोक्त अनुश्रुति तो सुरक्षित रखी, किन्तु उसके साथ वर्णों का सम्बन्ध जोड दिया। उन्होने लिखा है कि—ऋषभदेव ने जिन व्यक्तियो को रक्षा के कार्य में नियुक्त किया वे लोक में क्षत्रिय कहलाए, जिन्हे वाणिज्य, कृषि, गोरक्षा आदि व्यापारो में नियुक्त किया, वे वैश्य तथा जो शास्त्रो मे दूर भागे और हीन काम करने लगे व शूद्र कहलाए।[८]

ब्राह्मण वर्ण के विषय में एक लम्बा प्रसङ्ग आया है। जिसका तात्पर्य है कि ऋषभदेव ने यह वर्ण नही बनाया, किन्तु उनके पुत्र भरत ने व्रती श्रावको का जो एक अलग वर्ग बनाया वही बाद मे ब्राह्मण कहलाने लगा।[९]

हरिवंशपुराण में जिनसेन सूरि (७८३ ई०) ने रविषेणाचार्य के कथन को ही दूसरे शब्दो में दोहराया है।[१०]

इस प्रकार कर्मणा वर्ण-व्यवस्था का प्रतिपादन करते रहने के बाद भी उसके साथ चतुर्वर्ण का सम्बन्ध जुड गया और उसके प्रतिफल सामाजिक जीवन और श्रौत-स्मार्त मान्यताएँ जैन समाज और जैन चिन्तको को प्रभावित करती गयी। एक शताब्दी बीतते-बीतते यह प्रभाव जैन जन-मानस मे इस तरह बैठ गया कि नवमी शती में जिनसेन ने उन सब मन्तव्यो को स्वीकार कर लिया और उन पर जैनधर्म की छाप भी लगा दी। महापुराण में पूर्वोक्त अनुश्रुति को सुरक्षित रखने के बाद भी स्मृति-ग्रन्थो की तरह चारो वर्णों के पृथक्-पृथक् कार्य, उनके सामाजिक और धार्मिक अधिकार, ५३ गर्भान्वय, ४८ दीक्षान्वय और ८ कर्त्रन्वय क्रियाओ एव उपनयन आदि संस्कारो का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है[११]।

जिनसेन पर श्रौत-स्मार्त प्रभाव की चरम सीमा वहा दिखाई देती है, जब वे इस कथन का जैनीकरण करने लगते है कि—"ब्रह्मा के मुह मे ब्राह्मण, बाहुओ मे क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य तथा पैरो से शूद्रो की उत्पत्ति हुई।" वे लिखते हैं कि ऋषभदेव ने अपनी भुजाओ में शस्त्र-धारण करके क्षत्रिय बनाए, ऊरु द्वारा यात्रा का प्रदर्शन करके वैश्यो की रचना की तथा हीन काम करने वाले शूद्रो को

---

८ पद्मपुराण, पर्व ३, श्लोक २५५ ५८

९ वही, पर्व ४, श्लोक ९९ १२९

१० हरिवंशपुराण, सर्ग ९, श्लोक ३३-४० , सर्ग ११, श्लोक १०३-१०७

११ महापुराण, पर्व १६, श्लोक १७९ १८१, २४३ ०-०

पैरो से वनाया। मुख से शास्त्रो का अध्यापन कराते हुए भरत ब्राह्मण वर्ण की रचना करेगा।[१२]

एक तरफ समाज में श्रौतस्मार्त प्रभाव स्वय वढता जा रहा था दूसरे उस पर जैनधर्म की छाप लग जाने से और भी दृढता आ गयी।

जिनसेन के करीव एक शती बाद सोमदेव हुए। वे जैनधर्म के मर्मज्ञ विद्वान् होने के साथ-साथ प्रसिद्ध सामाजिक नेता भी थे। उनके सामने यह समस्या थी कि जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्त, सामाजिक वातावरण तथा जिनसेन द्वारा प्रतिपादित मन्तव्यो का जैन चिन्तन के साथ कोई मेल नही वैठता। किन्तु जन-मानस में वैठे हुए सस्कारो को वदलना और एक प्राचीन आचार्य का विरोध करना सरल काम नही था। सोमदेव जैसे जन-नेता के लिए वह अभीष्ट भी न था। ऐसी परिस्थिति में उन्होने यह चिन्तन दिया कि गृहस्थो के दो धर्म मान लिए जाए—एक लौकिक और दूसरा पारलौकिक। लौकिक धर्म के लिए वेद और स्मृति को प्रमाण मान लिया जाये और पारलौकिक धर्म के लिए आगमो को।

सोमदेव के ये मन्तव्य ऊपर से देखने पर जैन-चिन्तन के विलकुल विपरीत लगते है, क्योकि एक तो वेद और स्मृतियो की विचारधारा जैन-चिन्तन के साथ मेल नही खाती। दूसरे जैनागमो में गृहस्थधर्म और मुनिधर्म, ये दो भेद तो आते हैं,[१३] किन्तु गृहस्थो के लौकिक और पारलौकिक दो धर्मों का वर्णन यशस्तिलक के अतिरिक्त अन्यत्र नही हुआ।

अनायास ही यह प्रश्न उठता है कि क्या सोमदेव जैसा निर्भीक शास्त्रवेत्ता लौकिक और वैदिक प्रवाह में वहकर जैनधर्म के साथ इतना वडा अन्याय कर सकता है? यशस्तिलक के अन्त परिशीलन से ज्ञात होता है कि सोमदेव ने जो चिन्तन दिया, उसका शाश्वत मूल्य है तथा जैन-चिन्तन के साथ उसका किञ्चित् भी विरोध नही आता।

सोमदेव ने यशस्तिलक में अनेक वैदिक मान्यताओ का विस्तार के साथ खडन किया है,[१४] इसलिए यह कहना नितान्त असङ्गत होगा कि वे वेद और स्मृति को प्रमाण मानते थे।

---

१२ तुलना—महापुराण, पर्व १६, श्लोक २४३ २४६
ऋग्वेद, पुरुषसूक्त १०, ९०, १२
महाभारत, अध्याय २९६, श्लोक ५ ६, पूना १९-२ ई०
मनुस्मृति, अध्याय १, श्लोक ३१, बनारस १९२९ ई०

१३ चारित्रप्राभृत, गाथा २०

१४ यशस्तिलक उत्तरार्ध, अध्याय ४

रविषेणाचार्य (६७६ ई०) ने पूर्वोक्त अनुश्रुति तो सुरक्षित रखी, किन्तु उसके साथ वर्णों का सम्बन्ध जोड़ दिया। उन्होंने लिखा है कि—ऋषभदेव ने जिन व्यक्तियों को रक्षा के कार्य में नियुक्त किया वे लोक में क्षत्रिय कहलाए, जिन्हें वाणिज्य, कृषि, गोरक्षा आदि व्यापार में नियुक्त किया, वे वैश्य तथा जो शास्त्रों से दूर भागे और हीन काम करने लगे वे शूद्र कहलाए।[८]

ब्राह्मण वर्ण के विषय में एक लम्बा प्रसङ्ग आया है। जिसका तात्पर्य है कि ऋषभदेव ने यह वर्ण नहीं बनाया, किन्तु उनके पुत्र भरत ने व्रती श्रावकों का जो एक अलग वर्ग बनाया वही बाद में ब्राह्मण कहलाने लगा।[९]

हरिवंशपुराण में जिनसेन सूरि (७८३ ई०) ने रविषेणाचार्य के कथन को ही दूसरे शब्दों में दोहराया है।[१०]

इस प्रकार कर्मणा वर्ण-व्यवस्था का प्रतिपादन करते रहने के बाद भी उसके साथ चतुवर्ण का सम्बन्ध जुड़ गया और उसके प्रतिफल सामाजिक जीवन और श्रौत-स्मार्त मान्यताएँ जैन समाज और जैन चिन्तकों को प्रभावित करती गयीं। एक शताब्दी बीतते-बीतते यह प्रभाव जैन जन-मानस में इस तरह बैठ गया कि नवमी शती में जिनसेन ने उन सब मन्तव्यों को स्वीकार कर लिया और उन पर जैन धर्म की छाप भी लगा दी। महापुराण में पूर्वोक्त अनुश्रुति को सुरक्षित रखने के बाद भी स्मृति-ग्रन्थों की तरह चारों वर्णों के पृथक्-पृथक् कार्य, उनके सामाजिक और धार्मिक अधिकार, ५३ गर्भान्वय, ४८ दीक्षान्वय और ८ कर्त्रन्वय क्रियाओं एवं उपनयन आदि संस्कारों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है[११]।

जिनमत पर श्रौत-स्मार्त प्रभाव की चरम सीमा वहाँ दिखाई देती है, जब वे इस कथन का जैनीकरण करने लगते हैं कि—"ब्रह्मा के मुँह से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य तथा पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई।" वे लिखते हैं कि ऋषभदेव ने अपनी भुजाओं में शस्त्र-धारण करके क्षत्रिय बनाए, ऊरु द्वारा यात्रा का प्रदर्शन करके वैश्यों की रचना की तथा हीन काम करने वाले शूद्रों को

---

८ पद्मपुराण, पर्व ३, श्लोक २५५-५८

९ वही, पर्व ४, श्लोक ९९-१२९

१० हरिवंशपुराण, सर्ग ९, श्लोक ३३-४०, सर्ग ११, श्लोक १०३-१०७

११ महापुराण, पर्व १६, श्लोक १७९-१८१, २४३-२५०

पैरो से वनाया। मुख से शास्त्रो का अध्यापन कराते हुए भरत ब्राह्मण वर्ण की रचना करेगा।[१२]

एक तरफ समाज में श्रौतस्मार्त प्रभाव स्वय बढता जा रहा था दूसरे उस पर जैनधर्म की छाप लग जाने से और भी दृढता आ गयी।

जिनसेन के करीब एक शती वाद सोमदेव हुए। वे जैनधर्म के मर्मज्ञ विद्वान् होने के साथ-साथ प्रसिद्ध सामाजिक नेता भी थे। उनके सामने यह समस्या थी कि जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्त, सामाजिक वातावरण तथा जिनसेन द्वारा प्रतिपादित मन्तव्यो का जैन चिन्तन के साथ कोई मेल नही वैठता। किन्तु जन-मानस में वैठे हुए सस्कारो को वदलना और एक प्राचीन आचार्य का विरोध करना सरल काम नही था। सोमदेव जैसे जन-नेता के लिए वह अभीष्ट भी न था। ऐसी परिस्थिति में उन्होने यह चिन्तन दिया कि गृहस्थो के दो धर्म मान लिए जाए—एक लौकिक और दूसरा पारलौकिक। लौकिक धर्म के लिए वेद और स्मृति को प्रमाण मान लिया जाये और पारलौकिक धर्म के लिए आगमो को।

सोमदेव के ये मन्तव्य ऊपर से देखने पर जैन-चिन्तन के विलकुल विपरीत लगते हैं, क्योकि एक तो वेद और स्मृतियो की विचारधारा जैन-चिन्तन के साथ मेल नही खाती। दूसरे जैनागमो में गृहस्थधर्म और मुनिधर्म, ये दो भेद तो आते हैं,[१३] किन्तु गृहस्थो के लौकिक और पारलौकिक दो धर्मो का वर्णन यशस्तिलक के अतिरिक्त अन्यत्र नही हुआ।

अनायास ही यह प्रश्न उठता है कि क्या सोमदेव जैसा निर्भीक शास्त्रवेत्ता लौकिक और वैदिक प्रवाह में बहकर जैनधर्म के साथ इतना वडा अन्याय कर सकता है? यशस्तिलक के अन्त परिशीलन से ज्ञात होता है कि सोमदेव ने जो चिन्तन दिया, उसका शाश्वत मूल्य है तथा जैन-चिन्तन के साथ उसका किञ्चित् भी विरोध नही आता।

सोमदेव ने यशस्तिलक में अनेक वैदिक मान्यताओ का विस्तार के साथ खडन किया है,[१४] इसलिए यह कहना नितान्त असङ्गत होगा कि वे वेद और स्मृति को प्रमाण मानते थे।

---

१२ तुलना—महापुराण, पर्व १६, श्लोक ३४३ ३४६
ऋग्वेद, पुरुषसूक्त १०, ९०, १२
महाभारत, अध्याय २९६, श्लोक ५ ६, पूना १९ २ ई०
मनुस्मृति, अध्याय १, श्लोक ३१, बनारस १९३५ ई०

१३ चारित्रप्राभृत, गाथा २०

१४. यशस्तिलक उत्तरार्ध, अध्याय ४

गृहस्थों के दो भेद व्रती और अव्रती सम्यग्दृष्टि के द्योतक हैं। अव्रती सम्यग्दृष्टि का चौथा गुणस्थान होता है। इस गुणस्थानवर्ती जीव के दर्शन-मोहनीयकर्म की मिथ्यात्व आदि प्रकृतियों का उपशम, क्षय या क्षयोपशम होने से सम्यक्त्व तो होता है, किन्तु चारित्रमोहनीय की अप्रत्याख्यानावरण कषाय आदि प्रकृतियों के उदय होने से संयम बिलकुल नहीं होता। यहाँ तक कि वह इन्द्रियों के विषयों से तथा त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा से भी विरत नहीं होता।[15] सोमदेव द्वारा प्रतिपादित लौकिक धर्म को प्रमाण मानने वाला गृहस्थ जैन दृष्टि से इसी गुणस्थान के अन्तर्गत आता है।

पारलौकिक धर्म को स्वीकार करने वाले गृहस्थ के लिए सोमदेव ने स्पष्ट रूप से केवल आगमाश्रित विधि को ही प्रमाण बताया है। यह गृहस्थ सैद्धान्तिक दृष्टि से पञ्चम गुणस्थानवर्ती देशव्रती सम्यग्दृष्टि माना जाएगा। यहाँ दर्शन-मोहनीयकर्म की अप्रत्याख्यानावरण कषायों का भी उपशम, क्षय या क्षयोपशम हो जाने से जीव देश-संयम का पालन करने लगता है।[16] इस गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि केवल उसी लौकिक विधि को प्रमाण मानता है जिसके मानने से उसके सम्यक्त्व की हानि न हो तथा व्रत में दोष न लगे। सोमदेव ने भी इस बात को कहा है, जिसका उल्लेख ऊपर कर चुके हैं।

इस तरह सोमदेव ने जिस कुशलता के साथ उस युग के सामाजिक जीवन में प्रचलित मान्यताओं के साथ जैन चिन्तन के मौलिक सिद्धान्तों का निर्वाह किया, उसका शाश्वत मूल्य है। जिनसेन की तरह सोमदेव ने वैदिक मन्तव्यों को जैन साँचे में ढालने का प्रयत्न नहीं किया, प्रत्युत उन्हें वैदिक ही बताया। सामाजिक निर्वाह के लिए यदि कोई उन्हें स्वीकृत करता है तो करे, किन्तु इतने मात्र से वे जैन मन्तव्य नहीं हो जाते।

सोमदेव के चिन्तन की यह स्पष्ट फलश्रुति है कि सामाजिक जीवन के लिए किन्हीं प्रचलित लौकिक मूल्यों को स्वीकृत कर लिया जाये, किन्तु उनको मूल चिन्तन के साथ सम्बद्ध करके सिद्धान्तों की हानि नहीं करनी चाहिए। सामाजिक मूल्य परिवर्तनशील होते हैं। देश, काल और क्षेत्र के अनुसार उनमें परिवर्तन होते रहते हैं। यह भी निश्चित है कि सैद्धान्तिक चिन्तन व्यवहार की कसौटी पर सर्वदा पूर्णरूपेण सही नहीं उतरता, किन्तु इतने मात्र से मूल सिद्धान्तों में परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

०

१५ गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा २५, २६ २९

१६ गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा ३०

परिच्छेद तीन

आश्रम-व्यवस्था और संन्यस्त व्यक्ति

सोमदेवकालीन समाज में आश्रम-व्यवस्था के लिए भी वैदिक मान्यताएं प्रचलित थी। यद्यपि यशस्तिलक मे स्पष्ट रूप से ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम का उल्लेख नही है फिर भी आश्रम व्यवस्था की पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है।

बाल्यावस्था को विद्याध्ययन का काल, यौवनावस्था को अर्थोपार्जन का काल तथा वृद्धावस्था को निवृत्ति का काल माना जाता था।[1]

गुरु और गुरुकुल विद्याध्ययन की धुरी थे। बाल्यावस्था विद्याध्ययन का स्वर्णकाल माना जाता था। यदि बाल्यकाल मे विद्या नहीं पढी तो फिर जीवन-भर प्रयत्न करते रहने के बाद भी विद्या आना कठिन है।[2] जिनकी विधिवत् शिक्षा नही होती या जो विद्याध्ययन काल मे ही प्रभुता या लक्ष्मीसम्पन्न हो जाते है, वे बाद में निरकुश भी हो जाते हैं।[3] राजपुत्र तथा जन साधारण सभी के लिए यह समान बात है।[4]

बाल्यावस्था या विद्याध्ययन के उपरान्त गोदान दिया जाता तथा विधिवत् गृहस्थाश्रम प्रवेश किया जाता था।[5] युवावस्था में लोग अपने गुरुजनो की सेवा का विशेष ध्यान रखते थे।[6]

वृद्धावस्था मे समस्त परिग्रह त्यागकर सन्यस्त होना आदर्श था।[7] इस अवस्था में अधिकाशतया लोग घर छोडकर तपोवन चले जाते थे।[8] चतुर्थ

---

१. बाल्य विद्यागमैर्यत्र यौवन गुरुसेवया।
सर्वसगपरित्यागै सगत चरम वय ॥ —पृ० १६८।

२ न पुनराशु स्थितय इवानुपासितगुरुकुलस्य यत्नवतोऽपि सरस्वत्य।—पृ० ४३२

३ बालकाल एव लब्धलक्ष्मीसमागम, असजातविद्यावृद्धगुरुकुलोपासन, निरकुशता नीयमान।—पृ० २६

४ वही पृ० २३६-२३७

५ परिप्राप्तगोदानावसरश्च।—पृ० २३७

६ यौवन गुरुसेवया। —पृ० १६८

७ सर्वसगपरित्यागै सगत चरम वय। —पृ० १६८

८ कुलवृद्धाना च प्रतिपन्न तपोवनलोकत्वात्। पृ० २६
परवय परिणतिदूतीनिवेदितनिसर्गप्रणयायास्तपोवनाश्रमरमाया। —पृ० २८४

पुरुषार्थ (मोक्ष) की साधना करना इस अवस्था का मुख्य ध्येय था।[९] नवयुवक को प्रव्रजित होने का लोग निषेध करते थे।[१०]

प्रव्रजित होते समय लोग अपने परिवार के सदस्यों तथा इष्ट-मित्रों आदि से सलाह और अनुमति लेते थे। यशोधर कहता है कि नयी अवस्था होने के कारण माता, पत्नी (महारानी), युवराज (पुत्र), अन्तःपुर की स्त्रियाँ, पुरवृद्ध, मन्त्रिगण तथा सामन्त-समूह प्रव्रजित होने में तरह-तरह से रुकावट डालेंगे।[११] सम्राट यशोधर जब प्रव्रजित होने लगे तो उन्होंने अपने पुत्र को बुलाकर अपना मनोरथ प्रकट किया।[१२]

आश्रम-व्यवस्था के अपवाद

यद्यपि सामान्य रूप से यह माना जाता था कि बाल्यावस्था में विद्याध्ययन, युवावस्था में गृहस्थाश्रम प्रवेश तथा वृद्धावस्था में सन्यास ग्रहण करना चाहिए, किन्तु इसके अपवाद भी कम न थे। यशस्तिलक के प्रमुखपात्र अभयरुचि तथा अभयमति अपनी आठ वर्ष की अवस्था में ही प्रव्रजित हो गये थे।[१३] एक स्थल पर यशोधर श्रुति की साक्षी देता हुआ कहता है कि श्रुति का यह एकान्त कथन नहीं है कि 'बाल्यावस्था में विद्या आदि, यौवन में काम तथा वृद्धावस्था में धर्म और मोक्ष का सेवन करो, प्रत्युत यह भी कथन है कि आयु अनित्य है इसलिए यथा-योग्य रूप से इनका सेवन करना चाहिए।'[१४]

जैनागमों में बाल्यावस्था में प्रव्रजित होने के अनेक उल्लेख मिलते हैं। अति-मुक्तककुमार इतनी छोटी अवस्था में साधु हो गया था कि एक बार वर्षा के पानी को बाँधकर उसमें अपना पात्र नाव की तरह तैराकर खेलने लगा था।[१५] गज-सुकुमार गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के पूर्व ही संन्यस्त हो गये थे।[१६]

---

९ चिराय प्रार्थितचतुर्थपुरुषार्थसमर्थनमनोरथसारः। —पृ० २८४

१० नवे च वयसि मयि संजातनिर्वेदे विधास्यन्ते अन्तरायाः। —पृ० ७०, उत्त०

११ वही, पृ० ७०-७१, उत्त०

१२ वही, पृ० २८४

१३ अष्टवर्षदेशीयतयार्हद्रूपायोग्यत्वादिमां देशयतिश्लाघनीयामाशां दशामाश्रित्य। —पृ० २६५, उत्त०

१४ बाल्ये विद्यादीनर्थान् कुर्यात्, कामं यौवने स्थविरे धर्मं मोक्षं चेत्यपि नायमेकान्ततोऽनित्यत्वादायुषो यथोपपदं वा सेवेतेत्यपि श्रुतिः। —पृ० ७६, उत्त०

१५ भगवती० ५।४

१६. अंतगडदसासुत्त, वर्ग ३

जैनधर्म सिद्धान्तत भी आयु के आधार पर आश्रमो का वर्गीकरण नही मानता। सोमदेव ने इस तथ्य को यशस्तिलक में प्रकारान्तर से स्पष्ट किया है।[१७]

परिव्रजित या सन्यस्त व्यक्ति

परिव्रजित या सन्यस्त हुए लोगो के लिए यशस्तिलक मे अनेक नाम आए है। ये नाम उनके अपने धार्मिक सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं—

१ आजीवक (४०६ उत्त०)

आजीवक सम्प्रदाय के साधुओ के साथ जैन श्रावक को सहालाप, सहावास तथा उनकी सेवा करने का निषेध किया गया है।[१८]

यशस्तिलक में आजीवको का उल्लेख अत्यधिक महत्वपूर्ण है, इससे यह ज्ञात होता है कि दशवी शताब्दी तक आजीवक सम्प्रदाय के साधु विद्यमान थे।

आजीवक सम्प्रदाय के प्रणेता मखलिपुत्त गोशाल भगवान् महावीर के समसामयिक तथा उनके विरोधी थे। जैनागमो में इसके अनेक उल्लेख मिलते है।[१९]

आजीवको की अपनी कुछ विचित्र-सी मान्यताएँ थी। गोशाल पूर्ण नियतिवाद में विश्वास करते थे। 'जो होना है वही होगा' यह नियतिवाद की फलश्रुति है। गोशाल का कहना था कि 'सत्वो (जीवो) के क्लेश का कोई हेतु नही है। विना हेतु और विना प्रत्यय के सत्व क्लेश पाते हैं, स्वय कुछ नही कर सकते, दूसरे भी कुछ नही कर सकते। सभी सत्व भाग्य और सयोग के फेर में छह जातियो में उत्पन्न होते है और सुख-दु ख भोगते है। सुख-दु ख द्रोण से तुले हुए हैं, ससार में घटना-बढना, उत्कर्ष-अपकर्ष कुछ नही होता।'[२०]

२ कर्मन्दी (१३४, ४०८)

यशस्तिलक में कर्मन्दी का दो बार उल्लेख है। इसका अर्थ श्रुतदेव ने तप किया है।[२१] पाणिनि ने कर्मन्द भिक्षुओ का उल्लेख किया है।[२२] सम्भवत जिस तरह पाराशर के शिष्य पाराशर्य, शुनक के शौनक आदि कहलाते थे उसी

---

१७ ध्यानानुष्ठानशक्त्यात्मा युवा यो न तपस्यति।
स जराजर्जरो येषा तपो विघ्नकर परम्॥ पृ० ७७, उत्त०

१८ आजीवकादिभि सहावास सहाल प तत्सेवा च विवर्जयेत्।—पृ० ४०६, उत्त०

१९ २० देखिए मेरा लेख– 'महावीर के समकालीन आचार्य,' 'श्रमण' मासिक, महावीर जयन्ती अक, १९६१

२१ कर्मन्दीव तपस्वीव, वही, स० टी०

२२ कर्मन्दकृशाश्वादिनि ।४।३।११

तरह कर्मन्द मुनि के शिष्य कर्मन्दी कहलाते होगे। यशस्तिलक के उल्लेख से ज्ञात होता है कि कर्मन्दी भिक्षु एकान्त रूप से मोक्ष की साधना में लगे रहते थे तथा स्वैरकथा और विषय-सुख में किञ्चित् भी रुचि नही दिखाते थे।[२३]

३. कापालिक (२८१ उत्त०)

कापालिक शैव सम्प्रदाय की एक शाखा के साधु कहलाते थे। सोमदेव ने कापालिक का सम्पर्क होने पर जैन साधु को मन्त्र-स्नान बताया है।[२४]

कापालिक साधु का एक सम्पूर्ण चित्र क्षीरस्वामी ने अपने प्रतीक नाटक प्रबोधचन्द्रोदय (अध्याय ३) में प्रस्तुत किया है। एक कापालिक साधु स्वय अपने विषय में इस प्रकार जानकारी देता है—कर्णिका, रुचक, कुण्डल, शिखामणी, भस्म और यज्ञोपवीत, ये छह मुद्रापट्क कहलाते है। कपाल और खट्वाक उपमुद्राएँ है। कापालिक साधु इनका विशेपज्ञ होता है तथा भगासनस्थ होकर आत्मा का ध्यान करता है। मनुष्य की बलि देकर शिव के भैरव रूप की पूजा की जाती है। भैरवी की भी खून के साथ पूजा की जाती है। कापालिक कपाल में से रक्त पान करते है।[२५]

४ कुलाचार्य या कौल (४४)

कापालिको की तरह कौल भी शैव सम्प्रदाय की एक शाखा थी। सोमदेव ने कुलाचार्य का दो बार उल्लेख किया है (४४, २६९ उत्त०) मारिदत्त को एक कुलाचार्य ने ही विद्याधर लोक को जीतने वाली करवाल की प्राप्ति के लिए चण्डमारी को सभी जीवों के जोडो की बलि देने की बात कही थी।[२६]

सोमदेव के कथन के अनुसार कौल सम्प्रदाय की मान्यताएँ इस प्रकार थी—सभी प्रकार के पेय-अपेय, भक्ष्य-अभक्ष्य आदि में निःशंक चित्त होकर प्रवृत्ति करने से मोक्ष की प्राप्ति हाती है।[२७]

---

२३ एकान्ततः परमपदस्पृहयालुतया स्वैरकथास्वपि कर्मन्दीव न तृप्यति विषविषमोल्लेखेपु विषयसुखेपु।—पृ० ४०८

२४ सगे कापालिकात्रेयी । आप्लुत्य दण्डवत्सम्यग्जपेन्मन्त्रमुपोषित ।
—पृ० २८१, उत्त०

२५ उद्धृत—हान्दिकी-यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, पृ० ३५६

२६ विद्याधरलोकविजयिन करवालस्य सिद्धिर्भवतीति वीरभैरवनामकात्कुलाचार्यकादुपश्रुत्य।—पृ० ४४

२७ सर्वेषु पेयापेयभक्ष्याभक्ष्यादिषु निःशङ्कचित्तोद्वृत्तात्, इति कुलाचार्या।
—पृ० २६९, उत्त०

था। मुमुक्षु पर्व-त्यौहार के दिनो में भी मुट्ठीभर सब्जी या जौ के अतिरिक्त और कुछ नही खाते थे।[३४]

१९ यति (२८५ उत्त०, ३७२ उत्त०, ४०६ उत्त०)

यति शब्द का भी कई बार प्रयोग हुआ है। यह शब्द भी जैन साधु के लिए प्रयुक्त होता है। सोमदेव के उल्लेखानुसार यति अपने नियम और अनुष्ठान में बडे पक्के होते थे।[३५] यति भिक्षा भी करते थे।[३६]

२० यागज्ञ (४०६ उत्त०)

सम्भवत यज्ञ करने वाले वैदिक साधु यागज्ञ कहलाते थे। सोमदेव ने यागज्ञो के साथ जैनो को सहावास, सहालाप तथा उनकी सेवा करने का निषेध किया है।[३७]

२१ योगी (४०९)

ध्यान में मस्त हुआ साधु योगी कहलाता था। सोमदेव ने लिखा है कि यह सोचकर कि दूसरे जीव को थोडा-सा भी दु ख पहुँचाने पर वह बोये गये बीज की तरह जन्मान्तर में सैंकडो प्रकार से फल देता है, इसलिए योगी दयाभाव से तथा पापभीरु होने से वनस्पति के फल या पत्ते भी स्वय नही तोडता।[३८]

२२ वैखानस (४०)

वैखानस साधुओ के विषय में सोमदेव ने लिखा है कि ये बाल-ब्रह्मचारी होते थे तथा स्नान, ध्यान और मन्त्रजाप—खासतौर से अघमर्पण मन्त्रो का जाप करते थे।[३९]

---

३४ पर्वरसेष्वपि दिवसेषु मुमुक्षुरिव न शाकमुष्टेर्वोपरमाहरत्याहारम्।—पृ० ४०६

३५ निजनियमानुष्ठानैकतानमनसि यतीश्वरे।—पृ० २८५, उत्त०

३६ गृहस्थो वा यतिर्वापि जैन समयमाश्रित ।
यथाकालमनुप्राप्त पूजनीय सुदृष्टिभि ॥—पृ० ४०६

३७ शाक्यनास्तिकयागज्ञजटिलाजीवकादिभि ।
सहावास सहालाप तत्सेवा च विवर्जयेत् ॥—पृ० ४०६, उत्त०

३८ ईषदप्यशुभम-यत्रोत्पादितमात्मन्युप्तबीजमिव जन्मान्तरे शतश फलतीति दयालुभावादुरितभीरुभावाच्च न दल फल वा योगीव स्वयमवचिनोति वनस्पतीन्।
—पृ० ४०९

३९ सर्वदा शुचिरिव ब्रह्मचारी तथापि लोकव्यवहारप्रतिपालनार्थं देवोपासनायामपि समाप्लुत्य वैखानस इव जपति जलजन्तूद्वैजनजनितकल्मषप्रघर्षणायाघमर्षणतन्त्रान्मन्त्रान्।—पृ० ४०८

१० नास्तिक (३०६ उत्त०)

सोमदेव ने जैनो के लिए नास्तिको के साथ आलाप, आवास आदि का निषेध किया है। चार्वाक अथवा बृहस्पति के शिष्यो के लिए सम्भवत यहाँ इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

अन्य साधुओ के लिए निम्नाकित नाम आए है—

११. परिव्राजक (३२७ उत्त०), परिव्राट (१३९ उत्त०)

१२ पारासर (९२) परासर ऋषि के शिष्य पारासर कहलाते थे।

१३ ब्रह्मचारी (४०८)

१४ भविल (४०८)

भविल शब्द का अर्थ श्रुतदेव ने महामुनि किया है।[३०] भविल साधु पैदल चलते थे तथा छोटे जीवो के प्रति महाकृपालु होने से लकडी की चप्पल (खडाउ) भी नही पहनते थे।[३१]

१५ महाव्रती (४९)

महाव्रती का दो बार उल्लेख है। चण्डमारी के मन्दिर में महाव्रती साधु अपने शरीर का मास काटकर खरीद-बेच रहे थे।[३२] ये साधु हाथ में खट्वाग लिये रहते थे।[३३] कौल की तरह ये भी शैव मतानुयायी थे।

१६ महासाहसिक (४९)

महासाहसिक भी शैव होते थे। सोमदेव ने इनकी आत्मरुधिरपान जैसी भयकर साधना का उल्लेख किया है।

१७ मुनि (५६, ४०४ उत्त०)

जैन साधु के लिए यशस्तिलक में अनेक बार मुनि पद का प्रयोग हुआ है। अभी भी जैन साधु मुनि कहलाते है।

१८ मुमुक्षु (४०९)

मोक्ष की ओर उन्मुख तथा अनवरत साधना में सलग्न साधु मुमुक्षु कहलाता

---

३०. भविल इव -महामुनिरिव पृ० ४०८, स० टी०

३१ महाकृपालुतया सत्त्वसमद्भयेन पदात्पदमपि अमन्भविल इव नादत्ते दारु-पादपरित्राणम्।—पृ० ४०८

३२ महाव्रतिकवीरक्रयविक्रीयमाणस्ववपुर्वल्लूरम्।—पृ० ४९

३३ सा कालमहाव्रतिना खट्वागकरकृता नीता।—पृ० १२७

था। मुमुक्षु पर्व-त्यौहार के दिनो में भी मुट्ठीभर सब्जी या जौ के अतिरिक्त और कुछ नही खाते थे।[३४]

१९ यति (२८५ उत्त०, ३७२ उत्त०, ४०६ उत्त०)

यति शब्द का भी कई बार प्रयोग हुआ है। यह शब्द भी जैन साधु के लिए प्रयुक्त होता है। सोमदेव के उल्लेखानुसार यति अपने नियम और अनुष्ठान में बड़े पक्के होते थे।[३५] यति भिक्षा भी करते थे।[३६]

२० यागज्ञ (४०६ उत्त०)

सम्भवत यज्ञ करने वाले वैदिक साधु यागज्ञ कहलाते थे। सोमदेव ने यागज्ञो के साथ जैनो को सहावास, सहालाप तथा उनकी सेवा करने का निषेध किया है।[३७]

२१ योगी (४०९)

ध्यान में मस्त हुआ साधु योगी कहलाता था। सोमदेव ने लिखा है कि यह सोचकर कि दूसरे जीव को थोड़ा-सा भी दु ख पहुँचाने पर वह बोये गये बीज की तरह जन्मान्तर में सैंकडो प्रकार से फल देता है, इसलिए योगी दयाभाव से तथा पापभीरु होने से वनस्पति के फल या पत्ते भी स्वय नही तोडता।[३८]

२२ वैखानस (४०)

वैखानस साधुओ के विषय में सोमदेव ने लिखा है कि ये बाल-ब्रह्मचारी होते थे तथा स्नान, ध्यान और मन्त्रजाप—खासतौर से अघमर्षण मन्त्रो का जाप करते थे।[३९]

---

३४ पर्वसेष्वपि दिवसेषु मुमुक्षुरिव न शाकमुष्टेर्वापरमाहरत्याहारम्।—पृ० ४०९

३५ निजनियमानुष्ठानैकतानमनसि यतीश्वरे।—पृ० २८५, उत्त०

३६ गृहस्थो वा यतिर्वापि जैन समयमाश्रित।
यथाकालमनुप्राप्त पूजनीय सुदृष्टिभि॥—पृ० ४०६

३७ शाक्यनास्तिकयागज्ञजटिलाजीवकादिभि।
सहावास सहालाप तत्सेवा च विवर्जयेत्॥—पृ० ४०६, उत्त०

३८ ईषदप्यशुभमन्यत्रोत्पादितमात्मन्युप्तबीजमिव जन्मान्तरे शतश फलतीति दयालुभावाद्दुरितभीरुभावाच्च न दल फल वा योगीव स्वयमवचिनोति वनस्पतीन्।
—पृ० ४०९

३९ सर्वदा शुचिरिव ब्रह्मचारी तथापि लोकव्यवहारप्रतिपालनार्थं देवोपासनायामपि समाप्लुत्य वैखानस इव जपति जलजन्तूद्वैजनजनितकल्मषप्रध्वंसनायाघमर्षणमन्त्रान्।—पृ० ४०८

तरह कर्मन्द मुनि के शिष्य कर्मन्दी कहलाते होंगे। यशस्तिलक के उल्लेख से ज्ञात होता है कि कर्मन्दी भिक्षु एकान्त रूप से मोक्ष की साधना में लगे रहते थे तथा स्वैरकथा और विषय-सुख में किञ्चित् भी रुचि नहीं दिखाते थे।[२३]

३. कापालिक (२८१ उत्त०)

कापालिक शैव सम्प्रदाय की एक शाखा के साधु कहलाते थे। सोमदेव ने कापालिक का सम्पर्क होने पर जैन साधु को मन्त्र-स्नान बताया है।[२४]

कापालिक साधु का एक सम्पूर्ण चित्र क्षीरस्वामी ने अपने प्रतीक नाटक प्रबोधचन्द्रोदय (अध्याय ३) में प्रस्तुत किया है। एक कापालिक साधु स्वयं अपने विषय में इस प्रकार जानकारी देता है—कर्णिका, रुचक, कुण्डल, शिखा-मणी, भस्म और यज्ञोपवीत, ये छह मुद्राषट्क कहलाते हैं। कपाल और खट्वांक उपमुद्राएँ हैं। कापालिक साधु इनका विशेषज्ञ होता है तथा भगासनस्थ होकर आत्मा का ध्यान करता है। मनुष्य की बलि देकर शिव के भैरव रूप की पूजा की जाती है। भैरवी की भी खून के साथ पूजा की जाती है। कापालिक कपाल में से रक्त पान करते हैं।[२५]

४ कुलाचार्य या कौल (४४)

कापालिकों की तरह कौल भी शैव सम्प्रदाय की एक शाखा थी। सोमदेव ने कुलाचार्य का दो बार उल्लेख किया है (४४, २६९ उत्त०) मारिदत्त को एक कुलाचार्य ने ही विद्याधर लोक को जीतने वाली करवाल की प्राप्ति के लिए चण्ड मारी को सभी जीवों के जोड़ों की बलि देने की बात कही थी।[२६]

सोमदेव के कथन के अनुसार कौल सम्प्रदाय की मान्यताएँ इस प्रकार थीं—सभी प्रकार के पेय-अपेय, भक्ष्य-अभक्ष्य आदि में निःशंक चित्त होकर प्रवृत्ति करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।[२७]

---

२३ एकान्ततः परमपदस्पृहयालुतया स्वैरकथास्वपि कर्मन्दीव न तृप्यति विषयपमोल्लेखेषु विषयसुखेषु।—पृ० ४०८

२४ सगे कापालिकात्रेयी ... । आप्लुत्य दण्डवत्सम्यग्जपेन्मन्त्रमुपोषितः ।
—पृ० २८१, उत्त०

२५ उद्धृत—हान्दिकी-यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, पृ० ३५६

२६ विद्याधरलोकविजयिनः करवालस्य सिद्धिर्भवतीति वीरभैरवनामकात्कुलाचार्यकादुपश्रुत्य।—पृ० ४४

२७ सर्वेषु पेयापेयभक्ष्याभक्ष्यादिषु निःशङ्कचित्तोद्वृत्तात्, इति कुलाचार्याः ।
—पृ० २६९, उत्त०

सोमदेव के अनुसार कापालिक त्रिक मत को मानते थे। त्रिक मत के अनुसार मद्य-मांस पी-खाकर प्रसन्नचित्त होकर बायीं ओर स्त्री को बिठाकर स्वयं भी शिव और पार्वती के समान आचरण करता हुआ शिव की आराधना करे।[२८]

५. कुमारश्रमण (९२)

बाल्यवस्था में जो लोग साधु हो जाते थे उन्हें कुमारश्रमण कहा जाता था। सोमदेव ने कुमारश्रमण के लिए 'असञ्जातमदनकनङ्ग' विशेषण दिया है। एक स्थान पर श्रमणमय (९३) का भी उल्लेख है। उक्त दोनों स्थलों पर श्रमण शब्द जैन साधु के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

६. चित्रशिखण्डि (९२)

चित्रशिखण्डि का अर्थ श्रुतदेव ने सप्तर्षि किया है। मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ, ये सात ऋषि सप्तर्षि कहलाते थे। सोमदेव ने इनका विशेषण 'सब्रह्मचारिता' दिया है। ये सात ऋषि आचार, विचार और साधना में समान होने के कारण ही एक श्रेणी में बाँधे गये। इन ऋषियों के शिष्य भी संभवतः चित्रशिखण्डि के नाम से प्रसिद्ध हो गये हों।

७ जटिल (४०६ उत्त०)

यशस्तिलक में जैनों के लिए जटिलों के साथ आलाप, आवास और सेवा का निषेध किया गया है।[२९] जटिल भी शैव मत वाले साधु कहलाते थे।

८ देशयति (२६५, ४०६ उत्त०)

देशयति या देशव्रती एकादश प्रतिमाधारी जैन श्रावक को कहते हैं। मुनि के एकदेश संयम का पालन करने के कारण इसे देशव्रती कहा जाता है। यह श्रावक या तो दो चादर और एक लंगोटी रखता है या केवल एक लंगोटी मात्र। चादर और लंगोटी वाले को क्षुल्लक तथा केवल लंगोटी वाले को ऐलक कहा जाता है।

९ देशक (३७७ उत्त०)

जो जैन साधु पठन-पाठन का कार्य करते हैं उन्हें उपाध्याय कहा जाता है। उपाध्याय के अर्थ में यशस्तिलक में 'देशक' शब्द आया है।

---

२८ तथा च त्रिकमतोक्ति —'मदिरामोदमेदुरवदनस्तरसप्रसन्नहृदय सव्यपार्श्वविनिवेशितशक्तिः शक्तिमुद्रासनधरः स्वयमुमामहेश्वरायमाणः कृष्णया सर्वाणीश्वरम् आराधयेदिति।'-पृ० २६९, उत्त०

२९ जटिलजीवकादिभिः। सहावासं सहालापं तत्सेवां च विवर्जयेत्।—पृ० ४०६

१०. नास्तिक (३०६ उत्त०)

सोमदेव ने जैनो के लिए नास्तिको के साथ आलाप, आवास आदि का निषेध किया है। चार्वाक अथवा बृहस्पति के शिष्यो के लिए सम्भवत यहाँ इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

अन्य साधुओ के लिए निम्नांकित नाम आए हैं—

११ परिव्राजक (३२७ उत्त०), परिव्राट (१३९ उत्त०)

१२. पारासर (९२) परासर ऋषि के शिष्य पारासर कहलाते थे।

१३ ब्रह्मचारी (४०८)

१४ भविल (४०८)

भविल शब्द का अर्थ श्रुतदेव ने महामुनि किया है।[३०] भविल साधु पैदल चलते थे तथा छोटे जीवो के प्रति महाकृपालु होने से लकडी की चप्पल (खडाउ) भी नही पहनते थे।[३१]

१५ महाव्रती (४९)

महाव्रती का दो बार उल्लेख है। चण्डमारी के मन्दिर में महाव्रती साधु अपने शरीर का मास काटकर खरीद-बेच रहे थे।[३२] ये साधु हाथ में खट्वाग लिये रहते थे।[३३] कौल की तरह ये भी शैव मतानुयायी थे।

१६ महासाहसिक (८९)

महासाहसिक भी शैव होते थे। सोमदेव ने इनकी आत्मरुधिरपान जैसी भयकर साधना का उल्लेख किया है।

१७ मुनि (५६, ४०४ उत्त०)

जैन साधु के लिए यशस्तिलक में अनेक बार मुनि पद का प्रयोग हुआ है। अभी भी जैन साधु मुनि कहलाते है।

१८ मुमुक्षु (४०९)

मोक्ष की ओर उन्मुख तथा अनवरत साधना मे सलग्न साधु मुमुक्षु कहलाता

---

३० भविल इव--महामुनिरिव पृ० ४०८, स० टी०

३१ महाकृपालुतया सत्त्वसंमर्दभयेन पदात्पदमपि भ्रमन्भविल इव नादत्ते दारु पादपरित्राणम्।—पृ० ४०८

३२ महाव्रतिकवीरक्रयविक्रीयमाणस्ववपुर्वल्लूरम्।—पृ० ४९

३३ सा कालमहाव्रतिना खट्वांगकारकता नीता।—पृ० १२७

था। मुमुक्षु पर्व-त्योहार के दिनो मे भी मुट्ठीभर सब्जी या जौ के अतिरिक्त और कुछ नही खाते थे।[३४]

१९ यति (२८५ उत्त०, ३७२ उत्त०, ४०६ उत्त०)

यति शब्द का भी कई बार प्रयोग हुआ है। यह शब्द भी जैन साधु के लिए प्रयुक्त होता है। सोमदेव के उल्लेखानुसार यति अपने नियम और अनुष्ठान में बडे पक्के होते थे।[३५] यति भिक्षा भी करते थे।[३६]

२० यागज्ञ (४०६ उत्त०)

सम्भवत यज्ञ करने वाले वैदिक साधु यागज्ञ कहलाते थे। सोमदेव ने यागज्ञो के साथ जैनो को सहावास, सहालाप तथा उनकी सेवा करने का निषेध किया है।[३७]

२१ योगी (४०९)

ध्यान में मस्त हुआ साधु योगी कहलाता था। सोमदेव ने लिखा है कि यह सोचकर कि दूसरे जीव को थोडा-सा भी दु ख पहुँचाने पर वह बोये गये बीज की तरह जन्मान्तर में सैकडो प्रकार से फल देता है, इसलिए योगी दयाभाव से तथा पापभीरु होने से वनस्पति के फल या पत्ते भी स्वय नही तोडता।[३८]

२२ वैखानस (४०)

वैखानस साधुओ के विषय में सोमदेव ने लिखा है कि ये बाल-ब्रह्मचारी होते थे तथा स्नान, ध्यान और मन्त्रजाप—खासतौर से अघमर्षण मन्त्रो का जाप करते थे।[३९]

---

३४ पर्वरसेष्वपि दिवसेषु मुमुक्षुरिव न शाकमुष्टेर्वापरमाहरत्याहारम्।—पृ० ४०६

३५ निजनियमानुष्ठानैकतानमनसि यतीश्वरे।—पृ० २८५, उत्त०

३६ गृहस्थो वा यतिर्वापि जैन समयमाश्रित ।
यथाकालमनुप्राप्त पूजनीय सुदृष्टिभि ॥—पृ० ४०६

३७ शाक्यनास्तिकयागज्ञजटिलाजीवकादिभि ।
सहावास सहालाप तत्सेवा च विवर्जयेत् ॥—पृ० ४०६, उत्त०

३८ ईषदप्यशुभम-यत्रोत्पादितमात्मन्युप्तबीजमिव ज मान्तरे शतश फलतीति दयालुभावाद्दुरितभीरुभावाच्च न दल फल वा योगीव स्वयमवचिनोति वनस्पतीन्।
—पृ० ४०९

३९ सवदा शुचिरिव ब्रह्मचारी तथापि लोकव्यवहारप्रतिपालनार्थं देवोपासनायामपि समाप्लुत्य वैखानस इव जपति जलजन्तूद्वैजनजनितकल्मषप्रघर्षणायाघमर्षणतन्त्रान्मन्त्रान्।—पृ० ४०८

२३ शसितव्रत (४०८)

शसितव्रत का अर्थ श्रुतदेव ने दिगम्बर साधु किया है। शसितव्रत अशुभ का दर्शन या स्पर्श तो दूर रहा मन में उसके विचार आ जाने से भी भोजन छोड देते थे।[४०]

२४ श्रमण (९२, ९३) जैन साधु

दिगम्बर मुनि के अर्थ में श्रमण का प्रयोग हुआ है।[४१] श्रमणो का पूरा सघ[४२] गाँव, नगर आदि में विहार करता था।[४३] सघ में विविध विषयो में निष्णात अनेक साधु रहते थे।[४४]

२५ साधक (४९)

मन्त्र-तन्त्र आदि की सिद्धि के लिए विकट साधना करने वाले साधु साधक कहलाते थे। सोमदेव ने अपने सिर पर गुगुल जलाने वाले साधको का उल्लेख किया है।[४५]

२६ साधु (३७७, ४०५, ४०७ उत्त०)

साधु शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है तथा सभी स्थानो पर जैन साधु के अर्थ में आया है।

२७ सूरि (३७७)

जैनाचार्य के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है।

इनके अतिरिक्त सोमदेव ने परिव्रजित व्यक्तियो के निम्नलिखित नामो की निरुक्तियाँ[४६] इस प्रकार दी है—

---

४० आस्ता तावदशुभस्य दर्शनं स्पर्शनं च, किंतु मनसाप्यस्य परामर्शे शसितव्रत इव प्रत्यादिशत्याशम्।—पृ० ४०८

४१ श्रमण इव जातरूपधारिण।—पृ० ९२

४२ अनूचानेन श्रमणसघेन।—पृ० ९२

४३ विहरमाण।—पृ० ८९

४४ वही

४५ साधकलोकनिजशिरोदह्यमानगुग्गुलरसम्।—४९

४६ तत्तद्गुणप्रधानत्वात्यतयोऽनेकधा स्मृता।
निरुक्तियुक्तितस्तेषा वदतो मन्निबोधत॥
—कल्प ४४, श्लोक ८५७

२८ जितेन्द्रिय

जो सब इन्द्रियों को जीतकर अपने द्वारा अपने को जानता है, वह गृहस्थ हो या वानप्रस्थ, उसे जितेन्द्रिय कहते है।[४७]

२६. क्षपण

जो मान, माया, मद और अमर्ष का नाश कर देता है उसे क्षपण कहते है।[४८]

३०. श्रमण

जगह-जगह विहार करके भी जो श्रान्त नही होता उसे श्रमण कहते हैं।[४९]

३१ आशाम्बर

जो लालसाओं को नाश अथवा प्रशान्त कर देता है उसे आशाम्बर कहते है।[५०]

३२ नग्न

जो सब प्रकार के परिग्रह से रहित होता है उसे नग्न कहते हैं।[५१]

३३ ऋषि

क्लेश समूह को रोकने वाले को मनीषिजन ऋषि कहते हैं।[५२]

३४ मुनि

आत्मविद्या में मान्य व्यक्ति को महात्मा लोग मुनि कहते है।[५३]

३५ यति

जो पाप रूपी बन्धन के नाश करने का यत्न करता है वह यति कहलाता है।[५४]

---

४७ जित्वेन्द्रियाणि सर्वाणि यो वेत्यात्मानमात्मना ।
गृहस्थो वानप्रस्थो वा स जितेन्द्रिय उच्यते ॥—कल्प ४४, श्लो० ८५८

४८ मानमायामदामर्षक्षपणात्क्षपण स्मृत ।—कल्प ४४, श्लो० ८५९

४९ यो न श्रान्तो भवेद्भ्रान्तेस्त विदु श्रमण बुधा ॥—वही

५० यो हताश प्रशान्ताशस्तमाशाम्बरमूचिरे ।—कल्प ४४, श्लो० ८६०

५१ य सर्वसङ्गसत्यक्त स नग्न परिकीर्तित ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६०

५२ रेषणात्क्लेशराशीनामृषिमाहुर्मनीषिण ।—कल्प ४४, श्लो० ८६१

५३ मान्यत्वादात्मविद्याना महद्भि कीर्त्यते मुनि ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६१

५४ य पापपाशनाशाय यतते स यतिर्भवेत् ।—कल्प ४४, श्लो० ८६२

३६ अनगार

जो शरीररूपी घर में भी उदासीन होता है उसे अनगार कहते हैं।[५५]

३७ शुचि

जो आत्मा को मलिन करने वाले कर्मरूपी दुर्जनों से सम्पर्क नहीं रखता वह शुचि कहलाता है।[५६]

३८ निर्मम

जो धर्म और कर्म के फल के प्रति उदासीन है तथा अधर्माचरण से निवृत्त है, आत्मा ही जिसका परिच्छद है उसे निर्मम कहते हैं।[५७]

३९ मुमुक्षु

जो पुण्य और पाप दोनों कर्मों से रहित हैं वे मुमुक्षु कहलाते हैं।[५८]

४० शंसितव्रत

जो ममता, अहंकार, मान, मद तथा मत्सर रहित है तथा निन्दा और स्तुति में समान बुद्धि रखता है, उसे शंसितव्रत कहते हैं।[५९]

४१ वाचंयम

जो आम्नाय के अनुसार तत्त्व को जानकर उसी का एक मात्र ध्यान करता है, उसे वाचंयम कहते हैं। पशु की तरह मौन रहने वाला वाचंयम नहीं।[६०]

४२ अनूचान

जिसका मन श्रुत (शास्त्र) में, व्रत में, ध्यान में, संयम में, नियम में तथा यम में संलग्न रहता है, उसे अनूचान कहते हैं।[६१]

---

५५ योऽनीहो देहगेहेऽपि सोऽनगारः सतां मतः ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६२

५६ आत्मशुद्धिकरैर्यस्य न संगः कर्मदुर्जनैः।
स पुमान् शुचिराख्यातो नाम्बुसंप्लुतमस्तकः ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६३

५७ धर्मकर्मफलेऽनीहो निवृत्तोऽधर्मकर्मणः।
तं निर्ममं मुशन्तीह केवलात्मपरिच्छदम् ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६४

५८ यः कर्मद्वितयातीतस्तं मुमुक्षुं प्रचक्षते।—कल्प ४४, श्लो० ८६५

५९ निर्ममो निरहंकारो निर्मानमदमत्सरः।
निन्दायां संस्तवे चैव समधीः शंसितव्रतः ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६६

६० योऽवगम्य यथाम्नायं तत्त्वं तत्त्वैकभावनः।
वाचंयमः स विज्ञेयो न मौनी पशुवन्नरः ॥—कल्प ४४ श्लो० ८६७

६१ श्रुते व्रते प्रसंख्याने संयमे नियमे यमे।
यस्योच्चैः सर्वदा चेतः सोऽनूचानः प्रकीर्तितः ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६८

४३ अनाश्वान्

जो इन्द्रियरूपी चोरो का विश्वास नही करता तथा शाश्वत मार्ग पर दृढ रहता है, और सब प्राणी जिसका विश्वास करते है, उसे अनाश्वान् कहते हैं।[६२]

४४ योगी

जिसकी आत्मा तत्त्व में लीन है, मन आत्मा में लीन है और इन्द्रियाँ मन में लीन है, उसे योगी कहते हैं।[६३]

४५ पंचाग्नि साधक

काम, क्रोध, मद, माया और लोभ ये पाँच अग्नियाँ हैं। जो इन पाँचो अग्नियो को अपने वश मे कर लेता है, वह पचाग्निसाधक है।[६४]

४६ ब्रह्मचारी

ज्ञान को ब्रह्म कहते है, दया को ब्रह्म कहते हैं, काम के निग्रह को ब्रह्म कहते है। जो आत्मा अच्छी रीति से ज्ञान की आराधना करता है, या दया का पालन करता है, या काम का निग्रह करता है, उसे ब्रह्मचारी कहते हैं।[६५]

४७ शिखाच्छेदी

जिसने ज्ञानरूपी तलवार से ससाररूपी अग्नि की शिखा याने लपटो को काट डाला, उसे शिखाच्छेदी कहते हैं, सिर घुटाने वाले को नहीं।[६६]

४८ परमहस

ससार अवस्था में कर्म और आत्मा, दूध और पानी की तरह मिले हुए है। जो कर्म और आत्मा को दूध और पानी की तरह पृथक्-पृथक् कर देता है, वह

---

६२ योऽक्षस्तेनेष्वविश्वस्त शाश्वते पथि निष्ठित ।
समस्तसत्त्वविश्वास्य सोऽनाश्वानिह गीयते ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६९

६३ तत्त्वे पुमान्मन पुसि मनस्यक्षकदम्बकम् ।
यस्य युक्त स योगी स्यान्न परेच्छादुरीहित ॥—कल्प ४४, श्लो० ८७०

६४ काम क्रोधो मदो माया लोभश्चेत्यग्निपचकम् ।
येनेद साधित स स्यात्कृती पचाग्निसाधक ॥—कल्प ४४, श्लो० ८७१

६५ ज्ञान ब्रह्म दया ब्रह्म ब्रह्म कामविनिग्रह ।
सम्यगत्र वसन्नात्मा ब्रह्मचारी भवेन्नर ॥—कल्प ४४, श्लो० ८७२

६६ ससाराग्निशिखाच्छेदो येन ज्ञानासिना कृत ।
त शिखाच्छेदिन प्राहुर्न तु मुण्डितमस्तकम् ॥—कल्प ४४, श्लो० ८७५

परमहंस है। अग्नि की तरह सर्वभक्षी (जो मिल जाये वही खा लेने वाला) परमहंस नहीं है।[६७]

४६ तपस्वी

जिसका मन ज्ञान से, शरीर चारित्र से और इन्द्रियाँ नियमों से सदा प्रदीप्त रहते हैं, वही तपस्वी है, कोरा वेष बनाने वाला तपस्वी नहीं।[६८]

---

६७. कर्मात्मनोर्विवेक्ता यः क्षीरनीरसमानयोः ।
भवेत्परमहंसोऽसौ नाग्निवत्सर्वभक्षकः ॥—कल्प ४४, श्लो० ८७१

६८ ज्ञानैर्मनो वपुर्वृत्तैर्नियमैरिन्द्रियाणि च ।
नित्यं यस्य प्रदीप्तानि स तपस्वी न वेषवान् ॥—कल्प ४४, श्लो० ८७३

पारिवारिक जीवन और विवाह

सोमदेवकालीन भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी। अपने से बडो के लिए आदर तथा छोटो के लिए प्यार, इस प्रणाली का मुख्य रहस्य था। इसके विना सयु । परिवार सभव न था। राज-परिवार तक मे इस विशेषता का ध्यान रखा ।ाता था। यशोर्घ जब परिव्रजित होने लगे तो अपने पुत्र को बुलाकर स्नेह मिश्रित शब्दो में अपनी इच्छा व्यक्त की। पुत्र ने भी विनम्रतापूर्वक अपने विचार प्रस्तुत किये।[1] शासन-सूत्र सभालने के बाद भी यशोधर ने अपनी माता की इच्छाओ के आदर का पर्याप्त ध्यान रखा। यशोधर अपनी माता से कहता है कि यदि आप मुझ पर दुष्पुत्र होने का अपवाद न लगायें तो कुछ कहूँ।[2] इसी प्रसङ्ग में आगे चलकर बलि का तीव्र विरोधी होने पर भी यशोधर केवल इसलिए पिष्टकुक्कुट (आटे का मुर्गा) की बलि देना स्वीकार कर लेता है, क्योकि आज्ञा न मानने पर अपना अपमान समझ कर वह (माँ) कोई भी अनिष्ट कर सकती थी।[3]

बडे लोग भी अपने से छोटो की मर्यादा का ध्यान रखते थे। चन्द्रमती कहती है कि बाल्यावस्था में भले ही जबर्दस्ती, डर दिखाकर या कान खीचकर बच्चे से काम करा लें, किन्तु युवा होने पर तथा जो स्वय शक्तिसम्पन्न और उच्चपद पर प्रतिष्ठित हो गया हो उसे न तो बलपूर्वक रोकना चाहिए, न काम करने के लिए जबर्दस्ती करना चाहिए।[4]

---

१ पृ० २८२-२८४

२ वदामि किंचिदहं यदि तत्रभवति मयि दुष्पुत्रापावादपराग न विकिरति।
—पृ० ६१ उत्त०

३ परमपमानिता चेय जरती न जाने किं करिष्यति भवतु, भवत्येवात्र प्रमाणम्, ननु तवैव पूर्वन्तामत्र कामितानि।—पृ० १३८, १४०

४ गत स काल खलु यत्र पुत्र स्वतन्त्रवृत्त्या हृदये स्थितानि।
कार्याणि कार्येत हठान्नयेन भयेन वा कर्णचपेटया वा॥
युवा निजादेशनि शितश्री स्वयप्रभु प्राप्तपदप्रतिष्ठ।
शिष्य सुतो वारमहिनैर्बलाद्धि न शिक्षणीयो न निवारणीय॥—पृ० १२३ उत्त०

पारिवारिक सम्बन्ध चिर परिचित, सहज और स्वाभाविक है, फिर भी सोमदेव ने यशोर्घ राजा के परिवार का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह विशेष मनोहारी है। यशोर्घ के चन्द्रमति नामकी प्रियतमा थी। वह पतिव्रताओं में श्रेष्ठ थी। कामदेव के लिए रति थी, धर्मपरायण के लिए धर्मभूमि थी, गुणों की खान थी, कला का उत्पत्तिस्थान थी, शील का उदाहरण थी, पति की आज्ञा मानने और अवसरोचित काय करने में आचार्याणी थी। पति में एकनिष्ठ होने से उसका रूप, विनय से सौभाग्य तथा सरलता से कलाप्रियता उसके आभूषण बने।[५] यशोर्घ भी चन्द्रमति को बहुत मानता था। जैसे धर्म और दया, राज्य और नीति, तप और शान्ति, कल्पवृक्ष और कल्पलता एक दूसरे से अनन्य सम्बन्ध रखते हैं उसी तरह चन्द्रमति और यशोर्घ का भी अनन्य सम्बन्ध था।[६]

यशोघ और चन्द्रमती से यशोधर नाम का पुत्र हुआ। गर्भ से लेकर शिक्षा-दीक्षा पयन्त जो रोचक वर्णन सोमदेव ने किया है वह अन्यत्र देखने में कम आता है। चन्द्रमती ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न देखा कि उसके गभ में इन्द्र पुत्र होकर आया है। प्रात काल उसने अपने प्रियतम को स्वप्न का वृत्तान्त बताया (पृ० २४-२५)। गर्भवृद्धि के साथ चन्द्रमति के शारीरिक परिवर्तन भी होने लगे। दोहद इत्यादि का सुन्दर वर्णन है। गभ की रक्षा कुशल वैद्यो के द्वारा की जाती थी। आठ महीने के पूव गर्भिणी स्त्री के लिए उच्च हास का निषेध किया गया है।[७]

प्रसूति का समय आने पर सूतिकासद्म (प्रसूतिगृह) की रचना की गयी। शुभ मुहूर्त में बालक का जन्म हुआ। पुत्ररत्न की प्राप्ति पर सहज ही परिवार में उल्लास का वातावरण होता है। और फिर यशोर्घ तो सम्राट था। गीत, नृत्य,

---

५ अहो महीपाल नृपस्य तस्य त्वद्वशगा चन्द्रमति प्रियासीत्।
पतिव्रतत्वेन महीसपत्न्या प्राप्तोपरिष्टात्पदवी यया हि।
साभूद्रतिस्तस्य मनोभवस्य धर्मावनि धर्मपरायणस्य।
गुणैकधाम्नो गुणरत्नभूमि कलाविनोदस्य कलाप्रसूति॥
शीलेन दृष्टान्तपद जनाना निदर्शनस्व पतिशुश्रूषणेन।
पत्युनिदेशावसरोपचारादाचार्यक या च सतीषु लेभे॥
रूप भर्तरिभावेन सौभाग्य विनयेन च।
कलावत्त्व ऋजुत्वेन भूषयामास यात्मन॥—पृ० २२२

६ वही,—पृ० २३०

७ मासोऽष्टमात्पूर्वमिद त्वयोच्चैहासादिक कर्म न देवि कार्यम्।—पृ० २२६

वादित्र इत्यादि की परम्परा एक लम्बे समय तक चलती रही। स्थान-स्थान पर तोरण और पताकाएँ सजायी गयी। यशोर्घ ने याचको को वस्तु, वस्त्र और वाहन का मनचाहा दान दिया। ऐसा दान जिससे फिर कभी याचक को याचना न करना पडे (पृ० २२७-२३१)।

जात-कर्म सम्पन्न हो जाने के बाद बालक का यशोधर नामकरण किया गया। बालक क्रम से वृद्धिङ्गत होने लगा। उत्तानशयन (ऊपर को मुंह करके सोना), दरहसित (मुस्कराना), जानुचक्रमण (घुटनो के बल सरकना), स्खलित-गति (डगमगाते पैरो चलना) और गद्‌गदालाप (तुतलाते हुए बोलना) इत्यादि अव-स्थाओ को क्रमश पार किया। बाल्यावस्था के स्वरूप का अत्यन्त मनोरम चित्र सोमदेव ने खीचा है। बालक को पलने में सुलाया कि वह परेशान हो रोने लगा। किसी दूसरे ने उठाया भी तो भी मचलने लगा। प्यारवश पिता ने अपनी गोद में लिया तो सीने में दुग्धपान के लिए स्तन खोजने लगा। परेशान होकर अपना ही अगूठा मुँह में दिया। और जब अगूठे म से कुछ न निकला तो फूट-फूटकर रोने लगा। वह देखने में प्रिय लगता और कपोलो पर जरा-सा स्पर्श करते ही खिलखिलाकर हस देता। पुरोहित ने स्वस्तिवाचन के अक्षत हाथ पर रखे नही कि कब के मुंह में डाल लिये (पृ० २३२-२३३)।

घुटनो के बल कुछ-कुछ चला, कुछ धात्री की उगली पकडकर चला और जैसे ही उँगली छोडी तो धडाम से गिरने को हुआ कि धात्री ने उठा कर गोद में ले लिया। गोद में उठाते ही उसने धात्री की चोटी खीचना शुरू कर दिया। बच्चो की बडी विचित्र स्थिति है। बालो के आभूषण को हाथो में पहना। हाथो के कडो को बालो में लगाया, और हाथ खाली हुए नही कि कमर से करधनी निकाल कर अपने ही हाथो अपने पैरो में बाँध ली। और तब निश्चेष्ट होकर रोते हुए उस बालक को देखना कितना प्रिय लगता है, और कितना अजीब भी। हर्ष और विषाद की वह सम्मिश्रित स्थिति केवल अनुभवगम्य ही है। सोमदेव ने लिखा है कि जिस घर के आँगन में बालक नही खेलते वह घर वन के समान है। उनका जन्म व्यर्थ है जिनके बालक न हुआ। उनके शरीर मे अङ्ग-विलेपन कीचड पोतने के समान है जिनके वक्षस्थल पर धूलि-विधूसरित पुत्र की रज न लिपटी हो। चचल काकपक्ष, ढेर-सा काजल लगी आँख, बहुत देर तक खेलने से निकलता हुआ उच्छ्‌वास और काँपते हुए ओठ तथा गोद में लेते ही पुलकित हुआ वदन, ऐसे बालको का मुख चुम्बन करने का जिन्हे अवसर प्राप्त होता है वे धन्य हैं (पृ० २३२-२३५)।

बालक तुतलाते बोलता है, कभी पिता को माँ और माँ को पिता कह देता है। धातृ जब बुलवाती है तो कुछ टूटे-फूटे शब्दो मे बोलता है। कुछ सिखाने को बैठाओ तो नाराज होकर भाग जाता है। कही एक जगह नही बैठता, बुलाओ तो सुनता नहीं, फिर दौडकर आता है और एक क्षण बाद फिर भाग जाता है (पृ० २३५)।

इस प्रकार बाल्यावस्था का चित्रण करने के उपरान्त चौल-कर्म और विद्याभ्यास का वर्णन किया गया है। विद्याभ्यास के बाद गोदान का निर्देश है (परिप्राप्तगोदानावसरश्च, पृ० २३७)।

सोमदेव ने एक सुखी पारिवारिक जीवन का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक ढग से किया है।

स्त्री के विषय मे सोमदेव ने लिखा है कि स्त्री के बिना ससार के सारे कार्य व्यर्थ हैं, घर जगल के समान है और जिन्दगी बेकार।[८] एक तरफ सोमदेव ने स्त्री के बिना घर को जगल और जीवन को व्यर्थ बताया, दूसरी ओर उनके निकृष्टतम स्वरूप का भी स्पष्ट चित्र खीचा है। अग्नि शान्त हो जाए, विष अमृत बन जाए, राक्षसियो को वश में कर लिया जाए, क्रूर जन्तुओ को भी सेवक बना लिया जाए, पत्थर भी मृदु हो जाए पर *स्त्रियाँ अपने वक्र स्वभाव को नही छोडती*। यशस्तिलक के चौथे आश्वास में स्त्रियो के स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया है (पृ० ५३-६३ उत्त०)।

इसी प्रसङ्ग में यह भी कह देना उपयुक्त होगा कि सोमदेव स्त्रियों को विशेष शिक्षा देने के पक्षपाती नहीं हैं। उनका कहना है कि स्त्रियों को शिक्षित करना ठीक वैसे ही है जैसे साँप को दूध पिलाना।[९] स्त्रियों को धर्मसाधन में बाधा स्वरूप माना गया है।[१०] स्त्री के भगिनी, जननी, दूतिका, सहचरी, महानसी (रसोईन), धातृ तथा भार्या स्वरूप का चित्रण किया गया है।[११]

---

८ यासां तरेण जगतो विफला प्रयासा, यासां तरेण भवनानि वनोपमानि। यासामृतेन हतसंगति जीवितम् च।—पृ० १२६

९ इन्दुर्गृहस्यात्मनि पथ शान्ति स्त्रियः विदग्धा मृदुतां करोति।
दुग्धेन च पोषयते भुजगी पुनः भुजंगस्य नृशंसानि॥—पृ० १५२ उत्त०

१० इदमेव तप सिद्धौ बुधा कारणमूचिरे।
यदनालोक। मीता यच्च सम्भाषन तयो॥—पृ० ११४

११ पृ० १२१

विवाह

यशस्तिलक में विवाह के दो प्रकारो की जानकारी आती है—एक स्वयवर दूसरे परिवार द्वारा विवाह ।

स्वयंवर

कन्या के परिणय योग्य हो जाने पर उसका पिता देश-विदेश के प्रतिष्ठित लोगो को उसके स्वयवर की सूचना देता और तदनुसार किसी निश्चित दिन स्वयवर का आयोजन किया जाता । स्वयवर-मण्डप में जन-समुदाय उपस्थित होता । कन्या हाथ मे वरमाला लेकर मण्डप में प्रवेश करती और अपनी रुचि के अनुसार किसी योग्य व्यक्ति के गले मे वरमाला पहना देती ।[१२]

स्वयवर का प्रचार राजे-महाराजो मे ही अधिक था । सम्भवतया कोई-कोई विशिष्ट सम्पन्न व्यक्ति भी स्वयवर का आयोजन करते थे । स्वयवर के आयोजन का सारा उत्तरदायित्व आदि से अन्त तक कन्या पक्ष वालो पर ही होता था ।

परिवार द्वारा विवाह

दूसरे प्रकार के विवाह मे वर के माता-पिता योग्य धात्री तथा पुरोहित को कन्या की खोज में भेजते थे । धात्री और पुरोहित का कार्य बहुत ही उत्तर-दायित्वपूर्ण था । एक तो यह कि योग्य कन्या की तलाश करे, दूसरे कन्या तथा उसके माता-पिता के मन में यह भावना उत्पन्न कर दे कि जिस व्यक्ति का वे प्रस्ताव कर रहे हैं, उससे अधिक योग्य व्यक्ति उस सम्बन्ध के लिए हो ही नही सकता । धात्री और पुरोहित की कुशलता से माता-पिता पहले किये गये निर्णय तक को बदल देते थे ।[१२]

विवाह की आयु

बारह वर्ष की कन्या और सोलह वर्ष का युवक विवाह के योग्य माना जाता था ।[१४] सोमदेव के बहुत पहले से बाल-विवाह की प्रवृत्ति चली आती थी । हिन्दू धर्मशास्त्र में कन्या के रजस्वला होने के पूर्व विवाह कर देना उचित माना जाता था । उत्तरकालीन स्मृति-ग्रन्थो मे इस अवस्था में कन्या का विवाह न करने वाले अभिभावको को अत्यन्त पाप का भागी बताया गया है ।[१५]

---

१२ पृ० ७१, ४७८, ३५१ उत्त०

१३ पृ० ३५०–५१ उत्त०

१४ वही, पृ० ३१७

१५ वृहद्यम ३, २२, सवर्त १, ६७, यम १, २२, शख १५, ८, उद्धृत, अल्तेकर–दी राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० ४२ ४३

बालक तुतलाते बोलता है, कभी पिता को माँ और माँ को पिता कह देता है। धातृ जब बुलवाती है तो कुछ टूटे-फूटे शब्दो मे बोलता है। कुछ सिखाने को बैठाओ तो नाराज होकर भाग जाता है। कही एक जगह नही बैठता, बुलाओ तो सुनता नहीं, फिर दौडकर आता है और एक क्षण बाद फिर भाग जाता है (पृ० २३५)।

इस प्रकार बाल्यावस्था का चित्रण करने के उपरान्त चौल-कर्म और विद्याभ्यास का वर्णन किया गया है। विद्याभ्यास के बाद गोदान का निर्देश है (परिप्राप्तगोदानावसरश्च, पृ० २३७)।

सोमदेव ने एक सुखी पारिवारिक जीवन का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक ढग से किया है।

स्त्री के विषय मे सोमदेव ने लिखा है कि स्त्री के बिना ससार के सारे कार्य व्यर्थ हैं, घर जगल के समान है और जिन्दगी बेकार।[८] एक तरफ सोमदेव ने स्त्री के बिना घर को जगल और जीवन को व्यर्थ बताया, दूसरी ओर उसके निकृष्टतम स्वरूप का भी स्पष्ट चित्र खींचा है। अग्नि शान्त हो जाए, विष अमृत बन जाए, राक्षसियो को वश मे कर लिया जाए, क्रूर जन्तुओ को भी सेवक बना लिया जाए, पत्थर भी मृदु हो जाए पर स्त्रियाँ अपने वक्र स्वभाव को नही छोडती। यशस्तिलक के चौथे आश्वास में स्त्रियो के स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया है (पृ० ५३-६३ उत्त०)।

इसी प्रसङ्ग में यह भी कह देना उपयुक्त होगा कि सोमदेव स्त्रियो को विशेष शिक्षा देने के पक्षपाती नही हैं। उनका कहना है कि स्त्रियो को शिक्षित करना ठीक वैसे ही है जैसे साँप को दूध पिलाना।[९] स्त्रियो को धर्मसाधन में बाधा स्वरूप माना गया है।[१०] स्त्री के भगिनी, जननी, दूतिका, सहचरी, महानसकी (रसोईन), धातृ तथा भार्या स्वरूप का चित्रण किया गया है।[११]

---

८ यामन्तरेण जगतो विफला प्रयास, याम तरेण भवनानि वनोपमानि। यामन्तरेण हत सगति जीवितम् च।—पृ० १२६

९ इच्छन्गृहस्यात्मन एव शान्ति स्त्रिय विदग्धा खलु क करोति।
दुग्धेन य पोषयते भुजगी पुस कुतस्तस्य सुमङ्गलानि॥—पृ० १४२ उत्त०

१० द्वयमेव तप सिद्धौ बुधा कारणमूचिरे।
यदनालोक स्त्रीणा यच्च सग्लापन तनो॥—पृ० ११४

११ पृ० १४१

विवाह

यशस्तिलक में विवाह के दो प्रकारो की जानकारी आती है—एक स्वयंवर दूसरे परिवार द्वारा विवाह।

स्वयंवर

कन्या के परिणय योग्य हो जाने पर उसका पिता देश-विदेश के प्रतिष्ठित लोगो को उसके स्वयंवर की सूचना देता और तदनुसार किसी निश्चित दिन स्वयंवर का आयोजन किया जाता। स्वयंवर-मण्डप मे जन-समुदाय उपस्थित होता। कन्या हाथ मे वरमाला लेकर मण्डप में प्रवेश करती और अपनी रुचि के अनुसार किसी योग्य व्यक्ति के गले में वरमाला पहना देती।[१२]

स्वयंवर का प्रचार राजे-महाराजो मे ही अधिक था। सम्भवतया कोई-कोई विशिष्ट सम्पन्न व्यक्ति भी स्वयंवर का आयोजन करते थे। स्वयंवर के आयोजन का सारा उत्तरदायित्व आदि से अन्त तक कन्या पक्ष वालो पर ही होता था।

परिवार द्वारा विवाह

दूसरे प्रकार के विवाह में वर के माता-पिता योग्य धात्री तथा पुरोहित को कन्या की खोज में भेजते थे। धात्री और पुरोहित का कार्य बहुत ही उत्तर-दायित्वपूर्ण था। एक तो यह कि योग्य कन्या को तलाश करे, दूसरे कन्या तथा उसके माता-पिता के मन मे यह भावना उत्पन्न कर दे कि जिस व्यक्ति का वे प्रस्ताव कर रहे है, उससे अधिक योग्य व्यक्ति उस सम्बन्ध के लिए हो ही नही सकता। धात्री और पुरोहित की कुशलता से माता-पिता पहले किये गये निर्णय तक को बदल देते थे।[१३]

विवाह की आयु

बारह वर्ष की कन्या और सोलह वर्ष का युवक विवाह के योग्य माना जाता था।[१४] सोमदेव के बहुत पहले से बाल-विवाह की प्रवृत्ति चली आती थी। हिन्दू धर्मशास्त्र में कन्या के रजस्वला होने के पूर्व विवाह कर देना उचित माना जाता था। उत्तरकालीन स्मृति-ग्रन्थो मे इस अवस्था में कन्या का विवाह न करने वाले अभिभावको को अत्यन्त पाप का भागी बताया गया है।[१५]

---

१२ पृ० ७६, ४७८, ३५१ उत्त०

१३ पृ० ३५०-५१ उत्त०

१४ वही, पृ० २१७

१५ वृहद्यम ३, २२, सवर्त १, ६७, यम १, २२, शख १५, ८, उद्धृत, अल्तेकर—दी राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० ४२ ४३

बालक तुतलाते बोलता है, कभी पिता को माँ और माँ को पिता कह देता है। धातृ जब बुलवाती है तो कुछ टूटे-फूटे शब्दो में बोलता है। कुछ सिखाने को बैठाओ तो नाराज होकर भाग जाता है। कही एक जगह नही बैठता, बुलाओ तो सुनता नही, फिर दौडकर आता है और एक क्षण बाद फिर भाग जाता है (पृ० २३५)।

इस प्रकार बाल्यावस्था का चित्रण करने के उपरान्त चौल-कम और विद्याभ्यास का वर्णन किया गया है। विद्याभ्यास के बाद गोदान का निर्देश है (परिप्राप्तगोदानावसरश्च, पृ० २३७)।

सोमदेव ने एक सुखी पारिवारिक जीवन का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक ढग से किया है।

स्त्री के विषय मे सोमदेव ने लिखा है कि स्त्री के बिना ससार के सारे कार्य व्यर्थ हैं, घर जगल के समान है और जिन्दगी बेकार।[८] एक तरफ सोमदेव ने स्त्री के बिना घर को जगल और जीवन को व्यर्थ बताया, दूसरी ओर उसके निकृष्टतम स्वरूप का भी स्पष्ट चित्र खीचा है। अग्नि शान्त हो जाए, विष अमृत बन जाए, राक्षसियो को वश में कर लिया जाए, क्रूर जन्तुओ को भी सेवक बना लिया जाए, पत्थर भी मृदु हो जाए पर स्त्रियाँ अपने वक्र स्वभाव को नही छोडती। यशस्तिलक के चौथे आश्वास में स्त्रियो के स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया है (पृ० ५३-६३ उत्त०)।

इसी प्रसङ्ग में यह भी कह देना उपयुक्त होगा कि सोमदेव स्त्रियो को विशेष शिक्षा देने के पक्षपातो नही हैं। उनका कहना है कि स्त्रियो को शिक्षित करना ठीक वैसे ही है जैसे साँप को दूध पिलाना।[९] स्त्रियो को धर्मसाधन में बाधा स्वरूप माना गया है।[१०] स्त्री के भगिनी, जननी, दूतिका, सहचरी, महानसकी (रसोईन), धातृ तथा भार्या स्वरूप का चित्रण किया गया है।[११]

---

८ यामन्तरेण जगतो विफला प्रयास, याम तरेण भवनानि वनोपमानि। यामन्तरेण हत सगति जीवितम् च।—पृ० १२६

९ इच्छन्गृहस्यात्मन एव शान्ति स्त्रिय विदग्धा खलु क करोति।
दुग्धेन य पोषयते भुजगी पुस कुतस्तस्य सुमङ्गलानि॥—पृ० १५२ उत्त०

१० द्वयमेव तप सिद्धौ बुधा कारणमूचिरे।
यदनालोक स्त्रीणा यच्च सग्लापन तनो॥—पृ० ११४

११ पृ० १२१

विवाह

यशस्तिलक में विवाह के दो प्रकारो की जानकारी आती है—एक स्वयवर दूसरे परिवार द्वारा विवाह ।

स्वयवर

कन्या के परिणय योग्य हो जाने पर उसका पिता देश-विदेश के प्रतिष्ठित लोगो को उसके स्वयवर की सूचना देता और तदनुसार किसी निश्चित दिन स्वयवर का आयोजन किया जाता । स्वयवर-मण्डप में जन-समुदाय उपस्थित होता । कन्या हाथ मे वरमाला लेकर मण्डप में प्रवेश करती और अपनी रुचि के अनुसार किसी योग्य व्यक्ति के गले में वरमाला पहना देती ।[१२]

स्वयवर का प्रचार राजे-महाराजो में ही अधिक था । सम्भवतया कोई-कोई विशिष्ट सम्पन्न व्यक्ति भी स्वयवर का आयोजन करते थे । स्वयवर के आयोजन का सारा उत्तरदायित्व आदि से अन्त तक कन्या पक्ष वालो पर ही होता था ।

परिवार द्वारा विवाह

दूसरे प्रकार के विवाह मे वर के माता-पिता योग्य धात्री तथा पुरोहित को कन्या की खोज में भेजते थे । धात्री और पुरोहित का कार्य बहुत ही उत्तर-दायित्वपूर्ण था । एक तो यह कि योग्य कन्या को तलाश करे, दूसरे कन्या तथा उसके माता-पिता के मन मे यह भावना उत्पन्न कर दे कि जिस व्यक्ति का वे प्रस्ताव कर रहे है, उससे अधिक योग्य व्यक्ति उस सम्बन्ध के लिए हो ही नही सकता । धात्री और पुरोहित की कुशलता से माता-पिता पहले किये गये निर्णय तक को बदल देते थे ।[१३]

विवाह की आयु

बारह वर्ष की कन्या और सोलह वर्ष का युवक विवाह के योग्य माना जाता था ।[१४] सोमदेव के बहुत पहले से बाल-विवाह की प्रवृत्ति चली आती थी । हिन्दू धर्मशास्त्र में कन्या के रजस्वला होने के पूर्व विवाह कर देना उचित माना जाता था । उत्तरकालीन स्मृति-ग्रन्थो मे इस अवस्था में कन्या का विवाह न करने वाले अभिभावकों को अत्यन्त पाप का भागी बताया गया है ।[१५]

---

१२ पृ० ७६, ४७८, ३५१ उत्त०

१३ पृ० ३५०-५१ उत्त०

१४ वही, पृ० ३१७

१५ बृहद्यम ३, २२, सवर्त १, ६७, यम १, २२, शख १५, ८, उद्धृत, अल्तेकर—दी राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० ४२ ४३

अलवरूनी ने लिखा है कि हिन्दू लोग अपने लडको के विवाह का आयोजन करते थे, क्योंकि विवाह बहुत ही छोटी अवस्था में होते थे।[१६] एक स्थान पर यह भी लिखा है कि ब्राह्मणों में अरजस्वला कन्या को ही ग्रहण किया जाता था।[१७] गुप्तकाल मे बाल-विवाह का प्रचलन रहा।[१८] आगे चलकर राष्ट्रकूटयुग में भी यही परम्परा चलती रही।[१९] सोमदेव ने स्पष्ट शब्दो में अपने दोनो ग्रन्थो में बारह वर्ष की कन्या और सोलह वर्ष के युवा को विवाह के योग्य बताया है।[२०]

देव, द्विज और अग्नि की साक्षि में माता-पिता कन्यादान करते थे।

स्वयवर के अतिरिक्त कन्याओ को सभवतया वर पसन्द करने का अधिकार नही था। माता-पिता जिसके साथ विवाह कर दे, वही उन्हे स्वीकार करना पडता था। सोमदेव ने ऐसे सम्बन्धो की बुराइयो की ओर लक्ष्य दिलाया है। अमृतमति कहती है कि देव, द्विज और अग्नि के समक्ष माता-पिता द्वारा बेचे गये शरीर का पति मालिक हो सकता है, मन का नही। मन का स्वामी तो वही है जिसमें असाधारण प्रणय हो।[२१]

१६, एपिग्राफिया इडिका, २ पृ० १५४

१७ वही पृ० १२१

१८ आर० एन० सालेटोरकर लाइफ इन दी गुप्ता एज पृ० २८० १०

१९ अल्तेकर–दी राष्ट्रकटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० ३४२-४३

२० यशस्तिलक उत्त० पृ० २१७, नीति० ३१,१

२१ देवद्विजाग्निसमक्ष मातापितृविक्रीतस्य कायस्यैव भवतीश्वर, न मनस। तस्य पुन स एव स्वामी यत्रायमसाधारण प्रवर्तते पर विश्रम्भविश्रमाश्रय प्रणय।—पृ० १४१ उत्त०

पाक-विज्ञान और खान-पान

यशस्तिलक में खान-पान सम्बन्धी बहुविध जानकारी आती है। इस सम्पूर्ण सामग्री की त्रिविध उपयोगिता है—

(१) यह सामग्री खाद्य और पेय वस्तुओं की एक लम्बी सूची प्रस्तुत करती है।

(२) इस सामग्री से दशम शताब्दी में भारतीय परिवारों, खासकर दक्षिण भारत के परिवारों की खान-पान व्यवस्था का पता लगता है।

(३) ऋतुओं के अनुसार संतुलित एवं स्वास्थ्यकर भोजन की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

पाकविद्या

यशस्तिलक में षड्रसों का सर्वदा व्यवहार करते रहने को सुखावह बताया है (षड्रसाभ्यवहारस्तु सदा नृणां सुखावहः, पृ० ५१६)। मधुर, अम्ल, तिक्त, तीक्ष्ण, कषाय तथा क्षार—इन छः रसों का शुद्ध और समर्गपूर्वक उपयोग करके ६३ प्रकार के व्यंजन तैयार हो सकते हैं (रसानां शुद्धसमर्गभेदेन त्रिषष्टिव्यंजनोपदेशभाजः, पृ० ५२१)। सज्जन नाम के वैद्य ने इन ६३ प्रकार के भेदों का उपदेश दिया। श्रुतसागर ने संस्कृत टीका में ६३ भेद गिनाए हैं। सोमदेव ने एक प्रसंग में समस्त सूपशास्त्राधिगतपटु पौरोगव (प्रधान रसोइया) का उल्लेख किया है (पृ० २२२ उत्त०) तथा पकाने वाले रसोइयों को समस्त रसों की प्रसाधनविधि में निपुण बताया है (सकलरसप्रसाधनविधिव्यतिकराधिकविवेकेषु पाचकलोकेषु, पृ० २२२ उत्त०)।

भोजन बनाने के अनेक तरीके थे—घी में तलकर पकाना (सर्पिपिस्नाता, ५१७), अंगारों पर सेंक लेना (अंगारपाचित, वही), राधना (राद्धम्, ५१३), आधा राधना (अर्धरद्ध, ४०४), पूरा नहीं सेकना (असमस्तसिद्ध, ४०४), थोड़ी-सी आँच मात्र दिखाना (ईषत्खिन्न, ४०५), कच्चा ही रहने देना (अपक्व ४०५), बटलोई ढककर तथा अन्न को चलाकर अच्छी तरह पकाना (साधुपाक, ५०७), पकाते-पकाते पानी जला देना (पयसा विशुष्कम्, ५१६), पकाकर दही में डाल देना (दध्ना परिप्लुतम् ५१६), दाल इत्यादि के बने पदार्थों को कच्चे दूध, दही में

छोड देना (द्विदल, ३३५ उत्त०), मिलाकर वनाना (मिश्रम्, ३३४ उत्त०), अकेला वनाना (अमिश्रम्, ३३४, उत्त०)।

बिना पकाई गयी खाद्यसामग्री

यशस्तिलक मे वर्णित सम्पूर्ण खाद्यसामग्री निम्नप्रकार सकलित की जा सकती है—

१. गोधूम (५१५) गेहूँ

२ यव (१५, ५१९) जौ

३ दीदिवि (४०१) लम्वे तथा उज्ज्वल चावल। सोमदेव ने इसे कामिनिजन के कटाक्षो की तरह अतिदीर्घ एव उज्ज्वल कहा है।[1] दीदिवि मूलत वैदिक शब्द है। ऋग्वेद (१, १, ८) में इसका चमकते हुए के अर्थ में प्रयोग हुआ है। अग्नि तथा वृहस्पति के विशेपरण के रूप मे भी इसका प्रयोग होता है।[2]

४ श्यामाक (४०६) समा (साँवाँ)। सोमदेव ने श्यामाक के भात को सर्वपात्रीण (सभी साधुओ के द्वारा लेने योग्य) कहा है।[3] कालिदास ने शाकुन्तल में श्यामाक का उल्लेख किया है। कण्व के आश्रम में हरिणो को श्यामाक खिलाकर वढाया गया था।[4] यजुर्वेद सहिताओ मे इसके सवसे प्राचीन उल्लेख मिलते हैं। आपस्तम्भ में इसे विना वोये उत्पन्न होनेवाला धान्य कहा है। इसका उपयोग साधु-सन्यासी लोग करने थे। श्यामाक के तीन प्रकारो का पता चलता है—(१) राज श्यामाक, (२) अभ श्यामाक या तोय श्यामाक तथा (३) हस्ति श्यामाक। समा (साँवाँ) से इसकी पहचान की जाती है।[5] समा कोद्रव, वाजरा आदि की श्रेणी का सवसे छोटा धान्य है। इसका रग साँवला होता है। उत्तर तथा मध्यभारत में कही-कही अभी भी लोग समा या साँवाँ पैदा करते है।

५ शालि (५१५-५१६) एक विशेष प्रकार का सुगन्वित चावल।

६ कलम (५१५) एक विशेप प्रकार का सुगन्वित चावल। यह धान्य पानी वरसते ही वो दिया जाता था। करीव एक फिट के पौधे होने पर उखाडकर दूमरी जगह खेत मे रोप दिये जाते थे। ठड के महीनो (अगहन-पौप) तक यह धान्य तैयार हो जाता था।

---

१ कामिनीजनकटाक्षेरिवातिदीर्घविपदच्छविभि।—पृ० ४०१

२ आप्टे-सस्कृत इग्लिश डिक्शनरी पृ० ११६

३ सर्वपात्रीण श्यामाकभक्तं।—पृ० ४०६

४ श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितो जहाति।—शाकुन्तल, ४।१२

५ ओमप्रकाश—फूड एण्ड ड्रिंक इन ऐंशिएन्ट इडिया पृ० २६१

कलम शालि का ही एक प्रकार था। जैनागमों में शालि के तीन भेद मिलते हैं—(१) रक्तशालि, (२) कलमशालि तथा (३) महाशालि। सुश्रुत ने शालि के १८ प्रकार गिनाए हैं। उवासगदसा (१, ३५) के अनुसार कलमशालि मगध में उत्पन्न होता था।[६] सोमदेव ने कलम को ठंड की ऋतु के भोजन में गिनाया है तथा शालि का उपयोग वर्षा और शरद् ऋतु के लिए निर्दिष्ट किया है।[७]

कलम की बालियाँ लम्बी-लम्बी होती थीं और पकने पर लटक जाती थीं।[८] कलम के खेत जब पकने लगते तब उनकी खास तौर से रखवाली करनी पड़ती थी। कालिदास ने गन्नों की छाया में बैठकर गाती हुई शालि की रखवाली करने वाली स्त्रियों का उल्लेख किया है।[९] भारवि तथा माघ ने भी कलम के खेतों की रखवाली करनेवाली स्त्रियों का उल्लेख किया है।[१०] एक ओर धूप से कलम के खेतों का पानी सूखने लगता, दूसरी ओर कलम पककर पीले होने लगते हैं।[११]

७ यवनाल (४०४) जुआर

८ चिपिट (४६६) चिउड़ा धान को थोड़ा उबालकर मूसल या ढेंकी से कूट लेते हैं, ऐसा करने से धान का छिलका अलग हो जाता है तथा चावल अलग हो जाता है। इसे ही चिपट या चिउड़ा कहते हैं। बंगाल और बिहार में चिउड़ा खाने का बहुत रिवाज है। मध्यप्रदेश के रायगढ़, बिलासपुर, रायपुर, सरगुजा आदि जिलों में तथा उत्तरप्रदेश के कई जिलों में भी चिउड़ा खाने का रिवाज है। सम्पन्न परिवारों में चिउड़ा दही के साथ खाते हैं, गरीब तथा साधारण परिवारों में पानी में फुलाकर अथवा सूखा ही चिउड़ा गुड़, नमक, मिर्च तथा प्याज आदि के साथ खाया जाता है।

सोमदेव ने लिखा है कि तिरहुत के सैनिकों के मसूड़े निरन्तर चिउड़ा चबाते रहने के कारण छिल गये थे।[१२]

---

६ वुही पृ० ५८, ५९, २६२

७ यशस्तिलक पृ० ५१५, ५१६

८ आपादपद्मप्रणताः कलमा इव ते रघुम्।—रघुवंश, ४।३७

९ इक्षुच्छायानिषादिन्य शालिगोप्यो जगुर्यशः।—रघुवंश, ४।२०

१०. सुतेन पाण्डोः कमलस्य गोपिकाम्।—किरात० ४।९

११ कलमगोपवधूर्न मृगव्रजम्।—शिशु० ६।४९

उपैति शुष्यन्कलमः सहाम्भसा मनोभुवा तप्त इवाभिपाण्डुताम्।

—किरात० ४।३४

१२ अनवरतचिपिटचर्वणदीर्णदशनाग्रदेशैः।—यश० पृ०४६६

चिउडा का पुराना नाम पृथुक था। पृथुक का इतिहास ब्राह्मणकाल तक पहुँचता है। आजकल इसके बनाने की जो प्रक्रिया है, यही उस समय भी चलती थी।[१३]

९ सक्तू (५१२, ५१५) सत्तू गेहूँ या जौ को भून कर उनमें भुजें हुए चने मिलाकर पीसे गये चूर्ण को सत्तू कहा जाता है। सत्तू का इतिहास वैदिक-युग तक पहुँचता है। ऋग्वेद (१०, ७१, २), तैत्तरीय ब्राह्मण (३,८, १४) आदि में इसके उल्लेख मिलते है।

सत्तू पानी में उसनकर पिण्ड के रूप में तथा पतला चाटने योग्य (अवलेह्य) बनाकर खाया जाता था। उत्तर काल में घी, गुड, चीनी आदि के साथ में भी खाया जाने लगा (सुश्रुत ४६, ४१२)।[१४] वर्तमान में भी सत्तू खाने के यही तरीके प्रचलित है।

सोमदेव ने स्वास्थ्य की दृष्टि से पिण्डरूप अथवा दही के समान गाढा सत्तू खाने का निषेध किया है।[१५]

१० मुद्ग (५१५, ५१६) मूँग

११ माष (५१२, ५१४) उडद

१२ विरसाल (४०४) राजमाष

१३ द्विदल (३३५, उत्त०) दाल, जिसके दो समान टुकडे होते हो, ऐसा प्रत्येक अन्न द्विदल कहलाता है।

घृत, दधि, दुग्ध, मट्ठा आदि के गुण-दोष तथा उपयोग—विधि

घृत घृत के गुणो का वर्णन करते हुए सोमदेव ने लिखा है कि वेद तथा आगमो के जानकारो ने घृत को साक्षात् आयु कहा है, वैद्य लोगो ने वृद्धत्व-नाशक होने से रसायन के लिए इसका विधान किया है, सारस्वतकल्प से निर्मल हुई बुद्धिवालो ने बुद्धि की सिद्धि (धिय सिद्धये) के लिए बताया है, ऐसा घृत द्रव स्वर्ण तथा केतकी के समान रस और छाया वाला उत्तम होता है। अर्थात् घृत आयुवर्द्धक, वृद्धतानिवारक तथा बुद्धि को निर्मल बनाता है।[१६]

दधि दधि स्थूलता करता तथा वायु को दूर करता है। इसका सेवन

---

१३ ओमप्रकाश—फूड एण्ड ड्रिंक इन एंशियन्ट इंडिया पृ० २९०

१४ वही पृ० २६१

१५ दधिवत्सक्तून्नाद्यात्।—यश० पृ० ५१२

१६ पृ० ५१७, श्लोक ३६०, तुलना—'आयुर्वै घृतम्'

वसन्त, शरद् तथा ग्रीष्म को छोडकर अन्य ऋतुओ में घृत (सर्पि), सिता (शक्कर), आमला तथा मूँग के पानी के साथ करना चाहिए।[१७]

तक्र दधि को मथकर तुरन्त जिसका नवनीत निकाल लिया गया है, ऐसा तक्र समगुण वाला होता है, बहुत देर तक मथा गया किसी भी दोप को उत्पन्न नही करता।[१८]

दुग्ध दुग्ध साक्षात् जीवन ही है। जन्म के साथ ही दुग्ध-पान प्रारम्भ हो जाता है। गाय का धारोष्ण दुग्ध आयुष्य करनेवाला होता है। दूध प्रात, साय-काल, सभोग के अनन्तर तथा भोजन के बाद उपयुक्त मात्रा मे पीना चाहिए।[१९]

जल भोजन के प्रारम्भ में जल पीने से जठराग्नि नष्ट हो जाती है तथा कृशता आती है, अन्त में पीने से कफ बढता है, मध्य में पीने पर समता तथा सुख करता है। एक साथ ही अधिक जल नही पीना चाहिए।[२०]

जल को अमृत भी कहते हैं और विष भी, इसका तात्पर्य यही है कि युक्ति-पूर्वक पिया गया जल अमृत तथा अयुक्ति या अव्यवस्थापूर्वक पिया गया जल विप के समान है।[२१]

ऋतुओं के अनुसार पेय जल वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में कुआँ तथा झरने का, वर्षा में कुआँ, अथवा चुरी (कुण्ड) का, ठड में सरसी (पोखरा) या तालाब का तथा शरद् ऋतु में सूर्य-चन्द्रमा की किरणो तथा वायु के झकोरो से शुद्ध हुए जल को पीना चाहिए।[२२]

ससिद्ध जल हवा तथा धूप से स्वच्छ हुआ, रस तथा गध रहित जल स्वभावत पथ्य है, यदि ऐसा न मिले तो उबाला हुआ पीना चाहिए।[२३] सूर्य और चन्द्रमा की किरणो से ससिद्ध किया जल २४ घटे (अहोरात्र) के बाद नही पीना चाहिए, दिन में सिद्ध किया गया रात्रि में तथा रात्रि में सिद्ध किया जल दिन में नही पीना चाहिए।[२४]

---

१७ पृ० ५१७ १८, श्लोक ३६१
१८ पृ० ५१८, श्लोक ३६२
१९ वही, श्लोक ३६३
२० श्लोक ३६७
२१ श्लोक ३६८
२२ श्लोक ३६९
२३ श्लोक ३७०
२४ श्लोक ३७१

जल को समिद्ध करने की प्रक्रिया के विषय में टीकाकार ने लिखा है कि जल से भरा हुआ घडा प्रातःकाल धूप में रखकर चार प्रहर रात्रि तक खुले आकाश में रखा रहने दिया जाए, यह जल सूर्येन्दु समिद्ध कहलाता है।[२५]

मसाला

लवण (५१४)—नमक
दरद (४६४)—हींग
क्षपारस (४६४)—हलदी
मरिच (५१२)—मिरच
पिप्पली (५१२)—छोटी पीपल
राजिका (४०६)—राई

स्निग्ध पदार्थ, गोरस तथा अन्य पेय

घृत (५१४, ५१६, ५१९)
आज्य (२५१, ४०१)
पृषदाज्य (३२४)
तैल (४०४, ५१४)
दधि (५१२, ५१४, ५१६, ५१७)
दुग्ध (५१८)
नवनीत (५१८)
तक्र (५१२, ५१९)
कलि या अवन्तिसोम (४०६, ५१२, ५१९)
नारिकेलिफलाम्भ (५१२)
पानक (५१५)
शर्कराढ्य (५१५)

मधुर पदार्थ

शर्करा (५१५)
सिता (५१६)
गुड (५१२)
मधु (५१२)
इक्षु (५१४)

---

२५. वही, संस्कृत टीका

साग—सब्जी तथा फल

१ पटोल (५१६)—परवल
२ कोहल (५१६)—कुम्हड़ा
३ कारवेल (५१६)—करेला
४ वृन्ताक (५१६)—बैंगन
५ वाल (५१६)
६ कदल (५१२)—केला
७ जीवन्ती (५१६)—डोडी
८ कन्द (५१२, ५१६)—सूरन
९ किसलय (५१५, ५१६)—कोमल पत्ते
१० बिप (५१५)—मृणाल
११ वास्तूल (५१६)—बथुआ
१२ तण्डुलीय (५१६)—चौराई
१३ चिल्ली (५१६)
१४ चिर्भटिका (४०५, ५१६)—कचरिया
१५ मूलक (४०५, ५१२)—मूली
१६ आद्रक (५१६)—अदरख
१७ धात्रीफल (५१६)—आँवला
१८ एर्वारु (४०४)—ककड़ी
१९ अलाबू (४०४)—लौकी (गोल)
२० कर्कारु (४०५)—कलिंगफल (संस्कृत टीका)
२१ मालूर (४०५)—बेल
२२ चक्रक (४०५)—खट्टे पत्तो का साग
२३ अग्निदमन (४०५)
२४ रिंगिणीफल (४०५)—भटकटैया
२५ अगस्ति (४०५)—अगस्त्य वृक्ष
२६ आम्र (४०५)—आम
२७ आम्रातक (४०५)—आमड़ा
२८ पिचुमन्द (४०५)—नीम
२९ सोभाजन (४०५)—महजन
३० वृहतीवार्ताक (४०५)—बड़ा बैंगन
३१ एरण्ड (४०५)—अंडी (रेंड, रेंडी)

३२ पलाण्डु (४०५)—प्याज या लहसुन
३३ वल्लक (४०५)
३४ रालक (४०६)
३५ कोकुन्द (४०६)
३६ काकमाची (५१२)
३७ नागरंग (९५)
३८ ताल (९५)
३९ मन्दर (९५)—पारिजात (स० टी०)
४० नागवल्ली (९६)—पनवेल
४१ वाण (९६)—बीजवृक्ष (स० टी०)
४२ आसन (९६)—रालवृक्ष (स० टी०)
४३ पूग (९६)—सुपारी
४४ अक्षोल (९६)—अखरोट
४५ खर्जूर (९६)—खजूर
४६ लवली (९६)
४७ जम्बीर (९६)—जिमरिया
४८ अश्वत्थ (९६)—पीपल
४९ कपित्थ (९६)—कैथ
५० नमेरु (९६)
५१ राजादन (९६)—क्षीरवृक्ष
५२ पारिजात (९७)
५३ पनस (९७)
५४ ककुभ (९९)—अर्जुन वृक्ष
५५ वट (९९)
५६ कुरवक (९९)
५७ जम्बू (१००)—जामुन
५८ दर्दरीक (१०३)—डाडिम (अनार)
५९ पुण्ड्रेक्षु (१०३)—पोंडा
६० मृद्वीका (१०३)—दाख
६१ नारिकेल (१०३)—नारियल
६२ उदुम्बर (३३० उत्त०)—ऊमर (गूलर)
६३ प्लक्ष (३३० उत्त०)

तैयार की गयी सामग्री

१ भक्त (५१६)—भात पकाए गये चावलो को भात कहते है। भात के लिए यशस्तिलक में तीन शब्द आए हैं—१ दीदिवि (४०), २ भक्त (५१६) और ३ ओदन।

२, सूप (४०१, ५१६)—दाल जिस अन्न के दो समान दल (टुकडे) होते हैं, वह द्विदल कहलाता था। इसी का वर्तमान रूप 'दाल' पद मे अवशिष्ट है। पकाई गयी दाल को सूप कहते थे। अच्छी तरह पकाई गयी दाल स्वर्ण क रग की तरह पीली हो जाती है (काचनच्छायापलापै सूपै, ४०१)।

३ शष्कुली (५१२)—खस्ता पूडी शष्कुली चावल के आटे मे तिल मिला कर घी अथवा तेल में पकाई जाती थी। यह कई प्रकार की बनती थी। बृहत्-सहिता (७६, ९) में कामोद्दीपन करने वाली शष्कुली का उल्लेख है। अगविज्जा (पृ० १८२) में दीर्घ शष्कुलि का उल्लेख है।[२६] सोमदेव ने काजी के साथ शष्कुली खाने का निषेध किया है।[२७] आगरा में अभी भी सावन-भादो में यह बनाई जाती है।

४ समिध (या सामिता) (५१६)—गेहूँ के आँटे की लप्सी सामिता गेहूँ के आटे मे मूँग भरकर बनाया गया खाद्य था (सुश्रुत, ४६,३९८)।[२८]

५. यवागू (६९, ८८ उत्त०) यवागू वैदिक काल से भारतीय भोजन का अङ्ग रही है। डॉ० ओमप्रकाश ने प्राचीन साहित्य के आधार पर इसके विषय में इस प्रकार जानकारी दी है—यजुर्वेद के अनुसार यवागू सम्भवत जौ की बनती थी। महावग्ग (६, २८, ५) में इसे स्वास्थ्यकारक खाद्यान्न माना है। यवागू का एक विशेष प्रकार त्रिकटुक बीमारी में उपयोग किया जाता था। पाणिनि ने दो प्रकार की यवागू बतायी है—(१) पेया, (२) विलेपी। विलेपी को पाणिनि ने नखपच कहा है। अङ्गविज्जा (पृ० १७९) में दूध, मक्खन तथा तेल डालकर बनायी गयी यवागू का उल्लेख है। सुश्रुत (४६, ३७६) ने फलो के रस से बनी यवागू को खाड यवागू कहा है।[२९]

---

२६ ओमप्रकाश—फूड एण्ड ड्रिंक इन शिएन्ट इडिया, पृ० २६१
[२]७ यशस्तिलक पृ० ५१२
२८ उद्धृत, ओमप्रकाश—वही पृ० २६१
२९ ओमप्रकाश—वही, पृ० २६४

सोमदेव ने यवागू सामान्य (८८) तथा अपामार्ग यवागू (६९) का उल्लेख किया है। वसन्तिका कहती है कि मैं स्वप्न में यवागू बन गयी तथा माँ के द्वारा श्राद्ध के लिए आमन्त्रित ब्राह्मणों ने मुझे खा लिया।[30] सोमदेव ने अपामार्ग यवागू को पचाना मुश्किल बताया है।[31]

६ मोदक (८८, उत्त०)—लड्डू चावल, गेहूँ अथवा दाल के आटे को भून कर घी, चीनी या गुड डाल कर गेंद के समान बनाए गये मिष्ठान्न को मोदक कहते थे।[32] प्राचीन काल से मोदक बनाने का यही ढंग सुरक्षित चला आ रहा है।

७ परमान्न (४०२) यशस्तिलक में परमान्न को अभिनव अङ्गना-सङ्गम की तरह अत्यन्त स्वादयुक्त तथा शर्करायुक्त कहा गया है।[33] परमान्न चार भाग चावलों को बारह भाग दूध में पका कर उसमें छह भाग मक्खन तथा तीन भाग गुड या शर्करा मिला कर बनाया जाता था। (अङ्गविज्जा, पृ० २२०, भोजन-कुतूहल, पृ० २८)।[34]

८. खाण्डव (४०२) खाण्डव को यशस्तिलक में नर्तकी के विलास की तरह नेत्र, नासिका तथा रसना को आनन्द देने वाला कहा है।[35] रामायण के उत्तरकाण्ड में यज्ञ के उपरान्त विभिन्न प्रकार के गौड (गुड से बने पदार्थ तथा खाण्डवों (खाण्ड से बने पदार्थों) को बाँटने का उल्लेख है।[36] महाभारत में भी खाण्डव का उल्लेख है।[37] अष्टांगसंग्रह (सू० ७) में इसे एक प्रकार का मुरब्बा कहा है। डॉ० ओमप्रकाश ने इन उल्लेखों का उपयोग करके भी खाण्डव का अत्यन्त सीधा-सादा अर्थ खाण्ड की मिठाई किया है।[38] सोमदेव की साक्षी से

---

३० स्वप्ने किलाहं यवागूरिव संवृतास्मि, भुक्ता च मन्मातुः श्राद्धामन्त्रितैर्भूदेवैः।
—पृ० ८८ उत्त०

३१ अपामार्गयवागूरिव लब्धापि न शक्यते परिणमयितुम्।—पृ० ६९ उत्त०

३२. ओमप्रकाश, वही, पृ० २८९

३३ अभिनवाङ्गनासङ्गमैरिवातीवस्वादुभिः शर्करासंपर्कसमापन्नैः परमान्नैः।
—पृ० ४०२

३४ ओमप्रकाश, वही, पृ० २८९, ९०

३५ लासिकाविलासैरिव मनोहरैः समानीतनेत्रनासारसनानन्दभावैः खाण्डवैः।
—पृ० ४०१, ४०२

३६ विविधानि च गौडानि खाण्डवानि तथैव च।—रामायण, उत्त० ९२।१२

३७ भक्ष्यखाण्डवरागाणाम्।—महाभारत, १४, ८९, ४१

३८ ओमप्रकाश, वही, पृ० २८७

तो खाण्डव की पहचान आयुर्वेदिक ग्रन्थो में आनेवाले 'पाडव' मे करना चाहिए।[३९] पाडव में खट्टा, मीठा स्पष्ट प्रतीत होता था तथा कसैला और नमकीन कम। लगता है खाड की मात्रा अधिक होने के कारण यह खाण्डव कहा जाने लगा।

९ रसाल (७९ उत्त०)—शिखरणी सोमदेव ने रसाल को 'सङ्कीर्णरसा' कहा है।[४०] अच्छी तरह जमे हुए दही मे सफेद चीनी, घी, मधु तथा सोंठ और कालीमिर्च का चूर्ण कपडछन करके डालकर कर्पूर से सुगन्धित करके रसाल तैयार किया जाता था।[४१]

१० आमिक्षा (३२४) उबाले गये दूध में दही डालकर आमिक्षा बनता था (शृते क्षीरे दधिक्षिप्तमामिक्षा कथ्यते बुधै, स० टी०)। आमिक्षा और पृषदाज्य की अग्नि में आहुति दी जाती थी (पृषदाज्येनामिक्षया च समेधितमहसम्, वही)। आमिक्षा और पृषदाज्य दोनो वैदिक शब्द थे। यजुर्वेद संहिताओं तथा मत्सय-ब्राह्मण में इसके अनेक उल्लेख आते हैं।[४२]

११. पक्वान्न (४०२)—पकवान पक्वान्न के लिए सोमदेव ने प्रियतमा के अधरो के समान स्वादयुक्त कहा है (प्रियतमाधरैरिव स्वादमानै पक्वान्नै, वही)। पक्वान्न का प्रयोग सामान्य रूप से घृत या तेल में बने हुए पकवानो के लिए हुआ है।

१२. अवदश मन को प्रीति उत्पन्न करने वाली रसदार सब्जियो को सोमदेव ने स्त्रियो के कैतव की उपमा दी है।[४३] श्रुतसागर ने अवदश का अर्थ भक्ति-

---

३९ चरक० सू० २७।२८०, सुश्रुत सू० ४६।३७८

४० रसालामिव सकीर्णरसासरालाम्।—पृ० ७९ उत्त०

४१ अर्धाढक सुचिरपर्युषितस्य दध्न खण्डस्य षोडशपलानि शशिप्रभस्य।
सर्पि पल मधुपल मरिचद्विकर्ष शुण्ठ्या पलार्धमपि चार्धपल चतुर्णाम्॥
श्लक्ष्णे पटे ललनया मृदुपाणिघृष्टा कर्पूरधूलिसुरभीकृतभाण्डसंस्था।
एषा वृकोदरकृता सरसा रसाला यास्वादिता भगवता मधुसूदनेन॥
—उद्धृत —वही, स० टी०
अपक्वतक्र सव्योष चतुर्जातगुडकम्। सजीरक रसाल स्यान्मज्जिका शिखरिणी॥
सव्योषम शुण्ठीपिप्पलीमरिचयुक्तम्। चतुर्जातम् एलालवगकक्कोलनागपुष्पाणि॥
वैजयन्ती उद्धृत, ओमप्रकाश—वही, पृ० १०२, फुटनोट ३

४२ ओमप्रकाश—वही, पृ० २८४

४३, स्त्रीकैतवैरिवजनितस्वान्तप्रीतिभिर्बहुरसवशैरवदशै।—पृ० ४०१

सिक्तसयुक्तवनस्पतिव्यजन किया है।[४४] मानसोल्लास में व्यजन के बारे में कहा है कि—चावल के धोवन में चिचा, दही, मट्ठा तथा चीनी मिलाकर इलायची का चूर्ण तथा अदरख का रस मिलाए तथा हीग का छौंक लगाए, उसे व्यजन कहते है।[४५]

१३ उपदश (४०४)—सब्जी
१४ सर्पिपिस्नात (५२७)—घी मे तले गये पदार्थ
१५ अगारपाचित (५१७)—अङ्गारो पर पकाए गये पदार्थ
१६ दध्नापरिप्लुत (५१६)—दही में डूबे हुए पदार्थ
१७ पयसा विशुष्क (५१६)—सूखी सब्जी आदि
१८ पर्पट (५१६)—पापड

सोमदेव ने अमीर तथा गरीब दोनो परिवारो के खान-पान का सुन्दर चित्र खीचा है।

अमीर परिवारो में दीदिवि, अनेक प्रकार की दाले, प्रचुर मात्रा में आज्य, रसीले अवदश, खाण्डव, पक्वान्न, दही, दुग्ध, परमान्न आदि खाने-पीने का प्रचार था। जल भी कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्यो से युक्त करके पीते थे।[४६] सोमदेव ने अत्यन्त मनोरजक ढग से इस प्रसग को प्रस्तुत किया है—

"देशान्तर प्रवास के बाद दूत लौटा। सम्राट ने परिहास में पूछा—'शखनक, तुम्हारी वह तोद कहाँ गयी?' शखनक बोला—देव, तोद हम गरीबो के कहाँ रखी, तोद तो उनकी फूटती है, जिनको रोज-रोज कामिनी-कटाक्षो की तरह लम्बे-लम्बे एव उज्ज्वल दीदिवि (सुगन्धित चावलो का भात) खाने को मिलते हैं, जिनको विरहणियो के हृदयो के समान गरम-गरम तथा सोने के रग को मात करनेवाली दाले उपलब्ध होती है, कान्ता के मुख की तरह प्राजलि-पेय सुगन्ध वाला प्रचुर मात्रा में आज्य प्राप्त होता है, धनी के कैतवो के समान मन को प्रसन्न करने वाले रसीले अवदश मिलते है, नर्तकी के विलास की तरह मनोहर नेत्र,

---

४४ अवदशै शालनकै भक्तिसिक्तसयुक्तवनस्पतिव्यजनै।—वही, स० टी०

४५ तण्डुलक्षालित तोय चिंचाम्लेन विमिश्रितम्।
ईषत्तक्रेण सयुक्त सितया सह योजितम्॥
एलाचूर्णसमायुक्तमार्द्रकस्य रसेन च।
धूपित हिंगुना सम्यक् व्यजन परिकीर्तितम्॥
—मानसोल्लास, भा० ३, १५७८ ७९

४६ पृ० ४१५

नासिका तथा रसना को आनन्द प्रदान करने वाले खाण्डव प्राप्त होते हैं, प्रियतमा के अधरो के समान आस्वादन करने योग्य पक्वान्न उपलब्ध होते है, तरुणी के पयोधरो के समान सुजाताभोग एव स्तब्ध (कठोर) दही मिलता है, प्रणयिनी के विलोकन की तरह मधुरकान्ति एव स्निग्ध दुग्ध उपलब्ध होता है, अभिनव अगना की तरह अतीव स्वादु शर्करायुक्त परमान्न प्राप्त होते है, तथा मैथुनरस-रहस्य की तरह सम्पूर्ण शरीर के सन्ताप को दूर करने वाला कर्पूरयुक्त जल पीने को मिलता है।"[४७]

गरीब परिवारो में यवनाल का भात, राजमाष का दाल, अलसी आदि का तेल, काँजी, मट्ठा तथा अनेक प्रकार के फल एव पत्तो के साग खाने का रिवाज था।[४८] उपर्युक्त वर्णन की तरह सोमदेव ने एक गरीब परिवार के खान-पान का भी चित्र प्रस्तुत किया है। सम्राट ने शखनक से पूछा—"आज कही हस्तमुख सयोग हुआ या नहीं ?" शखनक बोला—"देव, हुआ है। सुनिए—मक्खी के मुण्डो की तरह काले-काले तुपयुक्त गन्दे, पुराने, टूटे यवनालो का भात मिला, उसमे भी अनेक ककण थे, पिछले दिन की राजमाष की दाल मिली, जिसमें से अत्यन्त दुर्गन्ध आती थी, उसमे चूहे के मूत्र की तरह जरा-सा अलसी का तेल टपका दिया था, अधपके ऐवारु की बहुत सारी सब्जी मिली, आधे राँधे गये अलाबु की बहुत-सी फाँकें तथा कुछ पके हुए कर्कारु के कडे-कडे टुकडे मिले, बडे-बडे बेल, मूली, चञ्चु, बिना फूटी कचरियाँ, कच्चे अर्क, अग्निदमन, रिंगिणी-फल, अगस्ति, आम्र, आम्रातक, पिचुमन्द तथा कन्दल उपलब्ध हुए, कई दिनो की माँग-माँग कर इकट्ठी की गयी आम्लखलक मिली, खूब पके, बडे-बडे बैंगन, सोभा-जन, कन्द, सालनक, एरण्ड, पलाण्डु, मुण्डिका, वल्लक, रालका, तथा कोकुन्द प्राप्त हुए, बहुत-सी राई डाली हुई काजी तथा खारा पानी पीने को मिला। मुझसे कुछ भी नहीं खाया गया, न भूख मिटी। उसी की घरवाली ने छिपाकर रखा हुआ थोडा-सा श्यामाक का भात तथा खट्टे दही का मट्ठा दिया, जिससे जिन्दा बचा रहा।"[४९]

मासाहार

सोमदेव जैन साधु थे। अहिंसा के चरम विकास में आस्था रखने वाला

---

४७ पृ० ४०२

४८ पृ० ४०३

४९ वही

जैनधर्म मासाहार का स्पष्ट निषेध करता है, यही कारण है कि सोमदेव ने भी मासाहार का घोर विरोध किया है। इतना होने पर भी यह नही माना जा सकता कि सोमदेव के युग मे मासाहार नही था। यशस्तिलक में ऐसे अनेक प्रसग आए हैं जिनसे मासाहार का पता चलता है।

कौल-कापालिक सम्प्रदायो मे मासाहार और मद्य का व्यवहार धार्मिक क्रियाओ के रूप में अनुमत था,[५०] इसलिए उन सम्प्रदायो मे मास का व्यवहार स्वाभाविक था। जलचर, थलचर तथा नभचर सभी प्राणियो का मास खाया जाता था। देवी के नाम पर तो ये मनुष्य तक की वलि कर देते थे। बहुत सम्भव है कि प्रसाद के रूप में मनुष्य का भी मास खा लेते हो। अपना मास काट काट-काटकर क्रय-विक्रय करने का उल्लेख है।[५१]

चण्डमारी के मन्दिर में वलि के लिए निम्नलिखित पशु-पक्षी लाए गये थे।[५२]

(१) मेष, महिष, मय, मातग (गज), मितद्रु (अश्व)।

(२) कुम्भीर, मकर, सालूर (मेंढक), कुलीर (केकडा), कमठ और पाठीन।

(३) भेरुण्ड, क्रौंच, कोक, कुकुंट, कुरर, कलहस।

(४) चमर, चमूरु, हरिण, हरि (सिंह), वृक, वराह, वानर, गोखुर।

कौलो में तो कच्चे मास खाने तक का रिवाज था।[५३]

क्षत्रिय तथा ब्राह्मण जातियो में भी मासाहार का चलन था। यशस्तिलक में राजमाता कहती है कि पिष्टकुक्कुट की वलि देकर उसके अवशिष्ट भाग को माम मानकर हमारे साथ खाओ।[५४]

अमृतमति तो अत्यन्त मासप्रिय थी। जिस मेमने को अतिशय प्यार के साथ राजभवन मे पाला गया था उसे भी उसने नही वचने दिया।[५५]

---

५०. रण्डाचण्डा दिक्खिया धम्मदारा मज्जं मस पिज्जए खज्जए च।
भिक्खा भोज्ज चम्मखण्ड च सेज्जा कोलो धम्मो कस्स न होइ रम्मो॥
—कर्पूरमजरी, १।२३

मज्ज मस मिट्ठ भक्खह भक्खिय जीवसोक्ख च।
कउले धम्मे विसरे रम्मे त जि हो सग्गमोक्ख॥—भावसग्रहं, १८३

५१ क्रियविक्रीयमाणस्ववपुर्वल्लूरम्।—यश० पृ० ४६

५२ पृ० १४४

५३ पिशुरापितजरूथम्‌खरकपालशवलम्।—पृ० ४८

५४ पिष्टकुक्कुटेन वलिमुपकल्प्य तदवशिष्ट पिष्ट मासमिति च परिकल्प्य मया सहावश्य प्राशनीयम्।—पृ० १३५ उत्त०

५५ जागलभक्षणाक्षिप्तचित्तया।—पृ० २२७ उत्त०

यशोमति की महारानी कुसुमावली को दोहद उत्पन्न हुआ था कि भोजनालय में मास नही आना चाहिए।[५६] सम्राट के भोजनालय में मास पकाने की शिक्षा (पिशितपाकोपदेश, २२२ उत्त०) देनेवाले विद्यमान थे। इस सबसे स्पष्ट है कि क्षत्रिय परिवारो में मास का व्यवहार होता था।

ब्राह्मणो में साधारणतया मासभक्षण का रिवाज हो या नही, यज्ञ और श्राद्ध के नाम पर मास खाने का अत्यधिक प्रचार था। सम्राट के यहाँ जब विशाल मत्स्य और मगर पकड कर लाए तो उन्हे देख कर सम्राट ने उन्हे पितरो के सतर्पण के लिए ब्राह्मणो को दे दिया।[५७] इतना ही नही, वे सब प्रतिदिन उनमें से अपने उपयोग के योग्य मास काटते थे।[५८]

एक कथा में याज्ञिक पर आक्षेप किया गया है कि उसने यज्ञ के नाम पर अनेक निरीह पशुओ को खा डाला।[५९]

सोमदेव ने वैदिक साहित्य से ऐसे अनेक पद्य उद्धत किये है, जिनमे यज्ञ तथा श्राद्ध में मास के प्रयोग का पता चलता है।

मनु ने मधुपर्क, यज्ञ तथा पितृ एव देवता के निमित्त मास का प्रयोग शास्त्र सम्मत बताया है।[६०] यज्ञ के लिए मास प्रयोग के समर्थन में वैदिक मान्यताओ का विस्तार से वर्णन किया है।[६१] मास के समर्थको का तो यहाँ तक कहना है कि जो व्यक्ति मास के बिना भोजन करता है, क्या वह गोबर नही खाता।[६२]

श्राद्ध में मास के विवेचन के लिए सोमदेव ने मनुस्मृति के पाँच पद्य (३।२६७-२७१) उद्धृत किये है, जिनमें कहा गया है कि पितृ लोक मात्स्य, हारिण, औरभ, शाकुनि छाग, पार्प, एण, रोरव, वाराह, माहिष, शश, कूर्म, गव्यण,

५६ देव, प्रतिबन्ध्यता महानसेषु क्रव्यागम।—पृ० २६०, उत्त०

५७ महीपतिरवलोक्य पितृगतर्पणार्थं द्विजसमाजसत्ररसवतीकाराय समर्पयामास।
—पृ० २१८ उत्त०

५८ तत्र च तदुपयोगमात्रतया प्रत्यहमुत्कृत्यमानकायैकदेश।—वही

५९ अन्ये खलु ते वराकतनय। मखमिषेण भवता भक्षिता।—पृ० १३२ उत्त०

६० मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।
अत्रैवपशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनु॥—पृ० ९० उत्त०। मनु० ५।४१

६१ वही, पृ० ११६–१८

६२ ये भुजते मासरसेन हीन ते भुजते किं नु न गोमयेन।—पृ० १२६ उत्त०

पायस तथा वार्धीरण मास से क्रमश दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नव, दश, ग्यारह पूरा वर्ष तथा बारह वर्ष तक के लिए तृप्त होते हैं।[६३]

छोटी जातियो में भी मास का व्यवहार रहा होगा, किन्तु उसके उल्लेख नाम मात्र को ही है। चण्डकर्मा मुर्गी पालता था। एक प्रसग में वह मुनिराज के समक्ष कहता है कि हिंसा हमारा कुल धर्म है।[६४] सम्भवत धीवर (२१६, ३३५, उत्त०) चर्मकार (१२५), चाण्डाल (२५४), अन्त्यज (४५७), भाल (८५७), शबर (२३१ उत्त०), किरात (२२० उत्त०), वनेचर (५६) तथा निषादा (६०२, उत्त०) में भी मास का व्यवहार होता था।

मासाहार निषेध—सोमदेव ने मासाहार का घोर विरोध किया है। उनका कहना है कि लोग इन्द्रिय लोलुपता तथा अपने स्वार्थ के कारण मास खाते हैं, उसके साथ धर्म और आगम को व्यर्थ ही जोड रखा है।[६५] सोमदेव ने उद्धरण देकर इस बात को सिद्ध किया है कि तिल या सरसो के बराबर भी मास खानेवाला यावच्चन्द्रदिवाकर नरक की यातनाएँ सहता है।[६६] मास खाने के सकल्प मात्र से होने वाले दुष्परिणाम का वर्णन एक लम्बी कथा में किया गया है।[६७] सम्पूर्ण यशस्तिलक भी एक प्रकार से इसी परिणाम की कहानी है।

---

६३ द्वौमासौ मत्स्यमासेन त्रीन्मासा हारिणेन च।
औरभ्रेणाथ चतुर शाकुनेनेव पञ्च वै॥
षण्मासाश्छागमासेन पार्षतेन हि सप्त वै।
अष्टावैणस्य मासेन रौरवेण नवैव तु॥
दशमासास्तु तृप्यन्ति वाराहमाहिषामिषै।
शशकूर्मस्य मासेन मासानेकादशैव तु॥
सवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन वा।
वार्धीणस्य मासेन तु तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी॥—पृ० १२७ १२८ उत्त०

६४ हिंसास्माक कुलधर्म।—पृ० २५८ उत्त०

६५ मास जिघत्सेयदि काऽपि लोक किमागमस्तत्र निदर्शनीय।
लोलेन्द्रियैर्लोकमनोनुकूलै स्वाजीवनायागम एष सृष्ट॥
—पृ० १२० उत्त०

६६ तिलसर्षपमात्रं यो मासमश्नाति मानव।
स श्वभ्रान्न निवर्तेत यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
—पृ० १२० उत्त०

६७ अध्याय ७ कल्प २४

मासाहार समर्थक कहते हैं कि मुद्ग (मूग) और माष (उडद) आदि भी तो मय (ऊँट) और मेष (भेड) आदि के समान ही जीवस्थान होने से मास ही हैं। उनमें अन्तर क्या है।[६८]

सोमदेव ने इस कथन का व्यावहारिक पृष्ठभूमि पर दृढतापूर्वक खण्डन किया है। उन्होने लिखा है कि यह जरूरी नहीं कि जो जीव शरीर हो वह मास ही हो, इसके विपरीत मास तो जीव-शरीर है ही, उसी प्रकार जिस प्रकार नीम का वृक्ष वृक्ष है ही, किन्तु जो वृक्ष है वह नीम ही हो, यह जरूरी नही। गाय का दूध शुद्ध है, किन्तु गोमास नहीं। सर्प का रत्न विष को नाश करता है, किन्तु विष विषदकारक है। किसी-किसी वृक्ष के पत्र तो आयुष्य के कारण होते है, किन्तु जडें मृत्युकारी।[६९]

---

६८ जीवयोग्या विशेषेण मयमेषादिकायवत्।
मुद्गमाषादिकायोऽपि मासमित्यपरे जगु ॥—पृ० ३३० उत्त०

६९ मास जीवशरीर जीवशरीर भवेन्न वा मासम्।
यद्वन्निम्बो वृक्षो वृक्षस्तु भवेन्न वा निम्ब ॥—पृ० ३३१ उत्त०

पायस तथा वार्धीण मास से क्रमश दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नव, दश, ग्यारह पूरा वर्ष तथा बारह वर्ष तक के लिए तृप्त होते है।[६३]

छोटी जातियो में भी मास का व्यवहार रहा होगा, किन्तु उसके उल्लेख नाम मात्र को ही है। चण्डकर्मा मुर्गी पालता था। एक प्रसग में वह मुनिराज के समक्ष कहता है कि हिंसा हमारा कुल धर्म है।[६४] सम्भवत धीवर (२१६, ३३५, उत्त०) चर्मकार (१२५), चाण्डाल (२५४), अन्त्यज (४५७), भाल (४५७), शबर (२३१ उत्त०), किरात (२२० उत्त०), वनेचर (५६) तथा निषादो (६०२, उत्त०) में भी मास का व्यवहार होता था।

मासाहार निषेध—सोमदेव ने मासाहार का घोर विरोध किया है। उनका कहना है कि लोग इन्द्रिय लोलुपता तथा अपने स्वार्थ के कारण मास खाते है, उसके साथ धर्म और आगम को व्यर्थ ही जोड रखा है।[६५] सोमदेव ने उद्धरण देकर इस बात को सिद्ध किया है कि तिल या सरसो के बराबर भी मास खानेवाला यावच्चन्द्रदिवाकर नरक की यातनाएँ सहता है।[६६] मास खाने के सकल्प मात्र से होने वाले दुष्परिणाम का वर्णन एक लम्बी कथा में किया गया है।[६७] सम्पूर्ण यशस्तिलक भी एक प्रकार से इसी परिणाम की कहानी है।

---

६३ द्वौमासौ मत्स्यमासेन त्रीन्मासान्हारिणेन च।
औरभ्रेणाथ चतुर शाकुनेनैव पञ्च वै॥
षट्मासांश्छागमासेन पार्षतेन हि सप्त वै।
अष्टावेणस्य मासेन रौरवेण नवैव तु॥
दशमासांस्तु तृप्यन्ति वाराहमहिषामिषै।
शशकूर्मस्य मासेन मासानेकादशैव तु॥
सवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन वा।
वार्धीणस्य मासेन तु प्तिर्द्वादशवार्षिकी॥—पृ० १२७ १२८ उत्त०

६४ हिंसास्माक कुलधर्म।—पृ० २५८ उत्त०

६५ मास जिघत्सेयदि कोऽपि लोक किमागमस्तत्र निदर्शनीय।
लोलेन्द्रियैर्लोकमनोनुकूलै स्वाजीवनायागम एष सृष्ट॥
—पृ० १३० उत्त०

६६ तिलसर्षपमात्र यो मासमश्नाति मानव।
स श्वभ्रान्न निवर्तेत यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
—पृ० १३० उत्त०

६७ अध्याय ७, कल्प २४

मासाहार समर्थक कहते हैं कि मुद्ग (मूग) और माप (उडद) आदि भी तो मय (ऊँट) और मेष (भेड) आदि के समान ही जीवस्थान होने से माम ही है। उनमें अन्तर क्या है।[६८]

सोमदेव ने इस कथन का व्यावहारिक पृष्ठभूमि पर दृढतापूर्वक खण्डन किया है। उन्होने लिखा है कि यह जरूरी नही कि जो जीव शरीर हो वह मास ही हो, इसके विपरीत मास तो जीव-शरीर है ही, उसी प्रकार जिस प्रकार नीम का वृक्ष वृक्ष है ही, किन्तु जो वृक्ष है वह नीम ही हो, यह जरूरी नही। गाय का दूध शुद्ध है, किन्तु गोमास नही। सर्प का रत्न विष को नाश करता है, किन्तु विप विपदकारक है। किसी-किसी वृक्ष के पत्र तो आयुष्य के कारण होते हैं, किन्तु जडें मृत्युकारी।[६९]

---

६८ जीवयोग्या विशेषेण मयमेषादिकायवत्।
मुद्गमाषादिकायोऽपि मासमित्यपरे जगु ॥—पृ० ३३० उत्त०

६९ मास जीवशरीर जीवशरीर भवेन्न वा मासम्।
यद्न्निम्बो वृक्षो वृक्षस्तु भवेन्न वा निम्ब ॥—पृ० ३३१ उत्त०

परिच्छेद छह

स्वास्थ्य, रोग और उनकी परिचर्या

खान-पान और स्वास्थ्य का अनन्य सम्बन्ध है। उपनिषदो में आता है कि अन्न से ही व्यक्ति दृष्टा, श्रोता, मन्ता, वोद्धा, कर्ता और विज्ञाता बनता है। आहार शुद्धि पर विचार शुद्धि आधारित है। विचार शुद्धि से स्मृति और स्मृति से मोक्ष होता है। अन्न से ही प्रजा उत्पन्न होती है और जीती है।[1]

इसी तरह जल को अमृत और विप दोनो कहा गया है, उचित समय पर उचित मात्रा में पिया गया जल अमृत है और अनुचित समय में अव्यवस्थित रूप से पिया गया विप।[2] इसलिए स्वास्थ्य के लिए खान-पान में सन्तुलन एव व्यवस्था आवश्यक है।

मनुष्यो की प्रकृति विभिन्न प्रकार की होती है। ऋतु परिवतन के साथ प्रकृति में भी परिवर्तन होता रहता है। इसलिए सोमदेव ने विभिन्न प्रकृति तथा ऋतुओ के अनुसार खान-पान की जानकारी दी है।[3]

जठराग्नि—जठराग्नि चार प्रकार की होती है—मन्द, तीक्ष्ण, विपम और सम। मन्द अग्नि वाले को लघु (हलका), तीक्ष्ण अग्नि वाले को गुरु (भारी) विपम अग्नि वाले को स्निग्ध तथा सम अग्नि वाले को सम पदार्थ खाना चाहिए।

प्रकृति परिवर्तन—ऋतुओ के अनुसार मनुष्य की प्रकृति में भी परिवर्तन होता रहता है, वात, पित तथा कफ कभी सचित, कभी प्रकुपित (जाग्रत) तथा

---

१ अथान्नस्यै दृष्टा भवति, श्रोता भवति, मन्ता भवति, वोद्धा भवति, कर्त्ता भवति, विज्ञाता भवति।—छान्दो० ७, ९, १
आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि, सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृति, स्मृतिलम्भ सर्वग्रन्थीना विप्रमोक्ष।—वही, ७, २६, २
अन्नाद्दै प्रजा प्रजायन्ते—अथान्नेनैव जीवन्ति।—तैत्तरीय० २, २
उद्धृत, डॉ० ओमप्रकाश—फूड एण्ड ड्रिंक इन एन्शियण्ट इंडिया, इंट्रोडक्शन, फुटनोट

२ अमृत विपमिति चेनद् सलिल निगदन्ति विदितनस्वाथ।
युक्त्या सेवितमभृत विपमेनद्युक्तिन पीतम्।—यश० ३।३६८

३ पृ० ५१३, श्लोक ३४७

कभी प्रशान्त होते हैं, इसलिए विभिन्न ऋतुओं के अनुसार ही भोजन करना चाहिए वात आदि के सचय, प्रकोप तथा प्रशमन का क्रम निम्न प्रकार है[४]—

दोष नाम	सचय	प्रकोप	प्रशमन
कफ	शिशिर	वसन्त	ग्रीष्म
वात	ग्रीष्म	वर्षा	शरद
पित्त	वर्षा	शरद	हेमन्त

ऋतु-चर्या—उपर्युक्त प्रकार से प्रकृति परिवर्तन को ध्यान में रखकर भोजन-पान की व्यवस्था बनाना चाहिए। यशस्तिलक में विभिन्न ऋतुओं के भोजन-पान के लिए निम्न प्रकार जानकारी दी है[५]—

ऋतु	खाद्य-पेय
शरद	स्वादु (मधुर), तिक्त, काषाय
वर्षा	मधुर, नमकीन, अम्ल (खट्टा)
वसन्त	तीक्ष्ण, तिल, काषाय
ग्रीष्म	प्रशम रस वाले अन्न

इस प्रकार के भोजन-पान के लिए सोमदेव ने ऋतुओं के अनुसार खान-पान तथा उपभोग्य सामग्री का विवरण इस प्रकार दिया है[६]—

ऋतु	खाद्य-पेय तथा उपभोग्य सामग्री
शिशिर	ताजा भोजन, क्षीर (दुग्ध), उडद, इक्षु, दधि, घृत और तैल के बने पदार्थ, पुरन्ध्री।
वसन्त	जौ और गेहूँ का बना प्राय रूक्ष भोजन
ग्रीष्म	सुगन्धित चावलो का भात, घी डली हुई मूँग की दाल, बिप (कमल नाल), किसलय (मधुर पल्लव), कन्द, सत्तू, पानक (ठडाई) आम, नारियल का पानी तथा चीनी डला पानी या दूध।

४ शिशिरसुरभिधर्मेष्वातपाम्भ शरत्सु, क्षितिप जलशरद्धेमन्तकालेषु चैते।
कफपवनहुताशा सचय च प्रकोप प्रशममिह भजन्ते जन्मभाजा क्रमेण॥
—पृ० ५१४, श्लोक ३४८

५ पृ० ५१४, श्लोक ३४६

६ पृ० ५१४, श्लोक ३५०-५४

वर्षा	पुराने चावल, जौ तथा गेहूँ के बने पदार्थ ।
शरद	घृत, मूँग, शालि, लप्सी, दूध के बने पदार्थ (खीर आदि), परवल, दाख (अगूर), आँवला, ठडी छाया, मधुर रस वाले पदार्थ, कन्द, कापल, रात्रि में चन्द्रकिरण ।

उपर्युक्त विवेचन के बाद सोमदेव ने कहा है कि ऋतुओ के अनुसार रसो को कम ज्यादा मात्रा में उपयोग में लाना चाहिए। वैसे छह रसो का व्यवहार सवदा सुखकर होता है।[७]

भोजन-पान के सम्बन्ध मे अन्य जानकारी

भोजन का समय—भोजन के समय के विपय मे सोमदेव ने लिखा है कि चारायण के अनुसार रात्रि में भोजन करना चाहिए, निमि के अनुसार सूर्यास्त होने पर, घिपण के अनुसार दोपहर को तथा चरक के अनुसार प्राव काल, किन्तु मेरे विचार से तो भोजन का समय वही है जब भूख लगी हो। भूख के विना ही जो लालचवश आकठ भोजन करता है, वह व्याधियो को सोये हुए सर्पो की तरह जगाता है।[८]

कुछ लोगो का कहना है कि जो चक्रवाक पक्षी की तरह दिन में मैथुन करते हैं वे रात्रि में भोजन कर सकते है, किन्तु जो चकोर की तरह रात्रि मे रमण करते है उन्हे दिन में भोजन करना चाहिए।[९]

रात्रि में भोजन का निपव करने वाले कुछ लोगो का कहना है कि सूर्य के चले जाने से हृदय कमल तथा नाभिकमल वन्द हो जाते है, इसलिए रात्रि मे नही खाना चाहिए।[१०]

विशेष—देवपूजा, भोजन तथा शयन खुले आकाश मे, अन्धेरे में, सन्ध्याकाल में तथा विना वितान (चदोवे) वाले घर में नही करना चाहिए।[११]

सह भोजन—लोगो के साथ में भोजन करते समय उनके पहले ही भोजन समाप्त कर देना चाहिए अन्यथा उनका दृष्टि-विप (नजर) लग जाता है।[१२]

---

८ पृ० ५०६, श्लोक ३२८, ३२६

९ पृ० ५१०, श्लोक ३३०

१० पृ० वही, श्लोक ३३१

११ पृ० वही, श्लोक ३३२

१२ पृ० वही, श्लोक ३३'

आहार, निद्रा और मलोत्सर्ग के समय शंकित तथा बाधायुक्त मन होने पर अनेक प्रकार के बड़े-बड़े रोग हो जाते हैं।[१३]

भोजन के समय वर्जनीय व्यक्ति—भोजन करते समय उच्छिष्ट भोजी, दुष्ट प्रकृति, रोगी, भूखा तथा निन्दनीय व्यक्ति पास में नहीं होना चाहिए।[१४]

अभोज्य पदार्थ—विवर्ण, अपक्व, सड़ा-गला, विगन्ध (जिसकी गन्ध बदल गयी हो), विरस, अतिजीर्ण, अहितकर तथा अशुद्ध अन्न नहीं खाना चाहिए।[१५]

भोज्य पदार्थ—हितकारी, परिमित, पक्व, नेत्र-नासा तथा रसना इन्द्रिय को प्रिय लगने वाला सुपरीक्षित भोजन न जल्दी-जल्दी और न धीरे-धीरे अर्थात् मध्यमगति से करना चाहिए।[१६]

विषयुक्त भोजन—विषयुक्त भोजन को देखकर कौआ और कोयल विकृत शब्द करने लगते है, नकुल और मयूर आनन्दित होते हैं, क्रौंच पक्षी अलसाने लगता है, ताम्रचूड (मुर्गा) रोने लगता है, तोता वमन करने लगता है, बन्दर मल कर देता है, चकोर के नेत्र लाल हो जाते हैं, हंस की चाल डगमगाने लगती है तथा भोजन पर मक्खियाँ भी नहीं बैठती। जिस तरह नमक डालने से अग्नि चटचटाती है, उसी तरह विषयुक्त अन्न के सम्पर्क से भी चटचटाने लगती है।[१७]

भोजन के विषय में अन्य नियम—पुनः गर्म किया हुआ भोजन, अंकुर निकले हुए अन्न तथा दस दिन तक काँसे के बर्तन में रखा गया घी नहीं खाना चाहिए।

दही और छाँछ के साथ केला, दूध के साथ नमक, काजी के साथ कचौड़ी (शष्कुलि), गुड़, पीपल, मधु तथा मिर्च के साथ काकमाची (मकोय) तथा मूली के साथ उड़द की दाल, दही की तरह गाढा सत्तू तथा रात्रि में कोई भी तिल विकार (तिल के बने पदार्थ) नहीं खाना चाहिए।[१८]

घृत तथा जल को छोड़कर रात्रि में बने हुए सभी पदार्थ, केश या कीटयुक्त पदार्थ तथा फिर से गरम किया गया भोजन नहीं करना चाहिए।

१३. पृ० वही, श्लोक ३३४
१४ पृ० वही, श्लोक ३३५
१५ पृ० वही, श्लोक ३३६
१६ पृ० ५१०, श्लोक ३३७
१७ पृ० वही, श्लोक ३३८ ४०
१८ पृ० वही, श्लोक ३३८–४४

अत्यशन, लघ्वशन, समशन तथा अध्यशन नही करना चाहिए । प्रत्युत बल और जीवन प्रदान करने वाला उचित भोजन करे ।

अत्यशन—भूख से अधिक खाना

लघ्वशन—भूख से कम खाना

समशन—पथ्य तथा अपथ्य दोनो खाना

अध्यशन—अजीर्ण होने पर भी खाना

इन सबका त्याग करे ।[१९]

भोजन करने की विधि—भोजन में स्वादु (मधुर) तथा स्निग्ध पदार्थ प्रारम्भ में, भारी, नमकीन तथा अम्ल (खट्टा) मध्य में, रुक्ष और द्रव पदाथ बाद (अन्त) मे खाना चाहिए । खाने के तुरन्त बाद कुछ भी नहीं खाना चाहिए ।[२०]

छोटा बैगन, कोहल (कुम्हडा), कारवेल (करेला), चिल्ली, जीवन्ती (डोडी), वास्तूल, तण्डुलीय (चौलाई), तुरन्त सेंका गया पापड, ये खाद्य सामग्री के अङ्ग है, यदि अदरख की फाकें मिल जाएँ तब तो कहना ही क्या ।[२१]

भोजन में सर्वदा चतुर्थांश साग-सब्जी खाना चाहिए। दही मे तैरते हुए (दघ्ना परिप्लुत) तथा तले हुए (पयसा विशुष्क) पदार्थ नही खाना चाहिए ।[२२] बिना उबाला गया दूध दस घडी तक तथा उबाला गया बीस घडी तक पथ्य है । दही जब तक उज्ज्वल सुगन्धित तथा रसयुक्त (रूपामोदरसाढ्य) हो, तभी तक भोज्य है ।[२३] सोमदेव कहते है कि पकवान तभी तक स्वादयुक्त लगते है जब तक अगारो पर सेंके गये घृत-स्नात (सर्पिषि स्नाता) गरमागरम पदाथ नहीं खाये जाते ।[२४]

ज्यादा मीठा खाने से मन्दाग्नि हो जाती है, अधिक नमकीन खाने से दृष्टि-मान्द्य हो जाता है तथा अधिक खटाई और तीक्ष्ण पदार्थ शरीर को जीर्ण कर देते हैं । अधिक उष्ण पदार्थ (सोठ, पीपल, मिरिच आदि) ज्यादा खाने से शरीर

१९ पृ० ५१३ श्लोक ३४५
२० पृ० वही, श्लोक ३४६
२१ पृ० ५१६, श्लोक ३५६
२२ पृ० ५१६, श्लोक ३५७
२३ पृ० ५१७, श्लोक ३५८
२४ पृ० ५१७ श्लोक ३५९

में दाह होता है तथा काषाय पदार्थ अधिक मात्रा में खाने से पित्त कुपित होता है।[२५]

भोजन के तत्काल बाद काम, कोप, आतप, आयास, यान, वाहन तथा अग्नि का सेवन नही करना चाहिए।[२६]

रात्रिशयन या निद्रा—स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त नीद लेना आवश्यक है। सुख की नीद सोकर जागने पर मन और इन्द्रियाँ प्रसन्न हो जाती हैं, पेट हलका हो जाता है तथा पाचन क्रिया ठीक रहती है।[२७] जिस तरह खुली स्थाली (बटलोई) में अन्न ठीक से नही पकता उसी प्रकार नीद लिए विना सम्यक् पाचन नही होता।[२८] अच्छी नीद लेने से श्रम भी दूर हो जाता है (निद्राविद्राणित-श्रम, ५०८)।

नीहार या मलमूत्र-विसर्जन—शौच तथा लघुशंका को वाधा होने पर उसकी निवृत्ति शीघ्र कर लेना चाहिए। प्रवाह के वेग को रोकने से भगन्दर हो जाता है।[२९]

अभ्यंग तथा उद्वर्तन—तेल-मालिश के लिए प्राचीन शब्द अभ्यंग था। अभ्यंग श्रम तथा वायु को दूर करता है, शक्ति का सञ्चार करता है तथा शरीर को दृढ (मजबूत) बनाता है।[३०] उद्वर्तन या उबटन शरीर में कान्ति लाता है, चर्बी, कफ तथा आलस को दूर करता है।[३१]

---

२५ पृ० ५१७, श्लोक ३६४-६५

२६ पृ० ५१७, श्लोक ३७३

२७. अधिगतसुखनिद्रः सुप्रसन्नेन्द्रियात्मा, सुलघुजठरवृत्तिर्भुक्तपक्तिं दधानः।

—पृ० ५०७

२८ स्थाल्या यथानावरणाननायामघट्टिताया च न साधुपाक।
अनाप्तनिद्रस्य तथा नरेन्द्र व्यायामहीनस्य च नान्नपाक॥—वही

२९ भगन्दरी स्यान्दविबन्धकाले।—पृ० ५०६

३० अभ्यंग श्रमवातह बलकर कायस्य दार्ढ्यावह।—पृ० ५०८
तुलना—अभ्यंगो वातकफहृत्क्लमशान्तिबल सुखम्।
निद्रावर्णमृदुत्वायुष्कुरुते देहपुष्टिकृत्॥
—भाव प्र० भा० १, पृ० ११५, श्लो० ६८

३१ स्यादुद्वर्तनमंगकान्तिकरण मेद कफालस्यजित्।—पृ० ५०८
तुलना—उद्वर्तन कफहर मेदोघ्न शुक्रद परम्।
बल्य शोणितकृच्चापि त्वक्प्रसादमृदुत्वकृत्॥—वही, पृ० ११६।७१

स्नान—ऋतु के अनुसार ठंडे या गरम जल से किया गया स्नान आयु को बढाता है, हृदय को प्रसन्न करता है तथा शरीर की खुजली और परिश्रम को दूर करता है।[३२]

परिश्रम करने तथा धूप में से आने के तत्काल बाद तथा इन्द्रिय और चित्त में जिस समय व्याकुलता हो उस समय स्नान तथा खान-पान नहीं करना चाहिए।[३३]

धूप मे से आकर तत्काल पानी पीने से दृष्टि मन्द हो जाती है, परिश्रम करने के तुरन्त बाद भोजन करने से वमन होने लगता है और ज्वर हो जाता है, शौच की बाधा होने पर भी भोजन करने से गुल्म हो जाता है।[३४]

स्नानोपरान्त विधिपूर्वक देवपूजा आदि कार्य करके स्वच्छ वेष धारण करे तथा प्रसन्न मन से अतिथि-सत्कार करके आप्त (विश्वस्त) व्यक्तियों के साथ उतना भोजन करे, जिससे सायकाल फिर से भूख लग जाए।[३५]

स्वच्छ वेष धारण करने तथा एकान्त में और आप्तजनों के साथ में भोजन करने के कई कारण हैं, जिनका आयुर्वेद में विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।[३६]

---

३२ आयुष्यं हृदयप्रसादि वपुषः कण्डूक्लमच्छेदि च,
स्नानं देव यथार्तुसेवितमिदं शीतैरशीतैर्जलैः ॥—पृ० ५०८
तुलना—दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमोजोबलप्रदम्।
कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृड्दाहपाप्मनुत् ॥

३३ श्रमघर्मार्तदेहानामाकुलेन्द्रियचेतसाम्।
तत्र देव द्विधा सतु स्नानपानादनक्रिया ॥—पृ० ५०८

३४ दृग्मान्द्यमागात्तपितोऽम्बुसेवी श्रान्तः कृताशो वमनज्वरार्हः।
भगन्दरी स्यद्धरितप्रकाले गुल्मी जिहत्सुर्विहिताशनश्च ॥—पृ० ५१०

३५ स्नानं विधाय विधिवत्कृतदेवकार्यः संतर्पितातिथिजनः सुमनाः सुवेषः।
आप्तैर्वृतो रहसि भोजनकृत्तथा स्यात् सायं यथा भवति भुक्तिकालोऽभिलाषः ॥
—पृ० ५१०

३६ यशस्यं काम्यमायुष्यं श्रीमदानन्दवर्धनम्।
स्वच्छं वशीकरं रुच्यं नवनिर्मलमम्बरम् ॥
कदाऽपि न जनैः सद्भिर्धार्यं मलिनमम्बरम्।
तत्तु कण्डूकृमिकरं ग्लान्यलक्ष्मीकरं परम् ॥
—भाव प्र० भा० १, पृ० ११८, श्लो० ६८, ६९

व्यायाम—पाचन क्रिया ठीक से रहे इसलिए व्यायाम करना आवश्यक है। जिस तरह बिना चलाए बटलोई मे अन्न ठीक नही पक सकता उसी तरह व्यायाम न करने पर पाचन क्रिया ठीक नही होती।[३७]

रोग और उनकी परिचर्या

यशस्तिलक में निम्नलिखित रोगो के बारे में जानकारी दी गयी है—

(१) अजीर्ण (५१९, पू०)
(२) दृग्मान्द्य (५०९, पू०, ५१८, पू०)
(३) वमन (५०९, पू०)
(४) ज्वर (५०९, पू०)
(५) भगन्दर (५०९, पू०)
(६) गुल्म (५०९, पू०)
(७) कोथ (११२ पू०)—कुष्ट
(८) कण्डू (५०८, पू०)—खुजली
(९) अग्निमान्द्य (५१८, पू०)
(१०) शरीर कृशहोना (५१८, पू०)
(११) देहदाह (५१८, पू०)
(१२) सितश्वित (उत्त०२२३)—सफेद कुष्ट, बहने वाला

अजीर्ण—अजीर्ण के लिए सामदेव ने दो नाम दिये हैं—(१) विदाहि, (२) दुर्जर।

कारण—अजीर्ण का मुख्य कारण उचित नींद न लेना तथा व्यायाम न करना है। जिस तरह खुली हुई बटलोई में बिना चलाये अन्न ठीक से नहीं पकता ठीक उसी तरह निद्रा न लेने से तथा व्यायाम न करने से पाचन क्रिया भी ठीक नहीं होती।[३८]

पितृमातृसुहृद्वैद्यपाककृद्द सबर्हिणाम्।
सारसस्य चकोरस्य भोजने दृष्टिरुत्तमा॥
आहा तु १६ कुर्यान्निर्हारमपिसर्वदा।
उभाभ्या लक्ष्म्युपेन, स्यात्प्रकाशे हीयते श्रिय॥

—वही, पृ० १२२-२३, श्लो० १२०-२२

३७ देखिए, उद्धरण संख्या २८
३८ वही

प्रकार—अजीर्ण चार प्रकार का बताया गया है—[३९]

(१) जौ इत्यादि हलके पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

(२) गेहूँ इत्यादि पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

(३) दाल इत्यादि दो दल वाले पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

(४) घृत आदि स्निग्ध पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

परिचर्या—इन चार प्रकार के अजीर्ण को दूर करने के लिए यशस्तिलक में क्रम से चार साधन बताए गये है—[४०]

(१) जौ आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए ठडा पानी पिए।

(२) गेहूँ आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए गर्म (क्वथित) जल पिए।

(३) दाल आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए अवन्तिसोम (कांजी) पिए।

(४) घृत इत्यादि से उत्पन्न अजीर्ण के लिए कालसेय (तक्र) पिए।

दृग्मान्द्य—यशस्तिलक में दृग्मान्द्य के दो कारण बताए है—नमक या नमकीन पदार्थ अधिक खाना तथा धूप में से आकर तुरन्त पानी पी लेना।[४१]

सोमदेव ने स्पष्ट रूप से दृग्मान्द्य को दूर करने के उपाय नहीं बताए, फिर भी उसके कारणों में ही दूर करने के उपायों की भी अभिव्यक्ति है। दृग्मान्द्य न हो इसके लिए व्यक्ति को उपर्युक्त दोनों बातों का बचाव रखना चाहिए।

वमन—सोमदेव ने लिखा है कि थका हुआ व्यक्ति यदि तुरन्त भोजन कर ले तो वमन होने लगता है।[४२]

ज्वर—ज्वर के लिए भी यही कारण दिया है।[४३]

भगन्दर—भगन्दर का कारण सोमदेव ने 'स्यन्दविबन्ध' अर्थात् मल के वेग को रोकना बताया है।[४४] भावप्रकाश में मल के वेग को रोकने में भगन्दर

---

३९ यवसमिथविदाहिष्वम्बुशीत निषेव्य, क्वथितमिदमुपास्य दुर्जरेऽन्ने च पिष्टे।
भवति विदलकालेऽवन्तिसोमस्य पानं घृतविकृतिषु पेयं कालसेयं सदैव॥
—पृ० ५१९

४० वही, पृ० ५१९

४१ समधिकलवणान्नप्राशनाद्दृष्टिमान्द्यम्।—पृ० ५१८
दृग्मान्द्यभागातपितोऽम्बुसेवी।—पृ० ५०६

४२ श्रान्त कृताशो वमनज्वरार्हं।—पृ० ५०१

४३ वही, पृ० ५०६

४४ भगन्दरी स्यन्दविबन्धकाले।—पृ० ५०६
तुलना—शुक्रमलमूत्रमरुद्वेगसंरोधोऽश्मरीभगन्दरगुल्माः।।८।। इतु।—गो० दि० ११

के अतिरिक्त आटोप (पेट में गुडगुड शब्द होना) शूल, परिकर्तन (गुदा में कतरने के सदृश पीडा), मलावरोध, ऊर्ध्ववात (डकार आना) तथा मुख से मल निकलने लगना आदि रोग बताए हैं।[४५]

वैद्यक शास्त्र में भगन्दर को महाभयकर रोग बताया गया है। भावप्रकाश में इसके विषय में निम्नप्रकार से जानकारी दी गयी है—

पूर्वरूप—भगन्दर जब होने वाला होता है तो कमर तथा शिर में सूई चुभने के समान पीडा, दाह तथा खुजली आदि पूर्वरूप होते हैं।[४६]

लक्षण—गुदा के पार्श्व में दो अगुल स्थान में पीडा करने वाली फटी हुई फुसियाँ इत्यादि कई प्रकार का भगन्दर होता है। भारतीय वैद्यक में पांच भेद बताए हैं—(१) वातिक, (२) पैत्तिक, (३) श्लैष्मिक, (४) सन्निपातिक तथा (५) शल्यज।[४७]

पाश्चात्य वैद्यक में भगन्दर को 'फिस्चुला इन एनो' कहते है। इनके भी कई भेद होते है।[४८]

गुल्म—यशस्तिलक मे गुल्म का कारण शौच की बाधा होने पर भी भोजन करना बताया है।[४९] भावप्रकाश में अध्यशन आदि मिथ्या आहार तथा बलवान के साथ कुश्ती लडना आदि गुल्म के कारण बताये हैं।[५०]

गुल्म हृदय तथा नाभि के बीच में सचरणशील अथवा अचल तथा बढने-घटने वाली गोलाकार ग्रन्थि को कहते हैं।[५१]

---

४५ आटोपशूलो परिकर्त्तिका च सग पुरीषस्य तथोऽर्ध्ववात ।
पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥
—भा० भा० १, पृ० १०३, श्लो० १८

४६ कटीकपालनिस्तोददाहकण्डुरुजादय ।
भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यति भगन्दरे ॥
गुदस्य द्वयगुले क्षेत्रे पार्श्वत पिण्डकार्तिकृत् ।
भिन्ना भगन्दरो ज्ञेया स च पचविधो भवेत् ॥
—वही, भाग २, चि० म० श्लो० १,२

४७ वही

४८ विस्तार के लिए देख, भाव० भा० २, पृ० ४३६

४९ गुल्मी जिहरपुर्विहिनाशनश्च ।—पृ० ५०३, पृ०

५० दुष्टवातादयोत्यर्थमिथ्याहारविहारत ।—भाव०, भाग २, गुल्मा०, श्लो० १

५१ हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थि सचारी यदि वाचल ।
वृत्तश्चयोपचयवा स गुल्म इति कीर्तित ॥—वही, श्लोक ५

प्रकार—अजीर्ण चार प्रकार का बताया गया है—[३९]

(१) जौ इत्यादि हलके पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

(२) गेहूँ इत्यादि पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

(३) दाल इत्यादि दो दल वाले पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

(४) घृत आदि स्निग्ध पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

परिचर्या—इन चार प्रकार के अजीर्ण को दूर करने के लिए यशस्तिलक मे क्रम से चार साधन बताए गये हैं—[४०]

(१) जौ आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए ठडा पानी पिए।

(२) गेहूँ आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए गर्म (क्वथित) जल पिए।

(३) दाल आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए अवन्तिसोम (काजी) पिए।

(४) घृत इत्यादि से उत्पन्न अजीर्ण के लिए कालसेय (तक्र) पिए।

दृग्मान्द्य—यशस्तिलक में दृग्मान्द्य के दो कारण बताए हैं—नमक या नमकीन पदार्थ अधिक खाना तथा धूप में से आकर तुरन्त पानी पी लेना।[४१]

सोमदेव ने स्पष्ट रूप से दृग्मान्द्य को दूर करने के उपाय नही बताए, फिर भी उसके कारणो में ही दूर करने के उपायो की भी अभिव्यक्ति है। दृग्मान्द्य न हो इसके लिए व्यक्ति को उपर्युक्त दोनो बातो का बचाव रखना चाहिए।

वमन—सोमदेव ने लिखा है कि थका हुआ व्यक्ति यदि तुरन्त भोजन कर ले तो वमन होने लगता है।[४२]

ज्वर—ज्वर के लिए भी यही कारण दिया है।[४३]

भगन्दर—भगन्दर का कारण सोमदेव ने 'स्यन्दविबन्ध' अर्थात् मल के वेग को रोकना बताया है।[४४] भावप्रकाश में मल के वेग को रोकने से भगन्दर

३९ यवसमिथविदाहिष्वम्बुशीत निषेव्य, क्वथितमिदमुपास्य दुर्जरेऽन्ने च पिष्टे।
भवति विदलकालेऽवन्तिसोमस्य पान घृतविकृतिषु पेय कालसेय सदैव॥
—पृ० ५१६

४० वही, पृ० ५१६

४१ समधिकलवणान्नप्राशनाद्दृष्टिमान्द्यम्।—पृ० ५१८
दृग्मान्द्यमागात्तपितोऽम्बुसेवी।—पृ० ५०६

४२ श्रान्त कृताशो वमनज्वरार्ह।—पृ० ५०९

४३ वही, पृ० ५०६

४४ भगन्दरी स्यन्दविबन्धकाले।—पृ० ५०६
तुलना—शुक्रमलमूत्रमरुद्वेगसरोधोऽश्मरीभगन्दरगुल्मार्शसा हेतु।—नीति० दि० ११

आटोप (पेट मे गुडगुड शब्द होना) शूल, परिकर्तन (गुदा में कतरने ा), मलावरोध, ऊर्ध्ववात (डकार आना) तथा मुख से मल निकलने रोग बताए हैं।[४५]

ास्त्र में भगन्दर को महाभयकर रोग बताया गया है। भावप्रकाश में मे निम्नप्रकार से जानकारी दी गयी है—

—भगन्दर जब होने वाला होता है तो कमर तथा शिर में सूई ान पीडा, दाह तथा खुजली आदि पूर्वरूप होते है।[४६]

—गुदा के पार्श्व में दो अगुल स्थान में पीडा करने वाली फटी हुई दि कई प्रकार का भगन्दर होता है। भारतीय वैद्यक में पाँच भेद १) वातिक, (२) पैत्तिक, (३) श्लैष्मिक, (४) सन्निपातिक तथा ।[४७]

ा वैद्यक मे भगन्दर को 'फिस्चुला इन एनो' कहते है। इनके भी हैं।[४८]

-यशस्तिलक में गुल्म का कारण शौच की बाधा होने पर भी भोजन है।[४९] भावप्रकाश में अध्यशन आदि मिथ्या आहार तथा बलवान ा लडना आदि गुल्म के कारण बताये है।[५०]

ृदय तथा नाभि के बीच में सचरणशील अथवा अचल तथा बढने- ोलाकार ग्रन्थि को कहते हैं।[५१]

ापशलो परिकर्त्तिका च सग पुरीषस्य तथोऽर्ध्ववात ।
ग्मास्यादथवा निरेति पुरोषवेगेऽभिहते नरस्य ॥
—भा०भा० १, पृ० १०६, श्लो० १८

ापालनिस्तोददाहकण्डुरुजादय ।
ि पूर्वरूपाणि भविष्यति भगन्दरे ॥
गुले क्षेत्रे पार्श्वत पिण्डकार्तिकृत् ।
न्दरो ज्ञेया स च पचविधो भवेत् ॥
—वही, भाग २, चि० अ० श्लो० १,२

लिए देख, भाव० भा० २, पृ० ४३६
वहिताशनश्च।—पृ० ४०३, पृ०
मिथ्याहारविहारत ।—भाव०, भाग २, गुल्मा०, श्लो० १
मचारी यदि वाचल ।
गुल्म इति कीर्तित ॥—वही, श्लोक ४

प्रकार—अजीर्ण चार प्रकार का बताया गया है—[३९]

(१) जौ इत्यादि हलके पदार्थो के खाने से उत्पन्न ।

(२) गेहूँ इत्यादि पदार्थो के खाने से उत्पन्न ।

(३) दाल इत्यादि दो दल वाले पदार्थो के खाने से उत्पन्न ।

(४) घृत आदि स्निग्ध पदार्थो के खाने से उत्पन्न ।

परिचर्या—इन चार प्रकार के अजीर्ण को दूर करने के लिए यशस्तिलक में क्रम से चार साधन बताए गये है—[४०]

(१) जौ आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए ठडा पानी पिए ।

(२) गेहूँ आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए गर्म (क्वथित) जल पिए ।

(३) दाल आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए अवन्तिसोम (काजी) पिए ।

(४) घृत इत्यादि से उत्पन्न अजीर्ण के लिए कालसेय (तक्र) पिए ।

दृग्मान्द्य—यशस्तिलक में दृग्मान्द्य के दो कारण बताए हैं—नमक या नम्कीन पदार्थ अधिक खाना तथा धूप में से आकर तुरन्त पानी पी लेना ।[४१]

सोमदेव ने स्पष्ट रूप से दृग्मान्द्य को दूर करने के उपाय नही बताए, फिर भी उसके कारणो मे ही दूर करने के उपायो की भी अभिव्यक्ति है । दृग्मान्द्य न हो इसके लिए व्यक्ति को उपर्युक्त दोनो बाता का बचाव रखना चाहिए ।

वमन—सोमदेव ने लिखा है कि थका हुआ व्यक्ति यदि तुरन्त भोजन कर ले तो वमन होने लगता है ।[४२]

ज्वर—ज्वर के लिए भी यही कारण दिया है ।[४३]

भगन्दर—भगन्दर का कारण सोमदेव ने 'स्यन्दविबन्ध' अर्थात् मल के वेग को रोकना बताया है ।[४४] भावप्रकाश में मल के वेग को रोकने से भगन्दर

---

३९ यवसमिथविदाहिष्वम्बुशीत निषेव्य, क्वथितमिदमुपास्य दुर्जरेऽन्ने च पिष्टे ।
भवति विदलकालेऽवन्तिसोमस्य पान घृतविकृतिषु पेय कालसेय सदैव ॥
—पृ० ५१६

४० वही पृ० ५१६

४१ समधिकलवणान्नप्राशनाद्दृष्टिमान्द्यम् ।—पृ० ५१८
दृग्मान्द्यभागात्तपितोऽम्बुसेवी ।—पृ० ५०६

४२ आन्त क्षुनाशी वमनज्वरार्ह ।—पृ० ५०९

४३ वही, पृ० ५०६

४४ भगन्दरी स्यन्दविबन्धकाले ।—पृ० ५०६
तुलना—शुक्रमलमूत्रमरुद्वेगमरोधोऽश्मरीभगन्दरगुल्मार्शसा हेतु ।—नीति० दि० ११

के अतिरिक्त आटोप (पेट में गुडगुड शब्द होना) शूल, परिकर्तन (गुदा में कतरने के सदृश पीडा), मलावरोध, ऊर्ध्ववात (डकार आना) तथा मुख से मल निकलने लगना आदि रोग बताए हैं।[४५]

वैद्यक शास्त्र मे भगन्दर को महाभयकर रोग बताया गया है। भावप्रकाश में इसके विषय मे निम्नप्रकार से जानकारी दी गयी है—

पूर्वरूप—भगन्दर जब होने वाला होता है तो कमर तथा शिर म सूई चुभने के समान पीडा, दाह तथा खुजली आदि पूर्वरूप होते हैं।[४६]

लक्षण—गुदा के पार्श्व में दो अगुल स्थान में पीडा करने वाली फटी हुई फुसियाँ इत्यादि कई प्रकार का भगन्दर होता है। भारतीय वैद्यक मे पाँच भेद बताए हैं—(१) वातिक, (२) पैत्तिक, (३) श्लैष्मिक, (४) सन्निपातिक तथा (५) शल्यज।[४७]

पाश्चात्य वैद्यक मे भगन्दर को 'फिस्चुला इन एनो' कहते हैं। इनके भी कई भेद होते हैं।[४८]

गुल्म—यशस्तिलक में गुल्म का कारण शौच की बाधा होने पर भी भोजन करना बताया है।[४९] भावप्रकाश में अध्यशन आदि मिथ्या आहार तथा बलवान के साथ कुश्ती लडना आदि गुल्म के कारण बताये हैं।[५०]

गुल्म हृदय तथा नाभि के बीच में सचरणशील अथवा अचल तथा बढने-घटने वाली गोलाकार ग्रन्थि को कहते हैं।[५१]

---

४५ आटोपशूलौ परिकर्त्तिका च सग पुरीषस्य तथोऽर्ध्ववात ।
पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥
—भा०भा० १, पृ० १०६, श्लो० १८

४६ कटीकपालनिस्तोददाहकण्डुरुजादय ।
भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यति भगन्दरे ॥
गुदस्य द्व्यगुले क्षेत्रे पार्श्वत पिण्डकार्तिकृत् ।
भिन्ना भगन्दरो ज्ञेया स च पञ्चविधो भवेत् ॥
—वही, भाग २, चि० म० श्लो० १,२

४७ वही

४८ विस्तार के लिए देख, भा२० भा० २, पृ० ५३६

४९ गुल्मी जिहत्सुर्विहिताशनश्च।—पृ० ५०६, पू०

५० दुष्टवातादयोत्यर्थमिथ्याहारविहारत ।—भाव०, भाग २, गुल्मा०, श्लो० १

५१ हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थि सचारी यदि वाचल ।
वृत्तश्चयोपचयवा स गुल्म इति कीर्तित ॥—वही, श्लोक ५

प्रकार—अजीर्ण चार प्रकार का बताया गया है—[३९]

(१) जौ इत्यादि हलके पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

(२) गेहूँ इत्यादि पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

(३) दाल इत्यादि दो दल वाले पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

(४) घृत आदि स्निग्ध पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

परिचर्या—इन चार प्रकार के अजीर्ण को दूर करने के लिए यशस्तिलक मे क्रम से चार साधन बताए गये है—[४०]

(१) जौ आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए ठडा पानी पिए।

(२) गेहूँ आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए गर्म (क्वथित) जल पिए।

(३) दाल आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए अवन्तिसोम (काजी) पिए।

(४) घृत इत्यादि से उत्पन्न अजीर्ण के लिए कालसेय (तक्र) पिए।

दृग्मान्द्य—यशस्तिलक में दृग्मान्द्य के दो कारण बताए हैं—नमक या नम्कीन पदार्थ अधिक खाना तथा धूप में से आकर तुरन्त पानी पी लेना।[४१]

सोमदेव ने स्पष्ट रूप से दृग्मान्द्य को दूर करने के उपाय नही बताए, फिर भी उसके कारणो में ही दूर करने के उपायो की भी अभिव्यक्ति है। दृग्मान्द्य न हो इसके लिए व्यक्ति को उपर्युक्त दोनो बातो का बचाव रखना चाहिए।

वमन—सोमदेव ने लिखा है कि थका हुआ व्यक्ति यदि तुरन्त भोजन कर ले तो वमन होने लगता है।[४२]

ज्वर—ज्वर के लिए भी यही कारण दिया है।[४३]

भगन्दर—भगन्दर का कारण सोमदेव ने 'स्यन्दविबन्ध' अर्थात् मल के वेग को रोकना बताया है।[४४] भावप्रकाश में मल के वेग को रोकने से भगन्दर

---

३९ यवसमिथविदाहिष्वम्बुशीत निषेव्य, क्वथितमिदमुपास्य दुर्जरेऽन्ने च पिष्टे।
भवति विदलकालेऽवन्तिसोमस्य पान घृतविकृतिषु पेय कालसेय सदैव॥
—पृ० ५१९

४० वही, पृ० ५१६

४१ समधिकलवणान्नप्राशनाद्दृष्टिमान्द्यम्।—पृ० ५१८
दृग्मान्द्यभागात्तपितोऽम्बुसेवी।—पृ० ५०६

४२ श्रान्त कृताशो वमनज्वरार्हं।—पृ० ५०९

४३ वही, पृ० ५०६

४४ भगन्दरी स्यन्दविबन्धकाले।—पृ० ५०६
तुलना—शुक्रमलमूत्रमरुद्वेगसरोधोऽश्मरीभगन्दरगुल्मार्शसा हेतु।—नीति० दि० ११

के अतिरिक्त आटोप (पेट में गुडगुड शब्द होना) शूल, परिकर्तन (गुदा में कतरने के सदृश पीडा), मलावरोध, ऊर्ध्ववात (डकार आना) तथा मुख से मल निकलने लगना आदि रोग वताए हैं।[४५]

वैद्यक शास्त्र में भगन्दर को महाभयकर रोग बताया गया है। भावप्रकाश मे इसके विषय में निम्नप्रकार से जानकारी दी गयी है—

पूर्वरूप—भगन्दर जब होने वाला होता है तो कमर तथा शिर मे सूई चुभने के समान पीडा, दाह तथा खुजली आदि पूर्वरूप होते है।[४६]

लक्षण—गुदा के पार्श्व में दो अगुल स्थान मे पीडा करने वाली फटी हुई फुसियाँ इत्यादि कई प्रकार का भगन्दर होता है। भारतीय वैद्यक में पाँच भेद बताए हैं—(१) वातिक, (२) पैत्तिक, (३) श्लैष्मिक, (४) सन्निपातिक तथा (५) शल्यज।[४७]

पाश्चात्य वैद्यक में भगन्दर को 'फिस्चुला इन एनो' कहते हैं। इनके भी कई भेद होते है।[४८]

गुल्म—यशस्तिलक में गुल्म का कारण शौच की बाधा होने पर भी भोजन करना बताया है।[४९] भावप्रकाश मे अध्यशन आदि मिथ्या आहार तथा बलवान के साथ कुश्ती लडना आदि गुल्म के कारण बताये हैं।[५०]

गुल्म हृदय तथा नाभि के बीच में सचरणशील अथवा अचल तथा बढने-घटने वाली गोलाकार ग्रन्थि को कहते हैं।[५१]

---

४५. आटोपशूलौ परिकर्त्तिका च सग पुरीषस्य तथोऽर्ध्ववात ।
पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥
—भा०भा० १, पृ० १०६, श्लो० १८

४६ कटीकपालनिस्तोददाहकण्डुरुजादय ।
भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यति भगन्दरे ॥
गुदस्य द्व्यगुले क्षेत्रे पार्श्वत पिडकार्तिकृत् ।
भिन्ना भगन्दरो ज्ञेया स च पचविधो भवेत् ॥
—वही, भाग २, चि० भ० श्लो० १,२

४७ वही

४८ विस्तार के लिए देख, भात्र० भा० २, पृ० ४३९

४९ गुल्मी जिहत्सुर्विहिताशनश्च।—पृ० ५०३, पृ०

५० दुष्टवातादयोत्यर्थमिथ्याहारविहारत ।—भाव०, भाग २, गुल्मा०, श्लो० १

५१ हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थि सचारी यदि वाचल ।
वृत्तश्चयोपचयवा स गुल्म इति कीर्तित ॥—वही, श्लोक ४

भारतीय वैद्यक में गुल्म के पाँच भेद बताए गये हैं—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज, (४) त्रिदोषज तथा (५) रक्तज।[५२]

पाश्चात्य वैद्यक में गुल्म को अवडामिनल ट्यूमर कहते हैं। ट्यूमर प्राय दो प्रकार के होते हैं—(१) सामान्य और (२) घातक। इनके अनेक अवान्तर भेद होते हैं।[५३]

सितश्वित—सफेद कुष्ट जिससे पीव बहती रहती है तथा अत्यन्त दुर्गन्ध आती है उसे यशस्तिलक में सितश्वित कहा है। अमृतमति को यह भयकर रोग हो गया था। परिवार के लोग भी नाक बन्द करके उसके पास आते थे।[५४] सोमदेव ने इसका दूसरा नाम साधारणतया कुष्ट भी दिया है।[५५]

औषधियाँ—यशस्तिलक में अनेक प्रकार की औषधियों के उल्लेख हैं। शिखण्डिताण्डवमण्डन नामक वन के विस्तृत वर्णन में ही लगभग २० औषधियों के नाम गिनाए हैं। यह वर्णन किसी आयुर्वेदिक उद्यान के वर्णन से कम नहीं है। औषधियों की जानकारी इस प्रकार है—

*मागधी[५६]—छोटी पीपल

अमृता—गुरुचि

सोम, विजया—हरड

जम्बूक

सुदर्शना

मरुद्भव

अर्जुन

अभीरु—शतावरी

लक्ष्मी—मरण्डश्रृंगी

वृती

तपस्विनी—मुण्डी कह्लार आदि

चन्द्रलेखा—बाकुची

---

५२ वही, श्लोक १

५३ वही, श्लोक ९ की व्याख्या

५४ सपन्नसितश्वितगात्रीमनवरतदरदेहद्रवास्वादामोदन्मदमक्षिकाक्षेपक्षोभपात्रीमति-पूतिपूयपिहितनासिकसविधसंचरितपरिवाराम्।—पृ० २२३ उत्त०

५५ सकलकुष्ठाधिष्ठानम्।—वही

५६ *चिह्नान्तर्गत औषधियाँ, पृ० १९४-१९७ उत्त०

कलि—विभीतक

अर्क—आक

अरिभेद—विट्खदिर

शिवप्रिय—धतूरा

*गायत्री—खदिर

ग्रन्थिपर्ण[५७]—गाथियन

पारदरस[५८]—पारा

आयुर्वेदविशेषज्ञ आचार्य

यशस्तिलक में आयुर्वेदविशेषज्ञ आचार्यों में काशिराज, चारायण, निमि धिषण तथा चरक का उल्लेख है।[५९]

काशिराज—काशिराज को श्रुतसागर ने धन्वन्तरि कहा है।[६०]

यह उल्लेख विशेष महत्व का है। निर्णयसागर द्वारा प्रकाशित सुश्रुतसहिता की सस्कृत भूमिका में इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। अनपेक्षित होने से उसे यहाँ पुनरुक्त नही किया गया।

निमि—इनमें सभवतया निमि सर्वाधिक प्राचीन है। इनका कोई ग्रन्थ तो उपलब्ध नही होता, किन्तु अन्य ग्रन्थो में उल्लेख आये हैं। चरक सहिता में निमि को विदेहराज कहा है।[६१] वाग्भट ने अष्टागहृदय में, क्षीरस्वामी ने अमरकोष की टीका (२।५।२८) में तथा डल्हण ने सुश्रुतसहिता की टीका में निमि का उल्लेख किया है। निर्णयसागर द्वारा प्रकाशित इन ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि निमि के उल्लेख अन्य ग्रन्थो में भी मिलते हैं।

चारायण—चारायण का आयुर्वेदाचार्य के रूप में अन्यत्र उल्लेख नही मिलता। वात्स्यायन ने कामसूत्र (१।१।१२) में चारायण को बाभ्रव्य पाचाल-कृत कामसूत्र के एक अध्याय को स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में रचने वाला कहा है। सोमदेव ने चारायण का जो उल्लेख किया है, वह भी वात्स्यायन के कामसूत्र में

---

५७ पृ० ४७०, पू०, विवेचन के लिए देखें—के० के० हन्दिकी, यशस्तिलक एड इडियन कल्चर, पृ० ९२, फुटनोट १।

५८ पृ० ११२, पृ०

५९ पृ० २३७, ४०६ स० पू०, पृ० २९७ उत्त०

६० काशिराजो धन्वन्तरि।—पृ० २३७ स० टी०

६१ सप्तरसा इति निमिर्वैदेह।—सूत्रस्थान, अ० २६

उपलब्ध होता है।[६२] सोमदेव के ही दूसरे ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत में चारायण के कई उद्धरण आये है, किन्तु वे सभी नीतिविषयक होने से, यह कहना कठिन है कि चारायण ने किसी वैद्यक ग्रन्थ की रचना की हो।

धिषण—धिषण का अर्थ श्रुतसागर ने बृहस्पति किया है। बृहस्पतिकृत वैद्यक ग्रन्थ का पता नहीं चलता।

चरक—चरककृत चरकसहिता वैद्यक शास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। आजकल यह वैद्यक का अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ माना जाता है।

•

६२ साय चारायणस्य। ६।४।०२

वस्त्र और वेषभूषा

यशस्तिलक में भारतीय तथा विदेशी वस्त्रो के अनेक उल्लेख है। इन उल्लेखो से एक ओर प्राचीन भारतीय वेशभूषा का पता चलता है, दूसरी ओर प्राचीन भारत के समृद्ध वस्त्रोद्योग एव विदेशी व्यापारिक सम्बन्धो पर भी प्रकाश पडता है। भारतीय साहित्य में वस्त्रो के अनेक उल्लेख मिलते है, किन्तु यशस्तिलक के उल्लेखो की यह विशेपता है कि उनसे कई एक वस्त्रो की सही पहचान पहले पहल होती है। इन वस्त्रो को मुख्यतया तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) सामान्य वस्त्र।

(२) पोशाकें या पहनने के वस्त्र।

(३) अन्य गृहोपयोगी वस्त्र।

सामान्य वस्त्रो में नेत्र, चीन, चित्रपटी, पटोल, रल्लिका, दुकूल, अशुक और कौशेय आते हैं। पोशाको में कचुक, वारवाण, चोलक, चण्डातक, पट्टिका, कोपीन, वैकक्ष्यक, उत्तरीय, परिधान, उपसव्यान, निचोल, उष्णीष, आवान, चीवर और कर्पट का उल्लेख है। कुछ अन्य गृहोपयोगी वस्त्रो में हसतूलिका, उपधान, कन्था, नमत और वितान आए हैं। इन वस्त्रो का विशेष परिचय निम्न-प्रकार है—

१ सामान्य वस्त्र

सामान्य वस्त्रो म नेत्र, चीन, चित्रपटी, पटोल और रल्लिका का उल्लेख यशस्तिलक में एक साथ हुआ है। सभामण्डप में जाते समय सम्राट यशोधर ने देखा कि घोडो को उक्त वस्त्रो की जीनें पहनाई गयी है।[१]

नेत्र—श्रुतसागर ने नेत्र का अर्थ पतला पट्टकूल किया है।[२] नेत्र के विषय मे डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन तथा जायसी के पदमावत मे सर्वप्रथम विशेष रूप से प्रकाश डाला है।

---

१ नेत्रचीनचित्रपटीपटोलरल्लिकाच्छादितदेहाना वाजिनाम्।

—यश० स० पू०, पृ० ३६८

२ नेत्राणा सूक्ष्मपट्टकूलवारलानाम्।—वही स० टीका

नेत्र एक प्रकार का महीन रेशमी वस्त्र था। यह कई रंगों का होता था। इसके थानों में से काटकर तरह-तरह के वस्त्र बना लिये जाते थे। यह चीन देश से भारत में आता था। प्राचीन भारतीय साहित्य में नेत्र का उल्लेख सबसे पहले कालिदास ने किया है।[३] बाणभट्ट ने नेत्र के बने विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का कई बार उल्लेख किया है। मालती धुले हुए सफेद नेत्र का बना केंचुली की तरह हलका कंचुक पहने थी।[४] दूध निर्मल जल से धुले हुए नेत्रसूत्र की पट्टी बाँधे हुए एक अधोवस्त्र पहने थे।[५]

बाण ने एक अन्य प्रसंग पर अन्य वस्त्रों के साथ नेत्र के लिए भी अनेक विशेषण दिये हैं—साँप की केंचुली की तरह महीन, कोमल केले के गाभे की तरह मुलायम, फूँक से उड़ जाने योग्य हलके तथा केवल स्पर्श से ज्ञात होने योग्य।[६] बाण ने लिखा है कि इन वस्त्रों के सम्मिलित आच्छादन से हजार-हजार इन्द्र-धनुषों जैसी कान्ति निकल रही थी।[७] इस उल्लेख से रंगीन नेत्र का पता लगता है। बाण ने छापेदार नेत्र के भी उल्लेख किये हैं। राज्यश्री के विवाह के अवसर पर खम्भों पर छापेदार नेत्र लपेटा गया था।[८] एक अन्य स्थान पर छापेदार नेत्र के बने सूथनों का उल्लेख है।[९] सम्भवतः नेत्र की बुनावट में ही फूलपत्तियों की भाँति डाल दी जाती थी।

उद्योतनसूरि (७७९ ई०) कृत कुवलयमाला में एक वणिक् कहता है कि वह महिस और गवय लेकर चीन गया और वहाँ से गंगापटी तथा नेत्र वस्त्र लाया।[१०]

वर्णरत्नाकर में चौदह प्रकार के नेत्रों का उल्लेख है।[११]

---

३ नेत्रक्रमेणोपरुरोध सूर्यम्।—रघुवंश, ७।३९

४ धौतधवलनेत्रनिर्मितेन निर्मोकलघुतरेणाप्रपदीनकञ्चुकेन।—हर्षचरित, पृ० ३१

५ विमलपयोधौतेन नेत्रसूत्रनिवेशशोभिनाधरवाससा।—वही, पृ० ७२

६ नेत्रैश्च निर्मोकनिभैः, अकठोररम्भागर्भकोमलैः, निश्वासहार्यैः, स्पर्शानुमेयैः वासोभिः।—वही पृ० १४२।

७ स्फुरद्भिरिन्द्रायुधसहस्रैरिव संछादितम्।—हर्षचरित, पृ० १४३।

८ उच्चित्रनेत्रपटवेष्ट्यमानैश्च स्तम्भैः।—वही, १४३

९ उच्चित्रनेत्रसुकुमारस्वस्थानस्थगितजङ्घाकाण्डैः।—वही, पृ० २०६

१० अह चीण महाचीणेसु गओ महिस गवले घेत्तूण, तत्थ गंगावडिओ णेत्त पट्टाइय घेत्तूण लद्धलाभो णियत्तो।—कुवलयमाला कहा, पृ० ६६

११ हरिया, वांना नठी, सर्वांङ्ग, गुरु, शुजीन, राजन, पचरंग, नील, हरित, पीत, लोहित, चित्रवर्ण, एवम्विध चतुर्दश जाति नेत देपु।—वर्णरत्नाकर, पृ० २२

चौदहवी शती तक बगाल में नेत अथवा नेत्र एक मजबूत रेशमी कपडे को कहते थे। इसकी पाचूडी पहनी और विछाई जाती थी।[१२]

पदमावत के उल्लेखो से ज्ञात होता है कि सोलहवी शती तक नेत्र का प्रचार था। जायसी ने तीन बार नेत्र अथवा नेत का उल्लेख किया है। रतनसेन के शयनागार में अगरचन्दन पोतकर नेत के परदे लगाये गये थे।[१३] पदमावती जब चलती थी तो नेत के पाँवडे विछाए जाते थे।[१४] एक अन्य प्रसग मे भी मार्ग में नेत विछाने का उल्लेख है (नेत विछावा बाट, ६४१।८)।

भोजपुरी लोकगीतो में नेत का उल्लेख प्राय आता है।[१५] बगला में भी नेत के उल्लेख मिलते हैं।[१६]

चीन—चीन का अर्थ श्रुतसागर ने चीन देश में उत्पन्न होनेवाले वस्त्र से किया है।[१७] सोमदेव के बहुत समय पहले से भारतीय जन चीन देश से आनेवाले वस्त्रो से परिचित हो चुके थे। डॉ० मोतीचन्द्र ने भारतीय वेशभूषा में चीन देश से आनेवाले वस्त्रो के विषय में पर्याप्त जानकारी दी है। मध्य एशिया के प्राचीन पथ पर बने हुए एक चीनी रक्षागृह से एक रेशमी थान मिला, जिस पर ई० पू० पहली शताब्दी की ब्राह्मी में एक पुरजा लगा हुआ था। यह इस बात का द्योतक है कि भारतीय व्यापारी चीनी-रेशमी कपडे की खोज मे चीन की सीमा तक इतने प्राचीन काल में पहुँच गये थे।[१८]

चीन देश से आनेवाले वस्त्रो मे सबसे अधिक उल्लेख चीनाशुक के मिलते

---

१२. तमोनाशचन्द्रदास - आसपेक्ट्स आफ बगाल सोसायटी फ्राम बंगाली लिटरेचर, पृ० १८०_१८१

१३ आवरि जूडि तहाँ सोवनारा। अगर पोति सुख नेत ओहारा॥
अग्रवाल—पदमावत, ३३६।५

१४. पालक पाव कि आछहि पाटा। नेत बिछाइअ जौं चल बाटा॥—वही, ४८५।७

१५ राजा दशरथ द्वारे चित्र उरेहल, ऊपर नेत फहरासु हे।—जनपद, वर्ष १, अक ३, अप्रैल, १९३९, पृ० ५२

१६ नेतेर आचले चर्ममंडित करिया घर घर वासिनी पोशे, अर्थात् नेत के आँचल में चमडे से ढँकी हुई स्त्रीरूपी व्याघ्री घर घर में पाली जा रही है।
धर्मपाल में गोरखनाथ का गीत, उद्धृत, अग्रवाल—पदमावत, पृ० ३३६

१७ चीनाना चीनदेशोत्पन्नवस्त्राणाम्।—यश० स० पू०, पृ० ३३६, स० टी०

१८ सर आरल स्टाइन—एशिया मेजर, हर्थ एनिवर्सरी वालुम १९२३, पृ० ३६७-३७२

हैं।[१९] यह एक रेशमी वस्त्र था। वृहत्कल्पसूत्र भाष्य में इसकी व्याख्या कोशकार नामक कीडे से अथवा चीन जनपद के वहुत पतले रेशम से बने वस्त्र से की गयी है।[२०]

चीनाशुक के अतिरिक्त चीन और वाह्लीक से भेडो के ऊन, पश्म (राकव), रेशम (कीटज) और पट्ट (पट्टज) के बने वस्त्र आते थे। ये ठीक नाप के, खुशनुमा रगवाले तथा स्पर्श करने में मुलायम होते थे। इन देशो से नमदे (कुट्टीकृत), कमल के रग के हजारो कपडे, मुलायम रेशमी कपडे तथा मेमनो की खालें भी आती थी।[२१]

चित्रपटी—यशस्तिलक के सस्कृत टीकाकार ने चित्रपटी का अर्थ रग-विरग सूक्ष्म वस्त्र से किया है।[२२] डॉ० अग्रवाल ने लिखा है कि चित्रपटी या चित्रपट वे जामदानी वस्त्र ज्ञात होते हैं, जिनमें बुनावट में ही फूल-पत्तियो की भाँत डाल दी जाती थी। वगाल इन वस्त्रो के लिए सदा से प्रसिद्ध रहा है। वाणभट्ट ने लिखा है कि प्राग्ज्योतिषेश्वर (आसाम) के राजा ने श्रीहर्ष को उपहार में जो वहुमूल्य वस्तुएँ भेजी उनमे चित्रपट के तकिए भी थे, जिनमें समूर या पक्षियो के वाल या रोएँ भरे थे।[२३]

पटोल—पटोल का अर्थ टीकाकार ने पट्टकूल वस्त्र किया है।[२४] गुजरात में अभी भी पटोला नामक साडी वनती है तथा इसका व्यवहार होता हैं। इस साडी को लडकी का मामा विवाह के अवसर पर उसे भेंट करता है। यह साडी वाधनू रगने की विधि से रगे गये ताने-वाने से वनती है। इसकी बुनावट में सकरपारे पडते है, जिनके वीच में तिपतिए फूल होते हैं। कभी-कभी

---

१६ आचाराग २,१४, ६। भगवती ९,३३,६। अनुयोगद्वार ३६, निशीथ ७,११। प्रश्नव्याकरण ४.४ इत्यादि।

२० कोशिकाराख्य कृमि तस्माज्जातम्, अथवा चीनानाम् जनपद तत्र य श्लक्ष्ण-तरपट तस्माज्जातम्।—वृहत्कल्प० ४,३६६२

२१ प्रमाणरागस्पर्शाढ्य वाल्हीचीनसमुद्भवम्। औण च राकव चैव कीटज पट्टज तथा।
कुट्टीकृत तथैवात्र कमलाभ सहस्रश। श्लक्ष्ण वस्त्रमकपासमाविक मृदु चाजिनम्॥
—महाभा० सभा पर्व, ५१।२७

२२ चित्रा नानाप्रकारा या पट्य सूक्ष्मवस्त्राणि।-यश० आ० पृ०, पृ० २६८, स० टी०

२३ अग्रवाल—हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० १६८

२४ पटोलानि च पट्टकूलवस्त्राणि—यश० आ० पू० पृ० ३६८

अलकारो में हाथियो की पक्ति, पेड-पौधे, मनुष्य-आकृतियाँ और चिडियाँ भी होती है।[२५]

रल्लिका—रल्लिका का अर्थ श्रुतसागर ने रक्त कवल किया है।[२६] रल्लक एक प्रकार का मृग या जगली भेड होती थी, जिसके ऊन से यह वस्त्र बनता था। सोमदेव ने जगल का वर्णन करते हुए सेही के द्वारा परेशान किये जाते रल्लको का उल्लेख किया है।[२७]

रल्लिका या रल्लक को अमरकोषकार ने भी एक प्रकार का कम्वल कहा है।[२८] जिस समय युवाग च्वाग भारत आया उस समय भारतवर्ष में इस वस्त्र का खूब प्रचार था। उसने अपने यात्रा-विवरण में होलाली अर्थात् रल्लक का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि यह वस्त्र किसी जगली जानवर के ऊन से बनता था। यह ऊन आसानी से कत सकता था तथा इससे बने वस्त्रो का काफी मूल्य होता था।[२९]

सोमदेव ने एक अन्य प्रसग पर और अधिक स्पष्ट किया है कि रल्लको के रोओ से कम्वल बनाए जाते थे, जिनका उपयोग हेमन्त ऋतु में किया जाता था।[३०]

दुकूल—सोमदेव ने दुकूल का कई वार उल्लेख किया है। राजपुर में दुकूल और अशुक की वैजयन्तियाँ (पताकाएँ) लगाई गयी थी।[३१] राज्याभिषेक के बाद सम्राट यशोधर ने धवल दुकूल धारण किये[३२], वसन्तोत्सव के अवसर पर गोरोचना से पिंजरित दुकूल धारण किये[३३] तथा सभामडप (दरबार) में जाते समय उद्गमनीय मगल-दुकूल पहिने।[३४] अन्य प्रसगो में भी दुकूल के उल्लेख हैं।

---

२५ वाट—इंडियन आर्ट एट दी देहली एक्जिबिशन, पृ० २५६–२५६। उद्धृत, मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० ६५।

२६ रल्लिकाश्च रक्तादिकंबलविशेषा।—यश० स० पू०, पृ० ३६८, स० टी०

२७ क्वचित्रि शल्यशल्लकशलाकाजालकील्यमानरल्लककलोकलोकम्।
—यश० उत्त० पृ० २००

२८ अमरकोश, २।६।११६

२९ वाटर्स—युवागच्वाग्स ट्रावल्स इन इंडिया, भाग १, लन्दन १६०४। प्रा० २०। उद्धृत, डॉ० मोतीचन्द्र—भारतीय वेषभूषा से।

३० रल्लकरोमनिष्पन्नकम्वललोवलीलाविलासिनी हेमन्ते मरुति।
—यश० स० पू० ५७५

३१ दुकूलाशुकवैजयन्तीसततिभि।—यश० स० पू० पृ० १६

३२ धृतधवलदुकूलमाल्यविलेपनालकार।—वही, पृ० ३२३

३३ त्व देव देहेऽभिनवे दधानो, गोरोचना पिंजरिते दुकूले।—वही, पृ० ५६२

३४ गृहीतोद्गमनीयमगलदुकल।—वही, उत्त० पृ० ८१

है।[१९] यह एक रेशमी वस्त्र था। वृहत्कल्पसूत्र भाष्य में इसकी व्याख्या कोशकार नामक कीडे से अथवा चीन जनपद के वहुत पतले रेशम से वने वस्त्र से की गयी है।[२०]

चीनाशुक के अतिरिक्त चीन और वाह्लीक से भेडो के ऊन, पश्म (रांकव), रेशम (कीटज) और पट्ट (पट्टज) के वने वस्त्र आते थे। ये ठीक नाप के, खुशनुमा रगवाले तथा स्पर्श करने में मुलायम होते थे। इन देशो से नमदे (कुट्टीकृत), कमल के रग के हजारो कपडे, मुलायम रेशमी कपडे तथा मेमनो की खालें भी आती थी।[२१]

चित्रपटी—यशस्तिलक के सस्कृत टीकाकार ने चित्रपटी का अर्थ रग-विरगे सूक्ष्म वस्त्र से किया है।[२२] डॉ० अग्रवाल ने लिखा है कि चित्रपटी या चित्रपट वे जामदानी वस्त्र ज्ञात होते है, जिनमें बुनावट में ही फूल-पत्तियो की भाँत डाल दी जाती थी। वगाल इन वस्त्रो के लिए सदा से प्रसिद्ध रहा है। वाणभट्ट ने लिखा है कि प्राग्ज्योतिषेश्वर (आसाम) के राजा ने श्रीहर्ष को उपहार में जो वहुमूल्य वस्तुएँ भेजी उनमे चित्रपट के तकिए भी थे, जिनमें समूर या पक्षियो के वाल या रोएँ भरे थे।[२३]

पटोल—पटोल का अर्थ टीकाकार ने पट्टकूल वस्त्र किया है।[२४] गुजरात में अभी भी पटोला नामक साडी वनती है तथा इसका व्यवहार होता है। इस साडी को लडकी का मामा विवाह के अवसर पर उसे भेंट करता है। यह साडी वाधनू रगने की विधि से रगे गये ताने-वाने से वनती है। इसकी बुनावट में सकरपारे पडते है, जिनके वीच में तिपतिए फूल होते हैं। कभी-कभी

---

१९ आचाराग २,१४, ६। भगवती ९,३३,६। अनुयोगद्वार ३६, निशीथ ७,११। प्रश्नव्याकरण ४.४ इत्यादि।

२० कोशिकाराख्य कृमि तस्माज्जातम्, अथवा चीनानाम् जनपद तत्र य श्लक्ष्ण-तरपट तस्माज्जातम्।—वृहत्कल्प० ४,३६६२

२१ प्रमाणरागस्पर्शाढ्य वाल्हीचीनसमुद्भवम्। औण च राकव चैव कीटज पट्टज तथा।
कुट्टीकृत तथैवात्र कमलाभ सहस्रश। श्लक्ष्ण वस्त्रमकर्पासमाविक मृदु चाजिनम्॥
—महाभा० सभा पर्व, ५१।२७

२२ चित्रा नानाप्रकारा या पट्य सूक्ष्मवस्त्राणि।—यश० स० पू०, पृ० २६८, स० टी०

२३ अग्रवाल—हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० १६८

२४ पटोलानि च पट्टकूलवस्त्राणि।—यश० स० पू० पृ० ३६८

अलकारो में हाथियो की पक्ति, पेड-पौधे, मनुष्य-आकृतियाँ और चिडियाँ भी होती है।[२५]

रल्लिका—रल्लिका का अर्थ श्रुतसागर ने रक्त कवल किया है।[२६] रल्लक एक प्रकार का मृग या जगली भेड होती थी, जिसके ऊन से यह वस्त्र वनता था। सोमदेव ने जगल का वर्णन करते हुए सेही के द्वारा परेशान किये जाते रल्लको का उल्लेख किया है।[२७]

रल्लिका या रल्लक को अमरकोषकार ने भी एक प्रकार का कम्वल कहा है।[२८] जिस समय युवाग च्वाग भारत आया उस समय भारतवर्ष में इस वस्त्र का खूब प्रचार था। उसने अपने यात्रा-विवरण में होलाली अर्थात् रल्लक का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि यह वस्त्र किसी जगली जानवर के ऊन से वनता था। यह ऊन आसानी से कत सकता था तथा इससे वने वस्त्रो का काफी मूल्य होता था।[२९]

सोमदेव ने एक अन्य प्रसग पर और अधिक स्पष्ट किया है कि रल्लको के रोओ से कम्वल वनाए जाते थे, जिनका उपयोग हेमन्त ऋतु में किया जाता था।[३०]

दुकूल—सोमदेव ने दुकूल का कई वार उल्लेख किया है। राजपुर में दुकूल और अशुक की वैजयन्तियाँ (पताकाएँ) लगाई गयी थी।[३१] राज्याभिषेक के वाद सम्राट यशोधर ने धवल दुकूल धारण किये[३२], वसन्तोत्सव के अवसर पर गोरोचना से पिंजरित दुकूल धारण किये[३३] तथा सभामडप (दरवार) में जाते समय उद्गमनीय मगल-दुकूल पहिने।[३४] अन्य प्रसगो में भी दुकूल के उल्लेख हैं।

२५ वाट—इडियन आर्ट एट दी देहली एक्जिविशन, पृ० २५६-२५६। उद्धृत, मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० ६५।

२६. रल्लिकाश्च रक्तादिकवलविशेषा।—यश० स० पू०, पृ० ३६८, श्रु० टी०

२७ क्वचिन्नि शल्यशल्लकशलाकाजालकील्यमानरल्लकलोकलोकम्।
—यश० उत्त० पृ० २००

२८ अमरकोश, २।६।११६

२९ वाटर्स—युवागच्वाग्स ट्रावल्स इन इडिया, भाग १, लन्दन १९०४। प्रा० २०, उद्धृत, डॉ० मोतीचन्द्र—भारतीय वेषभूषा से।

३० रल्लकरोमनिष्पन्नकम्वललोललीलाविलासिनी हेमन्ते मरुति।
—यश० स० पू० ५७५

३१ दुकूलाशुकवैजयन्तीसततिभि।—यश० स० पू० पृ० १६

३२ धृतधवलदुकूलमाल्यविलेपनालकार।—वही, पृ० ३२३

३३ त्व देव देहेऽभिनवे दधानो, गोरोचना पिंजरिते दुकूले।—वही, पृ० ५६२

३४ गृहीतोद्गमनीयमगलदुकूल।—वही, उत्त० पृ० ८१

आचारांग के संस्कृत व्याख्याकार शीलाकाचार्य ने दुकूल को बंगाल में पैदा होनेवाली एक विशेष प्रकार की रूई से बननेवाला वस्त्र कहा है[३५], किंतु यह व्याख्या बारहवीं शती की होने से विश्वसनीय नहीं है। निशीथ के चूर्णिकार ने दुकूल को दुकूल नामक वृक्ष की छाल को कूट कर उसके रेशे से बनाया जानेवाला वस्त्र कहा है।[३६]

अर्थशास्त्र से दुकूल के विषय में कुछ और भी जानकारी मिलती है। इसके अनुसार बंगाल में बननेवाला दुकूल सफेद और मुलायम होता था। पौंड्र देश के दुकूल गहरे नीले और चिकने होते थे तथा सुवर्णकुड्या के दुकूल ललाई लिए होते थे।[३७] कौटिल्य ने यह भी लिखा है कि दुकूल तीन तरह से बुना जाता था तथा बुनाई के अनुसार उसके एकांशुक, अध्यर्धांशुक, द्वयंशुक तथा त्र्यंशुक ये चार भेद होते थे।[३८]

डॉ० अग्रवाल ने हर्षचरित में दुकूल के विषय में एक प्रश्न उठाया है। उन्होंने लिखा है कि 'सम्भवतः कूल का अर्थ देश्य या आदिम भाषा में कपड़ा था, जिससे कोलिक (हि० कोली) शब्द बना। दोहरी चादर या थानके रूप में विक्रयार्थ आने के कारण यह द्विकूल या दुकूल कहलाने लगा।'[३९] साहित्यिक सामग्री की साक्षीपूर्वक इस विषय पर विचार करने से उनके इस कथन का समर्थन होता है।

सोमदेव ने तीन बार सम्राट यशोधर को दुकूल पहनने का उल्लेख किया है। वसन्तोत्सव के समय तो निश्चित रूप से सम्राट ने दो दुकूल धारण किये थे, क्योंकि यहाँ पर सोमदेव ने 'दुकूले' इस द्विवचन का प्रयोग किया है।[४०]

दूसरे प्रसंग में उद्गमनीय मंगल दुकूल कहा है।[४१] अमरकोषकार ने लिखा है कि धुले हुए वस्त्रों के जोड़े को (दो वस्त्रों को) उद्गमनीय कहते हैं।[४२] इससे

---

३५ दुकूलं गौडविषयविशिष्टकार्पासिकम्।—आचारांग २, वस्त्र० सू० ३६८ शा०टी०

३६. दुगुल्लो रुक्खो तस्स वागो घेत्तुं उदूखले कुट्टिज्जति पाणिएण ताव जाव भूसीभूतो ताहे कज्जति एतेसु दुगुल्लो।—निशीथ ७, १०–१२

३७ वांगकं श्वेतं स्निग्धं दुकूलं, पौण्ड्रकं श्यामं मणिस्निग्धं, सौवर्णकुड्यकं सूर्यवर्णम्। —अर्थशास्त्र, २।११

३८ मणिस्निग्धोदकवानं चतुरश्रवानं व्यामिश्रवानं च। एतेषामेकांशुकमध्यर्धद्वित्रिचतुरंशुकमिति।—वही, २।११

३९ अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७६

४० गोरोचनापिंजरिते दुकूले।—यश० सं० पू०, पृ० ५६२

४१ गृहीतोद्गमनीयमंगलदुकूल।—यश० उत्त० पृ० ८१

४२ तत्स्यादुद्गमनीयं यद्धौतयोर्वस्त्रयोर्युगम्।—अमरकोष २, ६, ११३

यही तात्पर्य निकलता है कि सम्राट ने इस प्रसग में भी दुकूल का जोडा पहना था। तीसरे स्थल पर दुकूल का विशेषण 'धवल' दिया है।[४३] इस समय भी सम्राट ने दुकूल का जोडा ही पहना होगा अन्यथा सोमदेव अधोवस्त्र के लिए किसी अन्य वस्त्र का उल्लेख अवश्य करते।

गुप्तयुग में किनारो पर हस-मिथुन लिखे हुए दुकूल के जोडे पहनने का आम रिवाज था। बाण ने लिखा है कि शूद्रक ने जो दुकूल पहिन रखे थे वे अमृत के फेन के समान सफेद थे। उनके किनारो पर गोरोचना से हस-मिथुन लिखे गये थे तथा उनके छोर चमर से निकली हुई हवा से फडफडा रहे थे।[४४] युद्ध-क्षेत्र को जाते समय हर्ष ने भी हस-मिथुन के चिह्नयुक्त दुकूल का जोडा पहना था।[४५] आचाराग (२, १५, २०) में एक जगह कहा गया है कि शक्र ने महावीर को जो हस दुकूल का जोडा पहनाया था वह इतना पतला था कि हवा का मामूली झटका उसे उडा ले जा सकता था। उसी बुनावट की तारीफ कारीगर भी करते थे। वह कलावत्तू के तार से मिला कर बना था और उसमें हस के अलकार थे। अतगडदसाओ (पृ० ३२) के अनुसार दहेज में कीमती कपडो के साथ दुकूल के जोडे भी दिए जाते थे।[४६] कालिदास ने भी हस चिह्नित दुकूल का उल्लेख किया है।[४७] किन्तु उससे यह पता नही चलता कि दुकूल एक था या जोडा था। इसी तरह भट्टिकाव्य में भी दो बार दुकूल शब्द आया है[४८] परन्तु उससे भी इसके जोडे होने या न होने पर प्रकाश नही पडता। गीत-गोविन्द में करीब चार बार से भी अधिक दुकूल का उल्लेख हुआ है[४९], उसी में एक बार 'दुकूले' इस द्विवचन का भी व्यवहार हुआ है।[५०]

---

४३ धृतधवलदुकूलमाल्यविलेपनालकार ।—यश० स० पू०, पृ० ३२३

४४ अमृतफेनधवले गोरोचनालिखितहसमिथुनसनाथपर्यन्ते चारुचमरवायुप्रनर्तितान्त देशे दुकूले वसानम् ।—कादम्बरी, पृ० १७

४५ परिधाय राजहसमिथुनलक्ष्मणि सदृशे दुकूले ।—पृ० २०२

४६ उद्धृत, मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० १४७-१४८

४७ आमुक्ताभरण स्रग्वी हसचिन्हदुकूलवान् ।—रघुवश, १७।२५

४८ उदक्षिपन्पट्टदुकूलकेतून् ।—भट्टिकाव्य, ३।३४, अथ स वल्कदुकूलकुथादिभि ।
—वही, १०।१

४९ शिथिलीकृत जघनदुकूलम् ।—गीतगोविन्द, २, ६, ३
श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम् ।—वही, १२,२२,३
विरहमिवापनयामि पयोधररोधकमुरसिदुकूलम् ।—वही, १२, २३, ३

५० मञ्जुलवञ्जुलकुञ्जगत विचकर्ष करेण दुकूले ।—वही १, ४,६ ।

इस विवरण से इतना तो निश्चित रूप से ज्ञात हो जाता है कि दुकूल जोडे के रूप में आता था। इसका एक चादर पहनने और दूसरा ओढने के काम में लिया जाता था। दुकूल के थान को काटकर अन्य वस्त्र भी बनाए जाते थे। बाण ने दुकूल के बने उत्तरीय, साडियाँ, पलगपोश, तकियो के गिलाफ आदि का वर्णन किया है[५१]।

दुकूल के विषय में एक बात और भी विचारणीय है। बाद के साहित्यकारो तथा कोपकारो ने क्षौम और दुकूलको पर्याय माना है। स्वय यशस्तिलक के टीकाकार ने दुकूल का अर्थ क्षौमवस्त्र किया है[५२]। अमरकोषकार ने भी दुकूल को पर्याय माना है।[५३] वास्तव में दुकूल और क्षौम एक नही थे। कौटिल्य ने इन्हे अलग-अलग माना है।[५४] बाण ने क्षौम की उपमा दूधिया रग के क्षीरसागर से तथा अशुक की सुकुमारता की उपमा दुकूल की कोमलता से दी है।[५५]

इस तरह यद्यपि क्षौम और दुकूल एक नही थे फिर भी इनमें अन्तर भी अधिक नही था। दुकूल और क्षौम दोनो एक ही प्रकार की सामग्री से बनते थे। इनमें अन्तर केवल यह था कि जो कुछ मोटा कपडा बनता वह क्षौम कहलाता तथा जो महीन बनता वह दुकूल कहलाता। दुकूल की व्याख्या करने के बाद कौटिल्य ने लिखा है कि इसी से काशी और पाड्रदेश के क्षौम की भी व्याख्या हो गयी।[५६] गणपति शास्त्री ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मोटा दुकूल ही क्षौम कहलाता था।[५७] हेमचन्द्राचार्य ने इसे और भी अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। उन्होने लिखा है कि क्षुमा अतसी (अलसी) को कहते हैं, उससे बना वस्त्र क्षौम कहलाता है। इसी तरह क्षुमा से (अलसी से) रेशे निकालकर जो वस्त्र बनता है वह दुकूल कहलाता है।[५८] साधुसुन्दरगणि ने भी लिखा है

---

५१ अग्रवाल–हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० ७६

५२ दुकूल क्षौमवस्त्रम्।–यश० स० प्र०, पृ० ५६२ स० टीका

५३ क्षौम दकूल स्यात्।—अमरकोप २, ६, ११३

५४ अर्थशास्त्र २, ११

५५ क्षीरोदायमान क्षौमै।—हर्षचरित पृ० ६०
चीनाशुकसुकुमारे दुकूलकोमले।—वही, पृ० ३६

५६. तेन काशिक पौण्ड्रक च क्षौम व्याख्यातम्।—अर्थशास्त्र, २, ११

५७ स्थूल दुकूलमेव हि क्षौममिति व्यपदिश्यते।—वही, स० टी०

५८ क्षुमातसी तस्या विकार क्षौमम्, दुस्यते क्षुमाया आकृष्यते दुकूलम्।—अभिधान-चिन्तामणि, ३।३३३

कि दुकूल अलसी से बने कपडे को कहते हैं।[५९] भारतवर्ष के पूर्वी भागो में (आसाम-बगाल) में यह क्षुमा या अलसी नामक घास बहुतायत से होती थी। बगाल में इसे काखुर कहा जाता था।[६०] दुकूल और क्षौम इसी घास के रेशो से बनने वाले वस्त्र रहे होगे।

सोमदेव ने दुकूल का कई बार उल्लेख किया है, किन्तु क्षौम का एक बार भी नही किया। सम्भव है सोमदेव के पहले से ही दुकूल और क्षौम पर्यायवाची माने जाने लगे हो और इसी कारण सोमदेव ने केवल दुकूल का प्रयोग किया हो। सोमदेव के उल्लेखो से इतना अवश्य मानना चाहिए कि दशवी शताब्दी तक दुकूल का खूब प्रचार था तथा वह वस्त्र, सभ्रान्त और बेशकीमती माना जाता था।

अशुक—यशस्तिलक में कई प्रकार के अशुक का उल्लेख है—अशुक सामान्य या सफेद अशुक[६१], कुसुम्भाशुक या ललाई लिए हुए रग का अशुक[६२], कार्दमिकाशुक अर्थात् नीला या मटमैले रग का अशुक।[६३]

अशुक भारत में भी बनता था तथा चीन से भी आता था। चीन से आने वाला अशुक चीनाशुक कहलाता था। भारतीय जन दोनो प्रकार के अशुको से बहुत काल से परिचित हो चुके थे। चीनाशुक के विषय में ऊपर चीन वस्त्र की व्याख्या करते हुए विशेष लिखा जा चुका है, अतएव यहाँ केवल अशुक या भारतीय अशुक के विषय में विचार करना है।

कालिदास ने सिताशुक,[६४] अरुणाशुक,[६५] रक्ताशुक,[६६] नीलाशुक,[६७] तथा श्यामाशुक[६८] का उल्लेख किया है। सम्भवत अशुक पहले सफेद बनता था, बाद

---

५९ दुकूलमतसीपटे।—शब्दरत्नाकर, ३।२१६

६० डिक्शनरी आफ इकनोमिक प्रॉडक्ट्स, भा० १, पृ० ४६८ ४६९।
उद्धृत, अग्रवाल—हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० ७६-७७

६१ सितपताकाशुक।—यश० उत्त० पृ० १२

६२ कुसुम्भाशुकपिहितगौरीपयोधर।—वही. पृ० १४

६३ कार्दमिकाशुकाधिकृतकायपरिकर।—वही, पृ० २२०

६४ सिताशुका मगलमात्रभूषणा।—विक्रमोर्वशी, ३, १२

६५ अरुणरागनिषेधिभिरशुकै।—रघुवश. ९, ४३

६६ ऋतुसहार ६, ४ २६

६७ विक्रमोर्वशी, पृ० ६०

६८ मेघदूत, पृ० ४१

में उसकी विभिन्न रगो मे रँगाई की जाती थी । कार्दमिकाशुक का अर्थ यशस्तिलक के सस्कृत टीकाकार ने कस्तूरी से रँगा हुआ वस्त्र किया है ।[६९] कात्यायन के अनुसार भी शकल और कर्दम से वस्त्र रँगने का रिवाज था, जिन्हे शाकलिक या कार्दमिक कहते थे (४।२।२ वा०) ।[७०]

बाणभट्ट ने अशुक का कई बार उल्लेख किया है । वे इसे अत्यन्त पतला और स्वच्छ वस्त्र मानते थे ।[७१] एक स्थान पर मृणाल के रेशो से अशुक की सूक्ष्मता का दिग्दर्शन कराया है ।[७२] बाण ने फूल-पत्तियो और पक्षियो की आकृतियो से सुशोभित अशुक का भी उल्लेख किया है ।[७३]

प्राकृत ग्रन्थो में 'असुय' शब्द आता है । आचाराग में अशुक और चीनाशुक दोनो का पृथक्-पृथक् निर्देश है ।[७४] बृहत्-कल्पसूत्र-भाष्य में भी दोनो को अलग-अलग गिनाया है ।[७५]

प्राचीन भारतवर्ष में दुकूल के बाद सबसे अधिक व्यवहार अशुक का ही देखा जाता है । सोमदेव के उल्लेखो से ज्ञात होता है कि दशवी शताब्दी में अशुक का पर्याप्त प्रचार था ।

कौशेय—कौशेय का उल्लेख सोमदेव ने विभिन्न देशो के राजाओ द्वारा भेजे गये उपहारो में किया है । कोशल नरेश ने सम्राट यशोधर को कौशेय वस्त्र उपहार में भेजे ।[७६]

कौशेय शहतूत की पत्ती खाकर कोश बनानेवाले कीडो के रेशम से बनाए जानेवाले वस्त्र का नाम था ।[७७] देशी भाषा में अब इसका 'कोशा' नाम शेष रह गया है । कोशा तैयार करने की वही पुरानी प्रक्रिया अब भी अपनाई जाती है । कोशा मँहगा, खूबसूरत तथा चिकना वस्त्र होता है । मँहगा होने के कारण जन-साधारण इसका सदा उपयोग नही कर पाते, फिर भी विशेष अवसरो के लिए

---

६९ कार्दमिक कर्दमेण रक्तम् ।—यश० उत्त० पृ० २२०, स० टी०

७० उद्धृत, अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २२५

७१ सूक्ष्मविमलेन प्रज्ञावितानेनेवाशुकेनाच्छादितशरीरा ।—हर्षचरित, पृ० ६

७२ विपतन्तुमयेनाशुकेन ।—वही, पृ० १०

७३ बहुविधकुसुमशकुनिशतशोभितादतिस्वच्छादशुकात् ।—वही, पृ० ११४

७४ असुयाणि वा चीणसुयाणि वा ।—आचाराग, २, वस्त्र०, १४, ६

७५ असुग चीणसुगे च विगलेंदो ।—बृहत् कल्पसूत्र०, ४, ३६६१

७६ कौशेयं कौशलेन्द्र ।—यश० स० पू०, पृ० ४७०

७७ मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० ६५

कोशे के वस्त्र बनवा कर रखते हैं। बुन्देलखण्ड में अभी भी कोशे के साफे बाँधने का रिवाज है।

कौशेय के विषय में कौटिल्य ने कुछ अधिक जानकारी दी है। अर्थशास्त्र में लिखा है कि पत्रोर्ण की तरह कौशेय की भी चार योनियाँ होती हैं अर्थात् कौशेय के कीडे नागवृक्ष, लिकुच, वकुल तथा वट के वृक्षो पर पाले जाते है और तदनुसार कौशेय भी चार प्रकार का होता है। नागवृक्ष पर पैदा किया गया पीतवर्ण, लिकुच पर पैदा किया गया गेहुआँ रग का, वकुल पर पैदा किया गया सफेद तथा वट पर पैदा किया गया नवनीत के रग का होता है। कौशेय चीन से भी आता था।[७८]

२ पोशाकें या पहनने के वस्त्र

पोशाक या पहनने के वस्त्रो में कचुक,[७९] वारबाण[८०] तथा चोलक[८१] का उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है।

कचुक—कचुक एक प्रकार का कोट होता था, किन्तु सोमदेव ने चोली अर्थ में कचुक का प्रयोग किया है। खेतो में जाती हुई कृषक वधुएँ कचुक पहने थी, जो कि उनके घटस्तनो के कारण फटे जा रहे थे।[८२] यशस्तिलक के सस्कृत टीकाकार ने कचुक का अर्थ कूर्पासक किया है।[८३]

वारबाण—वारबाण का उल्लेख यशस्तिलक में अमृतमती के वर्णन के प्रसग में आया है। अमृतमती जब अष्टवक्र के साथ रति करके लौटी और जा कर यशोधर के साथ लेट गयी, उस समय जोर-जोर से चल रहे उसके श्वासोच्छ्वास से उसका वारबाण कपित हो रहा था।[८४] श्रुतदेव ने वारबाण का अर्थ कचुक किया है।[८५] अमरकोषकार ने भी कचुक और वारबाण को एक माना

---

७८ नागवृक्षो लिकुचो वकुलो वटश्च योनय। पीतिका नागवृक्षिका, गोधूमवर्णा लौकुची, श्वेता वाकुली, शेषा नवनीतवर्णा। तथा कौशेय चीनपटाश्च चीनभूमिजा व्याख्याता। —अर्थशास्त्र, २, ११

७९ पीनकुचकुम्भदपत्रुटत्कचुका।—यश० स० पू०, पृ० १६

८० निरुन्धाना चोत्कम्पोत्तालितवारबाणम्।—वही, उत्त० पृ० ५१

८१ आप्रपदीनचोलकस्खलितगतिवैलक्ष्य .।—वही, स० पू० पृ० ४६६

८२ देखिए—उद्धरण सख्या ७९

८३ कचुकानि कूर्पासका।—यश० स० पू०, पृ० १६ स० टी०

८४ निरुन्धाना चोत्कम्पोत्तालितवारबाणम्।—यश० उत्त०, पृ० ५१

८५. वारबाण कचुकम्।—वही, स० टी०

है।[८६] किन्तु वास्तव में वारबाण कचुक की तरह का होकर भी कचुक से भिन्न था। यह कचुक की अपेक्षा कुछ कम लम्बा, घुटनो तक पहुँचने वाला कोट था।

काबुल से लगभग २० मील उत्तर खेरखाना से चौथी शती की एक सगमरमर की मूर्ति मिली है। वह घुटने तक लम्बा कोट पहने हैं, जो वारबाण का रूप है।[८७] ठीक वैसा ही कोट पहने अहिच्छत्रा के खिलौनो में एक पुरुष मूर्ति मिली है।[८८]

मथुरा कला में प्राप्त सूर्य और उनके पार्श्वचर दण्ड और पिंगल की वेशभूषा में जो ऊपरी कोट है वह वारबाण ही ज्ञात होता है। मथुरा सग्रहालय, मूर्ति स० १२५६ की सूर्य की मूर्ति का कोट उपर्युक्त खेरखाना की सूर्य-मूर्ति के कोट जैसा ही है। मूर्ति स० ५१३ की पिंगल की मूर्ति भी घुटने तक नीचा कोट पहने है। मथुरा में और भी आने दर्जन मूर्तियो में यह वेशभूषा मिलती है।[८९]

वारबाण भारतीय वेशभूषा मे सासानी ईरान की वेशभूषा से लिया गया। वारबाण पहलवी शब्द का सस्कृत रूप है। इसका फारसी स्वरूप 'वरवान' (Barwan) अरमाइक भाषा में 'वरपानक' (Varpanak) सीरिया की भाषा में इन्ही से मिलता-जुलता 'गुरमानका' (Gurmanaka) और अरबी में 'जुरमानक़ह' (Zurmanaqah) रूप मिलते हैं, जो सब किसी पहलवी मूल शब्द से निकले होने चाहिए।[९०]

भारतीय साहित्य में वारबाण के उल्लेख कम ही मिलते हैं। कौटिल्य ने ऊनी कपडो में वारबाण की गणना की है।[९१] कालिदास ने रघु के योद्धाओ को वारबाण पहने हुए बताया है।[९२] मल्लिनाथ ने वारबाण का अर्थ कचुक किया है।[९३] बाणभट्ट ने सेना में सम्मिलित हुए कुछ राजाओ को स्तवरक के बने वारबाण पहने बताया है।[९४] दधीचि का अगरक्षक सफेद वारबाण पहने

---

८६. कचुको वारबाणः स्त्री।—अमरकोष २, ८, ६४

८७ अग्रवाल—हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० १५०

८८ अग्रवाल—अहिच्छत्रा के खिलौने, चित्र ३०५, पृ० १७३, ऐन्शेण्ट इडिया

८९ अग्रवाल—हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० १५०, फुटनोट ८६

९०. ट्राजेक्शन ऑफ दी फिलोलॉजिकल सोसायटी ऑफ लन्दन, १९४५, पृ० १५४ फुटनोट, हेनिंग। उद्धृत, अग्रवाल—हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० १५१

९१ वारबाण परिस्तोम समन्तभद्रक च आविकम्।—अर्थशास्त्र, २९, ११

९२ तद्योधवारबाणानाम्।—रघुवश, ४।५५

९३ वारबाणाना कचुकानाम्।—वही, स० टी०

९४ तारमुक्तास्तवकितस्तवरकवारबाणैश्च।—हर्षचरित, पृ० २०६

था।[95] कादम्बरी में भी बाणभट्ट ने वारबाण का उल्लेख किया है। चन्द्रापीड जब शिकार खेलने गया तब उसने वारबाण पहन रखा था। मृग-रक्त के सैकडो छीट पडने से उसकी शोभा द्विगुणित हो गयी थी।[96] मृगया से लौटकर चन्द्रापीड परिजनो के द्वारा लाये गये आसन पर बैठा और वारबाण उतार दिया।[97]

उपर्युक्त उल्लेखो से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि वारबाण केवल जिरह-बख्तर के लिए नही, बल्कि साधारण वस्त्र के लिए भी आता था। कौटिल्य के उल्लेखानुसार तो वारबाण ऊनी भी बनते थे। बाणभट्ट को वारबाण की जानकारी हर्ष के दरबार में हुई होगी। भारतवर्ष में यह वस्त्र कब से आया, यह कहना मुश्किल है, किन्तु इसके अत्यल्प उल्लेखो से लगता है कि वारबाण का प्रयोग प्राय राजघरानो तक ही सीमित रहा। सम्भव है अधिक मँहगा होने से इसका प्रचार जनसाधारण में न हो पाया हो। सोमदेव के उल्लेख से इतना निश्चय अवश्य हो जाता है कि दशवो शताब्दी तक भारतीय राज्यपरिवारो में वारबाण का व्यवहार होता आया था तथा कचुक की तरह वारबाण भी स्त्री-पुरुष दोनो पहनते थे।

चोलक—चोलक का उल्लेख सोमदेव ने सेनाओ के वर्णन के प्रसग में किया है। गौड सैनिक पैरो तक लम्बा (आप्रपदीन) चोलक पहने थे।[98] सस्कृत टीकाकार ने चोलक का अर्थ कूर्पासक किया है,[99] किन्तु देखना यह है कि टीकाकार इन वस्त्रो के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट किए बिना ही कुछ भी अर्थ कर देता है। ऊपर कचुक के लिए कूर्पासक कहा है यहाँ चोलक के लिए। वास्तव में ये सभी वस्त्र अलग-अलग तरह के थे।

चोलक एक प्रकार का वह कोट था, जो कचुक या अन्य सब प्रकार के वस्त्रो के ऊपर पहना जाता था। यह एक सभ्रान्त और आदरसूचक वस्त्र समझा जाता था। उत्तर-पश्चिम भारत में सर्वत्र नौशे के लिए इस वेश का रिवाज लोक में अभी भी है, जिसे चोला कहते हैं। चोला ढीला-ढाला गुल्फो तक लम्बा घुटने तक का पहनावा है, जो सब वस्त्रो के ऊपर पहना जाता है।[100]

---

९५ धवनवारबाणधारिणम्।—वही, पृ० २४

९६ मृगरुधिरलवशतशबलेन वारबाणेन।—कादम्बरी, पृ० २१५

९७ परिजनोपनीत उपविश्यासने वारबाणमवतार्य।—वही, पृ० २१६

९८ आप्रपदीनचोलकस्खलितगतिवैलक्ष्य।—यश० स० पू०, ४६६

९९ चोलक कूर्पासक।—वही सं० टी०

१०० अग्रवाल—हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० १५२

सभवत मध्य एशिया से आनेवाले शक लोग इस वेश को भारत में लाये, और उनके द्वारा प्रचारित होकर यह भारतीय वेशभूषा में समा गया।[१०१]

मथुरा सग्रहालय में जो कनिष्क की मूर्ति है उसमें नीचे लम्बा कचुक और ऊपर सामने से धुराधुर खुला हुआ एक कोट दिखाया गया है, जिसकी पहचान चोलक से की जा सकती है।[१०२] मथुरा से प्राप्त हुई सूर्य की कई मूर्तियो में भी इसी प्रकार के खुले गले का ऊपरी पहरावा पाया जाता है। चष्टन की मूर्ति का भी ऊपरी लम्बा वेश चोलक ही ज्ञात होता है। इसका गला सामने से तिकोना खुला है। कनिष्क और चष्टन के चोलको में अन्तर है। ये दोनो दो प्रकार के हैं। कनिष्क का धुराधुर बीच में खुलने वाला है और चष्टन का दुपरती, जिसका ऊपर का परत बायी तरफ से खुलता है तथा बीच में गले के पास तिकोना भाग खुला दिखाई देता है। कनिष्क की शैली का चोलक मथुरा सग्रहालय की डी० ४६ मजक मूर्ति में और भी स्पष्ट है।[१०३]

मध्य एशिया से लगभग सातवी शती का एक ऐसा ही, पुरुष का चोलक प्राप्त हुआ है, जिसका गला तिकोना खुला है।[१०४] चष्टन-शैली के चोलक का एक सुन्दर नमूना लाप मरुभूमि से प्राप्त मृण्मय मूर्ति के चोलक में उपलब्ध है। यह उत्तरी वाईवश (३८६-५३५) के समय का है।[१०५]

बाणभट्ट ने राजाओ के वेशभूषा में चीन-चोलक का उल्लेख किया है।[१०६]

चण्डातक—चण्डातक का उल्लेख सोमदेव ने चण्डमारी देवी का वर्णन करते हुए किया है। गीला चमडा ही उस देवी का चण्डातक था।[१०७]

चण्डातक का अर्थ अमरकोषकार ने आधे जाघो तक पहुँचने वाला अधोवस्त्र

---

१०१ अग्रवाल - वही पृ० १५१। मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० १६१

१०२ मथुरा म्युजियम हैंडबुक, चित्र ४, उद्धृत, अग्रवाल—हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० १५१

१०३ अग्रवाल—वही, पृ० १५२

१०४ वायवी सिलवान—इन्वेस्टिगेशन ऑफ सिल्क फ्राम एड्सन गोल एण्ड लापनार (स्टाकहोम, १९४९) प्ले० ८९। उद्धृत अग्रवाल—वही पृ० १५२

१०५ वायवी सिलवान—वही, पृ० ८३, चित्र स० २२। उद्धृत, अग्रवाल—वही, पृ० १५२

१०६, चापचितचीनचोलकै।—हर्षचरित, पृ० २०६

१०७ चण्डातकमार्द्रचर्माणि।—यश० सं० पृ०, पृ० १५०

किया है।[१०८] यह एक प्रकार का जाघिया या घघरीनुमा वस्त्र था, जिसे स्त्री और पुरुष दोनो पहनते थे।[१०९]

उष्णीष—शिरोवस्त्र में सोमदेव ने उष्णीष और पट्टिका का उल्लेख किया है। उत्तरापथ के सैनिक रग-विरगा उष्णीष पहने थे।[११०] दक्षिणापथ के सैनिको ने बालो को पट्टिका से कसकर बान्ध रखा था।[१११]

सोमदेव के उल्लेख से उष्णीष के आकार-प्रकार या बाँधने के ढग पर विशेष प्रकाश नही पडता, केवल इतना ज्ञात होता है कि उष्णीष कई रग के बनते थे। सम्भव है इनकी रगाई बाँधनू के ढग से की जाती हो। बुन्देलखण्ड के लोकगीतो में पचरग पाग (उष्णीष) के उल्लेख आते है।

डॉ० मोतीचन्द्र ने साहित्य तथा भरहुत, साँची और अमरावती की कला में अकित अनेक प्रकार के उष्णीषो का वर्णन भारतीय वेशभूषा में किया है।

कौपीन—कौपीन का उल्लेख सोमदेव ने एक उपमालकार में किया है। दाक्षिणात्य सैनिक जाघो से इकदम सटा हुआ वस्त्र पहने थे, जिससे वे कौपीन-धारी वैखानस की तरह लगते थे।[११२]

कौपीन एक प्रकार का छोटा चादर कहलाता था, जिसका उपयोग साधु पहनने के काम में करते थे।

उत्तरीय—उत्तरीय का उल्लेख भी तीन वार हुआ है। मुनिकुमारयुगल शरीर की शुभ्र प्रभा के कारण ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे उन्होने दुकूल का उत्तरीय ओढ रखा हो।[११३] कुमार यशोवर के राज्याभिषेक का मुहूर्त निकालने के लिए जो ज्योतिषी लोग इकट्ठे हुए थे वे दुकूल के उत्तरीय से अपने मुंह ढँके थे।[११४]

राजमाता चन्द्रमति ने सध्याराग की तरह हलके लाल रग का उत्तरीय ओढ रखा था (सन्ध्यारागोत्तरीयवसनाम्, उत्त० ८२)। ओढनेवाले चादर को उत्तरीय कहा जाता था। अमरकोषकार ने उत्तरीय को ओढने वाले वस्त्रो में गिनाया है।[११५]

---

१०८ अधोरुक वरस्त्रीणा स्याच्चण्डातकमस्त्रियाम्।—अमरकोष, २, ६, ११६

१०९ मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० २३

११० भागमार्गार्पितानेकवर्णवसनवेष्टितोष्णीषम्।—यश० स० पू० पृ० ४६५

१११ पट्टिकाप्रतानघटितोद्भटजूटम्। पृ० ४६१

११२ आवक्षणोरश्मनिविडनिवसन सकौपीन वैखानसवृन्दमिव।—पृ० ४६२

११३, वपुप्रभापटलदुकूलोत्तरीयम्।—पृ० १५६

११४ उत्तरीयदुकूलाचलपिहितबिम्बिना। - पृ० ३१६

११५ सव्यानमुत्तरीय च।—अमरकोष, २, ६, ११८

चीवर—एक उपमा अलकार में चीवर का उल्लेख है। चीवर की ललाई से अन्त करण के अनुराग की उपमा दी गयी है।[११६]

बौद्ध भिक्षुओ के पहिनने-ओढने के कापाय वर्ण के चादर चीवर कहलाते थे। महावग्ग में चीवरक्खन्धक नाम का एक स्वतन्त्र प्रकरण है, जिसमें भिक्षुओ के लिए तरह-तरह की कथाओ के माध्यम से चीवरो के विषय में ज्ञातव्य सामग्री प्रस्तुत की गयी है।[११७] चीवर कपडो के अनेक टुकडो को एक साथ सिलकर बनाए जाते हैं।

अवान—आश्रमवासी तपस्वियो के वस्त्रो के लिए यशस्तिलक में अवान शब्द आया है।[११८]

परिधान—अधोवस्त्रो में सोमदेव ने परिधान और उपसव्यान शब्दो का उल्लेख किया है। एक उक्ति में सोमदेव कहते हैं कि जो राजा अपने देश की रक्षा न करके दूसरे देशों को जीतने की इच्छा करता है वह उस पुरुष के समान है जो धोती खोल कर सिर पर साफा बाँधता है।[११९] अमरकोपकार ने नीचे पहननेवाले वस्त्रो में परिधान की गणना की है।[१२०] बुन्देलखण्ड में अभी भी धोती को पर्दनी या परदनिया कहा जाता है, जो इसी परिधान शब्द का विगडा हुआ रूप है।

उपसव्यान—उपसव्यान का दो बार उल्लेख है। एक कथा के प्रसग में एक अध्यापक बकरा खरीदता है और अपने शिष्य से कहता है, कि इसे उपसव्यान से अच्छी तरह बाँधकर लाना।[१२१] यहाँ पर सस्कृत टीकाकार ने उपसव्यान का अर्थ उत्तरीय वस्त्र किया है।[१२२]

राजमाता ने सभामडप में जाते समय उपसव्यान धारण किया था (अरुणमणिमौलिमयूखोन्मुखराजिरजितोपसव्यानाम्, उत्त० ८२)। यहाँ सस्कृत टीकाकार ने अधोवस्त्र ही अर्थ किया है।

---

११६ चीवरोपरागनिरतान्त करणेन।—यश० उत्त०, पृ० ८

११७ महावग्ग, चीवरक्खन्धक

११८ अपरगिरिशिखराश्रयाश्रमवासतापसावानवितानितधातुजलपाटलपटप्रतानस्पृशि।—यश० उत्त०, पृ० ५।

११९ अकृत्वा निजदेशस्य रक्षां यो विजिगीषते।
स नृप परिधानेन वृत्तमौलि पुमानिव॥—यश० रा० पृ०, पृ० ७४

१२० अन्तरीयोपसव्यानपरिधानान्यधोंशुके।—अमरकोष, २ ६, ११७

१२१ तदतियत्नमुपसव्यानेन बद्ध्वानीयताम्।—यश० उत्त० पृ० १२२

१२२. उपसव्यानेन उत्तरीयवस्त्रेण।—वही, स० टी०

परिधान और उपसव्यान में क्या अन्तर था, यह स्पष्ट नही होता।[123] अमरकोषकार ने दोनो को अधोवस्त्र कहा है। हेमचन्द्र ने भी दोनो को अधोवस्त्र कहा है।[124] यशस्तिलक के सस्कृत टीकाकार के एक स्थान पर अधोवस्त्र और एक स्थान पर उत्तरीय अर्थ करने से प्रतीत होता है कि टीकाकार को उपसव्यान के अर्थ का ठीक पता नही था। अमरकोषकार ने अधोवस्त्र के लिए उपसव्यान और उत्तरीय के लिए सव्यान [125] पद दिया है। सम्भवत इसी शब्द व्यवहार से भ्रमित होकर टीकाकार ने यह अर्थ कर दिया।

गुह्या—गुह्या का उल्लेख शखनक नामक दूत के वर्णन मे हुआ है। शखनक ने पुराने गोन की गुह्या पहन रखी थी।[126] गुह्या का अर्थ श्रुतसागर ने कच्छोटिका किया है।[127]

बुन्देलखण्ड में बिना सिले वस्त्र को लगोट की तरह पहनने को कछुटिया लगाना कहते हैं। यहाँ गुह्या से सोमदेव का यही तात्पर्य प्रतीत होता है।

हसतूलिका—हसतूलिका का उल्लेख सोमदेव ने अमृतमति महारानी के भवन के प्रसग में किया है। अमृतमति के पलग पर हसतूलिका बिछी थी, जिस पर तरगित दुकूल का चादर बिछा था।[128] सस्कृत टीकाकार ने हसतूलिका का अर्थ प्रास्तरण विशेष किया है।[129]

उपधान—तकिए के लिए सोमदेव ने अत्यन्त प्रचलित सस्कृत शब्द उपधान का प्रयोग किया है। अमृतमती के अन्त पुर में पलग के दोनो ओर दो तकिए रखे थे, जिससे दोनो किनारे ऊँचे हो गये थे।[130]

कन्था—यशस्तिलक में कन्था का उल्लेख दो बार आया है। शीतकाल के वर्णन में सोमदेव ने लिखा है कि इतने जोरो की ठड पड रही थी कि

१२३ देखिये—उद्धरण १२०

१२४ परिधान त्वधोंशुकम्, अन्तरीय निवसनमुपसव्यानमित्यपि, ।—अभिधान चिन्तामणि, ३।३३६ ३३७

१२५ सव्यानमुत्तरीय च।—अमरकोष, २।६।११८

१२६. पटच्चरणपर्यायगोणीगुह्यापिहितमेहन ।—यश० स० पू०, पृ० ३९८

१२७ गुह्या कच्छोटिका।—वही स० टी०

१२८ तरगितदुकूलपटप्रसाधितहसतूलिकम्।—यश० उत्त०, पृ० ३०

१२९ हसतूलिका प्रास्तरणविशेष ।—वही, स० टी०

१३० उपधानद्वयोत्तम्भितपूर्वापरभागम्।—यश० उत्त०, पृ० ३०

गरीब परिवारों में पुरानी कन्थाएँ चिथड़ी हुई जा रही थी।[१३१] एक अन्य स्थल पर दु स्वप्न के कारण राज्य छोडने के लिए तत्पर सम्राट यशोधर को राजमाता समझाती है कि जू के भय से क्या कन्था भी छोड दी जाती है।[१३२]

कन्था, जिसे देशी भाषा में कथरी कहा जाता है, अनेक पुराने जीर्ण-शीर्ण कपडो को एक साथ सिल कर बनाए गये गद्दे को कहते हैं। गरीब परिवार, जो ठड से बचाव के लिये गर्म या रूई भरे हुए कपडे नही खरीद सकते, वे कन्थाएँ बना लेते हैं। ओढने और बिछाने दोनो कामो में कन्थाओ का उपयोग किया जाता है। मोटी होने से इन्हे जल्दी से धोना भी मुश्किल होता है, इसी कारण इनमें जूँ भी पड जाती है।

नमत—यशस्तिलक में नमत[१३३] (हि० नमदा) का उल्लेख एक ग्राम के वर्णन के प्रसग में आया है। उज्जयिनी के समीप में एक ग्राम के लोग नमदे और चमडे की जीनें बना कर अपनी आजीविका चलाते थे।[१३४] सस्कृत टीकाकार ने नमत का अर्थ ऊनी खेस या चादर किया है।[१३५]

नमदे भेडो या पहाडी बकरो के रोएँ को कूट कर जमाए हुए वस्त्र को कहते हैं। काश्मीर के नमदे अभी भी प्रसिद्ध हैं।

निचोल—यशस्तिलक में निचोल के लिए निचल शब्द आया है।[१३६] सस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर निचोल का अर्थ कचुक किया है[१३७] तथा दूसरे स्थान पर प्रावरण वस्त्र किया है।[१३८] प० सुन्दरलाल शास्त्री ने भी इसी के आधार पर हिन्दी अनुवाद मे भी उक्त दोनो ही अर्थ कर दिये है।[१३९] प्रसग की दृष्टि से निचल का अर्थ कचुक यहा ठीक नही बैठता। अमरकोषकार ने

---

१३१ शिथिलयति दुर्विधकुटुम्बेषु जरत्कन्थापटच्चराणि।—यश० म० पू०, पृ० ५७

१३२ भयेन किं मन्दविसर्पिणीना कथा त्वजन्कोऽपि निरीक्षितोऽस्ति।
—यश० उत्त०, पृ० ८९

१३३ मुद्रित प्रति का तमत पाठ गलत है।

१३४ नमताजिनजेणाजीवनोटजाकुले।—यश० उत्त०, पृ० २१८

१३५ नमतम् ऊर्णामयास्तरणम्।—वही, स० टी०

१३६ जगद्वलयनीलनिचलेषु, निचलमनाथनृपतिचापमपादिषु।
—यश० स०, पृ० ७१ ७२

१३७ नीलनिचल कृष्णवर्णनिचोलक कचुक।—वही, स० टी०

१३८ निचलसनाथानि प्रावरणवस्त्रसहितानि।—वही, स० टी०

१३९ सुन्दरलाल शास्त्री—हिन्दी यशस्तिलक, पृ० ४०

निचोल का अर्थ प्रच्छदपट अर्थात् बिछाने का चादर किया है।[१४०] क्षीरस्वामी ने इसे और भी अधिक स्पष्ट किया है कि जिससे शय्या आदि प्रच्छादित की जाए उसे निचोल कहते हैं।[१४१] शब्दरत्नाकर में भी निचोलक, निचुलक, निचोल, निचोलि और निचुल ये पाँच शब्द प्रच्छादक वस्त्र के लिए आये हैं।[१४२] यही अर्थ यशस्तिलक में भी उपयुक्त बैठता है। सोमदेव ने लिखा है कि काले-काले मेघ पृथ्वीमण्डल पर इस तरह छा गये, जैसे नीला प्रच्छदपट बिछा दिया हो।[१४३]

वितान—यशस्तिलक में सिचयोल्लोच तथा वितान शब्द आए हैं। सोमदेव ने लिखा है कि राजपुर में गगनचुम्बी शिखरो पर लगे हुए सुवर्ण-कलशो से निकलने वाली कान्ति से आकाश-लक्ष्मी के भवन में सिचयोल्लोच-सा बन रहा था।[१४४]

एक दूसरे प्रसग में सोमदेव ने लिखा है कि अस्ताचल पर रहनेवाले साधुओ ने अपने अवान सूखने के लिए वितान की तरह डाल रखे थे।[१४५] चण्डमारी के मन्दिर में पुराने चमड़े के बने वितान का उल्लेख है।[१४६]

अमरकोष में उल्लोच और वितान समानार्थी शब्द हैं।[१४७]

•

---

१४० निचोल प्रच्छदपट।—अमरकोष, २, ६, ११६

१४१ निचोलते अनेन निचोल, येन तूलशय्यादि प्रच्छाद्यते।—वही, स० टी०

१४२ निचोलको निचुलको निचोल च निचोल्यपि।
निचुलो वसतिथकाया स्मृता पर्यस्तिकायुत ॥—शब्दरत्नाकर, ३, २२९

१४३ पयोधरोन्नतिजनितजगद्वलयनीलनिचलेषु।—यश० स० पू० पृ० ७१

१४४ अपरनररत्नचयनिचितकाचनकलशविसरदविरलकिरणजालजनितान्तरिक्षलक्ष्मीनिवासविचित्रसिचयोल्लोचचै।—यश० स० पू०, पृ० १८-१९

१४५ अपरगिरिशिखराश्रयाश्रमावासतापसावानवितानितधातुजलपाटलप्रतानस्पृशि।
—यश० उत्त०, पृ० ५

१४६ जीर्णचर्मविनिर्मितवितानम्।—यश० स० पू०, पृ० ४८

१४७ अस्त्री वितानमुल्लोचो।—अमरकोष, २, ६, १२०

गरीव परिवारो में पुरानी कन्थाएँ चिथडी हुई जा रही थी।[१३१] एक अन्य स्थल पर दु स्वप्न के कारण राज्य छोडने के लिए तत्पर सम्राट यशोधर को राजमाता समझाती है कि जू के भय से क्या कन्था भी छोड दी जाती है।[१३२]

कन्था, जिसे देशी भाषा में कथरी कहा जाता है, अनेक पुराने जीर्ण-शीर्ण कपडो को एक साथ सिल कर वनाए गये गद्दे को कहते हैं। गरीव परिवार, जो ठड से वचाव के लिये गर्म या रूई भरे हुए कपडे नही खरीद सकते, वे कन्थाएँ वना लेते हैं। ओढने और बिछाने दोनो कामो में कन्थाओ का उपयोग किया जाता है। मोटी होने से इन्हे जल्दी से धोना भी मुश्किल होता है, इसी कारण इनमें जूँ भी पड जाती है।

नमत—यशस्तिलक में नमत[१३३] (हि० नमदा) का उल्लेख एक ग्राम के वर्णन के प्रसग में आया है। उज्जयिनी के समीप में एक ग्राम के लोग नमदे और चमडे की जीनें वना कर अपनी आजीविका चलाते थे।[१३४] सस्कृत टीकाकार ने नमत का अर्थ ऊनी खेस या चादर किया है।[१३५]

नमदे भेडो या पहाडी वकरो के रोएँ को कूट कर जमाए हुए वस्त्र को कहते हैं। काश्मीर के नमदे अभी भी प्रसिद्ध हैं।

निचोल—यशस्तिलक में निचोल के लिए निचल शब्द आया है।[१३६] सस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर निचोल का अर्थ कचुक किया है[१३७] तथा दूसरे स्थान पर प्रावरण वस्त्र किया है।[१३८] प० सुन्दरलाल शास्त्री ने भी इसी के आधार पर हिन्दी अनुवाद में भी उक्त दोनो ही अर्थ कर दिये हैं।[१३९] प्रसग की दृष्टि से निचल का अर्थ कचुक यहा ठीक नही वैठता। अमरकोषकार ने

---

१३१ शिथिलयति दुर्विधकुटुम्बेषु जरत्कन्थापटच्चराणि।—यश० म० पू०, पृ० ५७

१३२ भयेन किं मन्दविसर्पिणीना कन्था त्यजन्कोऽपि निराश्रितोऽस्ति।
—यश० उत्त०, पृ० ८९

१३३ मुद्रित प्रति का तमत पाठ गलत है।

१३४ नमताजिनजेणाजीवनोटजाकुले।—यश० उत्त०, पृ० २१८

१३५ नमतम् ऊर्णामयास्तरणम्।—वही, स० टी०

१३६ जगद्वलयनीलनिचलेषु, निचलसनाथनृपतिचापमपादिषु।
—यश० म०, पृ० ७१ ७२

१३७ नीलनिचल कृष्णवर्णनिचोलक कचुक।—वही, म० टी०

१३८ निचलसनाथानि प्रावरणवस्त्रसहितानि।—वही, स० टी०

१३९ सुन्दरलाल शास्त्री—हिन्दी यशस्तिलक, पृ० ४०

निचोल का अर्थ प्रच्छदपट अर्थात् बिछाने का चादर किया है।[१४०] क्षीरस्वामी ने इसे और भी अधिक स्पष्ट किया है कि जिससे शय्या आदि प्रच्छादित की जाए उसे निचोल कहते हैं।[१४१] शब्दरत्नाकर में भी निचोलक, निचुलक, निचोल, निचोलि और निचुल ये पाँच शब्द प्रच्छादक वस्त्र के लिए आये हैं।[१४२] यही अर्थ यशस्तिलक में भी उपयुक्त बैठता है। सोमदेव ने लिखा है कि काले-काले मेघ पृथ्वीमण्डल पर इस तरह छा गये, जैसे नीला प्रच्छदपट बिछा दिया हो।[१४३]

वितान—यशस्तिलक में सिचयाल्लोच तथा वितान शब्द आए हैं। सोमदेव ने लिखा है कि राजपुर में गगनचुम्बी शिखरो पर लगे हुए सुवर्ण-कलशो से निकलने वाली कान्ति से आकाश-लक्ष्मी के भवन में सिचयोल्लोच-सा बन रहा था।[१४४]

एक दूसरे प्रसग में सोमदेव ने लिखा है कि अस्ताचल पर रहनेवाले साधुओ ने अपने अवान सूखने के लिए वितान की तरह डाल रखे थे।[१४५] चण्डमारी के मन्दिर में पुराने चमडे के बने वितान का उल्लेख है।[१४६]

अमरकोष में उल्लोच और वितान समानार्थी शब्द हैं।[१४७]

•

---

१४० निचोल प्रच्छदपट।—अमरकोष, २, ६, ११६

१४१ निचोलते अनेन निचोल, येन तूलशय्यादि प्रच्छाद्यते।—वही, स० टी०

१४२ निचोलको निचुलको निचोल च निचोल्यपि।
निचुलो वसत्यिकाया स्मृता पर्यस्तिकायुत ॥—शब्दरत्नाकर, ३, २२९

१४३ पयोधरोन्नतिजनितजगद्वलयनीलनिचोलेषु।—यश० रा० पू० पृ० ७१

१४४ अपरम्परत्नचयनिचितकाचनकलशविसरदविरलकिरणजालजनितान्तरिक्षलक्ष्मी-
निवासविचित्रसिचयोल्लोचै।—यश० रा० पू०, पृ० १८-१९

१४५ अपरगिरिशिखराश्रयाश्रमावासतापसावानविताननितधातुजलपाटलप्रतानस्पृशि।
—यश० उत्त०, पृ० ५

१४६ जीर्णचर्मविनिर्मितवितानम्।—यश० रा० पू०, पृ० ४८

१४७ अस्त्री वितानमुल्लोचो।—अमरकोष, २, ६, १२०

आभूषण

यशस्तिलक में सोमदेव ने शरीर के विभिन्न अगो में धारण किये जाने वाले विभिन्न अलकारो या आभूषणो का उल्लेख किया है। शिरोभूषण में किरीट, मौलि, पट्ट, मुकुट और कोटीर, कर्णाभरणो में अवतस, कर्णपूर, कर्णिका, कर्णोत्पल तथा कुण्डल, गले के आभूषणो में एकावली, कण्ठिका, मौक्तिक-दाम तथा हारयष्टि, भुजा के आभूषणो मे ककण और वलय, अगुली के आभूषण में उर्मिका तथा अगुलीयक, कमर के आभूषणो मे काँची, मेखला, रसना तथा सारसना और पैर के आभूषणो में मजीर, हिंजीरक, नूपुर, हसक तथा तुलाकोटि के उल्लेख हैं। भारतीय अलकारशास्त्र की दृष्टि से यह सामग्री विशेष महत्व की है। विशेष विवरण निम्नप्रकार है—

शिरोभूषण

शिरोभूषण में किरीट, मौलि, पट्ट, और मुकुट का उल्लेख है।

किरीट—किरीट का दो वार उल्लेख हुआ है। मगलपद्य में कहा गया है कि जिनेन्द्रदेव के चरणकमलो का प्रतिबिम्ब नमस्कार करते हुए इन्द्र के किरीट में पड रहा था।[१] दूसरे प्रसग में मुनिमनोहर नामक मेखला को अटवी रूप लक्ष्मी के किरीट की शोभा के समान कहा गया है।[२]

मौलि—मौलि का उल्लेख भी दो बार हुआ है। राजपुर के उद्यान को महादेव के मौलि के समान कहा गया है।[३] एक प्रसग में राजाओ के मौलियो का उल्लेख है। पाँचाल नरेश के दूत से यशोधर का एक योद्धा कहता है कि यदि कोई राजा हठ के कारण अपना मौलि यशोधर के चरणो में नही झुकाता तो युद्ध में उसका सिर काट लूँगा।[४]

---

१ त्रिविष्टपाधीशकिरीटोदयकोटिषु।—उ० पू०, पृ० २

२ किरीटोच्छ्रूय इवाटवीलक्ष्म्या।—पृ० १३२

३ ईशानमौलिमिव।—पृ० ६५

४ हठविलुठितमौलि।—पृ० ५५६

पट्ट—पट्टबन्ध उत्सव के प्रसग में पट्ट का उल्लेख है ।[५] पट्ट सिर पर बाँधने का एक विशेष प्रकार का आभूषण था । यह प्राय सोने का होता था जो उष्णीष या शिरो-भूषा के ऊपर बाँधा जाता था । केवल राजा, युवराज, राजमहिषी और सेनापति को पट्ट बाँधने का अधिकार था । बृहत्संहिता (४८ २-४) में पाँच प्रकार के पट्टो की लम्बाई, चौडाई और शिखा का विवरण दिया गया है । पाँचवें प्रकार का पट्ट प्रसाद-पट्ट कहलाता था, जो सम्राट की कृपा से किसी को भी प्राप्त हो सकता था ।[६]

मुकुट—एक प्रसग में महासामन्तो के मुकुटो का उल्लेख है ।[७]

कर्णाभूषण

कर्ण के आभूषणो में अवतस, कर्णपूर, कर्णिका, कर्णोत्पल तथा कुण्डल का उल्लेख है ।

अवतस—अवतस प्राय पल्लवो अथवा पुष्पो का बनता था । यशस्तिलक में विभिन्न प्रसगो पर पल्लव, चम्पक, कचनार, उत्पल, कुवलय तथा कैरव के बने अवतसो के उल्लेख आये हैं । एक स्थान पर रत्नावतस का भी उल्लेख है ।

पल्लवावतस—प्रमदवन की क्रीडाओ के प्रसग में सोमदेव ने लिखा है कि कपोलो पर आये हुए स्वेदबिन्दु रूप मजरी-जाल से कामिनियो के अवतस-पल्लव पुष्पित से हो गये थे ।[८] यन्त्रधारागृह के प्रसग में भी अवतस किसलय का उल्लेख है ।[९]

पुष्पावतस—राजपुर की कामिनियाँ कचनार के विकसित हुए पुष्पो में चम्पा के पुष्प लगाकर अवतस बनाती थी ।[१०] उत्पल के अवतसो को छूती हुई कुन्तल वल्लरी ऐसी प्रतीत होती थी जैसे उत्पल पर भौंरे बैठे हो ।[११] कानो में पहने

---

५ पट्टबन्धविवाहोत्सवाय ।—पृ० २८८
पट्टबन्धोत्सवोपकरणसंभार ।—पृ० २८६

६ अग्रवाल—हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० १५५

७ महासामन्तमुकुटमाणिक्य ।—यश० सं० पू० पृ० ३३६

८ कपोलतलोल्लसत्स्वेदजलमजरीजालकुसुमितावतसपल्लवाभि ।—पृ० ३८

९ वल्लभावतसकिसलयास्वादम् ।—पृ० ५३१

१० चम्पकचितविकचकचनारविरचितावतसेन ।—पृ० १३६

११ कर्णावतसोत्पलश्लिष्टैर्द्विरेफसुन्दरद्युति कुन्तलवल्लरी ।—पृ० १२१

हुए अवतसोत्पल विरह की अवस्था में मुकुलित हो जाते थे।[१२] मुनिकुमार युगल कोई अलकार नही पहने थे, फिर भी कानो पर पड रही अपने नीले नेत्रो की कान्ति से लगते थे मानो कुवलय के अवतस पहने हो।[१३] एक स्थान पर उत्प्रेक्षा-लकार में कुवलयावतस का उल्लेख है।[१४] यन्त्रधारागृह में यन्त्रस्त्री को भी कुवलय के अवतस पहनाए गये थे।[१५]

उत्पल और कुवलय दोनो नीले कमल के नाम हैं,[१६] इसलिए उपर्युक्त काव्या-लकारो के साथ उनका सामजस्य बैठाया गया है।

कैरव[१७] अर्थात् सफेद कमल के अवतस का भी एक प्रसग में उल्लेख है।[१८] यहाँ सोमदेव ने अवतस के लिए केवल वतस शब्द का प्रयोग किया है। भागुरि के अनुसार 'अव' और 'अपि' उपसर्गों के अकार का लोप हो जाता है। एक स्थान पर रत्नावतस का उल्लेख है (वर्मरत्नावतस, स० पू० ५६६)।

अवतस पहनने का रिवाज सम्भवत कर्णाटक तथा वगाल में अधिक था, क्योकि सोमदेव ने एक प्रसग पर मारिदत्त राजा को कर्नाटक देश की कामिनियो के लिए अवतस के समान[१९] तथा एक अन्य प्रसग में वगाल की वनिताओ के कर्णावतसो की तरह वताया है।[२०] एक स्थान पर पद्मावतस का उल्लेख है (पद्मावतसरमणीरमणीयसार, ५९७, पू०)।

कर्णपूर—कर्णपूर का उल्लेख चार वार हुआ है। एक स्थान पर स्त्रियो के मधुरालाप को कर्णपूर के समान वताया है।[२१] दूसरे प्रसग में सूक्त गीतामृत को कर्णपूर की तरह स्वीकृत करते हुए लिखा है।[२२] यन्त्रधारागृह के प्रसग में मरुए

---

१२ मुकुलित कर्णावतसोत्पले।—पृ० ६१३
१३ अनवतसमपि कुवलयितकर्णम्।—पृ० १५६
१४ कुवलयै कर्णावतसोदयै।—पृ० ६१२
१५ कुवलयेनावतसापिनैन।—पृ० ५३१
१६ स्यादुत्पल कुवलयमथ नीलाम्बुजन्म च।—अमरकोष, १ ६ ३७
१७ सिते कुमुदकैरवे।—वही, १ ६ ३८
१८ कैरवावतस।—पृ० ६१०
१९. कर्णाटयुवतिसुरतावतस।—पृ० १८०
२० वगीवनिता श्रवणावतस।—पृ० १८८
२१ स्मरस्तारालापकर्णपूरै।—पृ० ७४
२२ सूक्तगीतामृतरस कर्णपूरता नयन्।—पृ० ३६६

के फूल से बने कर्णपूर का उल्लेख है।[२३] यशोधर को दशार्ण देश की स्त्रियो के लिए कर्णपूर कहा है (स० पू० पृ० ५६८)। सस्कृत टीकाकार ने कर्णपूर का पर्याय कर्णावतस दिया है।[२४]

कर्णपूर के लिए देशी भाषा में कनफूल शब्द चलता है (कर्णपूर > कर्णफूल > कनफूल) । कर्णपूर या कनफूल विकसित पुष्प या कुड्मल के आकार के बनते हैं।

कर्णिका—यशस्तिलक में कर्णिका का केवल एक बार उल्लेख है। द्रामिल सैनिक अपने लम्बे-लम्बे कानो में सोने की कर्णिका पहने थे।[२५] सोमदेव ने लिखा है कि सुवर्ण कर्णिकाओ से निकलने वाली किरणे कपोलो पर पडती थी, जिससे लगता था कि कपोलो पर फूले हुए कनेर के उपवन की रचना की गयी है।[२६] इस उपमा से लगता है कि कर्णिका कनेर के फूल के आकार की बनती होगी। अमरकोषकार ने कर्णिका और तालपत्र को पर्याय माना है।[२७] क्षीरस्वामी ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि कर्णिका तालपत्र की तरह सोने की भी बनती थी।[२८] इससे स्पष्ट है कि कर्णिका तालपत्र की तरह गोल आभूषण था, आजकल इसे तरोना कहते हैं।

कर्णोत्पल—ऊपर उत्पल के अवतसो का वर्णन किया गया है, कर्णोत्पल का भी एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने यौधेय की कृषक वधुओ के नेत्रो की उपमा विकसित हुए कर्णोत्पल से दी है।[२९]

कर्णोत्पल सम्भवत उत्पल अर्थात् नीले कमल का बनता था अथवा उसी आकार का सोने आदि का भी बनता हो। अजन्ता के चित्रो में भी कर्णोत्पल का चित्राकन हुआ है।[३०]

---

२३ कर्णपूरमरुबकोद्भेदसुन्दरगण्डमण्डलाभि ।—पृ० ५३२

२४ कर्णपूर कर्णाभरण अवणावतस ।—स० टी० पृ० २५

२५ अतिप्रलम्बश्रवणदेशदोलायमानस्फारसुवर्णकर्णिका ।—पृ० ४६३

२६- सुवर्णकर्णिकाकिरणकोटिकमनीयमुखमण्डलतयाकपोलस्थलीपरिकल्पितप्रफुल्ल-कर्णिकारकाननमिव ।—पृ० ४६२

२७ कर्णिका तालपत्र स्यात ।—अमरकोष, २,६,१०३

२८ कर्णालकारस्तालपत्रवत्सौवर्णोऽपि। वही, स० टी०

२९ विकचकर्णोत्पलस्पर्धितरलेक्षणा ।—यश० पृ० १९

३०. औधकृत अजन्ता, फलक २३। उद्धृत, अग्रवाल—हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन फलक २०, चित्र ७८

कुण्डल—यशस्तिलक में कुण्डल का उल्लेख तीन बार हुआ है। शंखनक कपास के कुड्मल की आकृति के बने कुण्डल पहने था।[३१] स्वयं सम्राट यशोधर ने चन्द्रकान्त के बने कुण्डल धारण किये थे।[३२] मुनिकुमार युगल बिना आभूषणों के ही अपने कपोलों की कान्ति से ऐसे लगते थे मानो कानों में कुण्डल धारण किये हों।[३३]

शंखनक के 'तूलिनीकुसुमकुड्मल' के उल्लेख से ज्ञात होता है कि कुण्डल कई आकृतियों के बनते थे। अमरकोषकार के अनुसार कुण्डल कान को लपेट कर पहना जाता था।[३४] बुन्देलखण्ड में कहीं-कहीं अभी भी ऐसे कुण्डलों का रिवाज है। इनमें गोल बाली तथा सोने की इकहरी लडी लगी होती है। लडी को कानों के चारों ओर लपेट लिया जाता है तथा बाली को कान के निचले हिस्से में छिद्र करके पहना जाता है। अजन्ता की कला में इस तरह के कुण्डल का चित्रांकन देखा जाता है।[३५]

गले के आभूषण

गले के आभूषणों में एकावली, कण्ठिका, मौक्तिकदाम, हार तथा हारयष्टि के उल्लेख हैं।

एकावली—सम्राट यशोधर के पिता जब सन्यस्त होने लगे तो उन्होंने अपने गले से एकावली निकालकर यशोधर के गले में बांध दी।[३६] यह एकावली उज्ज्वल मोती को मध्यमणि के रूप में लगा कर बनायी गयी थी (तरलतरल-मुक्ताफलाम् २८८)।[३७] सोमदेव ने इसे समस्त पृथ्वीमण्डल को वश में करने के लिये आदेशमाला के समान कहा है (अखिलमहीवलयवश्यतादेशमालामिव, २८८)।

---

३१ तूलिनीकुसुमकुड्मलाकृतिजातुषोत्कर्पितकर्णकुण्डल ।—यश० म० पू०, पृ० ३१८

३२. चन्द्रकान्तकुण्डलाभ्यामलंकृतश्रवण । पृ० २६७

३३ कपोलकान्तिकुण्डलितमुखमण्डनम् । पृ० १८६

३४ कुण्डलं कर्णवेष्टनम् ।—अमरकोष, २, ६, १०३

३५ औंधकृत अजन्ता फलक ३३, उद्धृत,
अग्रवाल—हर्षचरित: एक सांस्कृतिक अध्ययन, फलक २०, चित्र ७८

३६ आदाय स्वकीयात् कण्ठदेशात् एकावली बबन्ध ।—यश० म० पू०, पृ० २८८

३७ तरलो हारमध्यगः ।—अमरकोष, २, ६, १०५

इस विशेषण को समझने के लिए किंचित् पृष्ठभूमि की आवश्यकता है। वास्तव में यह विशेषण अपने साथ एक परम्परा लिए है। गुप्तयुग से ही विशिष्ट आभूषणो के बारे में तरह-तरह की किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गयी थी। बाण ने एकावली के विषय में एक मनोरजक प्रसग दिया है—

दिवाकरमित्र ने हर्षको एकावली के सम्बन्ध में एक रहस्यपूर्ण बात बतायी— "तारापति चन्द्रमा ने यौवन के उन्माद में बृहस्पति की स्त्री तारा का अपहरण किया और स्वर्ग से भाग कर उसके साथ इधर उधर घूमता रहा। देवताओ के समझाने-बुझाने से उसने तारा को तो बृहस्पति को वापिस कर दिया, किन्तु उसके विरह में जलता रहा। एक बार उदयाचल से उठते हुए उसने समुद्र के विमल जल में पडी अपनी परछाई देखी, और काम भाव से तारा के मुख का स्मरण करके विलाप करने लगा। समुद्र में इसके जो आँसू गिरे उन्हे सीपियाँ पी गयी और उनके भीतर सुन्दर मोती बन गये। उन मोतियो को पाताल में वासुकि नाग ने किसी तरह प्राप्त किया और उन मुक्ताफलो को गूथकर एकावली बनायी, जिसका नाम मदाकिनी रखा। सब औषधियो के अधिपति सोम के प्रभाव से वह अत्यन्त विषघ्नी है और हिमरूपी अमृत से उत्पन्न होने के कारण सन्ताप-हारिणी है। इसलिए विष-ज्वालाओ को शान्त करने के लिए वासुकि सदा उसे पहने रहता था। कुछ समय बाद ऐसा हुआ कि नाग लोग भिक्षु नागार्जुन को पाताल में ले गये और वहाँ नागार्जुन ने वासुकि से उस माला को माँग कर प्राप्त कर लिया। रसातल से बाहर आकर नागार्जुन ने मन्दाकिनी नामक वह एकावली माला अपने मित्र त्रिसमुद्राधिपति सातवाहन नाम के राजा को प्रदान की और वही माला शिष्य-परम्परा द्वारा हमारे हाथ में आयी।"[३८] (हर्ष० २५१)

सोमदेव के समय तक सम्भवतया ऐसी मान्यताएँ चलती रही, जिसे सोमदेव ने सकेत मात्र से कह दिया।

एकावली मोतियो की इकहरी माला को कहते थे।[३९] गुप्तकालीन शिल्प की मूर्तियो और चित्रो में इन्द्रनील की मध्यगुरिया सहित मोतियो की एकावली बराबर पायी जाती है।[४०]

---

३८ अग्रवाल—हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० १९७

३९ एकावल्येकयष्टिका।—अमरकोष, २, ६, १०६

४० अग्रवाल—हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० १९८। फलक २४, चित्र ९२

कुण्डल—यशस्तिलक में कुण्डल का उल्लेख तीन बार हुआ है। शखनक कपास के कुड्मल की आकृति के बने कुण्डल पहने था।[३१] स्वय सम्राट यशोधर ने चन्द्रकान्त के बने कुण्डल धारण किये थे।[३२] मुनिकुमार युगल बिना आभूषणो के ही अपने कपोलो की कान्ति से ऐसे लगते थे मानो कानो में कुण्डल धारण किये हो।[३३]

शखनक के 'तूलिनीकुसुमकुड्मल' के उल्लेख से ज्ञात होता है कि कुण्डल कई आकृतियो के बनते थे। अमरकोषकार के अनुसार कुण्डल कान को लपेट कर पहना जाता था।[३४] बुन्देलखण्ड में कही-कही अभी भी ऐसे कुण्डलो का रिवाज है। इनमें गोल बाली तथा सोने की इकहरी लडी लगी होती है। लडी को कानो के चारो ओर लपेट लिया जाता है तथा बाली को कान के निचले हिस्से में छिद्र करके पहना जाता है। अजन्ता की कला में इस तरह के कुण्डल का चित्राकन देखा जाता है।[३५]

गले के आभूषण

गले के आभूषणो में एकावली, कण्ठिका, मौक्तिकदाम, हार तथा हारयष्टि के उल्लेख हैं।

एकावली—सम्राट यशोधर के पिता जब सन्यस्त होने लगे तो उन्होने अपने गले से एकावली निकालकर यशोधर के गले में बाँध दी।[३६] यह एकावली उज्ज्वल मोती को मध्यमणि के रूप में लगा कर बनायी गयी थी (तारतरल-मुक्ताफलाम् २८८)।[३७] सोमदेव ने इसे समस्त पृथ्वीमण्डल को वश में करने के लिये आदेशमाला के समान कहा है (अखिलमहीवलयवश्यतादेशमालामिव, २८८)।

---

३१ तूलिनीकुसुमकुड्मलाकृतिजातुषोत्कर्पितकर्णकुण्डल।—यश० ॰० पू०, पृ० ३९८

३२. चन्द्रकान्तकुण्डलाभ्यामलकृतश्रवण। पृ० २६७

३३ कपोलकान्तिकुण्डलितमुखमण्डलम्। पृ० १५६

३४ कुण्डल कर्णवेष्टनम्।—अमरकोष, २ ६,१०३

३५ औधकृत अजन्ता फलक २३, उद्धृत,
अग्रवाल—हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, फलक २०, चित्र ७८

३६ आदाय स्वकीयात् कण्ठदेशात् एकावली बब्ध।— यश० ॰० पू०, पृ० २८८

३७. तरलो हारमध्यग।—अमरकोष, २, ६, १०५

इस विशेषण को समझने के लिए किंचित् पृष्ठभूमि की आवश्यकता है। वास्तव में यह विशेषण अपने साथ एक परम्परा लिए है। गुप्तयुग से ही विशिष्ट आभूषणों के बारे में तरह-तरह की किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गयी थी। बाण ने एकावली के विषय में एक मनोरंजक प्रसंग दिया है—

दिवाकरमित्र ने हर्ष को एकावली के सम्बन्ध में एक रहस्यपूर्ण बात बतायी—"तारापति चन्द्रमा ने यौवन के उन्माद में बृहस्पति की स्त्री तारा का अपहरण किया और स्वर्ग से भाग कर उसके साथ इधर उधर घूमता रहा। देवताओं के समझाने बुझाने से उसने तारा को तो बृहस्पति को वापिस कर दिया, किन्तु उसके विरह में जलता रहा। एक बार उदयाचल से उठते हुए उसने समुद्र के विमल जल में पड़ी अपनी परछाई देखी, और काम भाव से तारा के मुख का स्मरण करके विलाप करने लगा। समुद्र में इसके जो आँसू गिरे उन्हें सीपियाँ पी गयीं और उनके भीतर सुन्दर मोती बन गये। उन मोतियों को पाताल में वासुकि नाग ने किसी तरह प्राप्त किया और उन मुक्ताफलों को गूथकर एकावली बनायी, जिसका नाम मंदाकिनी रखा। सब औषधियों के अधिपति सोम के प्रभाव से वह अत्यन्त विषघ्नी है और हिमरूपी अमृत से उत्पन्न होने के कारण सन्तापहारिणी है। इसलिए विष-ज्वालाओं को शान्त करने के लिए वासुकि सदा उसे पहने रहता था। कुछ समय बाद ऐसा हुआ कि नाग लोग भिक्षु नागार्जुन को पाताल में ले गये और वहाँ नागार्जुन ने वासुकि से उस माला को माँग कर प्राप्त कर लिया। रसातल से बाहर आकर नागार्जुन ने मन्दाकिनी नामक वह एकावली माला अपने मित्र त्रिसमुद्राधिपति सातवाहन नाम के राजा को प्रदान की और वही माला शिष्य-परम्परा द्वारा हमारे हाथ में आयी।"[३८] (हर्ष० २५१)

सोमदेव के समय तक सम्भवतया ऐसी मान्यताएँ चलती रहीं, जिसे सोमदेव ने संकेत मात्र से कह दिया।

एकावली मोतियों की इकहरी माला को कहते थे।[३९] गुप्तकालीन शिल्प की मूर्तियों और चित्रों में इन्द्रनील की मध्यगुरिया सहित मोतियों की एकावली बराबर पायी जाती है।[४०]

---

३८ अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १९७

३९ एकावल्येकयष्टिका।—अमरकोष, २, ६, १०६

४० अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १९८। फलक २४, चित्र ९२

कोण्ठिका—कण्ठिका का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख हुआ है। शकनक ने अनेक तरह की जड़े मन्त्रित करके लपेटी हुई कण्ठिका पहन रखी थी।[४१] दाक्षिणात्य सैनिक अनेक प्रकार के चित्र विचित्र गुरियो की बनी तीन लडियो की कण्ठिकाएँ पहने थे।[४२]

हार—हार का उल्लेख यशस्तिलक में सात बार हुआ है। राजपुर की स्त्रियाँ उदारहार पहनती थी।[४३] ग्रीष्म ऋतु की भयकर धूपरूप अग्नि के सम्पर्क से नायिकाओ के मौक्तिक हार फूटे जा रहे थे (तीव्रातपातकपावकसम्पर्कस्फुटन्मौक्तिक-विरहणीहृदयहारे, स० पू० ५२२)। पाण्ड्य जनपद का राजा सम्राट यशोधर को प्राभृत में देने के लिए मुक्ताफल के मध्यमणि वाला हार लेकर उपस्थित हुआ।[४४] यहाँ सम्भवतया हार से प्रयोजन एकावली से है। वैतालिको ने तारहारस्तनी स्त्रियो के साथ क्रीडा करने की यशोधर महाराज से प्राथना की।[४५] तारोत्तरल हारो की कान्ति से चन्द्रमा का प्रकाश सान्द्र (घना) हो गया।[४६] विरहणी नायिका की कपकपी से हार चचल हो उठे।[४७] किसी विरहणी नायिका ने बन्धु-बान्धवो के कहने से आभूषण पहने भी तो कटि की करधनी गले मे और गले का हार नितम्ब में पहन लिया।[४८] यशोधर ने सभामण्डप मे जाने के पूव मुक्ताफल का हार पहना (गुणवता वर हर, कण्ठे गृहीत्वा मुक्ताफलभूषणानि)।

हारयष्टि—हारयष्टि का उल्लेख दो बार हुआ है। गुल्फो तक लटकती हुई हारयष्टियो से टूट-टूट कर गिरने वाले मोतियो का समूह ऐसा लगता था मानो होनेवाली सग्राम विजय पर देवागनाओ ने पुष्प बिखेर दिये हो।[४९]

---

४१ अनेकजटाजातिजटितकण्ठिकावगुण्ठनजठरकण्ठनाल।—यश० पृ० ३९८

४२ किर्मीरमणिविनिर्मितत्रिशरकण्ठिकम्।—पृ० ४६२

४३ उदारहार निर्भरोचित।—पृ० २४, उदारा अतिमनोहरा।—स० टी०

४४ तरलगुलिकहारप्राभृतव्यग्रहस्त।—पृ० ४६६

४५. तारहारस्तनीनाम्।—पृ० ५३४

४६ हारैस्तारोत्तरलरुचिभि।—पृ० ६१०

४७ उत्तारहारतरलं स्तनमण्डल च।—पृ० ६१६

४८ कण्ठे काचिद्गुणोऽर्पित परिहित हारो नितम्बस्थले।—पृ० ६१७

४९ आपतन्मुक्ताफलप्रकराभिरासनहारयष्टिभिरागामिजन्यजयसमयामरसुन्दरी-करविकीर्णकुसुमवर्षमिव।—पृ० ५५५

यन्त्रधारागृह के प्रसग में मोगरक के कुड्मलो की बनी हारयष्टि का उल्लेख है।[५०]

मौक्तिकदाम—यशस्तिलक में मौक्तिकदामका उल्लेख केवल एक बार हुआ है। विरहणी नायिका के गले की मौक्तिकमाला चूर-चूर हो गयी।[५१] यन्त्रधारा-गृह के प्रसग में कुसुमदाम का भी उल्लेख है।[५२]

भुजा के आभूषण

यशस्तिलक मे भुजा के आभूषणों में अगद और केयूर का उल्लेख है।

अगद—अगद का उल्लेख केवल एक बार हुआ है। शखनक बेर के बराबर बडा त्रापुष मणि (सीसे का गुरिया) लगाकर बनाया गया अगद पहने था।[५३]

केयूर—केयूर का उल्लेख यशस्तिलक में दो बार हुआ है। राजपुर की स्त्रियाँ लाल कमल में श्वेत कमल लगाकर केयूर बना लेती थी।[५४] विरह की अवस्था में स्त्रियाँ बाहु का केयूर पैरो में और पैरो के नूपुर बाहु में पहन लेती थी।[५५]

अगद और केयूर में क्या अन्तर था, इसका पता यशस्तिलक से नही चलता। अमरकोषकार ने दोनो को पर्याय माना है।[५६] क्षीरस्वामी ने केयूर और अगद की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है कि 'के बाहूशीर्षे यौति केयूरम्'[५७] अर्थात् जो भुजा के ऊपरी छोर को सुशोभित करे उसे केयूर कहते हैं तथा जो 'अग दयते अगदम्'—अर्थात् जो अग को निपीडित करे वह अगद।

पुरुष और स्त्री दोनो अगद पहनते थे।

कलाई के आभूषण

ककण और वलय—कलाई के आभूषणों में ककण और वलय के उल्लेख हैं। स्त्री और पुरुष दोनो ककण पहनते थे। यौधेय जनपद के कृषको की स्त्रियाँ

---

५० विचकिलमुकुलपरिकल्पितहारयष्टिभि।—पृ० ५३२

५१ कण्ठे मौक्तिकदामभि प्रदलितम्।—पृ० ६१२

५२ शिरीषकुसुमदामसदामिन।—पृ० ५३२

५३ कुवलीफलस्थूलत्रापुषमणिविनिर्मितागद।—पृ० ३६८

५४ सौगन्धिकानुबद्धकमलकेयूरपर्योयिणा।—पृ० १०६

५५ केयूर चरणे धृत विरचित हस्ते च हिंजीरिकम्।—पृ० ६१७

५६ केयूरमगद तुल्ये।—अमरकोष, २, ६, १०७

५७ वही, स० टी०

सोने के कंकण पहनती थी।[५८] यशोधर ने भी सभामण्डप में जाने के पूर्व कंकण पहने (निधाय करे कंकणालंकारम्)। एक अन्य प्रसंग में यशोधर को 'कनककंकण-वर्षं' कहा है (पृ० ५६६)।

वलय का उल्लेख तीन बार हुआ है। शखनक भैंसे के सींग के बने वलय पहने था।[५९] एक स्थान पर यशस्तिलक का नायक यशोधर कहता है कि टूटे हुए दिल को स्फटिक के फूटे हुए वलय की तरह कौन मूर्ख धारण किए रहेगा।[६०] यन्त्रधारागृह के प्रसंग में मृणाल के बने वलय का उल्लेख है।[६१] चतुर्थ उच्छ्वास में दांत के बने वलय का उल्लेख है (दन्तवलयेन, उत्त० ६९)।

अंगुलियों के आभूषण

उर्मिका—यशस्तिलक में अंगूठी के लिए उर्मिका तथा अंगुलीयक शब्द आये हैं। यशोधर रत्न की बनी उर्मिका पहने था।[६२] उर्मि का अर्थ भँवर है। भँवर के समान कई चक्कर लगा कर बनायी गयी अंगूठी को उर्मिका कहते थे। बुन्देल-खण्ड में आजकल इसे छला कहा जाता है।

उर्मिका का उल्लेख बाणभट्ट ने भी किया है। सावित्री दाहिने हाथ में शंख की बनी उर्मिका पहने थी।[६३]

अंगुलीयक—अंगुलीयक का केवल एक बार उल्लेख आया है। चौथे आश्वास में एक गडरिया अंगुलीयक के बदले में बकरा देने के लिए तैयार है।[६४]

कटि के आभूषण

कटि के आभूषणों के लिए कांची, मेखला, रसना, सारसना तथा घर्घर-मालिका नाम आये हैं।

कांची—कांची का उल्लेख तीन बार हुआ है। यौधेय की कृषक वधुएँ खेतों

---

५८ कनकमयकंकणा गोपिका।—पृ० १५

५९ गवलवलयावकुण्ठन।—पृ० ३९८

गवलवलयानां महिषशृंगकटकानाम्।—सं० टी०

६० को नु खलु विघटितं चेतः स्फटिकवलयमिवमुधापि संधातुमर्हति।—उत्त० पृ० ७७

६१ मृणालवलयालंकृतकलाचीदेशामि।—पृ० ५२२

६२ सरत्नोर्मिकाभरण।—पृ० ३६७

६३ कम्बुनिर्मितोर्मिका।—हर्षचरित, पृ० १०

६४ प्रसादीकरोत्यंगुलीयकम्।—उत्त०, पृ० १३१

में काम करने जाते समय अपनी ढीली-ढाली काची को बार-बार हाथ से ऊपर चढाती थी, जिससे उनका ऊरु प्रदेश दिख जाता था।[६५] विपरीत रति में काची जोर-जोर से हिलने लगती थी।[६६] विरहणी नायिका कमर की काची गले में डाल लेती थी।[६७] तीनो प्रसगो पर श्रुतसागर ने काची का पर्याय कटि = मेखला दिया है। एक स्थान पर काची के लिए काचिका भी कहा गया है (हसावली-काचिका, पृ० ५०३)

मेखला—मेखला का उल्लेख पांच बार हुआ है। मुखर मणिमेखलाओ के शब्द से पचमालिप्ति नामक राग द्विगुणित हो गया था।[६८] यहाँ श्रुतसागर ने मेखला का पर्याय रसना दिया है।[६९] इसी प्रसग में सिन्दुवार की माला लगाकर केले के कोमल पत्तो को बनायी गयी मेखला (कदलीप्रवालमेखला) का उल्लेख है।[७०] शखनक ने मथानी की पुरानी रस्सी को मेखला की तरह पहन रखा था (पुराणतरमन्दीरमेखला, पृ० ३९८)। समुद्र की उपमा मेखला से दी है (मही च रत्नाकरवारिमेखलाम्, उत्त० पृ० ८७)।

रसना—रसना का उल्लेख केवल एक बार हुआ है। वह भी हारयष्टि के वर्णन में प्रसगवश आ गया है। सोमदेव ने आरसना अर्थात् रसना पर्यन्त लटकती हुई हारयष्टि का वर्णन किया है।[७१] यहाँ श्रुतसागर ने आरसन का अर्थ आगुल्फलम्ब किया है।

अमरकोषकार ने उपर्युक्त तीनो को पर्याय माना है।[७२] सोमदेव के उपर्युक्त उल्लेखो से लगता है कि काची एक लडी की ढीली-ढाली करधनी होना चाहिए तथा मेखला क्षुद्र घटिकाएँ लगी हुई। उपर्युक्त उल्लेखो मे काची के लिए काचीगुण पद आया है तथा मेखला के लिए मुखरमणिमेखला कहा गया है। एक स्थान पर मेखला को मणिकिंकणी युक्त भी बताया गया है।[७३]

---

६५ काचिकोल्लासवशदर्शितोरुस्थला।—पृ० १५
६६ पुरुषरतनियोगव्यग्रकाचीगुणानाम्।—पृ० ४३७
६७ कण्ठे काचिगुणोऽर्पितम्।—पृ० ६१७
६८ मुखरमणिमेखलाजालवाचालितपचमालिप्ति।—पृ० १००
६९ मेखलाजालानि रसनासमूहा।—स० टी०, पृ० १००
७० सिन्दुवारसंसुन्दरकदलीप्रवालमेखलेन।—पृ० १०६
७१ आरसनहारयष्टिभि।—पृ० ५५५
७२ स्त्रीकट्या मेखला काची सप्तकी रशना तथा।—अमरकोष, २, ६, १०८
७३ मेखलामणिकिंकणीजालवदनेषु।—पृ० ६ उत्त०

सारसना—चण्डमारी के लिए कहा गया है कि मृतक प्राणियों की आँतें ही उसकी सारसना थी।[७४]

घर्घरमालिका—यशोधर जब बालक था, तो खेल खेल में दाई की कमर से घर्घरमालिका को निकाल कर पैरों में बाँध लेता था।[७५]

पैर के आभूषण

पैर के आभूषण के लिए यशस्तिलक में पाँच शब्द आये हैं—(१) मंजीर, (२) हिंजीरक, (३) नूपुर, (४) तुलाकोटि, (५) हंसक।

मंजीर—सोमदेव ने मणिमंजीर का उल्लेख किया है।[७६] मंजीर को पहनकर चलने से जो मधुर झन-झन शब्द होते थे उन्हें शिंजित कहते थे।[७७] मंजीर रस्सी सहित मथानी को कहते हैं, इसी की समानता के कारण इसका नाम मंजीर पड़ा। मंजीर वजन में हलके तथा भीतर से पोले होते थे। उनमें भीतर बहुमूल्य मोती आदि भरे जाते थे। मारवाड़ में अभी भी इस तरह के आभूषण पहनने का रिवाज है (शिवराम०, अमरावती०, पृ० ११४)।

हिंजीरक—हिंजीरक का उल्लेख केवल एक बार हुआ है। विरहणी स्त्रियाँ हाथ का केयूर चरण में तथा चरण का हिंजीरक हाथ में पहन लेती थी।[७८] हिंजीरक का पर्याय श्रुतसागरदेव ने नूपुर दिया है। यशस्तिलक से इस पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता।

नूपुर—नूपुर का भी एक बार ही उल्लेख हुआ है।[७९] श्रुतसागर ने यहाँ नूपुर का पर्याय मंजीर दिया है।[८०] नूपुर पहनकर चलने से मधुर शब्द होता था। नूपुर जल्दी पहने या उतारे जा सकते थे। अमरावती की कला में एक दासी थाली में नूपुर लिए प्रतीक्षा करती खड़ी है कि जैसे ही अलक्तक मंडन समाप्त हो, वह नूपुर पहनाए।

तुलाकोटि—तुलाकोटि का दो बार उल्लेख है। तुलाकोटि के शब्द को

---

७४ सारसना मृतकान्त्रच्छेदा।—पृ० १५०

७५ मुक्त्वा घर्घरमालिका कटितटाद्धात्र्या च ता पादयोः।—पृ० २३४

७६ रमणीमणिमंजीरशिंजित।—पृ० ३५

७७ झणझणायमानमणिमंजीरशिंजित।—पृ० १०१

७८ केयूरं चरणे धृतं विरचितं हस्ते च हिंजीरकम्।—पृ० ६१७

७९ यत्रानीतौ नूपुरौ।—पृ० १२६

८० नूपुरौ मंजीरौ।—श्रु० टी०

सोमदेव ने 'क्वणित' कहा है।[८१] बारविलासिनियो के वाचाल तुलाकोटियो के क्वणित से क्रीडा-हस आकुलित हो रहे थे।[८२] एक स्थान पर नीलमणि के बने तुलाकोटि का उल्लेख है (नीलोपलतुलाकोटिषु, उत्त० पृ० ९)।

तुलाकोटि का उल्लेख बाण ने भी हर्षचरित (पृ० १६३) में किया है। तुलाकोटि आन्ध्र में प्रचलित नूपुरो से मेल खाते हैं। इसके दोनो किनारे तुला अर्थात् तराजू की डडी के समान किंचित् घनाकार होते हैं (शिवराम०-अमरावती०, पृ० ११४)। इसी कारण इसका नाम तुलाकोटि पडा।

हसक—हसक का उल्लेख भी एक बार ही हुआ है। शखनक कासे के बने हसक (कसहसक) पहने था।[८३] हसक के शब्द को सोमदेव ने रसित कहा है।[८४] हसक से तात्पर्य उन बाँके नूपुरो से था जिनकी आकृति गोल न होकर बाँकी मुडी हुई होती थी। आजकल इन्हें बाँक कहते हैं।[८५]

---

८१ वाचालतुलाकोटिक्वणिताकुलितविनोदवारलम्।—पृ० ३४५

८२ वही

८३ कंसहसकरसितवाचालचरण ।—पृ० ३११

८४ वही

८५ अग्रवाल- हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० ६७ फलक १, चित्र २८

केश-विन्यास, प्रसाधन सामग्री तथा पुष्प प्रसाधन

केश-विन्यास

यशस्तिलक में केश-विन्यास और केश प्रसाधन सम्बन्धी प्रभूत सामग्री है। प्राचीन भारत में इस कोमल कला का विशेष प्रचार था। साहित्य और पुरातत्व की सामग्री में इसका समान रूप से अकन हुआ है।

यशस्तिलक में सोमदेव ने केशो के लिए अलक, कुन्तल, केश, चिकुर, कच और जटा शब्दो का प्रयोग किया है। स्नान के अनन्तर केशो को सवप्रथम धूप के सुगन्धित धुएँ से सुखा लिया जाता था, उसके बाद चूर्ण, सिन्दूर, पल्लव, पुष्प, पुष्पमाला, मजरी आदि के द्वारा कलात्मक ढग से सँवार कर बाँधा जाता था। सँवारे हुए केशो में सोमदेव ने अलकजाल कुन्तलकलाप, केशपाश, चिकुरभग, धम्मिल्लविन्यास, मौलिबन्ध, सीमन्तसन्तति, वेणिदण्ड, जूट तथा कवरी का वर्णन किया है। इनकी विशेष जानकारी निम्न प्रकार है

केश धूपाना—स्नान के बाद केश सँवारने के पूर्व उन्हे सुगन्धित धूप के धुएँ से सुखाने का सोमदेव ने दो बार उल्लेख किया है।[1] कालिदास ने केशो को धूपाने की प्रक्रिया का विशेष वर्णन किया है। धूपित करने से स्नानार्द्र केश भभरे हो जाते थे और उनमें धूप की सुगन्धि व्याप्त हो जाती थी। कालिदास ने धूपित केशो को 'आश्यान' कहा है।[2] धूप से सुगन्धित किये जाने के कारण इन्हे धूपवास भी कहते थे।[3]

केश सुवासित करने की यह प्रक्रिया केश-सस्कार कहलाती थी।[4] कालिदास की नायिकाएँ अटारी पर गवाक्षो के पास बैठकर केश-सस्कार करती थी, जिससे गवाक्षो से निकलनेवाले सुगन्धित धुएँ को देखकर मार्ग मे चलने वाले

---

१. अविरतदह्यमानकालागुरुधूपधूमोद्गमारन्यमाणदिग्विलासिनीकुन्तलजालम्।
—पृ० ३६८, अनवधूपधूमेषु। पृ० ८, उत्त०

२. त धूपाश्यानकेशान्तम्।—रघुवश, १७।२२। आश्यान शोषित, स० टी०

३ स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासम्।—वही १६।५०

४ केशसस्कारधूमै।—मेघदूत १।३२

लोग यह अनुमान सहज ही लगा लेते थे कि कोई नायिका केश-संस्कार कर रही है।[5]

अलकजाल--यशस्तिलक में बालों के लिए अलक शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है। अलक चूर्ण विशेष के द्वारा घुँघराले बनाए गये बालों को कहते थे।[6] सोमदेव ने इस चूर्ण को पिष्टातक नाम दिया है। पिष्टात या पिष्टातक कुंकुम आदि सुगन्धित द्रव्यों को पीसकर बनाया जाता था।[7] पिष्टातक के प्रयोग द्वारा घुँघराले बनाकर सँवारे गये बालों को अलकजाल कहते थे। सोमदेव ने लिखा है कि सैनिक प्रयाण से उठी हुई धूलि ने ककुभागनाओं के अलक-प्रसाधन के लिए पिष्टातक चूर्ण का काम किया।[8] अलकों में चूर्ण के प्रयोग की सूचना कालिदास ने भी दी है। इस तरह घुँघराले बनाए गये बालों को सँवार कर उनमें पत्र-पुष्प लगा लिए जाते थे।[10]

अलकजाल को छल्लेदार या घूँघरदार केश रचना कहा जा सकता है। अंगरेजी लेखों में जिन्हें Spiral या Frizzled locks कहा जाता है वह उसके अत्यन्त निकट है। अलकजाल के अनेक प्रकार राजघाट (वाराणसी) से प्राप्त खिलौनों में देखे जाते हैं। जैसे—(१) शुद्ध घूँघर, (२) छतरीदार घूँघर, (३) चटुलेदार घूँघर, (४) पटियादार घूँघर। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इनका विशेष विवेचन किया है।[11]

कुन्तलकलाप—यशस्तिलक में कुन्तल शब्द भी बालों के लिए कई बार आया है। 'कुन्तलकलाप' इस सम्मिलित पद का प्रयोग केवल तीन बार हुआ है। कलाप मयूर को भी कहते हैं तथा समूह अर्थ में भी आता है।[12] कुन्तल-कलाप में स्थित 'कलाप' शब्द में इन्हीं की ध्वनि है। बालों को इस तरह सँवार

---

५ जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपैः।—वही, १।३२

६ अलकाश्चूर्णकुन्तलः।—अमरकोष २, ६, ९६

७ पिष्टेन कुंकुमचूर्णादिनाततिं पिष्टातः।—अमरकोष, २, ६, १३९, स० टी०

८ ककुभागनालकप्रसाधनपिष्टातकचूर्णं।—यश० पृ० ३२८

९ अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधीकृतः।—रघुवंश, ४।५४

१० विकचविचकिलमालीकीर्णलोलालकानाम्।—यश०, पृ० ५३४

११ अग्रवाल—राजघाट के खिलौनों का एक अध्ययन,
कला और संस्कृति, पृ० २४६

१२ कलापः संहते बर्हे तूणीरे भूषणे हरे।—विश्वलोचन
कलापो बर्हितूणयोः। संहतौ भूषणे काञ्च्याम्।—अनेकार्थसंग्रह ३।४२०

कर बाँधना जिसमे कलापिन् (मयूर) के पखो की तरह सुन्दर दिखने लगे, कुन्तलकलाप कहलाता था। सोमदेव ने कुटज के कुड्मल और मल्लिका के पुष्प लगाकर बालो को कुन्तलकलाप के ढग से सजाने का वर्णन किया है।[१३]

कुन्तलकलाप को गूँथने के लिए शिरीष के पुष्पो की माला का उपयोग किया जाता था।[१४] सभवतया पहले बालो को शिरीष की माला से सुविभक्त करके बाँध लिया जाता था, बाद में उसके बीच-बीच में कुटज कुड्मल और मल्लिका के पुष्पो को इस तरह से खोसते थे, जिससे मयूरपिच्छ के ताराओ की पूर्ण अनुकृति हो जाये। राजघाट से प्राप्त मिट्टी के खिलौनो में कुछ मस्तको में इस प्रकार का केश-विन्यास देखा जाता है। इन खिलौनों मे माँग के दोनो ओर कनपटी तक लहराती हुई शुद्ध पटिया मिलती हैं और वे ही छोर पर ऊपर को मुडकर घूम जाती है। देखने में ये ऐसी मालूम होती हैं जैसे मोर की फहराती हुई पूँछ।[१५] कुन्तलकलाप की ठीक पहचान इसी तरह के केश-विन्यास से करना चाहिए।

मानसार के अनुसार कुन्तल नामक केश-रसायन का अकन लक्ष्मी और सरस्वती की मूर्ति के मस्तक पर किया जाता है।[१६]

केशपाश—यशस्तिलक में शिखण्डित केशपाश का उल्लेख हुआ है।[१७] 'केशपाश' में पाश शब्द समूहवाची भी है और उत्कृष्टवाची भी।[१८]

केशपाश बालो के उस विन्यास को कहते थे, जिसमें पुष्प और पत्तो युक्त मजरी से सजाकर बालो को इस तरह से बाँधा जाता था, जिसमे वे मुकुट की तरह दिखने लगे। यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने इस ग्रथ को समझाने का प्रयत्न किया है—'मस्तकोद्भेदै सुगन्धपत्रमजरीभिर्विदर्भिता गुम्फिता ये दमन-काण्डा - सुगन्धपत्रस्तम्भा तै शिखण्डितो मुकुटित केशपाश।'[१९] सम्भवतया

---

१३ कुटजकुड्मलोल्लसमल्लिकानुगतकुन्तलकलापेन।—यश० स० पू० पृ० १०१

१४ शिरीषकुसुमदाम दामितकुन्तलकलापाभि।—वही, पृ० ३३२

१५ अग्रवाल—राजघाट के खिलौनों का एक अध्ययन,
कला और संस्कृति पृ० २४८-४९

१६ उद्धृत, जे० एन० बनर्जी—दी डवलपमेंट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० ३१४

१७ शिखण्डितकेशपाशेन।—यश० स० पू०, पृ० १०१

१८ प्रशस्ता केशा केशपाश।—अमरकोष, २, ६, ९७, स० टी०
पाश पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थ।—वही २, ६, ९८

१९ यश० स० पू०, पृ० १०१

केशपाश में पुष्प और पत्र युक्त मजरियो से बनाए गये गुलदस्तेनुमा पुष्पालकार केशो में खोस लिए जाते थे, जिससे वे शिखडित अर्थात् मुकुट की तरह दिखने लगते थे।

मानसार के अनुसार इस तरह के केश-विन्यास का अकन सरस्वती और सावित्री की मूर्तियो के मस्तक पर किया जाता है।[२०]

चिकुरभग—केशो के लिए चिकुर शब्द का भी प्रयोग सोमदेव ने कई बार किया है। सम्भवतया पतले केशो को चिकुर कहते थे। अमरकोषकार ने चञ्चल का पर्याय चिकुर दिया है।[२१] चिकुरो को जब पत्र, पुष्प और मालाओ द्वारा सजा लिया जाता था तब उसे चिकुरभग कहते थे। सोमदेव ने शतपत्री पुष्पो की मालाओ से बांधे गये तथा तमाल पुष्पो के गुच्छो से सजाए गये चिकुरभग का वर्णन किया है।[२२]

चिकुरो की कृष्णता की ओर भी सोमदेव ने विशेष रूप से ध्यान दिलाया है। प्रमदवन में सप्तच्छद वृक्षो की छाया कामियो के चिकुरो की कान्ति से कलुषित-सी हो गयी थी।[२३] एक अन्य प्रसग में चिकुरो को निसर्ग कृष्ण कहा है।[२४]

धम्मिल्लविन्यास—यशस्तिलक में धम्मिल्लविन्यास का उल्लेख दो बार हुआ है। सोमदेव ने मुनिमनोहर नामक मेखला को नागनगरदेवता के धम्मिल्ल-विन्यास की तरह कहा है।[२५]

धम्मिल्लविन्यास मौलिबद्ध केश रचना को कहते थे।[२६] इस प्रकार से सभाले गये पुरुष के बाल मौलि तथा स्त्री के धम्मिल्ल कहलाते हैं (शिवराममूर्ति-अमरावती०, पृ० १०६)। बालो का जूडा बनाकर उसे माला से बाँध दिया जाता था। जूडा के भीतर भी माला गूथी जाती थी। कालिदास ने 'मुक्तागुणोन्नद्ध अन्तर्गतस्रजमौलि' का उल्लेख किया है।[२७] बाण ने माला के छूट जाने से

---

२० उद्धृत, जे० एन० बनर्जी—दी डवलपमेंट ऑव हिंदू आइकोनोग्राफी, पृ० ३१४

२१ चपलश्चिकुर समौ।—अमरकोष, ३, १, ४६

२२ तापिच्छगुलुच्छविच्छुरितशतपत्रीस्रक्सन्नद्धचिकुरभगिना।
—यश० स० पू० पृ० १०५

२३ चिकुरकान्तिकलुषितसमच्छदछायाभि।—वही, पृ० ३८

२४ कामिनीना चिकुरेषु निसर्गकृष्णता।—वही, पृ० २०७

२५ धम्मिल्लविन्यास इव नागनगरदेवताया।—पृ० १३२

२६ धम्मिल्ला सयता कचा।—अमरकोष, २, ६, ९७

२७ रघुवश १७ २३

कर बाँधना जिसमे कलापिन् (मयूर) के पखो की तरह सुन्दर दिखने लगे, कुन्तलकलाप कहलाता था। सोमदेव ने कुटज के कुड्मल और मल्लिका के पुष्प लगाकर बालों को कुन्तलकलाप के ढग से सजाने का वर्णन किया है।[१३]

कुन्तलकलाप को गूँथने के लिए शिरीष के पुष्पो की माला का उपयोग किया जाता था।[१४] सभवतया पहले बालो को शिरीष की माला से सुविभक्त करके बाँध लिया जाता था, बाद में उसके बीच-बीच में कुटज कुड्मल और मल्लिका के पुष्पो को इस तरह से खोसते थे, जिससे मयूरपिच्छ के तारामो की पूर्ण अनुकृति हो जाये। राजघाट से प्राप्त मिट्टी के खिलौनो में कुछ मस्तको में इस प्रकार का केश-विन्यास देखा जाता है। इन खिलौनो में माँग के दोनो ओर कनपटी तक लहराती हुई शुद्ध पटिया मिलती हैं और वे ही छोर पर ऊपर को मुड़कर घूम जाती हैं। देखने में ये ऐसी मालूम होती हैं जैसे मोर की फहराती हुई पूँछ।[१५] कुन्तलकलाप की ठीक पहचान इसी तरह के केश-विन्यास से करना चाहिए।

मानसार के अनुसार कुन्तल नामक केश-प्रसाधन का अकन लक्ष्मी और सरस्वती की मूर्ति के मस्तक पर किया जाता है।[१६]

केशपाश—यशस्तिलक में शिखण्डित केशपाश का उल्लेख हुआ है।[१७] 'केशपाश' मे पाश शब्द समूहवाची भी है और उत्कृष्टवाची भी।[१८]

केशपाश बालो के उस विन्यास को कहते थे, जिसमें पुष्प और पत्तो युक्त मजरी से सजाकर बालो को इस तरह से बाँधा जाता था, जिससे वे मुकुट की तरह दिखने लगे। यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने इस अर्थ को समझाने का प्रयत्न किया है—'मरुवकोद्भेदै सुगन्धपत्रमजरीभिर्विदर्भिता गुम्फिता ये दमनकाण्डा - सुगन्धपत्रस्तम्भा तै शिखण्डितो मुकुटित केशपाश।[१९] सम्भवतया

---

१३ कुटजकुड्मलोल्लासमल्लिकानुगतकुन्तलकलापेन।—यश० सं० पू० पृ० १०५

१४ शिरीषकुसुमदाम दामितकुन्तलकलापाभि।—वही, पृ० ५३२

१५ अग्रवाल—राजघाट के खिलौनों का एक अध्ययन, कला और संस्कृति पृ० २४८-४९

१६ उद्धृत, जे० एन० बनर्जी—दी डवलपमेंट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० ३१४

१७ शिखण्डितकेशपाशेन।—यश० सं० पू०, पृ० १०५

१८ प्रशस्ता केशा केशपाश।—अमरकोष, २, ६, ९७, सं० टी०
पाश पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थं।—वही २, ६, ९८

१९ यश० सं० पू०, पृ० १०५

केशपाश में पुष्प और पत्र युक्त मजरियो से बनाए गये गुलदस्तेनुमा पुष्पालकार केशो में खोस लिए जाते थे, जिससे वे शिखडित अर्थात् मुकुट की तरह दिखने लगते थे।

मानमार के अनुसार इस तरह के केश-विन्यास का अकन सरस्वती और सावित्री की मूर्तियों के मस्तक पर किया जाता है।[२०]

चिकुरभग--केशो के लिए चिकुर शब्द का भी प्रयोग सोमदेव ने कई बार किया है। सम्भवतया पतले केशो को चिकुर कहते थे। अमरकोषकार ने चञ्चल का पर्याय चिकुर दिया है।[२१] चिकुरो को जब पत्र, पुष्प और मालाओ द्वारा सजा लिया जाता था तब उसे चिकुरभग कहते थे। सोमदेव ने शतपत्री पुष्पो की मालाओ से बाँधे गये तथा तमाल पुष्पो के गुच्छो से सजाए गये चिकुरभग का वर्णन किया है।[२२]

चिकुरो की कृष्णता की ओर भी सोमदेव ने विशेष रूप से ध्यान दिलाया है। प्रमदवन में सप्तच्छद वृक्षो की छाया कामियो के चिकुरो की कान्ति से कलुषित-सी हो गयी थी।[२३] एक अन्य प्रसग में चिकुरो को निसग कृष्ण कहा है।[२४]

धम्मिल्लविन्यास--यशस्तिलक में धम्मिल्लविन्यास का उल्लेख दो बार हुआ है। सोमदेव ने मुनिमनोहर नामक मेखला को नागनगरदेवता के धम्मिल्ल-विन्यास की तरह कहा है।[२५]

धम्मिल्लविन्यास मौलिबद्ध केश रचना को कहते थे।[२६] इस प्रकार से सभाले गये पुरुष के बाल मौलि तथा स्त्री के धम्मिल्ल कहलाते हैं (शिवरामसूर्ति-अमरावती०, पृ० १०६)। बालो का जूडा बनाकर उसे माला से बाँध दिया जाता था। जूडा के भीतर भी माला गूँथी जाती थी। कालिदास ने 'मुक्तागुणोन्नद्ध अन्तर्गतस्रजमौलि' का उल्लेख किया है।[२७] बाण ने माला के छूट जाने से

---

२० उद्धृत, जे० एन० बनर्जी--दी डवलपमेंट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० ३१४

२१ चपलश्चिकुर समौ।--अमरकोष, ३, १, ४६

२२ तापिच्छगुलुच्छविच्छुरितशतपत्रीस्रक्सन्नद्धचिकुरभगिना।

--यश० स० पू० पृ० १०५

२३ चिकुरकान्तिकलुषितसप्तच्छदच्छायामि।--वही, पृ० ३८

२४ कामिनीना चिकुरेषु निसर्गकृष्णता।--वही, पृ० २०७

२५ धम्मिल्लविन्यास इव नागनगरदेवताया।--पृ० १३२

२६ धम्मिल्ला सयता कचा।--अमरकोष, २, ६, ९७

२७ रघुवश १७२३

धम्मिल्लो के खुल जाने का वर्णन किया है।[२८] सोमदेव ने एक प्रसग में पाटली के पुष्पो से सुगन्धित धम्मिल्ल का उल्लेख किया है।[२९]

धम्मिल्लविन्यास की इस कला का चित्रण अजन्ता के चित्रो में भी हुआ है। कुछ चित्रो में स्त्री मस्तको पर बाँधे हुए केशो का एक बडा जूडा मिलता है।[३०]

राजघाट (वाराणसी) से प्राप्त खिलौनो में धम्मिल्लविन्यास के अनेक प्रकारा का अकन हुआ है। कुछ खिलौनो मे दाएँ-बाएँ और ऊपर तीन जूडे या त्रिमौलि विन्यास पाया जाता है। किन्ही मस्तको मे सिर के ऊपर शृङ्गाटक या सिंघाडे की तरह त्रिमौलि की रचना करके माग के बीच में सिरमौर, माथे पर मौलिबन्ध और उसके नीचे दोनो ओर अलकावली छिटकी हुई दिखाई गयी है।[३१]

गुप्तकाल की पत्थर की मूर्तियो में धम्मिल्लविन्यास का एक और प्रकार मिला है। सिर के ऊपर गोल टोपी की तरह मौलिबन्ध और दक्षिण-वाम पार्श्व में उससे निसृत दो माल्यदाम लटकते रहते हैं। राजघाट के एक मृण्मय स्त्री मस्तक मे जो इस समय लखनऊ के अजायब घर मे है, भी यह रचना मिली है। कुछ मस्तक ऐसे भी मिले हैं जिनमें दक्षिणभाग मे जटाजूट तथा वाम में अलकावली का प्रदर्शन है।[३२]

मौली—मौली बन्ध केश रचना का एक उपमा में उल्लेख है (ईशानमौलिमिव, स० पू०, पृ० ९५)।

सीमन्तसन्तति—यशस्तिलक में सीमन्त का उल्लेख कई बार हुआ है, किन्तु सीमन्तसन्तति का उल्लेख केवल एक बार ही हुआ है।[३३]

सीमन्त बालो को बीच से विभक्त करके दोनो ओर सँवारने को कहते हैं। सोमदेव ने 'सीमन्तेषु द्विधा भावो'[३४] कहकर इसकी सूचना भी दी है।

सीमन्तसतति सम्भवतया केशविन्यास के उस प्रकार को कहते थे जिसमें मुख्य

२८ विस्त्रसमानैर्धम्मिल्लतमालपल्लवै।—हर्ष० ४।१३३

२९ पाटलीप्रसवसुरभितधम्मिल्लमध्याभि।—यश० आ० पू० ४३२

३० राजा सा० औंधकृत अजन्ता फलक ६६
उद्धृत, अग्रवाल—कला और संस्कृति, पृ० २५१

३१ अग्रवाल-राजघाट के खिलौनों का एक अध्ययन, कला और संस्कृति, पृ० २५१

३२ वही, पृ० २५२

३३ सीमन्तसततिना।—यश० स० पू० पृ० १०५

३४ वही पृ० २०७

रूप से सीमन्त (माँग) पर ध्यान दिया जाता था। मस्तक के बीच से केशो को द्विधा विभक्त करके इस तरह संवारा जाता था जिससे बीच में राजपथ के समान साफ और सीधी माँग दिखने लगे। माँग या सीमन्त निकालने के बाद उसमें विभिन्न पुष्पो से निकाले गये पराग को सिन्दूर का स्थानीय करके भरा जाता था। सोमदेव ने प्रियालकमजरी के कणो को कर्णिकार के केसर में मिलाकर सीमन्त को प्रसाधित करने का वर्णन किया है।[३५]

वेणिदण्ड—वेणिदण्ड का एक बार उल्लेख है।[३६] बालो को सवारकर या बिना सवारे ही इकहरी चोटी बाँधना वेणीदण्ड कहलाता था।

जूट—बालों को ऊपर को समेट कर कपडे की पट्टी से बाँधना जूट कहा जाता था। बालो को इकट्ठा करके बाँधने को आजकल भी जूडा बाँधना कहा जाता है। सोमदेव ने लिखा है कि दाक्षिणात्य सैनिक उत्कट जूट बाँधे थे जो गेंडे के सीग की तरह लगता था।[३७]

कबरी—कबरी का एक बार उल्लेख है।[३८] बालो को साधारणतया सभालकर बाँधने को कबरी कहते थे।

प्रसाधन-सामग्री

यशस्तिलक मे प्रसाधन-सामग्री की जानकारी इस प्रकार दी है—

१ अजन—(लोचनाजनमार्गेषु, पृ० ९, उत्त०)

२ कज्जल—(नेत्रै कज्जनपासुलै, पृ० ६११),
(नेत्रै कज्जलित, वही, स० पृ० ६१६)

३ अगुरु—(१) कृष्णागुरु—(कृष्णागुर्रुपजरितकर्णपालीषु, पृ० ९ उत्त०)
(२) कालागुरु—(कालागुरुधूपधूमधूसरित, वही, पृ० २८)

४ अलक्तक—(यत्रालक्तकमण्डन विरचितम्, पृ० १२६)
(यावकपुनरुक्तकान्तिप्रभावेषु पादपल्लवेषु, पृ० ९ उत्त०)

५ कुकुम— (कुकुमपकरागं, पृ० ६१)
(काश्मीरै. कीरनाथ., पृ० ४७०)
(घुसृणरसारुणित, पृ० २८ उत्त०)

---

३५ प्रियालकमजरीकणकल्पितकर्णिकारकेसरविराजितसीमन्तसंततिना। पृ० १०५

३६ शीर्षश्रीवेणीदण्डानुकारिणा।—पृ० २७

३७ पृ० ४६१

३८ कबरीनिगूढेनाक्षिपत्रेण।—पृ० १९३, उत्त०

६ कर्पूर— (कर्पूरदलदन्तुरित, पृ० २८ उत्त०)
(कर्पूरपरागरुचो, पृ० २१२)

७ चन्द्रकवल—(अमरसुन्दरीवदनचन्द्रकवला , पृ० ३३८)
(चिताभसितानि चन्द्रकवला , पृ० १५०)

८ तमालदलधूलि—(तमालदलधूलिधूसरितरोमराजिनि, पृ० ९ उत्त०)

९ ताम्बूल— (हस्ते कृत्य च ताम्बूलम्, पृ० ८१ उत्त०)

१० पटवास— (वनदेवतापटवासा , पृ० ३३८)

११. पिष्टातक— (ककुभगनालकप्रसाधनपिष्टातकचूर्णाः पृ० ३३८)
(प्रसवपरागपिष्टातकितदिग्देवतासीमन्तसतानम्, पृ० ९४)

१२ मन सिल— (मन सिलाधूलिलीले, पृ० ४ उत्त०)

१३ मृगमद— (मृगमदैरेष नैपालपालः, पृ० ४७०)

१४ यक्षकर्दम— (यक्षकर्दमखचितजातरूपभित्तिनि, पृ० २८ उत्त०)
यक्षकर्दम कर्पूर, कस्तूरी, अगुरु और ककोल को मिलाकर बनाए गये अनुलेपन द्रव्य को कहते थे (अमरकोष २।६।१३३)। अमृतमति के अन्त.पुर की सुवर्ण-भित्तियो पर यक्षकर्दम का लेप किया गया था (यक्षकर्दमखचितजातरूप-भित्तिनि, २८।२ उत्त०)। धन्वन्तरि ने कुकुम, कस्तूरी, कपूर, चन्दन और अगुरु से बनी महासुगन्धि को यक्षकर्दम कहा है (उद्धृत– अग्रवाल– कादम्बरी एक सा० अध्ययन)। काव्यमीमासा में इसे चतुःसमसुगन्धि कहा है (१८।१००)। दोहाकोश (पृष्ठ ५५) और पदमावत (२७६।४) में भी इसे चतुःसमसुगन्धि कहा है।

१५ हरिरोहण—गोशीषचन्दन (तपश्चर्यानुरागेणैव हरिरोहणेनागरागम्, पृ० ८१ उत्त०)

१६ सिन्दूर— (पृ० ५ उत्त०, पृ० ७८)

पुष्प-प्रसाधन

पुष्प, प्रसाधन-सामग्री का एक महत्त्वपूर्ण अग है। दक्षिण भारत में प्राचीन काल से ही पुष्प-प्रसाधन की कोमल कला चली आयी है। अभी भी वहाँ इनके अनेक रूप देखे जाते हैं। सोमदेव ने यशस्तिलक मे दक्षिण भारतीय सस्कृति का विशेष चित्रण किया है। इसलिए सहज ही पुष्प-प्रसाधन सम्बन्धी सामग्री भी

प्रचुर मात्रा में आयी है। सोमदेव ने पुष्प और पत्तो से बने निम्नलिखित आभूषणो का उल्लेख किया है—

१ अवतसकुवलय[३९]—कुवलय पुष्प को अवतस के स्थान पर कान मे पहना जाता था। आभूषणो के प्रकरण में लिखा जा चुका है कि यशस्तिलक में पल्लव, चम्पक, कचनार, उत्पल तथा कैरव के बने अवतसो के उल्लेख हैं।[४०]

२ कमलकेयूर[४१]—कमल को केयूर के स्थान पर पहना जाता था। केयूर का उल्लेख यशस्तिलक में दो बार आया है। एक स्थान पर लाल कमल में श्वेत-कमल लगा कर केयूर बनाने का उल्लेख है। आभूषणो के प्रकरण में इस सम्बन्ध में विशेष लिखा जा चुका है।

३. कदलीप्रवालमेखला—सिन्धुवार की माला लगा कर केले के कोमल पत्तो की मेखला बनाई जाती थी। इसे कदलीप्रवालमेखला कहते थे।[४२] कटि के आभूषणो में मेखला का महत्त्वपूर्ण स्थान था। सोमदेव ने चार प्रकार के कटि के आभूषणो का वर्णन किया है जिसे आभूषणो के प्रसग में लिख चुके हैं।

४ कर्णोत्पल[४३]—कान में पहने जाने वाले आभूषणो में अधिकाश फूल और पत्तो के ही बनाए जाते थे। उत्पल नीले कमल को कहते हैं। नीले कमल को कान में पहनने का रिवाज था।

५ कर्णपूर[४४]—कर्णपूर का उल्लेख यशस्तिलक में चार बार हुआ है। उसमें से एक प्रसग में मरुवे के फूल से बने कर्णपूर का उल्लेख है। कर्णपूर को देशी भाषा मे कनफूल कहा जाता है। (कर्णपूर > कर्णफूल > कनफूल) अलकारो के प्रकरण में इस सम्बन्ध में और भी लिखा है।

६ मृणालवलय—मृणाल के बने हुए वलय हाथो मे पहनते थे। सोमदेव ने दो बार मृणालवलय का उल्लेख किया है।[४५]

---

३९ ८।८ उत्त०

४० ४७२, हिन्दी

४१ वही, हिन्दी

४२ (सिन्धुवारस्रग्दामकदलीप्रवालमेखलेन, वही ४७२ हिन्दी

४३ श० पू० प० १४

४४ कर्णपूरमरुवकोद्भेदसुन्दरगण्डमण्डलाभि पृ० ३४२।८

४५ ४७१ हिन्दी ३४६।८, हिन्दी

७ पुन्नागमाला[४६]—पुन्नाग के फूलो की माला बनाकर गले में पहनी जाती थी।

८ बन्धूकनूपुर[४७]—बन्धूक पुष्पो के नूपुर बना कर पहने जाते थे।

९ शिरीषजघालकार[४८]—शिरीष पुष्पो का कोई अलंकार बना कर सम्भवत जाँघो में पहना जाता था, जिसे शिरीषजघालकार कहते थे।

१० शिरीषकुसुमदाम[४९]—शिरीष के फूलो की एक प्रकार की माला बना कर गले में पहनी जाती थी।

११ विचकिलहारयष्टि—मोगरे के पुष्पो की एक प्रकार की माला जिसे हारयष्टि कहा जाता था गले में पहनते थे। मोगरे के कुड्मलो की हारयष्टि[५०] बनती थी तथा फूले हुए मोगरो के फूलो को बालो में सजाया जाता था।[५१]

१२ कुरवक मुकुलस्रक[५२]—कुरवक के कुड्मलो की चमचमाती हुई लम्बी माला बना कर पहनी जाती थी जिसे 'कुवलयमुकलस्रकतारहार' कहते थे। हार के विषय में विशेष आभूषणो के प्रकरण मे लिखा गया है।

---

४६. ५७।१, हिन्दी
४७ ५७।३, हिन्दी
४८ ५७ २, हिन्दी
४९. ३५६।७, हिन्दी
५० ३५६।७, हिन्दी
५१ ३५७।६, हिन्दी
५२. वही

शिक्षा और साहित्य

शिक्षा और साहित्य विषयक सामग्री यशस्तिलक में पर्याप्त एवं महत्त्वपूर्ण है। बाल्यावस्था शिक्षा की उपयुक्त अवस्था मानी जाती थी।[1] गुरुकुल प्रणाली शिक्षा का आदर्श था। मारिदत्त के माता-पिता उसकी छोटी अवस्था में ही सन्यस्त हो गये थे, इस कारण गुरुकुल में जाकर मारिदत्त की शिक्षा नही हो पायी थी।[2] यशोधर की शिक्षा समान वय वाले सचिव पुत्रो के साथ हुई थी।[3] विद्यार्थी के लिए यह आवश्यक था कि खूब मन लगाकर पढे, विनयपूर्वक रहे और नियम सम्पन्न हो।[4] विद्याध्ययन समाप्त होने के बाद गोदान किया जाता था।[5]

शिक्षा के अनेक विषय थे। सोमदेव ने अमृतमति महारानी की द्वारपालिका को समस्त देशो की भाषा तथा वेष का जानकार कहा है।[6] आचार्य सुदत्त के सघ में जो विद्वान् मुनि थे उनमें कोई समस्त शास्त्रो के ज्ञाता थे, कोई पुराणो में पारगत थे। कोई तर्कविद्या में निष्णात थे, कोई नव्यानव्यकाव्य में। कोई ऐन्द्र, जैनेन्द्र, चन्द्र, आपिशल, पाणिनीय आदि व्याकरण के पडित थे।[7] यशोधर ने जिन विद्याओ में नैपुण्य प्राप्त किया था उनका विवरण सोमदेव ने इस प्रकार दिया है—प्रजापति की तरह सब वर्णों में, पारिरक्षक की तरह प्रसख्यान में, पूज्यपाद की तरह शब्दशास्त्र में, स्याद्वादेश्वर की तरह धर्माख्यान में, अकलक की तरह प्रमाणशास्त्र में, पणिपुत्र की तरह पदप्रयोग में, कवि की तरह राजनीति में, रोमपाद की तरह गजविद्या में, रैवत की तरह अश्वविद्या में,

---

१ बाल्य विद्यागमैर्यत्र।—पृ० १६८

२ कुलवृद्धाना च प्रतिपन्नपि वनतपोवनलोकत्वादसजातविद्यावृद्धगुरुकुलोपासन।
—पृ० २६

३. सवय सचिवकुलकृतानुशीलन।—पृ० २३६

४ स्वाध्यायधीनियमवान्विनयोपपन्न।—पृ० २३७

५ सकलविद्याविदाश्चर्यप्रवणनैपुण्यमहमाश्रित परिप्राप्तगोदानावसरश्च।—वही

६ नि शेषविषयभाषावेषधिषणया।—पृ० २५ उत्त०

७ पृ० ८९-९०

अरुण की तरह रथविद्या में, परशुराम की तरह शस्त्रविद्या में, शुकनाश की तरह रत्नपरीक्षा में, भरत की तरह सगीतक मत में, त्वष्टकि की तरह चित्रकला में, काशीराज की तरह शरीरोपचार में, काव्य की तरह व्यूहरचना में, दत्तक की तरह कामशास्त्र में तथा चन्द्रायणीश की तरह अपर कलाओ में।[८]

अन्य प्रसगो में भी विभिन्न शास्त्र और शास्त्रकारो के उल्लेख हैं। सबका सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

व्याकरण

व्याकरण शास्त्रकारो में सोमदेव ने इन्द्र, जैनेन्द्र, चन्द्र, आपिशल, पाणिनि तथा पतजलि का उल्लेख किया है। इस प्रसग में पणिपुत्र नाम भी आया है।

इनमें कुछेक नाम वतमान में अपरिचित से हो गये हैं और उनके शास्त्र भी उपलब्ध नही होते। वास्तव में ये सभी प्रचीन महान् वैयाकरण थे और सोमदेव के उल्लेखानुसार कम से कम दशमी शती तक तो इनके शास्त्रो का अध्ययन-अध्यापन होता ही था। १०५३ ई० के मूलगुण्ड शिलालेख में चान्द्र, कातन्त्र, जैनेन्द्र शब्दानुशासन तथा ऐन्द्र व्याकरण और पाणिनि का उल्लेख है।[९] तेरहवी शती में वोपदेव ने अपने कविकल्पद्रुम के प्रारम्भ में आठ वैयाकरणो का उल्लेख किया है, जिनमें इन्द्र, चन्द्र, आपिशल, पाणिनि और जैनेन्द्र का नाम आता है। कल्पसूत्र की टीका में समयसुन्दरगणि (१७वी शती) ने अठारह वैयाकरणो में इन्द्र और आपिशल को भी गिनाया है। यद्यपि बाद के इन उल्लेखो से यह कहना कठिन है कि सत्रहवी शती तक उपर्युक्त सभी व्याकरण उपलब्ध थे, फिर भी इतना निश्चित है कि ये सब व्याकरण के महान् आचार्य माने जाते थे। सोमदेव ने जिनका उल्लेख किया है उनके विषय में किंचित् और जानकारी इस प्रकार है—

---

८ प्रजापतिरिव सर्ववर्णागमेषु, पारिरक्षक इव प्रसख्यानोपदेशेषु, पूज्यपाद इव शब्देतिह्येषु, स्याद्वादेश्वर इव धर्माख्यानेषु, अकलंकदेव इव प्रमाणशास्त्रेषु, पणिपुत्र इव पदप्रयोगेषु, कविरिव राजराद्धान्तेषु, रोमपाद इव गजविद्यासु, रैवत इव हयनयेषु, अरुण इव रथचर्यासु, परशुराम इव शस्त्राधिगमेषु, शुकनाश इव रत्नपरीक्षासु, भरत इव सगीतकमतेषु, त्वष्टकिरिव विचित्रकर्मसु, काशिराज इव शरीरोपचारेषु, काव्य इव व्यूहरचनासु, दत्तक इव कतुसिद्धान्तेषु, चन्द्रायणीश इवापरास्वपिकलासु।—पृ० २३६-३७

९ एपिग्राफिया इडिका, जिल्द १६, भाग २

इन्द्र और उनका ऐन्द्र व्याकरण

ऐन्द्र व्याकरण अब तक उपलब्ध नही हुआ, किन्तु कातन्त्र व्याकरण को ऐन्द्र व्याकरण के आधार पर रचा गया माना जाता है। इन्द्र का वैयाकरण के रूप में सर्वप्रथम उल्लेख तैत्तरीयसहिता में आता है।[१०] नैषधकार ने भी नैषध (१०।१३५) में इन्द्र का उल्लेख किया है। तेरहवी शताब्दी के अन्त में चण्डुपडित ने भी इन्द्र का उल्लेख किया है।[११]

तिब्बती परम्परा में इन्द्रगोमिन् के इन्द्रव्याकरण की जानकारी मिलती है और नैपाल के बौद्धो में इसका पठन-पाठन बताया जाता है।[१२] वास्तव में इन्द्र-व्याकरण के विषय में अभी पर्याप्त छानबीन की आवश्यकता है।

आपिशल और उनका आपिशलि व्याकरण

आपिशल का उल्लेख पाणिनि ने 'वा सुप्यापिशले' कहकर अष्टाध्यायी में किया है। महाभाष्य (४।२।४५, ४।१।१४) काशिका (६।२।३६, ७।३।९५) तथा न्यास में भी आपिशल के कई उल्लेख आये हैं। आपिशल का अध्ययन करने वाली ब्राह्मणी आपिशला कहलाती थी।[१३] आपिशल को पढने वाले छात्र भी आपिशल कहलाते थे।[१४] काशिका की वृत्ति (१।३।२२) में जैनेन्द्र बुद्धि ने भी आपिशल का उल्लेख किया है। कातन्त्र सम्प्रदाय के व्याकरण में भी आपिशल का उल्लेख मिलता है।[१५] आपिशल का कोई ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नही हुआ है।

चन्द्र और उनका चान्द्रव्याकरण

बौद्ध चन्द्रगोमिन् का चन्द्रवृत्तिक ही सोमदेव द्वारा उल्लिखित चान्द्रव्याकरण ज्ञात होता है। यह ५वीं शती की रचना मानी जाती है। लिपजिग से इसका प्रकाशन भी हो चुका है।[१६]

---

१० वेलवलकर—सिस्टम्स ऑव संस्कृत ग्रामर, पृ० १०

११ तादृक्कृतव्याकरण तादृक्कृत ऐन्द्र व्याकरणम्।

१२ विटरनित्स, उल्लिखित हन्दिकी।—यश० पृ० ४४३

१३ आपिशलमधीते ब्राह्मणी आपिशला ब्राह्मणी, महाभाष्य ४।१।१४

१४ अधीयतेऽन्तेवासिनस्तेऽप्यापिशला।—आपिशलैर्वा छात्रा आपिशला इत।
—काशिका ६।।३६

१५ "द्वितीयैनेन" की टीका में दुर्गासिंह—आपिशलीयव्याकरणे समयादीना कर्म-प्रवचनीयत्व दृष्टमिति मतम्।

१६ वेलवलकर, वही पृ० ९८

पणिपुत्र या पाणिनि

सोमदेव ने यशोधर को पणिपुत्र की तरह पदप्रयोग में निपुण कहा है। श्रीदेव तथा श्रुतसागर दोनो ने ही पणिपुत्र का अर्थ पाणिनि किया है। अष्टाध्यायी के रचयिता पाणिनि की माँ का नाम दाक्षी था। सोमदेव के उल्लेखानुसार उनके पिता का नाम पणि या पाणि था। तेलुगु के श्रीनाथ और पेदन के ग्रन्थो में पाणिनि को पाण्निसुनु कहा है।[१७]

इस प्रकार यह यशस्तिलक का सन्दर्भ पाणिनि के सम्बन्ध में ज्ञात तथ्यो में एक और नयी कडी जोडता है।

पूज्यपाद देवनन्दि और उनका जैनेन्द्र व्याकरण

पूज्यपाद का सोमदेव ने दो बार उल्लेख किया है। पूज्यपाद देवनन्दि का जैनेन्द्र व्याकरण प्रसिद्ध है। इनका समय पाँचवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। जैनेन्द्र व्याकरण के अतिरिक्त पूज्यपाद कृत सर्वार्थसिद्धि प्रसिद्ध है। यह उमास्वातिकृत तत्त्वार्थसूत्र की प्रथम सस्कृत टीका है।

पूज्यपाद देवनन्दि एक अच्छे दार्शनिक भी थे, किन्तु व्याकरणाचार्य के रूप में वे और भी अधिक प्रसिद्ध हुए। एक स्वतन्त्र व्याकरण-सिद्धान्त-निर्माता के रूप में उन्हें माना जाता था और इसीलिए 'पूज्यपाद की तरह व्याकरणविशेषज्ञ' एक कहावत-सी चल पडी थी। श्रवणबेलगोला के शिलालेखो में इस तरह के उल्लेख मिलते हैं। शक सवत् १०३७ के एक शिलालेख में मेघचन्द्र को पूज्यपाद की तरह सर्वव्याकरण विशेषज्ञ कहा है। इसी तरह जैनेन्द्र और श्रुतमुनि को भी पूज्यपाद की तरह व्याकरणविशेषज्ञ कहा गया है।[१८] स्वय सोमदेव ने यशोधर को शब्दशास्त्र में पूज्यपाद की तरह कहा है।

पतजलि

पतजलि का उल्लेख एक श्लेष में आया है।[१९]

---

१७ राघवन्—ग्लीनिग्ज फ्राम सोमदेव सूरीज यशस्तिलकचम्पू, दी जरनल ऑव दी गगानाथ झा रिसर्च इस्टीट्यूट, इलाहाबाद, जिल्द १, भाग ३, मई १६४४

१८ सर्वव्याकरणे विपश्चिदधिप श्रीपूज्यपाद स्वयम्—श्लो० ३०
—जैनेन्द्रे पूज्य (पाद), श्लो० २३
—शब्दे श्रीपूज्यपाद, श्लो० ४०
—जैन शिलालेख सग्रह, पृ० ६२, ११९, २०२

१६ शब्दशास्त्रविद्याधिकरणव्याकरणपतजल।—पृ० ३१६, उत्त०

गणितशास्त्र

गणितशास्त्र को सोमदेव ने प्रसंख्यान शास्त्र कहा है। पारिरक्षक प्रसंख्यानोपदेश के अधिकारी विद्वान् माने जाते थे। श्रीदेव तथा श्रुतसागर दोनो ने पारिरक्षक का अर्थ यति या सन्यासी किया है। सम्भवतः पाणिनि द्वारा उल्लिखित भिक्षुसूत्र के कर्ता का नाम पारिरक्षक रहा हो।

प्रमाणशास्त्र और अकलंक

सोमदेव ने यशोधर को प्रमाणशास्त्र में अकलक की तरह कहा है। अकलक जैन-न्याय या प्रमाणशास्त्र के प्रतिष्ठापक विद्वान् माने जाते हैं। ८वी शती के यह एक महान् आचार्य थे। अनेक ग्रन्थो तथा शिलालेखों में अकलक के उल्लेख मिलते हैं। तत्त्वार्थवार्तिक, अष्टशती, लघीयस्त्रय, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय तथा प्रमाणसग्रह अकलक की महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। सौभाग्य से सभी के समालोचनात्मक सस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।[२०]

राजनीतिशास्त्र

सोमदेव ने यशोधर को नीतिशास्त्र और व्यूहरचना में कवि की तरह कहा है।[२१] श्रीदेव ने कवि का अर्थ बृहस्पति तथा श्रुतसागर ने शुक्र किया है।

एक अन्य प्रसग में गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पाराशर, भीम, भीष्म तथा भारद्वाजरचित नीतिशास्त्रो का उल्लेख है।[२२] दुर्भाग्य से अभी तक इनमें से किसी का भी स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नही हुआ, किन्तु सोमदेव के उल्लेख से यह सुनिश्चित है कि दशमी शती में सभी ग्रन्थ प्राप्त थे और उनका पठन-पाठन भी होता था।

गजविद्या तथा रोमपाद

यशोधर को गजविद्या में रोमपाद की तरह कहा है। अग नरेश रोमपाद को पालकाप्य मुनि ने हस्त्यायुर्वेद की शिक्षा दी थी।[२३]

रोमपाद के अतिरिक्त सोमदेव ने गजशास्त्रविशेषज्ञ आचार्यों में इभचारी,

---

२० भारतीय ज्ञानपीठ काशी द्वारा प्रकाशित

२१ कविरिव राजराद्धान्तेषु, काव्य इव व्यूहरचनासु।—पृ० २३६

२२. गुरुशुक्रविशालाक्षपरीक्षितपाराशरभीमभीष्मभारद्वाजादिप्रणीतनीतिशास्त्रश्रवणसनाथम्।—पृ० ४७१

२३. हस्त्यायुर्वेद, आनन्दाश्रम सीरीज २६, मातगलीला १०

याज्ञवल्क्य, वाद्धलि (वाहलि), नर, नारद, राजपुत्र तथा गौतम का उल्लेख किया है।[२४]

दुर्भाग्य से इनमें से किसी का भी स्वतन्त्र ग्रन्थ नही मिलता, पर सोमदेव के उल्लेख से यह महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है कि इन सभी के गजशास्त्र उपलब्ध थे।

अश्वविद्या और रैवत

रैवत अश्वविद्या-विशेषज्ञ माने जाते थे, इसीलिए सोमदेव ने यशोधर को अश्वविद्या में रैवत के समान कहा है। यशस्तिलक के दोनो टीकाकारो ने रैवत को सूर्य का पुत्र बताया है। मार्कण्डेयपुराण (७५।२४) में भी रैवत या रैवन्त को सूर्य और बडवा का पुत्र कहा गया है तथा गुह्यक मुख्य और अश्ववाहक बताया है। अश्वकल्याण के लिए रैवत की पूजा भी की जाती है (देखिए, जयदत्त—अश्वचिकित्सा, बिब० इडिका १८८६, ८, पृ० ८५-८)।

अश्वविद्या विशेषज्ञो में सोमदेव ने शालिहोत्र का भी उल्लेख किया है (१७३ हि०)। शालिहोत्रकृत एक सक्षिप्त रैवत-स्तोत्र प्राप्त होता है (तजौर ग्रन्थागार, पुस्तक सूची, पृ० २०० तथा कीथ का इडिया आफिस केटलाग पृ० ७५८)।[२५]

रत्नपरीक्षा और शुकनाश

सोमदेव ने यशोधर को रत्नपरीक्षा में शुकनाश की तरह कहा है। श्रीदेव तथा श्रुतसागर दोनो ने शुकनाश का अर्थ अगस्त्य किया है। रत्नपरीक्षा का एक उद्धरण भी यशस्तिलक में आया है—

"न केवल तच्छुभकृन्नृपस्य मन्ये प्रजानामपि तद्विभूत्यै।
यद्योजनाना परत शताद्धि सर्वाननर्थान् विमुखी करोति।।"

यह पद्य बुद्धभट्टकृत रत्नपरीक्षा में उपलब्ध होता है। गरुडपुराण (पूर्व खण्ड अध्याय ८ से ८०) में यह ग्रन्थ शामिल है। भोजकृत युक्तिकल्पतरु में उद्धृत गरुडपुराण के उद्धरणो में भी यह पद्य मिलता है।

वैद्यक और काशिराज

सोमदेव ने यशोधर को शरीरोपचार में काशिराज की तरह कहा है। श्रुतसागर ने काशिराज का अर्थ धन्वन्तरि किया है।

---

२४ पृ० २६१

२५. राघवन्—ग्लो० फ्रा० यश०, वही

अन्य प्रसगो में चारायण, निमि, धिषण तथा चरक के भी उल्लेख हैं।

इन विद्वानो के वैद्यक ग्रन्थ दशमी शती में उपलब्ध थे और उनका पठन-पाठन भी होता था। स्वास्थ्य, रोग और उनकी परिचर्या परिच्छेद में इनके विषय में और भी जानकारी दी गयी है।

संसर्गविद्या या नाट्य

भरत और उनके नाट्यशास्त्र का उल्लेख यशस्तिलक में कई बार आया है। एक श्लेष में नाट्यशास्त्र को सोमदेव ने ससर्गविद्या कहा है (भावसकरः ससर्गविद्यासु, पृ० २०२)। श्रीदेव और श्रुतसागर दोनो ने ही ससर्गविद्या का अर्थ भरत अर्थात् नाट्यशास्त्र किया है। कला-परिच्छेद में भरत तथा नाट्यशास्त्र के उल्लेखो के विषय में विचार किया गया है।

चित्रकला तथा शिल्पशास्त्र

चित्रकला तथा शिल्पशास्त्रविषयक उल्लेख भी यशस्तिलक में यत्र-तत्र आये हैं। कला और शिल्प अध्याय में उनका विवेचन किया गया है।

कामशास्त्र

कामशास्त्र को सोमदेव ने कन्तुसिद्धान्त कहा है और दत्तक को उसका विशेपज्ञ वताया है (दत्तक इव कन्तुसिद्धान्तेषु, वही)। वात्स्यायन ने कामसूत्र में दत्तक का उल्लेख किया है।

सोमदेव ने कामसूत्र का दो वार और भी उल्लेख किया है।[२६] वास्तव में कामसूत्र में वर्णित विभिन्न चेष्टाओ तथा कामक्रीडाओ आदि का विवरण यशस्तिलक की अनेक उपमा-उत्प्रेक्षाओ तथा श्लेषो में आया है।

रति-रहस्य और उसकी रत्नदीप टीका

एक श्लेप में सोमदेव ने कोकककृत रतिरहस्य और उस पर रत्नदीप नामक टीका का उल्लेख किया है।[२७]

चौसठ कलाएँ

यशस्तिलक में चौसठ कलाओ का एक साथ तो उल्लेख नही है, किन्तु विभिन्न

---

२६ न क्षमश्चिरपरिचितकामसूत्राया।—पृ० ४९ हि०
श्रृङ्गारवृत्तिभिरुदाहृतकामसूत्रम्।—१।७३

२७ चरणनखरूपादितरतिरहस्यरत्नदीपविरचनै।—पृ० २९

प्रसगों पर उनमें से कई का उल्लेख है। सोमदेव ने यशोधर को चन्द्रायणीश की तरह अपरकलाओ में निष्णात कहा है।[२८] सम्भवत अपर कलाओ से तात्पर्य यहाँ ६४ कलाओ से है।

पत्रच्छेद

चौसठ कलाओ में पत्रच्छेद भी एक कला मानी जाती है। पत्तो में कैंची से तरह-तरह के नमूने काटना पत्रच्छेद है। वात्स्यायन ने कामसूत्र (१।३।१६) में इसे विशेपकच्छेद्य कहा है। विशेषकर प्रणय-प्रसगो में इस कला का उपयोग किया जाता था। वात्स्यायन ने लिखा है—पत्रच्छेद्य में अपने अभिप्राय के सूचक मिथुन का अकन करके प्रेमी या प्रेमिका के पास भेजना चाहिए।[२९]

भोगावलि या राजस्तुतिविद्या

राजा की स्तुति में लिखी गयी प्रशसात्मक कविता भोगावलि, विरुदावलि या रगघोपणा कहलाती है। यशस्तिलक में भोगावलि का तीन बार उल्लेख है (पृ० २४९, २५१, ३९९)। राजदरबारो में भोगावली पाठक हुआ करते थे।

काव्य और कवि

यशस्तिलक में सोमदेव ने बीस से भी अधिक महाकवियो का उल्लेख किया है—ऊर्व, भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमेण्ठ, कण्ठ, गुणाढ्य, व्यास, भास, वोस, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, कुमार, माघ और राजशेखर। इनमें कई-एक कवि जितने प्रसिद्ध और परिचित हैं उतने ही कई-एक अप्रसिद्ध और अपरिचित। नारायण सम्भवत वेणीसहार के कर्ता भट्टनारायण हैं और कुमार जानकीहरण के कर्ता कुमारदास। भास के विषय में निश्चित रूप से कहना कठिन है कि ये प्रसिद्ध नाटककार भास हैं अथवा अन्य। भास का महाकवि के रूप में एक अन्य प्रसग (पृ० २५१ उत्त०) में भी उल्लेख है और उनका एक पद्य भी उद्धृत किया है।

कण्ठ कवि का प्राचीन कवियो में कोई पता नही चलता। क्षीरस्वामीकृत क्षीरतरगिनी में कण्ठ को सस्कृत धातु विशेपज्ञ के रूप में अनेक बार उद्धृत किया है। सम्भव है ये यही कण्ठ महाकवि हो। ऊर्व सम्भवत वल्लभदेवकृत सुभाषितावलि में उल्लिखित और्व हैं।

---

२८ चन्द्रायणीश इव अपरास्वपि कलासु।—पृ० २३७

२९ पत्रच्छेद्यक्रियाया च स्वाभिप्रायसूचकं मिथुनमस्या दर्शयेत्।—३।४।४

बाणभट्ट तथा उनकी कादम्बरी का एक स्थान पर और भी उल्लेख है। कादम्बरी से एक वाक्य भी उद्धृत किया गया है।[३०]

माघ का भी एक बार उल्लेख है। यशोधर को माघ के समान बताया है।[३१]

भर्तृहरि के नीतिशतक और शृङ्गारशतक से एक-एक पद्य बिना उल्लेख के उद्धृत किया गया है।[३२]

जिन कवियो के विषय में हमें अन्यत्र जानकारी नही मिलती ऐसे कवियो में निम्नलिखित उल्लेख्य हैं—

अहिल के नाम से शिव-स्तुति रूप दो पद्य (पृ० २५५ उत्त०) उद्धृत हैं।

नीलपट के नाम से (पृ० २५२ उत्त०) एक पद्य उद्धृत है। सम्भवत यह नीलपट सदुक्तिकर्णामृत में उल्लिखित नीलभट्ट हैं।

वररुचि के नाम से (पृ० ९९ उत्त०) एक पद्य उद्धृत है। यद्यपि यह पद्य निर्णयसागर द्वारा प्रकाशित भर्तृहरि के नीतिशतक में पाया जाता है, किन्तु वास्तव में यह नीतिशतक का प्रतीत नही होता, क्योकि एक तो अन्य सस्करणो में भी नही है, दूसरे जब सोमदेव को भर्तृहरि और उनके साहित्य की जानकारी थी तो वे भर्तृहरि का पद्य वररुचि के नाम से क्यो उद्धृत करते।

अन्य उल्लेख

एक पद्य में त्रिदश, कोहल, गणपति, शकर, कुमुद तथा कैकट का उल्लेख है।[३३] इनके विषय में अन्यत्र कोई जानकारी अभी नही मिलती।

दार्शनिक और पौराणिक साहित्य

दार्शनिक और पौराणिक साहित्य के अनेक उल्लेख यशस्तिलक में आये हैं। प्रो० हन्दिकी ने इनका विस्तार से विवेचन किया है, इसलिए उसे यहाँ पुनरुद्धृत नही किया गया।

---

३० आहार साधुजनविनिन्दितो मधुमासादिरिति बाणेन।—पृ० १०१ उत्त०

३१ सुकविकाव्यकथाविनोददोहदमाघ।

३२ स्त्रीमुद्रा झषकेतनस्य—इत्यादि
नमस्यामोदेवाननुहतविधे, इत्यादि।—पृ० २५२ उ०

३३ वृत्तिच्छेदस्त्रिदशविदुष कोहलस्यार्थहान-
र्मानम्लानिर्गणपतिकवे शकरस्याशुनाश।
धर्मध्वस कुमुदकृतिन कैकटेश्च प्रवास
पापादस्मादिति समभवद्देव देशे प्रसिद्धि॥—पृ० ४२९

गज-विद्या

यशस्तिलक में गज-विद्या विषयक प्रचुर सामग्री है। गजोत्पत्ति की पौराणिक अनुश्रुति, उत्तम गज के गुण, गजो के भद्र, मन्द, मृग तथा सकीर्ण भेद, गजो की मदावस्था, उसके गुण, दोष और चिकित्सा, गजशास्त्र के विशेषज्ञ आचार्य, गज परिचारक, गज-शिक्षा इत्यादि का विस्तृत वर्णन मिलता है। यह वर्णन मुख्य रूप से तीन प्रसगो में आया है—

(१) मारिदत्त हाथियो के साथ खेला करता था (सामजैः सह चिक्रीड, ३१)।

(२) यशोधर के पट्टबन्ध उत्सव पर अनेक गुण सयुक्त गज उपस्थित किया गया (आकरस्थानमिव गुणरत्नानाम, २९९)।

(३) सम्राट् यशोधर ने स्वय गजशिक्षाभूमि पर जाकर गजो को शिक्षित किया (करिविनयभूमिषु स्वयमेव वारणान्विनिन्ये, ४८२)। हथिनि पर सवारी की (कृतकरेणुकारोहणः, ४९२), गजक्रीडास्थली में गजक्रीडा देखी (प्रधावधरणिषु करिकेलिरदर्शम्, ५०५) तथा दन्त-वेष्टन किया (कोशारोपणमकरवम्, ५०६)।

प्रथम प्रसग में गजशास्त्र सम्बन्धी अनेक पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग हुआ है।

यशोधर के पट्टबन्धोत्सव के लिए जो हाथी लाया गया उसका वर्णन निम्न-प्रकार किया गया है (पृष्ठ २९१–२९९)—

'हे राजन्, यह गज कलिगवन में उत्पन्न, ऐरावत कुल, प्रचार से सम, देश से साधारण, जन्म से भद्र, सस्थान से समसम्बद्ध, उत्सेध (ऊर्ध्वता), आयाम (दीर्घता) तथा परिणाह (वृत्तता) से सम-सुविभक्त शरीर, आयु से दो दशाओं को भोगता हुआ, अग से स्वायत व्यायत छवि, वर्ण, प्रभा और छाया से आशसनीय, आचार, शील, शोभा और आवेदिता से कल्याण, लक्षण और व्यजन से प्रशस्त, वल, वर्ष्म (शरीर), वय और वेग से उत्तम, ब्रह्माश, गति, सत्त्व, स्वर और अनूक से प्रियालोक, विनायक (गणेश) की तरह मोटा चौडा मुंह, तालु में अशोक पुष्प की तरह अरुण, अन्तर्मुख में कमलकोश की तरह शोण प्रकाश, उरोमणि, विक्षोभ-कटक, कपोल तथा सृक्व में पीन और उपचितकाय, सुप्रमाण कुभ, ऋजु-पूर्ण तथा ह्रस्व कन्धरा, अलि के समान नीले और मेघ के समान घने तथा स्निग्ध केश, समसूद्गतव्यूढ मस्तक, अनल्प आसनस्थान, डोरी चढाये गये धनुष की तरह अनुवश (रीढ), अजकुक्षि, अनुपदिग्ध पेचक, कुब्ध उठी हुई, जमीन को छूती हुई बैल की पूंछ के समान पूंछ, अभिव्यक्त पुष्कर (शुण्डाग्रभाग), वराह के जघन के

समान अपरदेश (पश्चिम भाग), आम्र-पल्लव के समान कोश, समुद्ग और कूर्म की आकृति के समान गात्र और अपर तल, अष्टमी के चन्द्रमा की तरह निश्चल एव परस्पर सलग्न विंशतिनखमयूख वाला है। क्रम से पृथु, वृत्त, आयत और कोमलता से पूर्ण, होनेवाले अनेक युद्धो में प्राप्त विजय की गणना-रेखाओं के समान कतिपय बलियो (सिकुडनो) द्वारा अलकृत, मद झराते, मृदु, दीर्घ और विस्तृत अगुली वाले कर (सूड) से यहाँ-वहां बिखेरे गये वमथु (मुख के) जल की फुहार से मानो इस पट्टबन्ध उत्सव के सुअवसर पर दिग्पालो की पुरन्ध्रियो को मुक्ताफल के उपहार बांट रहा हो। निरन्तर उड़ रहे मलयज, अगुरु, कमल, केतकी, नीलकमल और कुमुद की सुगधि सरीखे मद और वदन की सुगधि से मानो, आपके ऐश्वर्य को देखने के लिए अवतीर्ण देवकुमारो को अर्घ दे रहा हो। मेघ की तरह गभीर और मधुर ध्वनि तुल्य बृंहित द्वारा समस्त यागनागो में श्रेष्ठता प्रमाणित कर रहा हो। घन और स्निग्ध भौंह वाले स्थिर, प्रसन्न, आयत, व्यक्त, रक्त, शुक्ल, कृष्ण दृष्टि वाले मणि की कान्ति सदृश नेत्र-युगल के अरविन्द-पराग सदृश पिंगल कटाक्षपात द्वारा मानो ककुभागनाओ के लिए पिष्टातक चूर्ण बिखेर रहा हो। किंचित् दक्षिण की ओर उठे हुए, ताम्रचूड (मुर्गा) के पिछले पैरो की पिछली अगुलियो की तरह सुशोभित सम, सुजात और मधु की कान्ति सदृश दोनो खीसो द्वारा मानो स्वर्गदर्शन के कुतूहलवाली आपकी कीर्ति के लिए सोपान बना रहा हो। असिर, अतल, प्रलम्ब और सुकुमार उदय वाले कर्णताल द्वय के द्वारा मानो आनन्द दुदुभि के नाद को पुनरुक्त (द्विगुणित) कर रहा हो। ऊँचाई के कारण पर्वत की चोटियो को नीचा दिखा रहा हो। सरस्वती के हास का उपहास करने वाले देह प्रभापटल के द्वारा स्वकीय शरीराश्रित वीरलक्ष्मी के निकट में श्वेत कमल का मानो उपहार चढा रहा हो। ध्वज, शख, चक्र, स्वस्तिक, नद्यावर्त, विन्यास तथा प्रदक्षिणावर्त वृत्तियो वाली सूक्ष्ममुख स्निग्ध रोमराजि द्वारा अति सूक्ष्म विन्दुमाला द्वारा यथोचित शरीरावयवो पर विन्यस्त है। महोत्सव पूजा युक्त विजयलक्ष्मी के निवास की तरह है। इस प्रकार अन्य बहल, विपुल, व्यक्त, सनिवेश से मनोहर मान, उन्मान, प्रमाण युक्त चारो प्रकार के प्रदेशो द्वारा अनून और अनतिरिक्त, सप्तप्रकार की स्थिति द्वारा नृप तथा महामात्य के सप्त समुद्र पर्यंत शासन की घोषणा करता हुआ, द्वादश क्षेत्रो में शुभ फल को व्यक्त करने वाले अवयव वाला, सिद्ध योगी की तरह रूपादि विषयो में शान्त, दिव्यर्षि की तरह सर्वज्ञ, असितर्ति (अग्नि) की तरह तेजस्वी, कुलीन की तरह उदय और प्रत्यय से विशुद्ध, अधोक्षज (विष्णु) की तरह कामवन्त, अमृत की कान्ति की तरह असताप,

आयोधनाग्रेसर की तरह मनस्वी, अनाद्यून(अल्पभोजी) की तरह सुभग तथा अन्य गुणरत्नो की भी खान है ।'

इस विवरण के बाद करिकलाभ नामक वन्दी ने गजप्रशसापरक चौबीस पद्य पढे ।

उपर्युक्त वर्णन में गज-शास्त्र सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तो की जानकारी दी गयी है । गजशास्त्र में गज के निम्नलिखित बाह्य और अतरग गुणो का विचार किया जाता है—

(१) उत्पत्ति-स्थान—किस वन में पैदा हुआ है ।

(२) कुल—ऐरावत आदि किस कुल का है ।

(३) प्रचार—सम या विषम कैसा प्रचार है, अर्थात् केवल सम प्रदेश में गमन कर सकता है या विषम में भी ।

(४) देश—किसी देश विशेष मे ही रह सकता है या कही भी ।

(५) जाति—भद्र, मन्द, मृग आदि में से किस जाति का है।

(६) सस्थान—शारीरिक गठन कैसा है ।

(७-६) उत्सेध, आयाम, परिणाह—ऊँचाई, लम्बाई तथा मोटाई कैसी है ।

(१०) आयु—आयु की द्वादश दशाओ में से किसमें है (दस वर्ष की एक दशा होती है, स० टी०)।

(११) छवि—शरीर में स्वायत व्यायत (ऊँची तथा तिरछी) वलि रहित छवि (त्वचा) है ।

(१२) वर्ण—शुद्ध, व्यामिश्र तथा अन्तर्वर्ण के तीन-तीन भेदो में से कौन सा वर्ण है ।

(१३) प्रभा—प्रभा कैसी है ।

(१४) छाया—पार्थवी, औदकी, आग्नेयी, वायव्य तथा तामसी छाया में से कौनसी छाया है ।

(१५) आचार—कायगत आचार कैसा है ।

(१६) शील—मनोगत शील (स्वभाव) कैसा है ।

(१७) शोभा—लोहित, प्रतिच्छन्न, पक्षलेपन, समकक्ष, समतल्प, व्यतिकर्ण तथा द्रोणिका (स० टी०) में से कौन सी है । चौथी शोभा श्रेष्ठ मानी जाती है ।

(१८) आवेदिता—अर्थवेदिता ।

(१९-२०) लक्षण-व्यजन—कर, रदन आदि लक्षण तथा बिन्दु, स्वस्तिक आदि व्यजन (स० टी०) कैसे हैं ।

(२१-२४) बल, धर्म, वय और जव—उत्तम, मध्यम तथा अधम बल।
(२५) अंश—ब्रह्मादि अंशो में से किस अंश वाला है।
(२६) गति—कैसा चलता है।
(२७) रूप—रूप कैसा है।
(२८) सत्त्व—सत्त्व कैसा है।
(२९) स्वर
(३०) अनूक
(३१) तालु
(३२) अन्तरास्य—मुँह का भीतरी भाग
(३३) उरोमणि—हृदय
(३४) विलोमकटक—श्रोणिफलक
(३५) कपोल
(३६) सृक्व
(३७) कुम्भ—सिर
(३८) कन्धरा—ग्रीवा
(३९) केश
(४०) मस्तक
(४१) आसनावकाश—बैठने का स्थान (पीठ)
(४२) अनुवंश—रीढ
(४३) कुक्षि—कोख
(४४) पेचक—पूँछ का मूल भाग
(४५) वालधि—पूंछ
(४६) पुष्कर—शुण्डाग्रभाग
(४७) अपर—पुट्ठे
(४८) कोश—भेद

करिकलाभ नामक वन्दी ने जो चौबीस पद्य पढे उनमें भी गजशास्त्र सम्बन्धी कई सिद्धान्त प्रतिफलित होते हैं।

गजोत्पत्ति

गजोत्पत्ति के सम्बन्ध में यशस्तिलक में तीन पौराणिक तथ्यो का उल्लेख हुआ है—

आयोधनाग्रेसर की तरह मनस्वी, अनाद्यून(अल्पभोजी) की तरह सुभग तथा अन्य गुणरत्नो की भी खान है।'

इस विवरण के बाद करिकलाभ नामक वन्दी ने गजप्रशसापरक चौबीस पद्य पढे।

उपर्युक्त वर्णन में गज-शास्त्र सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तो की जानकारी दी गयी है। गजशास्त्र में गज के निम्नलिखित वाह्य और अतरग गुणो का विचार किया जाता है—

(१) उत्पत्ति-स्थान—किस वन में पैदा हुआ है।

(२) कुल—ऐरावत आदि किस कुल का है।

(३) प्रचार—सम या विषम कैसा प्रचार है, अर्थात् केवल सम प्रदेश में गमन कर सकता है या विषम में भी।

(४) देश—किसी देश विशेष मे ही रह सकता है या कही भी।

(५) जाति—भद्र, मन्द, मृग आदि में से किस जाति का है।

(६) सस्थान—शारीरिक गठन कैसा है।

(७-९) उत्सेध, आयाम, परिणाह—ऊँचाई, लम्बाई तथा मोटाई कैसी है।

(१०) आयु—आयु की द्वादश दशाओ में से किसमें है (दस वर्ष की एक दशा होती है, स० टी०)।

(११) छवि—शरीर में स्वायत व्यायत (ऊँची तथा तिरछी) वलि रहित छवि (त्वचा) है।

(१२) वर्ण—शुद्ध, व्यामिश्र तथा अन्तर्वर्ण के तीन-तीन भेदो में से कौन सा वर्ण है।

(१३) प्रभा—प्रभा कैसी है।

(१४) छाया—पार्थवी, औदकी, आग्नेयी, वायव्य तथा तामसी छाया में से कौनसी छाया है।

(१५) आचार—कायगत आचार कैसा है।

(१६) शील—मनोगत शील (स्वभाव) कैसा है।

(१७) शोभा—लोहित, प्रतिच्छन्न, पक्षलेपन, समकक्ष, समतल्प, व्यतिकर्ण तथा द्रोणिका (स० टी०) में से कौन सी है। चौथी शोभा श्रेष्ठ मानी जाती है।

(१८) आवेदिता—अर्थवेदिता।

(१९-२०) लक्षण-व्यजन—कर, रदन आदि लक्षण तथा विन्दु, स्वस्तिक आदि व्यजन (स० टी०) कैसे हैं।

(२१–२४) बल, धर्म, वय और जव—उत्तम, मध्यम तथा अधम बल।
(२५) अंश—ब्रह्मादि अंशो में से किस अंश वाला है।
(२६) गति—कैसा चलता है।
(२७) रूप—रूप कैसा है।
(२८) सत्त्व—सत्त्व कैसा है।
(२९) स्वर
(३०) अनूक
(३१) तालु
(३२) अन्तरास्य—मुँह का भीतरी भाग
(३३) उरोमणि—हृदय
(३४) विक्षोभकटक—श्रोणिफलक
(३५) कपोल
(३६) सृक्व
(३७) कुम्भ—सिर
(३८) कन्धरा—ग्रीवा
(३९) केश
(४०) मस्तक
(४१) आसनावकाश—बैठने का स्थान (पीठ)
(४२) अनुवंश—रीढ
(४३) कुक्षि—कांख
(४४) पेचक—पूँछ का मूल भाग
(४५) वालधि—पूँछ
(४६) पुष्कर—शुण्डाग्रभाग
(४७) अपर—पुट्ठे
(४८) कोश—भेद

करिकलाभ नामक बन्दी ने जो चौबीस पद्य पढे उनमें भी गजशास्त्र सम्बन्धी कई सिद्धान्त प्रतिफलित होते हैं।

गजोत्पत्ति

गजोत्पत्ति के सम्बन्ध में यशस्तिलक में तीन पौराणिक तथ्यो का उल्लेख हुआ है—

(१) जिस अण्डे से सूर्य उत्पन्न हुआ था, उसी के एक टुकडे को हाथ में लेकर ब्रह्मा ने सामवेद के पदो को गाते हुए गजो को उत्पन्न किया।[३४]

(२) गजो की उत्पत्ति साम से हुई।[३५]

(३) अमित बल वाले तथा विशालकाय होने पर भी गजो के शान्त रहने का कारण मुनियो का शाप तथा इन्द्र की आज्ञा है।[३६]

उक्त बातो का समर्थन पालकाप्य के गजशास्त्र से पूर्णरूपेण हो जाता है। उसमें अग नरेश के पूछने पर गजोत्पत्ति इस प्रकार बतायी गयी है—'ब्रह्मा ने पहले जल रचा, फिर उसमें वीर्य डाला, वह सोने का अण्डा बन गया, उससे भूत (पच भूत) उत्पन्न हुए, अण्डे का सबसे देदीप्यमान अश अदिति को दिया, उसने सूर्य को जना। आधे कपाल को दायें हाथ में लेकर सामवेद को गाते हुए गज को उत्पन्न किया।[३७]

पालकाप्यचरित्र के प्रसग में सामगायन नामक महर्षि द्वारा पालकाप्य के जन्म की एक अद्भुत कथा आयी है—सामगायन महर्षि के आश्रम के पास एक बार एक गजयूथ पहुँच गया। रात्रि में महर्षि को स्वप्न में एक सुन्दर यक्षिणी दिखी। महर्षि ने उठकर आश्रम के बाहर जाकर पेशाब किया। एक हथिनी ने वह पी लिया। उसके गर्भ रह गया। वह हथिनी वास्तव में एक कन्या थी, जो मातग महर्षि के शाप के कारण हथिनी हो गयी थी। उसने पालकाप्य को

---

३४ यस्माद्भानुरभूत्ततोऽण्डशकलाद्धस्ते धृतादात्मभू-
गायन्सामपदानि यान्गणपतेर्वंश्यानुरूपाकृतीन्।—पृ० २६६, पू०

३५ सामोद्भवाय शुभलक्षणलक्षिताय।—पृ० ३००

३६ महान्तोऽमी सन्तोऽप्यमितबलसंपन्नवपुषो,
यदेव तिष्ठन्ति क्षितिपशरणे शान्तमतय।
तदत्र श्रद्धेय गजनयबुधै कारणमिद,
मुनीन्द्राणा शाप सुरपतिनिदेशश्च नियतम्॥—पृ० ३०७

३७ अथ दक्षिणहस्तस्थात्कपालादसृजन्मृगम्।
अभिगायन्नचिन्त्यात्मा सप्तभिस्सामभिर्विधि॥—गजशास्त्र, गजोत्पत्ति, १-१।
सूर्यस्याण्डकपालमादिमुनिभि सदर्शित तेजस,
पाणिभ्या परिगृह्य सप्रणववाक् सव्ये कपाल करे।
धृत्वा गायति सप्तधा कमलजे सामानि तेभ्योऽभवन्,
मत्तास्सप्तमतगजा प्रणवतश्चान्योऽष्टधा सम्भव॥—वही, पृ० १८, श्लोक २

जन्म दिया।[३८] सोमदेव ने 'सामोद्भवाय' कहकर इसी पौराणिक अनुश्रुति की ओर ध्यान दिलाया है।

पालकाप्यचरित्र के ही प्रसग में मुनियो के शाप तथा इन्द्र की आज्ञा का भी उल्लेख है—'प्राचीन काल में हाथी स्वेच्छा से मनुष्य तथा देवलोक में विचरते थे। उन्ही दिनो हिमालय की तराई में एक वटवृक्ष के नीचे दीर्घतपा महर्षि तप करते थे। एक बार गजयूथ वटवृक्ष पर उतरा। सारे हाथी एक ही शाखा पर बैठ गये। शाखा टूट पडी और हाथियो सहित नीचे आ गिरी। महर्षि ने क्रोधित होकर शाप दिया—'यथेच्छ विहार से च्युत होकर मनुष्यो की सवारी होओ'।[३९]

उपर्युक्त कन्या के शाप के विषय में पालकाप्य में कहा गया है कि इन्द्र ने मतग महर्षि को तप से डिगाने के लिए गुणवती नाम की कन्या भेजी थी, जिसे महर्षि ने हस्तिनी होने का शाप दे दिया।[४०] इसके अतिरिक्त पालकाप्य के गजशास्त्र में दीर्घतप, अग्नि, वरुण, भृगु तथा ब्रह्मा के शाप का विस्तार के साथ विवेचन किया है।[४१]

सोमदेव ने 'मुनीद्राणा शाप', 'सुरपतिनिदेशाच्च' पद में इन्ही बातो की सूचनाएँ दी है।

गज के भेद—गज के निम्नलिखित भेदो के विषय में सोमदेव ने विशेष जानकारी दी है—

भद्र—भद्र जाति के हाथी में सोमदेव ने निम्नलिखित लक्षण बताए हैं—

(१) चौडा सोना, (२) मस्तक में अनेक रत्न, (३) स्थूल या बृहत्काय, (४) निश्चल और सुडौल शरीर, (५) ललित गति, (६) अन्वर्थवेदिता, (७) लम्बी

---

३८ त मा विद्धि महाराज प्रसूत सामगायनात्।—इत्यादि,
गजशास्त्र, श्लो० ६६_६१

३९ बलदर्पोच्छ्रया नागा मम शापपरिग्रहात्,
विमुक्ता कामचारेण भविष्यथ न सशय।
नराणा वाहनत्व च तस्मात् प्राप्स्यथ वारणा।—इत्यादि,
वही, श्लो० ४६ ५९

४० धर्मविघ्नकरी मत्वा शक्रेण प्रहिता स्वयम्।
तत शशाप सक्रुद्धस्तापसस्तु स कन्यकाम्॥
अरण्ये विचरस्येका यस्मान्मानुषवर्जिते।
तस्मादरण्यनिचये करेणुत्व भविष्यति॥—वही, श्लोक ७३, ७४

४१. गजशास्त्र, तृतीय प्रकरण

(५) स्थूल दृष्टि, (६) अल्पकान्ति, (७) शोकालु, (८) भार ढोने में असमर्थ, (९) हीन और दुर्बल शरीर तथा (१०) मृग के समान गमन करने वाला।[४७]

पालकाप्य ने भी इसी प्रकार के लक्षण किंचित् परिवर्तन के साथ बताये हैं।[४८]

सकीर्ण—भद्र, मन्द और मृग जाति के गजो के कुछ-कुछ लक्षण जिसमें पाये जायें उसे सकीर्ण गज कहते हैं।[४९] सोमदेव ने लिखा है कि यशोधर की गजशाला में शारीरिक और मानसिक गुणो से सकीर्ण अनेक प्रकार के गज थे।[५०] पालकाप्य के गजशास्त्र में अठारह प्रकार के सकीर्ण गज बताये गये हैं।[५१]

यागनाग—यशोधर के राज्याभिषेक के अवसर पर यागनाग का उल्लेख है।[५२] यागनाग उस श्रेष्ठ गज को कहते थे जिसमें निम्नलिखित चौदह गुण पाये जाय—

(१) कुल, (२) जाति, (३) अवस्था, (४) रूप, (५) गति, (६) तेज, (७) बल, (८) आयु, (९) सत्व, (१०) प्रचार, (११) सस्थान, (१२) देश, (१३) लक्षण, (१४) वेग।[५३]

---

४७ ये वारत्वयि बहलीकमनस सेवासु दुर्मेधसो,
हस्वोरोमणय करेषु तनव स्थूलेक्षणा शत्रव ।
तैर्नाथाल्पतनुच्छविप्रभृतिभि शोकालुभिर्दुमरै
सद्भिस्तैरणुवशकैर्मृगसम प्राय समाचयते ॥—यश० वही, पृ० ४६४

४८ कृशागुलीवालधिवक्त्रमेढो लघूदर क्षामकपोलकण्ठ ।
विस्तीर्णकर्णस्तनुदीर्घद त स्थूलेक्षणो यस्स गजो मृगाख्य ॥
—गजशास्त्र, श्लो० ३२

४९ सकीर्णस्त्रिगुणो मत ।—गजशास्त्र पृ० ७१, श्लोक ४२
एए मिइहत्थीण थोव थोव तु जो अणुहरइ हत्थी ।
रूवेण व सीलेण च सो सकिण्णोत्ति णायव्वो ॥
—ठाणाग, अ० ४, उद्दे० २, सू० ३४८

५०. द्वारि तव देव बद्धा सकीर्णाश्चेतसा च वपुषा च ।
शत्रव इव गाजते बहुभेदा कुजराश्चेते ॥—यश० वही, पृ० ४६४

५१ गजशास्त्र पृ० ७१, श्लोक ४२ से ७४

५२ यागनागस्य तु रम्य च ।—स० पृ०, पृ० २८८

५३ कुल जातिर्वयो रूप प्रचारवर्ष्मबलायुषाम् । सत्वप्रचारसस्थानदेशलक्षणरहमा ॥
एषा चतुर्दशाना तु यो गुणाना समाश्रय । स राज्ञो यागनाग स्याद्भूरिभूतिसमृद्धये ॥
—गजशास्त्र, पृ० १ २

(वाह्लि), नर, नारद, राजपुत्र तथा गौतम का उल्लेख किया है।[६०] इभचारी से प्रयोजन सभवतया पालकाप्य से है। पालकाप्य के चरित में गजो के साथ में सचरण की विशेषता का उल्लेख किया गया है।[६१] नीलकठ ने मातगलीला में एक आचार्य को 'मातगचारी' कहा है (श्लो० ५), सभवतया वहाँ भी नीलकठ का प्रयोजन पालकाप्य से ही है।

सोमदेव ने यशोधर को गजविद्या में रोमपाद की तरह कहा है (रोमपाद इव गजविद्यासु, २३६)। अग नरेश रोमपाद को पालकाप्य ने हस्त्यायुर्वेद की शिक्षा दी थी। हस्त्यायुर्वेद में इस प्रसग का विस्तृत वर्णन है।[६२]

गज परिचारक

गज-परिचारको में सोमदेव ने निम्नलिखित पाँच का उल्लेख किया है—

(१) अमृतगणाधिप या गज वैद्य (२९१),
(२) महामात्र (२३३ हि०),
(३) अनीकस्थ (३३३ हि०),
(४) आधोरण (३०) तथा
(५) हस्तिपक या लेसिक (४५ उत्त०)।

गज शिक्षा

गजो को गजशिक्षाभूमि में (करिविनयभूमिषु, ४८२) ले जाकर शिक्षित किया जाता था। सोमदेव ने इसका विस्तार से वर्णन किया है (४८२ से ४९१)।

गज दर्शन और उसका फल

सोमदेव ने लिखा है कि गजशास्त्र के अनुसार ब्रह्मा ने साम पदो का गायन करते हुये गणेश के मुँह की आकृति वाले गजो का निर्माण किया था। अतएव जो राजा ब्रह्मपुत्र गजो का पूजन-दर्शन करता है उसकी केवल युद्ध में विजय ही नही होती, प्रत्युत वह निश्चय ही सार्वभौम राजा होता है। इसलिए साम से उत्पन्न, शुभ लक्षण युक्त, दिव्यात्मा, समस्त देवो के निवासस्थान, कल्याण, मगल और महोत्सव के कारण गजश्रेष्ठ को नमस्कार हो, यह कहकर नमस्कार करे।

---

६० इभचारियाज्ञवल्क्यवाह्लिनरनारदराजपुत्रगौतमादिमहामुनिप्रणीतमतगजेनिस्र।
—यश० पृ० २९१

६१ दीर्घकालतपोवीर्यान्मौनमास्थायसुमत । चरिष्यति गजै सार्धम् ।
—गजशास्त्र, पृ० ११, श्लो० ७१

६२ हस्त्यायुर्वेद, आनन्दाश्रम सीरिज २६, मातगलीला १०

(वाह्लि), नर, नारद, राजपुत्र तथा गौतम का उल्लेख किया है।[६०] इभचारी से प्रयोजन सभवतया पालकाप्य से है। पालकाप्य के चरित में गजों के साथ में सचरण की विशेषता का उल्लेख किया गया है।[६१] नीलकठ ने मातगलीला में एक आचार्य को 'मातगचारी' कहा है (श्लो० ५), सभवतया वहाँ भी नीलकठ का प्रयोजन पालकाप्य से ही है।

सोमदेव ने यशोधर को गजविद्या में रोमपाद की तरह कहा है (रोमपाद इव गजविद्यासु, २३६)। अग नरेश रोमपाद को पालकाप्य ने हस्त्यायुर्वेद की शिक्षा दी थी। हस्त्यायुर्वेद में इस प्रसग का विस्तृत वर्णन है।[६२]

गज परिचारक

गज-परिचारको में सोमदेव ने निम्नलिखित पांच का उल्लेख किया है—

(१) अमृतगणाधिप या गज वैद्य (२९१),

(२) महामात्र (२३३ हि०),

(३) अनीकस्थ (२३३ हि०),

(४) आधोरण (३०) तथा

(५) हस्तिपक या लेसिक (४५ उत्त०)।

गज शिक्षा

गजो को गजशिक्षाभूमि में (करिविनयभूमिषु, ४८२) ले जाकर शिक्षित किया जाता था। सोमदेव ने इसका विस्तार से वर्णन किया है (४८२ से ४९१)।

गज दर्शन और उसका फल

सोमदेव ने लिखा है कि गजशास्त्र के अनुसार ब्रह्मा ने साम पदो का गायन करते हुये गणेश के मुंह की आकृति वाले गजो का निर्माण किया था। अतएव जो राजा ब्रह्मपुत्र गजो का पूजन-दर्शन करता है उसकी केवल युद्ध में विजय ही नही होती, प्रत्युत वह निश्चय ही सार्वभौम राजा होता है। इसलिए साम से उत्पन्न, शुभ लक्षण युक्त, दिव्यात्मा, समस्त देवो के निवासस्थान, कल्याण, मगल और महोत्सव के कारण गजश्रेष्ठ को नमस्कार हो, यह कहकर नमस्कार करे।

---

६० इभचारियाज्ञवल्क्यवाह्लिनरनारदराजपुत्रगौतमादिमहामुनिप्रणीतमतगजेनिह्य।
—यश० पृ० २९१

६१ दीर्घकालतपोवीर्यान्मौनमास्थायसुव्रत। चरिष्यति गजै सार्धम् ।
—गजशास्त्र, पृ० १३, श्लो० ७१

६२ हस्त्यायुर्वेद, आनन्दाश्रम सीरिज २६, मातगलीला १०

(७) इभ (४९७, ४९९, ५०३)
(८) मतगज (३०६)
(९) वारण (२९९, ३०२, ३०४, ४९७)
(१०) द्विरद (२९, ४८५, ४९५, ४९८)
(११) द्विप (२९, ४८६)
(१२) मृग (४९४)
(१३) सामज (३१, ३५३, ४८४, ४८६, ४८८, ४९१)
(१४) सिन्धुर (३०४)
(१५) करटी (१७, ४९, ३०१, ४९९)
(१६) वेदण्ड (२६१. ४९४)
(१७) सकीर्ण (४९४)
(१८) स्तम्बेरम (५०५)
(१९) कुजर (४९१, ४६४, ५०५)
(२०) रदनि (४९८)
(२१) कुभी ५०३)
(२२) भद्र (४६२)
(२३) मन्द (४९३)
(२४) शुण्डाल (३०५)
(२५) सारग (३४९)
(२६) वामन (१९६ उत्त०)
(२७) दन्ति (१९४ उत्त०)

इनमें से निम्नलिखित पन्द्रह नाम हस्त्यायुर्वेद में भी आये हैं—

(१) हस्ती, (२) दन्ति, (३) गज, (४) नाग, (५) मातग, (६) कुजर, (७) करि, (८) इभ, (९) मतगज, (१०) वारण, (११) द्विरद, (१२) द्विप, (१३) मृग, (१४) सामज, (१५) अनेकप।

---

६३ हस्ती दन्ती गजो नागो मातग कुजर करी।
इभो मतगजश्चैव वारणो द्विरदद्विप ॥
मृगोऽथ सामजश्चैव तथा चानेकप स्मृत ।
इति पचदशैतानि नामान्युक्तानि पण्डितै ॥
—हस्त्यायुर्वेद, पृ० ४५३, श्लो० १८, १९

अश्व-विद्या

पट्टबन्ध उत्सव के उपरान्त महाराज यशोधर के समक्ष विजयवैनतेय नामक अश्व उपस्थित किया गया। इस अश्व के वर्णन में अश्वशास्त्र विषयक पर्याप्त जानकारी दी गयी है। शालिहोत्र नामक अश्वसेना-प्रमुख इस अश्व का वर्णन निम्नप्रकार करता है—

राजन्, आश्चर्यजनक शौर्य द्वारा समस्त शत्रुसमूह को जीतने वाले अश्व-विद्याविदो की परिषद् ने तत्रभवान् देव के योग्य अश्व के विषय में इस प्रकार कहा है—यह अश्व आपके ही सदृश सत्व से वासव, प्रकृति से सुभगालोक, संस्थान से सम, द्वितीय दशा को प्राप्त, दशो दशाओ का अनुभव करने वाला, छाया से पार्थिव, बल से वरीयास, अनूक से कठीरव, स्वर से समुद्रघोष, कुल से काम्बोज, जव (वेग) में वाजिराज, आपके यश की तरह वर्ण में श्वेत, चित्त की तरह बालधि (पूँछ) में रमणीय, कीर्तिकुलदेवता के कुतलकलाप की तरह केसर में मनोहर, प्रताप की तरह ललाट, आसन, जघन, वक्ष और त्रिक में विशाल, मयूर-कण्ठ की तरह कन्धरा में कान्त, गज-कुभार्ध की तरह शिर मे पराघ्य, वटवृक्ष के सिकुडे हुए छद पृष्ठ की तरह कानो से कमनीय, हनु (चिबुक), जानु जघा, वदन और घोणा (नासिका) में उल्लिखित की तरह, स्फटिकमणि द्वारा बने हुए की तरह आँखो में सुप्रकाश, सृक, ओष्ठ और जिह्वा मे कमलपत्र की तरह तलिन (पतला), आपके हृदय की तरह तालु में गम्भीर अन्तरास्य (मुखमध्य) में कमलकोश की तरह शोभन, चन्द्रमा की कलाओ से बने हुए के समान दशनो (दाँतो) में सुन्दर, कुचकलश की तरह स्कन्ध में पीवर, कृपीट में वीरपुरुष के जटाजूट की तरह उद्बद्ध, निरन्तर जवाभ्यास के कारण सुविभक्त शरीर, गधे के अवलीक (रेखा रहित) खुरो की आकृति वाली टापो द्वारा गमनकाल में रजस्वला (धूल युक्त) पृथ्वी को न छूते हुए की तरह, अमृतसिन्धु में प्रतिबिम्बित पूर्ण-चन्द्र की तरह निटिलपुण्ड्र (ललाटतिलक) के द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल में सम्राट के एक छत्र राज्य की घोषणा करते हुए के समान, उचित प्रदेश में आश्रित अहीन, अविच्छिन्न, अविचलित, प्रदक्षिणा वृत्तियो के द्वारा, देवमणि, निःश्रेणी श्रीवृक्ष, रोचमान आदि आवर्तो के द्वारा तथा शुक्ति, मुकुल, अवलीढ आदि के द्वारा सम्राट की कल्याण-परम्परा को व्यक्त करते हुए के समान, इसी प्रकार यह विजयवैनतेय नामक अश्व अन्य लक्षणो के द्वारा दशो क्षेत्रो में प्रशस्त है।

इस विवरण के बाद वाजिविनोदमकरन्द नामक बन्दी ने अश्वप्रशसापरक अठारह पद्य पढे। सम्पूर्ण सामग्री का तुलनात्मक विश्लेषण निम्नप्रकार है—

अश्व के गुण

सोमदेव के अनुसार अश्व के निम्नलिखित गुणो की परीक्षा करनी चाहिए—

(१) सत्त्व, (२) प्रकृति, (३) सस्थान, (४) वय, (५) आयु, (६) दशा, (७) छाया, (८) बल, (९) अनूक, (१०) स्वर, (११) कुल, (१२) जव (वेग), (१३) वर्ण, (१४) तनुरुह (रोमराशि), (१५) पृष्ठ, (१६) वालधि (पूँछ), (१७) केसर, (१८) ललाट, (१९) आसन, (२०) जघन, (२१) वक्ष, (२२) त्रिक, (२३) कन्धरा, (२४) शिर, (२५) कर्ण, (२६) हनु (चिबुक), (२७) जानु, (२८) जघा, (२९) वदन, (३०) घोणा (नासिका), (३१) लोचन, (३२) सृक, (३३) ओष्ठ, (३४) जिह्वा, (३५) तालु, (३६) अन्तरास्य, (३७) दशन, (३८) स्कन्ध, (३९) क्रूपीट (पेट), (४०) गात्र, (४१) शफ (टाप या खुर), (४२) पुण्ड्र, (४३) आवर्त।

उत्तम अश्व में ये गुण विजयवैनतेय के उपर्युक्त विवरण के अनुसार प्रशस्त होने चाहिए। अश्वशास्त्र में भी इन्ही गुणो की परीक्षा आवश्यक बतायी गयी है।[६४] आगे सोमदेव ने यह भी लिखा है कि उपर्युक्त गुणो में से अन्यत्र किंचित् दोष भी रहे तो भी यदि बाल, वालधि, तनुरुह, पृष्ठ, वश, केसर, शिर, श्रवण वक्त्र, नेत्र, हृदय, उदर, कण्ठ, कोश, खुर, जानु और जव (वेग) में दोष नही हैं तथा आवर्त, छवि और छाया में शुभ है, तो ऐसा अश्व भी विजयकारक होता है।[६५]

अश्वो के अन्य गुणो के विषय में सोमदेव के विवरण की तुलनात्मक जानकारी इस प्रकार है—

जव (वेग)—वाजिविनोदमकरद कहता है कि श्रेष्ठ वेगवाला अश्व जब चौकडी भरता है तो पहाडो को गेंद-सा, नदियो को नालियो-सा और समुद्रो को

---

६४ ओष्ठयोः सृक्किणोश्चैव जिह्वाया दशनेषु च। वक्त्रतालुनि नासाया गण्डयोर्नेत्रयोस्तथा॥
ललाटे मस्तके चैव केशकर्णपुटे तथा। ग्रीवाया केसरे चापि स्कन्धे वक्षसि बाहुके॥
जघाया जानुनोश्चाथ कूर्पे पादे तथैव च। पार्श्वयोः पृष्ठभागे च कुक्षौ कक्ष्या च वालधौ॥
मेहने मुष्कयोश्चापि तथैवोदरदेशेऽपि च। आवर्ते च खुरे पुच्छे गतौ वर्णे स्वरे तथा॥
महादोषं त्यजेत् प्राज्ञश्छायाया गतिसत्त्वयोः। प्रधानस्यैव वाहाना लक्षणं तत्प्रतिष्ठितम्॥
—अश्वशास्त्र, पृ० १८, श्लोक० ३७

६५ बालवालधितनूरुहपृष्ठे वशकेसरशिर श्रवणेषु।
वक्त्रनेत्रहृदयोदरदेशे कण्ठकोशखुरजानुजवेषु॥
अन्यत्र स्वल्पदोषोऽपि यद्येतेषु न दोषवान्। शुभावर्तच्छविच्छायो हय स्याद्विजयोदय॥
—यश० पृ० २१२

तलैयो-सा लाघता जाता है । चारो दिशाएँ चार डगो में नप कर गोपुर-आंगन सी निकट लगती हैं । घुडसवार खुद छोडे वाण को भी धरती में गिरने के पूर्व ही पकड सकता है । लगता है जैसे धरती और पहाड उसकी टापो के साथ भागे जा रहे हो ।[६६]

वर्ण—मुक्ताफल, इन्दीवर, काचन, किंजल्क (पराग), अजन, भृग, वालारुण, अशोक और शुक की तरह वर्ण वाले अश्व विजयप्रद होते हैं ।[६७]

ह्रेषित—गज, सिंह, वृषभ, भेरी, मृदग, आनक और मेघ की ध्वनि के सदृश ह्रेषित वाले अश्व उत्कर्ष योग्य माने जाते हैं ।[६८]

गन्ध—कमल, नीलकमल, मालती, घृत, मधु, दुग्ध तथा गजमद के समान जिन अश्वो के स्वेद, मुख और श्रोत्रो की गन्ध होती है, वे अश्व कामदुह होते हैं ।[६९]

६६ गिरयो गिरिकप्रख्या सरिता सारिणीसमा । भवन्ति लघने यस्य कासारा इव सागरा ॥
एता दिशश्चतस्रोऽपि चतुश्चरणगोचरा । स्यदे यस्य प्रजायन्ते गोपरागणसन्निभा ॥
प्राप्नुवन्ति जवे यस्य भूमावपतिता अपि । निषादिना पुराक्षिप्ता शल्यवाला करग्रहम् ॥
यस्य प्रवेगवेलाया सकाननधराधरा । धरणि खुरलग्नेव सार्धमध्वनि धावति ॥
—यश० पृ० ३११,३१२

६७ मुक्ताफलेन्दीवरकाचनाभा किंजल्कभिन्नाजनभृगशोभा ।
बालारुणाशोकशुकप्रकाशास्तुरङ्गमा भूमिभुजा जयेशा ॥—यश० पृ० ३१२

६८ गजेन्द्र कण्ठीरवतानकाना भेरीमृदगानकनीरदानाम् ।
समस्वरा स्वामिनि हेषितेन भवन्ति वाहा परमुत्सवेहा ॥—यश० पृ० ३१३।२४
तुलना—गम्भीरस्तु महान्स्वर सुमधुर स्निग्धो घन सहत,
सिंहव्याघ्रगजेन्द्रदुदुभिघना क्रौंचस्वराभ शुभ ।
येषा ते तुरग यशोऽथसुखदा सौभाग्यराज्यप्रदा
सग्रामे विजय च तै सह शुभ सैन्य च सवर्धते ॥—अश्व० ४८।६

६९ नीरेजनीलोत्पलमालतीना सर्पिर्मधुक्षीरमदै समान ।
स्वेदे मुखे श्रोतसि येषु गन्धास्ते वाजिन कामदुहो नृपेषु ॥—यश० पृ० ३१३
तुलना—कमलकुसुमसर्पिश्चन्दनक्षीरगन्ध, दधिमधुकुटजाना चम्पकायन्दनानाम् ।
अगुरुगजमदाना तद्वदेवार्जुनाना मधुसमयवनाना पुष्पिताना च गन्ध ॥
पुन्नागाशोकजातिसरसकुवलयो शीरपत्राब्जगन्धा,
पानीयप्रोक्षितोर्वीकुसुमितबकुलामोदिनो ये च वाहा ।
धन्या पुण्या मनोज्ञा सुतसुखधनदा भर्तुरानन्ददास्ते,
मागल्या पूजनीया प्रमुदितमनसो राजवाहास्तुरगा ॥—अश्व० ४६।१२

अनूक (पुट्ठे)—हंस, वानर, सिंह, गज और शार्दूल के समान पुट्ठो वाले अश्व विजयप्रद होते हैं।[७०]

वृत्ति या पुण्ड्र—प्रपाण या कान के नीचे जो सफेद छपके होते हैं वे वृत्ति या पुण्ड्र कहलाते है। अश्वो में ध्वज, हल, कलश, कमल कुलिश (वज्र) अर्धचन्द्र, चक्र, तोरण तथा तरवारि के सदृश वृत्तियां या पुण्ड्र श्रेष्ठ माने जाते हैं।[७१]

समुद्र में प्रतिबिंबित चन्द्र के सदृश पुण्ड्र जिस अश्व के ललाट पर होता है, उस अश्व का स्वामी राजा होता है।[७२]

आवर्त—अश्वो के वक्ष, बाहू, ललाट, शफ (टाप), कर्णमूल तथा केशान्त (ग्रीवा के दोनो ओर) में शुक्ति की तरह के आवर्त प्रशस्त माने जाते हैं।[७३]

देवमणि, नि श्रणी, श्रीवृक्ष, रोचमान, शुक्ति, मुकुल, अवलीढ आदि आवर्त होते हैं। ये अहीन, अविच्छिन्न, अविचलित और प्रदक्षिण वृत्तिवाले होने पर अश्व

---

७० हंसप्लवगपचास्यद्विपशार्दूलसन्निभै। मिन्द्रव क्षितौ द्राणामानूकैर्विजयप्रदा ॥
—यश० पृ० ३१४

७१. ध्वजहलकलशकुशेशयकुलिशशशाकार्धचक्रसमा।
तोरणतरवारिनिभास्तुरगेऽङ्गजवृत्तय श्रेष्ठा ॥—यश० पृ० २४१
तुलना—प्रपाणे र्ध्वं तु कर्णाथ श्वेत श्वेततर च यत्।
तत् पुण्ड्रमिति विज्ञेय तस्य सस्थानत फलम् ॥
कमलदलकलशहलमुसलपताकाध्वजाङ्कुशादर्शे।
आवृक्षछत्रशखस्वस्तिकभृगारवज्रनिभै ॥
चामरकूर्माष्टापदवद्दीखड्गोपमै ह्या।
पुण्ड्रं कथयन्ति जय मतु विभव पुत्राश्च पौत्राश्च ॥—अश्व० ४३।२

७२ अमृतजलनिधिप्रतिबिम्बितेन्दुसवादिना निटिलपुण्ड्रकेण कथयन्तमिव सकलायामिलायामवनिपालस्यैकातपत्रवर्यम्।—यश० पृ० ३१०
तुलना—चन्द्रार्धचन्द्रदिनकरताराबद्द्योतते ललाट तत्।
यस्य तुरगस्य भवेत् तस्य स्वामी भवेद् राजा ॥—अश्व० ४४।१०

७३ वक्षसि वाहोर्ललिके शफन्शे कर्णमूलयोश्चैव।
आवर्तास्तुरगाणा शस्ता केशा तयोस्तथा शुक्ति ॥ —यश० पृ० ३१४
तुलना—आवर्त पूजितो नित्य शिरोमध्ये व्यवस्थित।
स्थानमेक तु विज्ञेय स्थाने द्वे कर्णमूलयो ॥—अश्व० २५, १४
श्रीवृक्षो वक्षसि प्रोक्तो ह्यावर्त पचभिर्भवेत्। अन्ये द्वे वक्षसि स्थाने चतुर्भिस्त्रिभिरेव च ॥
वाहो स्थानद्वय प्राक्त तत्रावर्तद्वय विदु। द्वे चोपरन्ध्रयो स्थाने द्वौ स्थितौ रोमजौ तयो ॥
—अश्व० २५ २६, १६-१७

के स्वामी को कल्याणप्रद होते हैं।[७४] अश्वशास्त्र में आवर्तों का विस्तार से अलग-अलग फल बताया है (पृ० २६-२७)।

कामकृत अश्व

जिन अश्वो का ललाट विशाल, मुँह आगे को झुका हुआ, चमडी पतली, आगे के पैर स्थूल, जघाएँ लम्बी, पीठ या बैठने का स्थान चौडा तथा पेट कृश होता है, वे अश्व इष्टफल देने वाले होते हैं।[७५]

वाहन योग्य अश्व

मेघ के सदृश वर्ण, मेघ के घोष के समान ह्रेषित, गज की क्रीडा की तरह गति, घृत की तरह गन्ध वाले तथा माला और विलेपनप्रिय अश्व वाहन योग्य होते हैं।[७६]

अश्व-प्रशस्ति

युद्ध रूपी गेंद खेलने में आसक्त, शत्रुसैन्य को रोकने में परिघा के समान तथा समस्त पृथ्वीमण्डल के अवलोकन की दृष्टि वाले अश्व युद्धकाल में मनोरथ की सिद्धि करने वाले होते हैं।

अन्यूनाधिक देह (न अधिक छोटे न अधिक बडे), सुघड शरीर, सुशिक्षित तथा अच्छी तरह कसे हुए घोडे वाछित फल देने वाले होते हैं।

---

७४ अहीनाविच्छिन्नाविचलितप्रदक्षिणवृत्तिभिर्देवमणिश्रेणिश्रीवृक्षरोचमानादि नामभिरावर्तैं शुक्तिमुकुलावलीढकादिभिश्च तद्विशेषैराश्रितोचितप्रदेशम्।
—यश० पृ० ३१०

तुलना—आवर्तशुक्तिसघातमुकुलान्वयलीढकम्।
शतपादी पादुकार्धपादुका चाष्टमी स्मृता॥
आवर्ताङ्कनयश्चैता अष्टौ सपरिकीर्तिता।—अश्वशा० २३।१-२
एते स्वस्थानस्था प्रदक्षिणा सुप्रभा शस्ता।
एतैर्विनातुरग स्वल्पायु पापलक्षणस्त्वशुभ॥—वही, ३४,८

अहीन = शस्ता, अविचलित = स्वस्थानस्थ, अविच्छिन्न = सुप्रभा

७५ विशालभाला बहिरानतास्या सूक्ष्मत्वच पीवरबाहुदेशा।
सुदीर्घजघा पृथुपृष्ठमध्यास्तनूदरा कामकृतास्तुरगा॥—यश० पृ० ३१४

७६ जीमूतकान्तिर्घनघोषहेषा करीन्द्रलीलागतिराज्यगन्ध।
प्रिय पर माल्यविलेपनानामारोहणार्हस्तुरगो नृपस्य॥—वही पृ० ३१५

तुलना—जीमूतवर्णो घनघोषहेषो मध्वाज्यगन्धो गजहंसगामी।
प्रियश्च माल्यस्य विलेपनस्य सोऽश्वराजो नृपवाहन स्यात्॥
—अश्व० १०१।२६

जिस राजा के एक भी प्रशस्त अश्व होता है, युद्ध में उसकी विजय सुनिश्चित है, उसी के राज्य में समय पर पानी बरसता है और उसी के राज्य में प्रजा के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ सधते हैं।

जिस राजा के श्रेष्ठ अश्व होते हैं उसके लिए यह धरती उस स्त्री के समान है जिसके कुलाचल कुच हैं, समुद्र नितंब, नदियां भुजाएँ तथा राजधानी मुख है।[७७]

अश्व के लिए यशस्तिलक में निम्नलिखित शब्द आये हैं—

(१) गन्धर्व (पृ० १२),
(२) तुरग (पृ० २९, ३१४, ३१५),
(३) तुरगम (पृ० ३१३, ३१४, ३१६),
(४) अश्व (पृ० ३२),
(५) वाहा (पृ० ७०, ३१३),
(६) वाजि (पृ० १८६, ३१३ उत्त०)
(७) मितद्रव (पृ० ३१४),
(८) अर्वन्त (पृ० ३०७),
(९) हय (पृ० ३१२, ३१५),
(१०) जुहुराण (पृ० २१४)।

अश्वचालक या घुडसवार को अभिषादी कहते थे (पृ० ३१२)।

अश्वविद्याविद्

सोमदेव ने यशोधर को अश्वविद्या में रैवत के समान कहा है।[७८] ऊपर लिखा जा चुका है कि रैवत अश्वविद्या-विशेषज्ञ माने जाते थे। इसीलिए

---

७७ कदनकन्दुककेलिविलासिन परबलस्खलने परिघ हया ।
सकलभूवलयैकदृष्टय समरकालमनोरथसिद्धय ॥
अन्यूनाधिकदेहा समसुविभक्ताश्च वर्ष्मभि सर्वे ।
सघतघनागबन्धा कृतविनया कामदास्तुरगा ॥
जय करे तस्य रणेषु राज्ञ काले पर वर्षति वासवश्च ।
धर्मार्थकामाभ्युदय प्रजानामेकोऽपि यस्यास्ति हय प्रशस्त ॥
कुलाचलकुचाम्भोधिनितम्बा वाहिनी भुजा ।
धरा पुरानना स्त्रीव तस्य यस्य तुरगमा ॥

—यश० पृ० ३१५, ३१६

७८ रैवत इव हयनयेषु, वही, पृ० २३६

सोमदेव ने यशोधर को अश्वविद्या में रैवत के समान कहा है। यशस्तिलक के दोनों टीकाकारो ने रैवत को सूर्य का पुत्र बताया है। मार्कण्डेयपुराण में भी रैवत या रैवन्त को सूर्य और वडवा का पुत्र कहा है (७५।२४) तथा गुह्यक मुख्य और अश्ववाहक बताया है। अश्वकल्याण के लिए रैवत की पूजा भी की जाती है (जयदत्त—अश्व-चिकित्सा, विव० इडिका १८८६,७, पृ० ८५-६)।

अश्वविद्या विशेषज्ञो में सोमदेव ने शालिहोत्र का भी उल्लेख किया है (१७३ हि०)। शालिहोत्रकृत एक संक्षिप्त रैवतस्तोत्र प्राप्त होता है (तंजोर ग्रन्थागार, पुस्तक सूची, पृ० २०० बी तथा कीथ का इडिया आफिस केटलाग पृ० ७५८)।[७९]

---

७९ राघवन् ग्ला० फ्रा० यश०

परिच्छेद ग्यारह

कृषि तथा वाणिज्य आदि

यशस्तिलककालीन भारतवर्ष आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध था। जिस प्रकार साहित्य और कला के क्षेत्र में उस युग में प्रगति हुई, उसी प्रकार आर्थिक जीवन में भी। सोमदेव ने कृषि, वाणिज्य, सार्थवाह, नौसन्तरण और विदेशी व्यापार, विनिमय के साधन, न्यास इत्यादि के विषय में पर्याप्त जानकारी दी है। सक्षेप में उसका परिचय निम्नप्रकार है—

कृषि

कृषि के लिए अच्छी और उपजाऊ जमीन, सिंचाई के साधन, सहज प्राप्य श्रम और साधन आवश्यक हैं। सोमदेव ने यौधेय जलपद का वर्णन करते हुए लिखा है कि वहाँ की जमीन काली थी।[१] सिंचाई के लिए केवल वर्षा के पानी पर निर्भर नही रहना पडता था।[२] श्रमिक भी सहज रूप में उपलब्ध हो जाते थे। कुछ श्रमिक ऐसे होते थे जो अपने-अपने हल इत्यादि कृषि के औजार रखते थे तथा बुलाये जाने पर दूसरो के खेत जोत-बो जाते थे। सोमदेव ने ऐसे श्रमिको के लिए समाश्रित प्रकृति पद का प्रयोग किया है।[३] श्रुतसागर ने इसका अर्थ अठारह प्रकार के हलजीवी किया है। इस प्रकार के हलजीवियो की कमी नही थी।[४]

खेती करने में विशेषज्ञ व्यक्ति क्षेत्रज्ञ कहलाता था और उसकी पर्याप्त प्रतिष्ठा भी होती थी।[५] कृषि की समृद्धि का एक कारण यह भी था कि सरकारी लगान उतना ही लिया जाता था जितना कृषिकार सहज रूप में दे सके।[६] यही सब कारण थे कि कृषि की उपज पर्याप्त होती थी और वसुन्धरा पृथ्वी चिन्तामणि के

---

१ कृष्णभूमय।—पृ० १३
२ अदेवमातृका।—वही। सुलभजल।—वही
३ समाश्रितप्रकृतय।—वही
४ हलबहुल।—वही
५ क्षेत्रज्ञप्रतिष्ठा।—वही
६ भर्तृकरसबाधसहा।—पृ० १४

समान शस्य सम्पत्ति लुटाती थी।[७] इतनी उपज होती थी कि बोये हुए खेत की लुनाई करना, लुने धान्य की दौनी करना और दौनी किये धान्य को बटोर कर संग्रह करना मुश्किल हो जाता था।[८]

खेत में बीज डालने को वप्त कहा जाता था। पके खेत को काटने के लिए लवन कहते थे तथा काटी गयी धान्य की दौनी करने को विगाढना कहा जाता था।

पर्याप्त धान्य से समृद्ध प्रजा के मन में ही यह विचार सम्भव था कि हमारी यह पृथ्वी मानो स्वर्ग के कल्पद्रुमो की शोभा को लूट रही है।[९]

अनुपजाऊ जमीन ऊषर कहलाती थी। जैसे मूर्खों को तत्त्व का उपदेश देना व्यर्थ है, उसी प्रकार ऊषर जमीन को जोतना, बोना और उसमें पानी देना व्यर्थ है।[१०]

वाणिज्य

वाणिज्य की व्यवस्था प्राय दो प्रकार की होती थी—स्थानीय तथा जहाँ दूर-दूर तक के व्यापारी जाकर धधा करें।

स्थानीय व्यापार के लिए हर वस्तु का प्राय अपना-अपना बाजार होता था। केसर, कस्तूरी आदि सुगन्धित वस्तुएँ जिस बाजार में बिकती थी वह सौगन्धियो का बाजार कहलाता था।[११] वास्तव में यह बाजार का एक भाग होता था, इसलिए इसे विपणि कहते थे। इस बाजार में केसर, चन्दन, अगुरु आदि सुगन्धित वस्तुओ का ही लेन-देन होता था।[१२]

जिस बाजार में माली पुष्पहार बेचते थे, उसे सोमदेव ने स्रग्-जीवियो का

---

७ वप्त्रक्षेत्रसजातसस्यसपत्तिवधुरा ।
चिंतामणिसमारम्भा सन्ति यत्र वसुधरा ॥—पृ० १६

८ लवने यत्र नोप्तस्य लूनस्य न विगाहने ।
विगाढस्य च धान्यस्य नाल संग्रहणे प्रजा ॥—पृ० १६

९ प्रजाप्रकामसस्याढ्या सवदा यत्र भूमय ।
मुष्णन्तीवामरावासकल्पद्रुमवनश्रियम् ॥—पृ० १६८

१० यद्भवे मुग्धबोधानामूषरे कृपिकर्मवत् ।—पृ० २८२ उत्त०

११ सौगन्धिकाना विपणिविस्तारेषु ।—पृ० १८ उत्त०

१२ परिवर्तमानकाश्मीरमलयजागुरुपरिमलोद्गारसारेषु ।—वही

आपण कहा है ।[१३] स्रग्जीवी मालाएँ हाथो में लटका-लटकाकर ग्राहको को अपनी ओर आकृष्ट करते थे ।[१४]

बाजार प्राय आम रास्तो पर ही होते थे । सोमदेव ने लिखा है कि सायकाल होते ही राजमार्ग खचाखच भर जाते थे ।[१५] भीड में कुछ ऐसे नागरिक होते थे, जो रात्रि के लिए सभोगोपकरणो का इन्तजाम करने उत्साहपूर्वक इधर-उधर घूम रहे होते ।[१६] कुछ रूप का सौदा करने वाली वारविलासिनियाँ घमण्डपूर्वक अपने-हाव-भाव प्रदर्शित करती हुई कामुको के प्रश्नो की उपेक्षा करतीं टहल रही होती ।[१७] कुछ ऐसी दूतियाँ जिनके हृदय अपने पतियो द्वारा सुनायी गयी किसी अन्य स्त्री के प्रेम की घटना से दु खी होते, अपनी सखियो की बातो का उत्तर दिये बिना ही चहलकदमी कर रही होती ।[१८]

पैण्ठास्थान

व्यापार की बडी-बडी मडियाँ पैण्ठास्थान कहलाती थी । पैण्ठास्थानो में व्यापारियो को सब प्रकार की सुविधाओ का प्रबन्ध रहता था । यहाँ दूर-दूर तक के व्यापारी आकर अपना धन्धा करते थे । सोमदेव ने एक पैण्ठास्थान का सुन्दर वर्णन किया है । उस पैण्ठास्थान में अलग-अलग अनेक दुकानें बनायी गयी थी । सामान की सुरक्षा के लिए बडी-बडी खोडियाँ या स्टोर हाउस थे । पोखरो के किनारे पशुधन की व्यवस्था थी । पानी, अन्न, ईन्धन तथा यातायात के साधन सरलता से उपलब्ध हो जाते थे । सारा पैण्ठास्थान चार मील के घेरे में फैला था । चारो ओर सुरक्षा के लिए अहाता और खाई थे । आने-जाने के लिए निश्चित दरवाजे और मुख्य द्वार थे । सैनिक सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध था । हर गली में प्याऊ, भोजनालय, सभाभवन पर्याप्त थे । जुआडी, चोर-चपाटो और बदमाशो पर

---

१३ स्रगाजीविनामापणरगभागेषु ।—पृ० १८ उ०

१४ करविलबितकुसुमसरसौरभसुभगेषु ।—वही

१५ समाकुलेषु समन्ततो राजवीथिमण्डलेषु ।—वही

१६ ससभ्रमामितस्तत परिसर्पता सभोगोपकरणाहितादरेण पौरनिकरेण ।—वही

१७. निजविलासदर्शनाहकारिमनोरथाभिरवधीरितविटसुधाप्रश्नसकथाभि पण्याङ्गना-समितिभि ।—पृ० १९ उत्त०

१८. आत्मपतिसदिष्टघटनाकुलुतहृदयेनावधीरितसखीजनसमापप्रत्युत्तरदानसमयेनसच-रिता सचारिकानिकायेन ।—वही

खास निगाह थी कि वे भीतर न आने पायें। शुल्क भी यथोचित लिया जाता था। नाना देशों के व्यापारी वहाँ व्यापार के लिए आते थे।[१९]

यह पैण्ठास्थान श्रीभूति नामक एक पुरोहित द्वारा संचालित था और उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति प्रतीत होता है, किन्तु प्राचीन भारत में राज्य द्वारा इस प्रकार के पैण्ठास्थानों का संचालन होता था। स्वयं सोमदेव ने नीतिवाक्यामृत में लिखा है कि न्यायपूर्वक रक्षित पिण्ठा या पैण्ठास्थान राजाओं के लिए कामधेनु के समान है।[२०] नीतिवाक्यामृत के टीकाकार ने पिण्ठा का अर्थ 'शुल्क-स्थान' किया है तथा शुक्राचार्य का एक पद्य उद्धृत किया है कि व्यापारियों से शुल्क अधिक नहीं लेना चाहिए और यदि पिण्ठा से किसी व्यापारी का कोई माल चोरी चला जाये तो उसे राजकीय कोष से भरना चाहिए।[२१]

सोमदेव ने पिण्ठा को पण्यपुटभेदिनी कहा है। टीकाकार ने इसका अर्थ वणिकों की कुंकुम, हिंगु, वस्त्र आदि वस्तुओं को संग्रह करने का स्थान किया है।[२२] यशस्तिलक के विवरण से ज्ञात होता है कि पैण्ठास्थान व्यापार के बहुत बड़े साधन थे और व्यापारिक समृद्धि में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान था।

सार्थवाह

यशस्तिलक में सार्थवाह के लिए सार्थ (१६), सार्थपार्थिव (२२५ उत्त०) तथा सार्थानीक (२९३ उत्त०) शब्द आये हैं। समान या सहयुक्त अर्थ (पूँजी) वाले व्यापारी जो बाहरी मंडियों से व्यापार करने के लिए टांडा बाँधकर चलते थे,

---

१९ स किल श्रीभूतिर्विश्वासरमणिघ्नतया परोपकारनिघ्नतया च विभक्तानेकापवरकरचनाशालिनीभिर्महाभाण्डवाहिनीभिर्गाशालोपशाल्याभिः कुल्याभिः समन्वितम्, अतिसुलभजलयवसेन्धनप्रचारम्, भाण्डनारम्भेन्द्रकटमीरपेटकपक्तरक्षासारम्, गोरुतप्रमाणप्राकारप्रनालिपरिखामुद्रितद्वारप्रपामण्डपसभासनाथवाधिनिवेशनं पण्यपुटभेदनं विदूरितकितववितविदूषकपीठमर्दविस्थानं पैण्ठास्थानं विनिर्माप्य नानादिग्देशोपसर्पणयुजां वणिजां प्रशान्तशुल्कभाटकभागहारव्यवहारमचीकरत्।
—पृ० ३४५ उत्त०

२० न्यायेनरक्षिता पण्यपुटभेदिनि पिण्ठा राज्ञां कामधेनुः।—नीति० १९।२१

२१ तथा च शुक्रः — ग्राह्यं नैवाधिकं शुल्कं चौर्यं चाहृतं भवेत्।
पिण्ठायां तु तज्ञा देयं वणिजां तत् स्वकोशतः॥ वही, टीका

२२ पण्यानि वणिग्जनानां कुंकुमहिंगुवस्त्रादीनि क्रयाणकानि तेषां पुटाः स्थानानि भिद्यन्ते यस्यां सा पण्यपुटभेदिनी। —वही, टीका

सार्थ कहलाते थे। उनका नेता ज्येष्ठ व्यापारी सार्थवाह कहलाता था।[२३] इसका निकटतम अँगरेजी पर्याय 'कारवान लीडर' है। हिन्दी का साथ शब्द संस्कृत के सार्थ से ही निकला है, किन्तु उसका वह प्राचीन अर्थ लुप्त हो गया है। प्राचीन-काल में यात्रा करना उतना निरापद नहीं था, जितना अब हो गया है। डाकुओं और जंगली जानवरों से घनघोर जंगल भरे पड़े थे, इसलिए अकेले दुकेले यात्रा करना कठिन था। मनुष्य ने इस कठिनाई से पार पाने के लिए एक साथ यात्रा करने का निश्चय किया, और इस तरह किसी सुदूर भूत में सार्थ की नींव पड़ी। बाद में तो यह दूर के व्यापार का एक साधन बन गया।[२४]

सार्थवाह का कर्तव्य होता था कि वह सार्थ की सुरक्षा करते हुए उसे गन्तव्य स्थान तक पहुँचाए। सार्थवाह कुशल व्यापारी होने के साथ साथ अच्छा पथ-प्रदर्शक भी होता था। आज भी जहाँ वैज्ञानिक साधन नहीं पहुँच सके हैं, वहाँ सार्थवाह अपने कारवां वैसे ही चलाते हैं, जैसे हजार वर्ष पहले। कुछ ही दिनों पहले शिकारपुर के साथ (सार्थ के लिए सिन्धी शब्द) चीनी तुर्किस्तान पहुँचने के लिए काराकोरम को पार करते थे और आज दिन भी तिब्बत का व्यापार साथों द्वारा होता है।[२५]

प्राचीन काल में कोई एक उत्साही व्यापारी सार्थ बनाकर व्यापार के लिए उठता था। उसके सार्थ में और भी लोग सम्मिलित हो जाते थे। इसके निश्चित नियम थे। सार्थ का उठना व्यापारिक क्षेत्र की बड़ी घटना होती थी। धार्मिक यात्रा के लिए जिस प्रकार संघ निकलते थे और उनका नेता संघपति (संघवई, संघवी) होता था, वैसे ही व्यापारिक क्षेत्र में सार्थवाह की स्थिति थी। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि भारतीय व्यापारिक जगत् में जो सोने की खेती हुई उसके फूले पुष्प चुनने वाले सार्थवाह थे। बुद्धि के धनी, सत्य में निष्ठावान्, साहस के भण्डार, व्यापारिक सूझ बूझ में पगे, उदार, दानी, धर्म और संस्कृति में रुचि रखने-वाले, नयी स्थिति का स्वागत करनेवाले, देश-विदेश की जानकारी के कोष, यवन, शक, पल्हव, रोमक, ऋषिक, हूण आदि विदेशियों के साथ कन्धा रगड़ने वाले, उनकी भाषा और रीति-नीति के पारखी भारतीय सार्थवाह महोदधि के तट पर स्थित ताम्रलिप्ति से सीरिया की अन्ताखी नगरी तक यवद्वीप-कटाहद्वीप (जावा

२३ समानधनचारित्रैर्वणिक्पुत्रैः। – पृ० ३४५ उत्त०
तुलना – सार्थान् सधनान् सरतो वा पान्थान् वहति सार्थवाहः।
– अमरकोष ३।९।७८ स० टी०

२४ अग्रवाल – सार्थवाह, प्रस्तावना, पृ० २

२५ मोतीचन्द्र – सार्थवाह, पृ० २९

और वेडा) से चौलमण्डल के सामुद्रिक पट्टनो और पश्चिम में यवन, वर्बर देशों तक के विशाल जल, थल पर छा गये थे।[२६]

यशस्तिलक में सुवर्णद्वीप और ताम्रलिप्ति के व्यापार का उल्लेख है। पद्मिनी-खेटपट्टन का निवासी भद्रमित्र अपने समान धन और चारित्र वाले वणिक्पुत्रो के साथ सुवर्णद्वीप गया। वहाँ उसने बहुत धन कमाया और मनोवाछित सामग्री लेकर लौट पडा। रास्ते में दुर्दैव से असमय में ही समुद्र में तूफान आ गया और उसका जहाज डूब गया। आयु शेष होने के कारण वह अकेला जिन्दा बच गया और एक फलक के सहारे जैसे तैसे पार लगा।[२७]

दूसरी कथा में पाटलिपुत्र के महाराज यशोध्वज के लडके सुवीर ने घोषणा की कि जो कोई ताम्रलिप्ति पत्तन के सेठ जिनेन्द्रभक्त के सतखण्डा महल के ऊपर बने जिन-भवन में से छत्रत्रय के रूप में लगे अद्भुत वैडूर्य मणियो को ला देगा, उसे मनोभिलषित पारितोषिक दिया जायेगा। सूर्य नाम का एक व्यक्ति साधु का वेष बना कर जिनदत्त के यहाँ पहुँचा और एक दिन वहाँ से रत्न चुराकर भाग निकला।[२८]

इसी कथा के अन्तर्गत जिनभद्र की विदेश यात्रा का भी उल्लेख है। सोमदेव ने इसे बहित्रयात्रा कहा है। जिनभद्र बहित्रयात्रा के लिए जाना चाहता था। घर किस के भरोसे छोडे, यह समस्या थी। अन्त में वह उसी सूर्य नामक छद्म वेषधारी साधु पर विश्वास करके उसके जिम्मे सब छोडकर विदेश यात्रा के लिए चल देता है।[२९]

अमृतमति का जीव एक भव में कलिंग देश में भैसा हुआ। किसी सार्थवाह ने उसके सुन्दर और मजबूत शरीर को देखकर खरीद लिया और अपने सार्थ के साथ उज्जयिनी ले गया।[३०]

सोमदेव ने लिखा है कि यौधेय जनपद की कृषक वधुएँ अपनी नटखट चाल और नाना विलासो के द्वारा परदेशी सार्थों के नेत्रों को क्षण भर के लिए सुख देती हुई खेतो में काम करने चली जाती थीं।[३१]

---

२६ अग्रवाल, वही पृ० २
२७ यश० पृ० ३४५ उत्त०
२८ वही, पृ० ३०२ उत्त०
२९ वही
३० पृ० २२५ उत्त०
३१ पृ० १६

चम्पापुर के प्रियदत्त श्रेष्ठी की रूपसी कन्या विपत्ति की मारी शखपुर के निकट पर्वत की तलहटी में पहुँची। वहाँ पुष्पक नाम के वणिक्-पति का सार्थ पडाव डाले था। पुष्पक कन्या के रूप-सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गया। अनेक तरह के लोभ देकर उसे वश में करने लगा, किन्तु जब वश में नही हुई तो अयोध्या में लाकर एक वेश्या को दे दिया।[३२]

जिस तरह भारतीय सार्थ विदेशी व्यापार के लिए जाते थे उसी तरह विदेशी सार्थ भारत में भी व्यापार करने के लिए आते थे। सोमदेव ने एक अत्यन्त समृद्ध पैण्ठास्थान (बाजार) का वर्णन किया है, जहाँ पर अनेक देशों के व्यापारी व्यापार के लिए आते थे।[३३] ऊपर इसका विशेष वर्णन किया गया है।

विनिमय के साधन

सोमदेव ने विनिमय के दो प्रकार बताये हैं (१) वस्तु का मूल्य मुद्रा या सिक्के के रूप मे देकर खरीदना या (२) वस्तु का वस्तु से विनिमय। मुद्रा या सिक्कों में सोमदेव ने निष्क, कार्षापण और सुवर्ण का उल्लेख किया है।[३४] इनके विषय में संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है –

निष्क

निष्क के प्राचीनतम उल्लेख वेदों में मिलते है। उस समय निष्क एक प्रकार के सुवर्ण के बने आभूषण को कहा जाता था जो मुख्य रूप से गले में पहना जाता था और जिसे स्त्री-पुरुष दोनों पहनते थे।[३५]

वैदिक युग के बाद निष्क एक नियत सुवर्ण मुद्रा बन गयी, ऐसा बाद के साहित्य से ज्ञात होता है। जातक, महाभारत तथा पाणिनि में निष्क के उल्लेख आये हैं।[३६]

मनुस्मृति में निष्क को चार सुवर्ण या तीन सौ बीस रत्ती के बराबर कहा है।[३७]

---

३२ पृ० २९३ उत्त०

३३ पृ० ३४५ उत्त०

३४ वर साशयिकान्निष्कादसाशयिक कार्षापण। –पृ० ९२ उत्त०
पलव्यवहार इवणदक्षिणासु। –पृ० २०२

३५ अग्रवाल – पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २५०

३६ वही, पृ० २५१-५२

३७ मनुस्मृति ८।१३७

और वेङा) से चोलमण्डल के सामुद्रिक पट्टनों और पश्चिम में यवन, बर्बर देशों तक के विशाल जल, थल पर छा गये थे।[२६]

यशस्तिलक में सुवर्णद्वीप और ताम्रलिप्ति के व्यापार का उल्लेख है। पद्मिनीखेटपट्टन का निवासी भद्रमित्र अपने समान धन और चारित्र वाले वणिक्पुत्रों के साथ सुवर्णद्वीप गया। वहाँ उसने बहुत धन कमाया और मनोवांछित सामग्री लेकर लौट पड़ा। रास्ते में दुर्दैव से असमय में ही समुद्र में तूफान आ गया और उसका जहाज डूब गया। आयु शेष होने के कारण वह अकेला जिन्दा बच गया और एक फलक के सहारे जैसे तैसे पार लगा।[२७]

दूसरी कथा में पाटलिपुत्र के महाराज यशोध्वज के लड़के सुवीर ने घोषणा की कि जो कोई ताम्रलिप्ति पत्तन के सेठ जिनेन्द्रभक्त के सतखण्डा महल के ऊपर बने जिन-भवन में से छत्रत्रय के रूप में लगे अद्भुत वैडूर्य मणियों को ला देगा, उसे मनोभिलषित पारितोषिक दिया जायेगा। सूर्य नाम का एक व्यक्ति साधु का वेष बना कर जिनदत्त के यहाँ पहुँचा और एक दिन वहाँ से रत्न चुराकर भाग निकला।[२८]

इसी कथा के अन्तर्गत जिनभद्र की विदेश यात्रा का भी उल्लेख है। सोमदेव ने इसे बहित्रयात्रा कहा है। जिनभद्र बहित्रयात्रा के लिए जाना चाहता था। घर किस के भरोसे छोड़े, यह समस्या थी। अन्त में वह उसी सूर्य नामक छद्म वेषधारी साधु पर विश्वास करके उसके जिम्मे सब छोड़कर विदेश यात्रा के लिए चल देता है।[२९]

अमृतमति का जीव एक भव में कलिंग देश में भैंसा हुआ। किसी सार्थवाह ने उसके सुन्दर और मजबूत शरीर को देखकर खरीद लिया और अपने सार्थ के साथ उज्जयिनी ले गया।[३०]

सोमदेव ने लिखा है कि यौधेय जनपद की कृषक वधुएँ अपनी नटखट चाल और नाना विलासों के द्वारा परदेशी सार्थों के नेत्रों को क्षण भर के लिए सुख देती हुई खेतों में काम करने चली जाती थीं।[३१]

---

२६ अग्रवाल, वही पृ० २
२७ यश० पृ० ३४५ उत्त०
२८ वही, पृ० ३०२ उत्त०
२९ वही
३० पृ० २२५ उत्त०
३१ पृ० १६

चम्पापुर के प्रियदत्त श्रेष्ठी की रूपसी कन्या विपत्ति की मारी शखपुर के निकट पर्वत की तलहटी में पहुँची। वहाँ पुष्पक नाम के वणिक्-पति का सार्थ पडाव डाले था। पुष्पक कन्या के रूप-सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गया। अनेक तरह के लोभ देकर उसे वश में करने लगा, किन्तु जब वश में नहीं हुई तो अयोध्या में लाकर एक वेश्या को दे दिया।[३२]

जिस तरह भारतीय सार्थ विदेशी व्यापार के लिए जाते थे उसी तरह विदेशी सार्थ भारत में भी व्यापार करने के लिए आते थे। सोमदेव ने एक अत्यन्त समृद्ध पैण्ठास्थान (बाजार) का वर्णन किया है, जहाँ पर अनेक देशों के व्यापारी व्यापार के लिए आते थे।[३३] ऊपर इसका विशेष वर्णन किया गया है।

विनिमय के साधन

सोमदेव ने विनिमय के दो प्रकार बताये हैं (१) वस्तु का मूल्य मुद्रा या सिक्के के रूप मे देकर खरीदना या (२) वस्तु का वस्तु से विनिमय। मुद्रा या सिक्कों में सोमदेव ने निष्क, कार्षापण और सुवर्ण का उल्लेख किया है।[३४] इनके विषय में संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है –

निष्क

निष्क के प्राचीनतम उल्लेख वेदो में मिलते है। उस समय निष्क एक प्रकार के सुवर्ण के बने आभूषण को कहा जाता था जो मुख्य रूप से गले में पहना जाता था और जिसे स्त्री पुरुष दोनों पहनते थे।[३५]

वैदिक युग के बाद निष्क एक नियत सुवर्ण मुद्रा बन गयी, ऐसा बाद के साहित्य से ज्ञात होता है। जातक, महाभारत तथा पाणिनि में निष्क के उल्लेख आये है।[३६]

मनुस्मृति में निष्क को चार सुवर्ण या तीन सौ बीस रत्ती के बराबर कहा है।[३७]

---

३२ पृ० २९३ उत्त०

३३ पृ० ३४५ उत्त०

३४ वर साशयिकान्निष्कादसाशयिक कार्षापण। –पृ० ९२ उत्त०
पलव्यवहार सुवर्णदक्षिणासु। –पृ० २०२

३५ अग्रवाल – पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २५०

३६ वही, पृ० २५१-५२

३७ मनुस्मृति ८।१३७

कार्षापण

कार्षापण प्राचीन भारत का सबसे प्रसिद्ध सिक्का था। यह चाँदी का बनता था। मनुस्मृति में इसे ही धरण और राजतपुराण (चाँदी का पुराण) भी कहा है।[३८] पाणिनि ने इन सिक्कों को आहत कहा है।[३९] उसी के अनुसार ये अँगरेजी में पंच मार्क्ड के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सिक्के बुद्ध-युग से भी पुराने हैं तथा भारतवर्ष में ओर से छोर तक पाये जाते हैं। अब तक लगभग पचास सहस्र से भी अधिक चाँदी के कार्षापण मिल चुके हैं।[४०]

मनुस्मृति के अनुसार चाँदी के कार्षापण या पुराण का वजन बत्तीस रत्ती था। सोने या ताँबे के कर्ष का वजन अस्सी रत्ती था।

कार्षापण की फुटकर खरीज भी होती थी। अष्टाध्यायी, जातक तथा अर्थशास्त्र में इसकी सूचियाँ आयी है। अष्टाध्यायी में कार्षापण को केवल पण कहा है। इसके अर्ध, पाद, त्रिमाष, द्विमाष, अध्यर्ध या डेढ माष माष और अर्धमाष का उल्लेख है। कात्यायन ने इन में काकणी और अर्धकाकणी नाम और जोड़े हैं। जातकों में कहापण, अड्ढ, पाद या चत्तारोमासक, तयोमासक, द्वैमासक, एकमासक और अड्ढमासक नाम आये हैं। अर्थशास्त्र में पण, अर्धपण, पाद, अष्टभाग, माषक, अर्धमाषक, काकणी तथा अर्धकाकणी नाम आये है।[४१]

सुवर्ण

निष्क की तरह सुवर्ण एक सोने का सिक्का था। अनगढ सोने को हिरण्य कहते थे और उसी के जब सिक्के ढाल लेते तो वे सुवर्ण कहलाते थे।[४२]

सुवर्ण का वजन मनुस्मृति के अनुसार अस्सी रत्ती या सोलह माषा होता था। कौटिल्य ने एक कर्ष अर्थात् अस्सी गुंजा (लगभग १५० ग्राम) के बराबर सुवर्ण का वजन बताया है। बहुत प्राचीन सुवर्ण उपलब्ध नहीं होते फिर भी गुप्त युग के जो सुवर्ण सिक्के मिले है उनका वजन प्रायः इतना ही है।[४३]

---

३८ द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः।
ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतः॥ ८।१३५-३६

३९ अष्टाध्यायी ५।२।१२०

४० अग्रवाल – पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २५६

४१ वही

४२ भण्डारकर – प्राचीन भारतीय मुद्राशिल्प, पृ० ५१

४३ अग्रवाल – पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २५३

सुवर्ण के उल्लेख प्राचीन साहित्य और शिल्प में समान रूप से पाये जाते हैं। श्रावस्ती के अनाथपिंडक की कथा प्रसिद्ध है। अनाथपिंडक बौद्ध सघ के लिए एक बिहार बनाना चाहता था। इसके लिए उसने जो जमीन पसन्द की वह जैत नामक एक राजकुमार की सम्पत्ति थी। अनाथपिंडक ने जब जैत से उस जमीन-का दाम पूछा तो उसने उत्तर दिया कि आप जितनी जमीन लेना चाहें उतनी जमीन पर मूल्यस्वरूप सुवर्ण बिछाकर ले लें। अनाथपिंडक ने अठारह करोड सुवर्ण बिछाकर जमीन को खरीद लिया।

भरहुत के बौद्ध स्तूप में इस कथा का अकन हुआ है। एक परिचारक छकडे पर से सिक्के उतार रहा है, एक दूसरा उन सिक्कों को किसी चीज में उठाकर ले जा रहा है। दूसरे दो परिचारक उन सिक्कों को जमीन पर बिछा रहे हैं।[४४] बोधगया के महाबोधि मंदिर के स्तम्भों में भी इसी तरह के चित्र हैं।[४५]

सोमदेव के उल्लेख से ज्ञात होता है कि दशमी शती तक सुवर्ण मुद्रा का प्रचार था। सोमदेव ने लिखा है कि पल का व्यवहार सुवर्णदक्षिणा में था।[४६]

वस्तु-विनिमय

वस्तु विनिमय मे एक वस्तु दे कर लगभग उसी मूल्य की दूसरी वस्तु ली जाती थी। भद्रमित्र सुवर्ण-द्वीप के व्यापार के लिए गया तो वहाँ से अपनी पसन्द की अनेक वस्तुओं को वस्तु-विनिमय में सगृहीत किया।[४७]

एक अन्य प्रसग में आया है कि एक गडरिया एक बकरा लिये था। यज्ञ करने के इच्छुक एक पण्डित ने पूछा – 'अरे भाई, बेचना हो तो इसे इधर लाओ।' 'सरकार, बेचना ही तो है। आप अपनी अगूठी बदले में मुझे दे दें, तो मैं इसे दे दूँ।' उसने उत्तर दिया। और उस पण्डित ने अँगूठी देकर बकरा ले लिया।[४८] वस्तु विनिमय की सबसे बडी कठिनाई यही थी कि जो वस्तु विक्रेता के पास है उस वस्तु की आवश्यकता उस व्यक्ति को हो जिस व्यक्ति की वस्तु आप लेना चाहते हैं। इसी आवश्यकता की तीव्रता या मन्दता के आधार पर वस्तु-विनिमय का आधार बनता था।

---

४४ कनिंघम – स्तूप ऑव भरहुत, पृ० ८४

४५ कनिंघम – महाबोधि, पृ० १३

४६ पलव्यवहार सुवर्णदक्षिणासु। –पृ० २०२

४७ अगण्यपण्यविनिमयेन तत्रत्यमचिन्त्यमात्माभिमतवस्तुस्कन्धमादाय। –पृ० ३४५ उत्त०

४८ अरे मनुष्य, समानीयतामितः इतोऽयं छागस्तव चेदस्ति विक्रेतुमिच्छा इति। पुरुष भट्ट, विचिक्रीषुरेवैनं यदि भवानिदं मे प्रसादीकरोत्यंगुलीयकम्। –पृ० १३१ उत्त०

न्यास

सोमदेव ने न्यास या धरोहर रखने का उल्लेख किया है। भद्रमित्र विदेश यात्रा के लिए गया तो आचार, व्यवहार और विश्वास के लिए विश्रुत श्रीभूति के पास उसकी पत्नी के समक्ष सात अमूल्य रत्न न्यास रख गया।[४९]

न्यास रखते समय यह अच्छी तरह विचार लिया जाता था कि जिस व्यक्ति के पास न्यास रखा जा रहा है वह पूर्ण प्रामाणिक और विश्वासपात्र व्यक्ति है। इतना होने पर भी न्यास रखते समय साक्षी अपेक्षित समझी जाती थी।[५०]

कभी-कभी ऐसा भी होता था कि जिस व्यक्ति के पास न्यास रखा गया है, उसकी नियत खराब हो जाये और वह यह भी समझ ले कि न्यासकर्ता के पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिससे वह कह सके कि उसने उसके पास अमुक वस्तु रखी है, तो वह न्यास को हड़प जाता था। भद्रमित्र सब सोच-समझ कर श्रीभूति के पास अपने सात बहुमूल्य रत्न रख कर विदेश-यात्रा के लिए गया था, किन्तु दुर्भाग्य से लौटने में उसका जहाज समुद्र मे डूब गया। संयोग से वह बच गया और आकर श्रीभूति से अपने रत्न मांगे। श्रीभूति ने न्यास को तो नकारा ही, साथ ही भद्रमित्र को बहुत ही बुरा-भला कहा और उल्टा ले जाकर राजा के पास पेश कर दिया।[५१]

भृति

भृति या नौकरी के प्रति साधारणतया लोगों की धारणा अच्छी नहीं थी, प्रत्युत इसे निंद्य माना जाता था।[५२] इसका मुख्य कारण यह था कि भृत्य या सेवक कार्य करने के विषय में अपने मालिक के निर्देश पर अवलम्बित रहता है और उसका अपना मन या विवेक वहाँ काम नहीं देता। अनेक प्रसंग ऐसे भी आते हैं जब भृत्य को अपनी इच्छा के विपरीत भी कार्य करने पड़ते है। उसी समय धारणा बनती है कि नौकरी करने वाले का सत्य जाता रहता है। करुणा के साथ

४९-५० विचार्य चातिचिरमुपनिधिन्यासयोग्यमावासम् उदिताचारसेव्योऽवधारितेतिकर्तव्यस्याखिललोकश्लाघ्यविश्वासप्रसवे श्रीभूतेर्हस्ते तत्पत्नीसमक्षमनघकक्षमनुगताप्तक रत्नसप्तक निधाय।–पृ० ३४५ उत्त०

५१ अध्याय ७, कल्प २७

५२ आ कष्टा खलु शरीरिणा सेवया जीवनचेष्टा।–पृ० १३९

सेवावृत्ते परमिह पर पातक नास्ति किंचित्।–वही

धर्म भी समाप्त हो जाता है, केवल नीच वृत्तियो के साथ पाप ही शाप की तरह चिपटा फिरता है।[५३]

सोमदेव ने लिखा है कि वास्तव में बात यह है कि नौकरी तो एक प्रकार का सौदा है। नौकर अपने सौजन्य, मैत्री और करुणा रूप मणियो को देता है तो मालिक से उसके बदले में धन पाता है। यदि न दे तो उसे धन भी न मिले क्योकि धन ही धन कमाता है।[५४]

■

---

५३ सत्य दूरे विहरति सम साधुभावेन पुसा,
धर्मश्चिरात्सहकरुणया याति देशान्तराणि।
पाप शापादिव च तनुते नीचवृत्तेन सार्धं,
सेवावृत्ते परमिह पर पातक नास्ति किंचित्॥ वही

५४ सौजन्यमैत्रीकरुणामणीना व्यय न चेत् भृत्यजन करोति।
फल महेशादपि नैव तस्य यतोऽर्थमेवार्थनिमित्तमाहु ॥ —वही

योक्ति में उसे इतना अधिक बताया है कि – धनुप पर डोरी चढाते समय जैसे भूकम्प की स्थिति आ जाती हो।[५]

धनुप की ध्वनि भी बहुत तेज होती थी। सोमदेव ने उसे आनन्द दुदुभि के समान कहा है।[६]

कुशल योद्धा जब धनुप चलाता है तो शीघ्रता के कारण यह पता नहीं लग पाता कि धनुप बायें हाथ में है अथवा दाहिने मे या दोनो हाथों से ही वाण छोड रहा है। प्रयत्न-लाघव की इस क्रिया को 'खुरली' कहा जाता था।[७] महावीर-चरित में भी दो वार (२ ३४, ५५) खुरली का उल्लेख आया है।[८]

धनुप-बाण के द्वारा अत्यन्त दूरस्थ शत्रु को भी मारा जा सकता है। लगातार छोडे गये वाण वध्य व्यक्ति तथा मोर्वी (धनुप की डोरी) के बीच में ऐसे लगते हैं जैसे पृथ्वी को नापने के लिए डोरा डाला गया हो।[९]

लक्ष्य यदि इतनी दूर हो कि दिखाई भी न पडे तो भी पुख-अनुपुख के क्रम से भेद कर वाण गुणस्यूत (सूई के धागे) की तरह आगे निकल आता है। इसे सोमदेव ने 'सद्गुण्ययोग्याविधि' कहा है।[१०]

आगे, पीछे, दाहिनें, बायें, ऊपर, नीचे अत्यन्त शीघ्र निरवधि (अनवरत) धनुप चलाने की क्रिया 'कोदण्डाचनचातुरी' कहलाती थी।[११] इस क्रिया में धनुर्धर ऐसा लगता है जैसा उसके पूरे शरीर में हाथ और आंखें लगी हो।[१२]

धनुप के प्राचीन इतिहास के विषय में भी यशस्तिलक से पर्याप्त जानकारी मिलती है –

कर्ण का धनुप कालपृष्ठ, विष्णु का शार्ङ्ग, अर्जुन का गाण्डीव तथा महादेव

---

५ खवन्त्युर्वीधरन्ध्राण्यपि दधति ककुप्सि धुरा साध्वमानि।
गाधन्तेऽम्भोधयोऽपि क्षितितलविरसद्वीचयस्ते महीश,
ज्यारोपासगमीदद्धनुरटनिभरभ्रस्यभूगोलकाले ॥—पृ० वही,

६ आनन्ददुन्दुभिरिव चापस्य ते ध्वनि ।—पृ० ६००

७ शस्त्रप्रपञ्चखुरली दृतु क करोतु।—वही,

८ उद्धृत आप्टे – संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी।

९ यश० पृ० वही,

१० एव चापविजृम्भितानि भवत सद्गुणययोग्याविधौ।—पृ० ६०१,

११ कोदण्डाचनचातुरी रचयत प्राक्पृष्ठपक्षद्वयमोर्ध्वाधोविपर्येषु।—पृ० ६०१,

१२ प्रत्यङ्गविनिर्मितेक्षणभुजा ।—वही

का पिनाक कहलाता था। गांगेय (भीष्म), द्रोण, राम, अर्जुन, नल तथा नहुष आदि राजा भी धनुष विद्या के पारंगत योद्धा रहे हैं।[१३]

सोमदेव ने शब्दवेधी बाण का भी उल्लेख किया है। यशोमति महाराज ने शब्दवेधित्व कौशल दिखाने के लिए कुक्कुट की आवाज सुनकर उन्हें तीर का निशाना बनाया।[१४]

यशस्तिलक में धनुष-विद्या से सम्बन्धित जितनी सामग्री आयी है उसका सम्मिलित परिचय इस प्रकार है —

पृष्ठ	
५९९	(१) धनुर्वेद—धनुष चलाने की विद्या का विश्लेषण करने वाला शास्त्र
५९९	(२) शराभ्यासभूमि—वह स्थान जहां धनुष-विद्या सिखायी जाती
६०१	(३) धन्वी—धनुष चलाने वाला
३३२	(४) धनुर्धर—धनुष धारण करने वाला सैनिक
६०१	(५) पिनाक—महादेव का धनुष
६०१	(६) शार्ङ्ग—विष्णु का धनुष
६०१	(७) गाण्डीव—अर्जुन का धनुष
६०१	(८) कालपृष्ठ—कर्ण का धनुष
६००	(९) धनु—धनुष
५७२-७३, ६०० १	(१०) चाप—धनुष
५५५,७४,७६,१२४,३६६	
५५९,५७०,६०१,६०२	(११) कोदण्ड—धनुष
५५५,५७३	(१२) खादण्ड—धनुष
४६५	(१३) बाणासन—धनुष
५७१	(१४) शरासन—धनुष
७४	(१५) अजगव—धनुष

---

१३ त्व कर्णं कालपृष्ठे भवसि बलिरिपुस्त्व पुन साधु शार्ङ्गे,
गाण्डीवेऽप्यस्त्वमिन्द्र त्रिपुरमथ हरस्त्व पिनाके च साक्षात्।
बालाभ्यस्य चापाञ्चनचतुरविधेस्तस्य किं श्लाघनीयम्।
गाङ्गेयद्रोणरामार्जुननलनहुषद्मापसाम्ये तव स्यात्॥—पृ० ६०२,

१४ पृ० ५६१,

५५५,५९९	(१६) ज्या–धनुष की डोरी
५९,५९९	(१७) अटनि–धनुष का साचेदार सिरा—किनारा
५७३	(१८) गुण–धनुष की डोरी
६००	(१) मौर्वी–धनुष की डोरी
५५८	(२०) नाराच–बाण
७६,११४,५५६	(२१) काण्ड–बाण
५५८	(२२) विशिख–बाण
२५९ उत्त०	(२३) सायक–बाण
६००-६०१	(२४) बाण–बाण
५५८	(२५) नाराचपंजर–तरकस
४६७	(२६) भस्त्रा–तरकस
६००	(२७) पुख–बाण का पिछला भाग
३३२	(२८) गोधा–धनुष की डोरी की रगड से रक्षा करने के लिए हाथ में लपेट गया चमडे का खोल।
२५९ उत्त०	(२९) शरकुरकी–तरकस
६००	(३०) खुरली–प्रयत्न-लाघवपूर्वक धनुष चलाना
५९९	(३१) ज्यारोप–धनुष पर डोरी चढाना
६००	(३२) पुखानुपुखक्रम–इतने जल्दी बाण छोडना कि एक बाण दूसरे बाण की पूछ को छूता जाये।
६०१	(३३) चापविजृम्भित–धनुष चलाने के प्रकार
६०१	(३४) कोदण्डाञ्चनचातुरी–धनुष खींचने की चतुराई
६००	(३५) शरव्य–जिस पर निशाना लगाया गया है।
६००	(३६) लक्ष्य–निशाना
६०२	(३७) कोदण्डविद्या–धनुष विद्या
६०२	(३८) मार्गणमल्ल–धनुर्धारी योद्धा
२२२ उत्त०	(३९) अयोमुख पुरा–लोहे के मुंह वाला बाण

२ असिधेनुका

छोटी तलवार या छुरी असिधेनुका कहलाती थी। सोमदेव ने इसे असिधेनुका और शस्त्री दो नाम दिये हैं। अमरकोषकार (२,८,९२) ने शस्त्री, असिपुत्री, छुरिका और असिधेनुका ये चार नाम दिये हैं। असिधेनुका की धार पर पानी

का पिनाक कहलाता था। गांगेय (भीष्म), द्रोण, राम, अर्जुन, नल तथा नहुष आदि राजा भी धनुष विद्या में पारंगत योद्धा रहे हैं।[13]

सोमदेव ने शब्दवेधी बाण का भी उल्लेख किया है। यशोमति महाराज ने शब्दवेधित्व कौशल दिखाने के लिए कुक्कुट की आवाज सुनकर उन्हें तीर का निशाना बनाया।[14]

यशस्तिलक में धनुष-विद्या से सम्बन्धित जितनी सामग्री आयी है उसका सम्मिलित परिचय इस प्रकार है –

पृष्ठ	
५९९	(१) धनुर्वेद–धनुष चलाने की विद्या का विश्लेषण करने वाला शास्त्र
५९९	(२) शराभ्यासभूमि–वह स्थान जहाँ धनुष विद्या सिखायी जाती
६०१	(३) धन्वी–धनुष चलाने वाला
३३२	(४) धनुर्धर–धनुष धारण करने वाला सैनिक
६०१	(५) पिनाक–महादेव का धनुष
६०१	(६) शार्ङ्ग–विष्णु का धनुष
६०१	(७) गाण्डीव–अर्जुन का धनुष
६०१	(८) कालपृष्ठ–कर्ण का धनुष
६००	(९) धनु–धनुष
५७२-७३, ६०० १	(१०) चाप–धनुष
५५५,७४,७६,१२४,३६६	
५५९,५७०,६०१,६०२	(११) कोदण्ड–धनुष
५५५,५७३	(१२) खरदण्ड–धनुष
४६५	(१३) बाणासन–धनुष
५७१	(१४) शरासन–धनुष
७४	(१५) अजगव–धनुष

---

१३ त्वं कर्णः कालपृष्ठे भवसि बलिरिपुस्त्वं पुनः साधु शार्ङ्गे,
गाण्डीवेऽप्यस्त्वमिन्द्र छिन्निरमण हरस्त्वं पिनाके च साक्षात्।
बालाभ्यासप्रयचापान्चनचतुरविधेस्तस्य किं श्लाघनीयम्।
गाङ्गेयद्रोणरामार्जुननलनहुषक्ष्मापसाम्ये तव स्यात्॥—पृ० ६०२,

१४ पृ० ५९१,

५५५,५९९	(१६) ज्या–धनुष की डोरी
५९,५९९	(१७) अटनि–धनुष का खाँचेदार सिरा—किनारा
५७३	(१८) गुण–धनुष की डोरी
६००	(१९) मौर्वी–धनुष की डोरी
५५८	(२०) नाराच–बाण
७६,११४,५५६	(२१) काण्ड–बाण
५५८	(२२) विशिख–बाण
२५९ उत्त०	(२३) सायक–बाण
६००-६०१	(२४) बाण–बाण
५५८	(२५) नाराचपञ्जर–तरकस
४६७	(२६) भस्त्रा–तरकस
६००	(२७) पुंख–बाण का पिछला भाग
३३२	(२८) गोधा–धनुष की डोरी की रगड से रक्षा करने के लिए हाथ में लपेटा गया चमडे का खोल।
२५९ उत्त०	(२९) शरकुरली–तरकस
६००	(३०) खुरली–प्रयत्न-लाघवपूर्वक धनुष चलाना
५९९	(३१) ज्यारोप–धनुष पर डोरी चढाना
६००	(३२) पुंखानुपुंखक्रम–इतने जल्दी बाण छोडना कि एक बाण दूसरे बाण की पूंछ को छूता जाये।
६०१	(३३) चापविजृम्भित–धनुष चलाने के प्रकार
६०१	(३४) कोदण्डाञ्चनचातुरी–धनुष खींचने की चतुराई
६००	(३५) शरव्य–जिस पर निशाना लगाया गया है।
६००	(३६) लक्ष्य–निशाना
६०२	(३७) कोदण्डविद्या–धनुष-विद्या
६०२	(३८) मार्गणमल्ल–धनुर्धारी योद्धा
२२२ उत्त०	(३९) अयोमुख पुंख-लोहे के मुँह वाला बाण

२ असिधेनुका

छोटी तलवार या छुरी असिधेनुका कहलाती थी। सोमदेव ने इसे असिधेनुका और शस्त्री दो नाम दिये हैं। अमरकोषकार (२,८,९२) ने शस्त्री, असिपुत्री, छुरिका और असिधेनुका ये चार नाम दिये हैं। असिधेनुका की धार पर पानी

चढाकर उसे तेज बनाया जाता था।[15] इसे मूठ मे हाथ डालकर पकडते थे। दूत के द्वारा जब पाचाल नरेश की युद्धेच्छा का पता लगा तो असिधेनुका के प्रयोग में विशेषज्ञ, जिस सामन्त का नाम अनजय था, ने ईर्ष्या के साथ अपने हाथ को असिधेनुका की मूठ में डाला।[16]

सोमदेव के अनुसार असिधेनुका का प्रयोग प्राय सिर पर किया जाता था तथा इसके प्रयोग से तडतड शब्द भी होता था।[17]

असिधेनुका कमर में लटकायी जाती थी। यशस्तिलक में दाक्षिणात्य सैनिक नाभिपर्यन्त असिधेनुका लटकाये हुए थे।[18]

हर्षचरित म असिधेनुका सहित पदातियो का वर्णन है। उन्होने कमर में कपडे की दोहरी पटी की मजबूत गाठ लगा कर उसी में असिधेनुका खोस रखी थी।[19] अहिच्छत्रा मे प्राप्त गुप्तकालीन मिट्टी की मूर्तियो मे एक ऐसे पदाति सैनिक की मूर्ति मिली है, जो कमर मे असिधेनु बाधे हुए है।[20]

३. कर्तरी

यशस्तिलक मे कर्तरी का उल्लेख कैंची तथा युद्धास्त्र दोनो के अर्थ में हुआ है। कैंची का प्रयोग दाढी आदि बनाने के लिए किया जाता था (कर्तरीमुखचुम्बिता-मूलश्मश्रुवालम्, पृ० ४६१)। उत्तरापथ के सैनिक अपने हाथो में जिन विभिन्न हथियारो को उठाये हुए थे उनमें कर्तरी भी थी।[21] अमरकोषकार ने कर्तरी और कृपाणी को पर्याय बनाया है (कृपाणीकर्तरीसमे, २,१०,३४)। हेमचन्द्र ने कर्तरी के लिए कृपाणी, कर्तरी और कल्पनी नाम दिये है।[22] वर्णरत्नाकर में दण्डायुधो में इसकी गणना नही है, किन्तु हेमचन्द्र के टीकाकार ने जो छत्तीस आयुधो की सूची दी है, उसमे कर्तरी की गणना है।[23] सम्भवतया एक विशेष प्रकार की

---

१५ यस्यासिधारापथ । –पृ० ५५४, शस्त्रीष्विव पयोलव । – पृ० १५२ उत्त०

१६ असिधेनुरनञ्जय सेर्ष्यमसिगात्रमुष्टौ पचशाख विधाय । –पृ० ५६१

१७ तडतडिति तयैषा शस्त्री त्रोटयते शिर । –पृ० ५६१

१८ आनाभिदेशोत्तम्भितासिधेनुकम् । –पृ० ४६२

१९ द्विगुणपट्टपट्टिकागाढग्रन्थिग्रथितासिधेनुना । –हप० २१

२० अग्रवाल – हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, फलक, २, चित्र १२

२१ करोत्तम्भितकर्तरीकृपाण औत्तरपथ बलम् । –यश० पृ० ४६४

२२ कृपाणी कतरी कल्पन्यपि । –अभिधानचिन्तामणि, ३।५७५

२३. द्व्याश्रयमहाकाव्य, सर्ग ११, श्लोक ५१, स० टी०

तलवार को वर्तरी कहते थे। पृथ्वीचन्द्रचरित (१४२१ ई०) में अस्त्रों की सूची में कर्तरी की गणना है।[२४]

४. कटार

गुर्जर सैनिक कमर में कटार बांधे हुए थे जिसकी मूठ भैंसे के सींग की बनी हुई थी।[२५] संस्कृत टीकाकार ने इसका अर्थ छुरिका विशेष किया है (कटारकश्च छुरिकाविशेष)। कटार को यदि छुरिका मान लिया जाये तो सोमदेव के द्वारा प्रयोग किये गये असिधेनुका, शस्त्री और कटार इन तीनों शब्दों को पर्यायवाची मानना चाहिए, किन्तु स्वयं सोमदेव ने असिधेनुका और कटार का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। असिधेनुका और कटार में क्या अन्तर था यह स्पष्ट नहीं होता, फिर भी इनमें कुछ न कुछ अन्तर था अवश्य। सम्भवतया दोनों ओर धारवाली छोटी तलवार को कटार कहते थे।

५. कृपाण

उत्तरापथ के कुछ सैनिक हाथों में कृपाण उठाये हुए थे।[२६] यशोधर के जुलूस में भी कृपाणधारी सैनिक थे।[२७] संस्कृत टीकाकार ने कृपाण का अर्थ खड्ग किया है।[२८]

६. खड्ग

तिरहुत की सेना अपने हाथों में खड्ग उठाये हुए थी, जिनसे निकलने वाली किरणों से आकाश तरंगित सा हो उठा।[२९] चण्डमारी देवी के मन्दिर में मारिदत्त खड्ग उठाये खड़ा था।[३०]

एक स्थान पर खड्गयष्टि का उल्लेख है। सोमदेव ने लिखा है कि स्त्री पुरुष की मुट्ठी में स्थित खड्गयष्टि की तरह अपने अभिमत को सिद्ध कर लेती है।[३१]

---

२४ उद्धृत, अग्रवाल–मध्यकालीन शस्त्रास्त्र, कला और संस्कृति, पृ० २६१

२५ माहिषविषाणघटितमुष्टिकटारकोत्कटकटीभागम् गौर्जरबलम्। –पृ० ४६७

२६ करोत्तम्भितकर्णीकणयकृपाण औत्तरपथबलम्। –पृ० ४६४

२७ कृपाणपाणिभि। –पृ० ३३१

२८ कृपाणपाणिभिः उत्खातखड्गकरैः। –सं० टी०

२९ उत्खातखड्गज्वलनविभासिधाराकरनिकरतरंगितगगनभागम्। –पृ० ४६६

३० उत्खातखड्गो मुनिनालकास्था व्यलोकि। –पृ० १४७

३१ सा तु पुरुषमुष्टिस्थिता खड्गयष्टिरिव साधयत्यभिमतमर्थम्। –पृ० १३६ उत्त०

७ कौक्षेयक या करवाल

सोमदेव ने कौक्षेयक और करवाल दोनों को एक माना है। करवालवीर करवाल को लपलपाता हुआ कहता है कि मेरा यह कौक्षेयक युद्ध में सीने में से झरते हुए खून के लिए राक्षसों की प्रतीक्षा करता है।[३२] इस प्रसंग से यह भी स्पष्ट है कि करवाल का प्रहार प्रायः सीने पर किया जाता था।

यशस्तिलक में करवाल का उल्लेख दो बार और भी हुआ है। मारिदत्त को कौलाचार्य विद्याधर लोक को जीतने वाले करवाल की प्राप्ति का उपाय बताता है।[३३]

चण्डमारी के मन्दिर में कुछ लोग यमराज की दाढ़ के समान वक्र करवाल लिये हुए थे।[३४]

८. तरवारि

तरवारि को सोमदेव ने यमराज की जीभ के समान तरल कहा है।[३५] यशस्तिलक में तलवर का भी उल्लेख है जो सम्भवतया तरवारि धारण करने वाले पुरुष के लिए प्रयुक्त हुआ है। सवेरे एक चोर को साथ पकड़ कर तलवर राज दरबार में आता है।[३६]

९. भुसुण्डि

भुसुण्डि का केवल एक बार उल्लेख है। चण्डमारी के मन्दिर में कुछ सैनिक भुसुण्डि भी लिये थे।[३७] संस्कृत टीकाकार ने भुसुण्डि का पर्याय गर्जक दिया है[३८]। भुसुण्डि सम्भवतया छोटी तलवार का ही एक प्रकार था।

१० मण्डलाग्र

मण्डलाग्र का एक बार उल्लेख है। यह एक प्रकार की अत्यन्त तीक्ष्ण

---

३२ करवालवीरः सक्रोधं करेण करवालं तरलयन्—
विपक्षपक्षक्षयदक्षदीक्षः कौक्षेयको मामक एष तस्य।
रक्षांसि वक्षःक्षतजैः क्षरद्भिः प्रतीक्षतेऽक्षुण्णतया रणेषु॥ —पृ० ५५७

३३ विद्याधरलोकविजयिनः करवालस्य सिद्धिर्भवतीति।—पृ० ४४

३४ कैश्चित् कृतान्तदंष्ट्राकोटिकुटिलकरवाल।—पृ० १४३

३५ कीनाशरसनातरलतरवारि।—पृ० १४४

३६ राजकुलानां सेवावसरेषु कुमारस्थानस्य प्रविश्य तलवरः।—पृ० २४५ उत्त०

३७ अपरैश्च यमावासप्रवेशः भुसुण्डिः। —पृ० १४५

३८ भुसुण्डयश्च गर्जकाः। —वही, सं० टी०

तलवार थी, जिसकी धार पर पानी चढाया जाता था।[३९] म० म० गणपति शास्त्री ने इसे सीधी तथा वृत्ताकार अग्रभाग वाली तलवार कहा है।[४०]

११. असिपत्र

असिपत्र का एक बार उल्लेख है। सम्भवतया यह एक प्रकार की छोटी छुरी थी। सोमदेव ने लिखा है कि पाण्डु देश में चण्डरसा ने मुण्डीर नाम के राजा को कबरी (केशपाश) में छिपाये हुए असिपत्र से मार डाला था।[४१]

१२. अशनि

अशनि के लिए सोमदेव ने अशनि और वज्र, दो शब्दो का प्रयोग किया है। एक उपमा से इसकी भयकरता का पता लगता है। सोमदेव ने हाथियो के पैरो को वज्रपात की उपमा दी है।[४२] दूसरे प्रसग मे सिर पर उगे हुए सफेद बाल को वज्रदण्ड के गिरनेके समान कहा गया है।[४३] इससे प्रतीत होता है कि यह वज्रदण्ड या डण्डे के आकार का शस्त्र था जिसका प्रहार प्राय सिर पर किया जाता था।

प्राचीन शिल्प और चित्रकला में वज्र का अकन दो रूपो में मिलता है-- एक डण्डे के आकार का, बीच में पतला और दोनो किनारो पर चौडा। दूसरा दो मुँह वाला जिसमें दोनो ओर नुकीले दाँते बने होते है।[४४]

प्राचीन काल से अशनि या वज्र इन्द्र का हथियार माना जाता रहा है।[४५] बाद के चित्र और शिल्प में अनेक अन्य देवी देवताओं के हाथ में भी यह हथियार देखने को मिलता है। ईडर के शास्त्र-भण्डार में सुरक्षित सचित्र कल्पसूत्र की ताडपत्रीय प्रति के अनेक चित्रो में इन्द्र हाथ में वज्र लिये दिखाया गया है।[४६] बुद्ध-देवी वज्रतारा की मूर्तियो में एक हाथ में वज्र का अकन मिलता है।[४७] बुद्ध-देवता

---

३९ मण्डलाग्रधाराजलनिम्ननिखिलारातिसतान ।--पृ० ५६५

४० मण्डलाग्र ऋजुवृत्ताकाराग्र ।--अर्थशास्त्र २।१८, स० टी०

४१ कबरीनिगूढेनासिपत्रेण चण्डरसा पाण्डुषु मुण्डीरम् ।--पृ० १५३ उत्त०

४२ पादेषु सम्पादितवज्रसम्पातैरिव ।--पृ० २८

४३ प्रपदशनिदण्डाडम्बर केश एष ।--पृ० २५२

४४ बनर्जी--दी डेवलपमेंट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० ३३०, फलक ८, चित्र ८, फलक ६, चित्र २,६

४५ वही, पृ० ३३०

४६ मोतीचन्द्र--जैन मिनिएचर पेंटिंग्ज फ्राम वेस्टर्न इण्डिया, चित्र ६०,६१,६२, ६६,७२

४७ भटशाली--आइकोनोग्राफी आफ बुद्धिस्ट स्कल्पचर्स इन दी ढाका म्युजियम, पृ० ४६

वज्रहार के दाहिने हाथ में दो वज्र हैं, जिन्हें सोने से चिपकाया गया है।[४८] वज्रसत्त्व के हाथ में भी वज्र है, किन्तु वह एक है। गौतम बुद्ध की एक मूर्ति के नीचे दस प्रकार की वस्तुओं का अङ्कन है, उनके ठीक मध्य में वज्र है। यह ऊपर बताये गये दो प्रकार के वज्रों में दूसरे प्रकार का है।[४९]

साहित्य मे वज्र का सबसे प्राचीन उल्लेख ऋग्वेद (३,५६,२) में आया है। यहाँ अशनि या वज्र को इन्द्र का ध्वज कहा गया है (शक्रस्य महाशनिध्वजम्)। सिद्धान्तकौमुदी मे एक सूत्र (२।१।१५) के उदाहरण में आया है – अनुवनमशनिर्गत – अर्थात् अशनि वन की ओर चला गया। वहाँ अशनि का अर्थ बिजली गिरने से है। रामायण (सुन्दरकाण्ड ४।२१) में अशनिधारी राक्षस सैनिकों का वर्णन है। महाभारत मे अशनि को अष्टचक्र वाला महाभयङ्कर तथा रुद्र के द्वारा बनाया गया कहा है।[५०] कालिदास ने रघुवंश (८।४७) और कुमारसम्भव (४।४३) मे अशनि का उल्लेख किया है। इन्दुमति के लिए विलाप करता हुआ अज कहता है कि ब्रह्मा ने इस पुष्पमाला को इन्दुमति के लिए अशनि बनाया।[५१] नागानन्द में गरुण अपनी चोंच को अशनिदण्डकठोर बताता है।[५२]

प्राकृत ग्रन्थों में अशनि का असणि रूप पाया जाता है। उत्तराध्ययन (२०,२१) में इन्द्र के आयुध के अर्थ में, प्रज्ञापना (१) में आकाश से गिरनेवाली बिजली के अर्थ में तथा भगवती (७,६) में ओलों की वर्षा के अर्थ में अशनि का उल्लेख हुआ है।

शिल्प, चित्र और साहित्य के इतने उल्लेखों के बाद भी रामायण के साक्ष्य के अतिरिक्त यह पता नहीं लगता कि अशनि केवल कल्पित शस्त्र था या व्यवहार मे इसका प्रयोग भी होता था। हनुमान जब लङ्का पहुँचे तो वहाँ राक्षस-सैन्य में अशनिधारी सैनिकों को भी देखा।[५३] इससे प्रतीत होता है कि अशनि व्यवहार में भी अवश्य था। सोमदेव ने अशनि का उल्लेख युद्ध के आयुधों के प्रसंग में नहीं किया। वर्णरत्नाकर की सूची म भी अशनि या वज्र की गणना नहीं है। द्वयाश्रय महाकाव्य के संस्कृत टीकाकार ने दण्डायुधों की सूची में वज्र को गिनाया है।[५४]

---

४८ वही, पृ० २३

४९ वही, पृ० ३०, फलक ८, चित्र १ ए (२)

५० अष्टचक्रां महाघोरामशनिं रुद्रनिर्मिताम्। –महा० ७, १३५, ६६

५१ अशनिः कल्पित एष वेधसा। –रघु० ८।४७

५२ अशनिदण्डचण्डतरया। –नागानन्द, ४।२७

५३ शक्तिवृक्षायुधांश्चैव पट्टिशाशनिधारिणः। –सुन्दरकाण्ड ४।२१

५४ द्वयाश्रय महाकाव्य सर्ग ११, श्लोक ५१, सं० टी०

किन्तु इससे यह मानना कठिन है कि अशनि का हथियार के रूप में व्यवहार उस समय (१३वी शती) तक होता था। लगता है, इस आयुध का प्रयोग व्यवहार से बहुत पुराने समय में ही उठ गया था तथा इन्द्र देवता और कतिपय अन्य देवी-देवताओ के साथ सम्बद्ध होकर कला और शिल्प में शेष रह गया।

१३. अंकुश

यशस्तिलक मे अंकुश के लिए अंकुश[५५] और वेणु शब्द आये हैं। संस्कृत टीकाकार ने वेणु का अर्थ वंशयष्टि किया है, जो कि गलत है।[५६] अंकुश सम्पूर्ण लोहे का बना करीब एक हाथ लम्बा होता है, जिसके एक किनारे एक सीधा तथा दूसरा मुडा हुआ नुकीला फन होता है।

अंकुश का प्रयोग प्रारम्भ से हाथियो को वश में करने के लिए किया जाता रहा है। सोमदेव ने हाथियो को 'अंकुशमर्याद' (पृ० २१४) कहा है। यशस्तिलक का नायक अंकुश लेकर स्वय ही हाथियो को शिक्षित किया करता था।[५७] सोमदेव ने सफेद बालो को इन्द्रियरूप हाथियो के निग्रह के लिए अंकुश के समान बताया है।[५८]

अंकुश की गणना सोमदेव ने युद्धास्त्रो के साथ नही की, किन्तु वर्णरत्नाकर में इसे छत्तीस दण्डायुधो में गिनाया गया है।[५९]

शिल्प और चित्रो मे अंकुश देवी-देवताओ के हाथो में उनके चिह्न के रूप मे देखा जाता है।[६०] ढाका के समीप मिली महिषमर्दिनी की दस हाथ वाली मनोज्ञ मूर्ति एक हाथ में अंकुश भी लिये है।[६१] छानी (बडौदा स्टेट) के एक शास्त्र-भण्डार के ओघनिर्युक्ति नामक सचित्र ताडपत्रीय ग्रन्थ मे अंकुश लिये अनेक देवियो के चित्र हैं। चतुर्भुज वज्रांकुशी देवी अपने ऊपर के दोनो हाथो में, काली देवी ऊपर के बायें हाथ में, महाकाली ऊपर के दायें हाथ में, गान्धारी ऊपर के बायें हाथ में, महाज्वाला ऊपर के दायें हाथ में तथा मानसी ऊपर के दायें हाथ में

---

५५. यश० पृ० २१४

५६ वही, पृ० २५३, ४६१

५७ स्वयमेवगृहीतवेणुर्वारणान्विनिन्ये। –पृ० ४६१

५८ करणकरिणा दर्पोद्रेकप्रदारणवेणव। –पृ० २५३

५९ वर्णरत्नाकर, पृ० ६१

६० बनर्जी – डेवलपमेंट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, फलक ८, चित्र २, ६

६१ भट्टशाली – ब्राह्मेनिकल स्कल्पचर्स इन द ढाका म्युजियम, फलक १६

अंकुश लिये हैं।[६२] ईडर के भण्डार में स्थित कल्पसूत्र की सचित्र ताडपत्रीय प्रति में चतुर्भुज इन्द्र भी ऊपर के बायें हाथ में अंकुश लिये चित्रित किया गया है।[६३]

अंकुश का प्रयोग इतने प्राचीन काल से चले आने के बाद भी इसके स्वरूप और उपयोगिता में कोई अन्तर नहीं आया। महावत हाथियों के लिए अभी भी अंकुश का प्रयोग करते हैं।

१४ कणय

कणय का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख है। उत्तरापथ के सैनिक अन्य हथियारों के साथ कणय भी उठाये हुए थे।[६४] सोमदेव ने कणय चलाने वाले योद्धाओं के प्रधान को कणयकोणप अर्थात् कणय चलाने में राक्षस के समान कहा है।[६५]

संस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर कणय का अर्थ लोहे का बाण विशेष[६६] तथा दूसरे स्थान पर भूषणनिबन्धन आयुध विशेष किया है।[६७] प्रो० हन्दिकी ने कणय का अर्थ बरछी किया है।[६८] म० म० गणपति शास्त्री ने अर्थशास्त्र की व्याख्या में कणय के सम्बन्ध में विशेष जानकारी दी है – कणय सम्पूर्ण लोहे का बनता था। दोनों ओर तीन-तीन कंगूरे तथा बीच में मुट्ठी से पकड़ने का स्थान होता था। २० अंगुली का कनिष्ठ, २२ का मध्यम तथा २४ का उत्तम, इस तरह तीन प्रकार के कणय बनते थे।[६९]

कणय का प्रहार शत्रु पर फेंककर किया जाता था (व्यत्यासन)। यदि कणय का प्रहार करने वाला कुशल हो तो युद्ध से हाथी, घोड़े, रथ, पदाति, सभी सैनिक ऐसे भागते हैं कि उनकी भगदड़ से उत्पन्न हवा से पृथ्वी घूमने सी लगती है।[७०]

---

६२ मोतीचन्द्र – जैन मिनिएचर पेंटिंग्ज फ्राम वेस्टर्न इण्डिया, चित्र २०, २३, २४, २६, २७, ३१

६३ वही, चित्र ६०

६४ करोत्तम्भितकर्तरीकणय　　　औत्तरपथबलम्। –पृ० ४६४

६५ काणयकोणप सामर्थं विहरय। – पृ० ५६०

६६ कणय लोहबाणविशेष। –पृ० ४६४, सं० टी०

६७ कणय भूषणनिबन्धनायुधविशेष। –पृ० ५६०, सं० टी०

६८ हन्दिकी – यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, पृ० ६०

६९ कणय सर्वलोहमय उभयतस्त्रिकण्टकाकारमुखो मध्यमुष्टि।
कनिष्ठो विंशति स्यात् तदङ्गुलानां प्रमाणत।
द्वाविंशतिमध्यम स्याच्चतुर्विंशतिरुत्तम॥–अर्थशास्त्र अधि० २, अध्याय १८

७०. हस्त्यश्वरथपदातिव्यत्यासनवातघूर्णितक्षोणि। –पृ० ५६०

१५. परशु या कुठार

परशु का उल्लेख एक बार हुआ है। सोमदेव ने परशु के प्रयोग में कुशल सैनिक को परशुपराक्रम कहा है।[७१] सम्भवतया इस नाम का प्रयोग परशुराम की कथा की स्मृति में रखकर किया गया है।

सोमदेव परशु और कुठार को एक मानते हैं। गणपति शास्त्री ने लिखा है कि परशु पूरा लोहे का बना चौवीस अगुल का होता था।[७३] परशु और कुठार को यदि एक मान लिया जाये तो वर्तमान में जिसे कुल्हाडो कहते है उसे ही अथवा उसके समान ही किसी हथियार को परशु कहते थे। अमरावती के चित्रो मे भी इसका अकन हुआ है।[७४]

सोमदेव ने कुठार का भी चार बार उल्लेख किया है।[७५] सस्कृत टीकाकार ने सभी स्थानो पर उसका पर्याय परशु दिया है। परशु या कुठार का प्रहार गर्दन पर किया जाता था (कुठार कण्ठपीठो छिनत्ति, पृ० ५५६)।

शिल्प में परशु भगवान् शकर के अस्त्र के रूप में अकित किया गया है।[७६] प्रारम्भिक शिल्प मे शूल और परशु का सयुक्त अकन मिलता है।

१६. प्रास

प्रास का उल्लेख तीन बार हुआ है। चण्डमारी के मन्दिर मे कुछ लोग प्रास लिये थे। उत्तरापथ की सेना में भी कुछ सैनिक प्रास लिये थे।[७७] पाचाल नरेश के दूत के सामने प्रासवीर प्रास को उछालते हुए कहता है कि सूत्कार के शब्द से दिग्गजों को भयभीत करता हुआ मेरा यह प्रास युद्ध में कवच सहित योद्धा को तथा उसके घोडे को भेदकर दूत की तरह नागलोक में चला जायेगा।[७८]

---

७१ परशुपराक्रम सावल्य पाणिना परश्वध निर्नेनिजान ।—पृ० ५५६
७२ जयजरठितमूर्तिर्मामकस्तस्य तूर्णम्। रणशिरसि कुठार कण्ठपीठीं छिनत्ति ।—वही
७३ परशु सर्वलोहमयश्चतुर्विंशत्यङ्गुल । –अर्थशास्त्र २।१८, स० टी०
७४ शिवरामभूर्ति – अमरावती० फलक १०, चित्र ३
७५ यश० पृष्ठ ४२३, ४६६, ५५६, ५६७
७६ बनर्जी – वही, पृ० ३२०, फलक १, चित्र १६ १६, २१
७७ यश० पृ० १४५, ४६५
७८ प्रासप्रसर मसौष्ठव प्रास परिवर्तयन्,
सूत्कारवित्रासितदिक्करीन्द्र प्रासो मदीय समराङ्गणेषु।
सन्नद्धं त्वा च हय च भित्वा यास्यत्यय दूत इवाहिलोके॥ —पृ० ५६१

म०म० गणपति शास्त्री ने लिखा है कि प्रास चौबीस अंगुल व दो पीठ का बनता था। यह सम्पूर्ण लोहे का होता था तथा बीच में काठ भरा रहता था।[७९]

१७. कुन्त

कुन्त का उल्लेख पांचाल नरेश के दूत के प्रसंग में हुआ है। कुन्त-विशेषज्ञ को सोमदेव ने कुन्तप्रताप कहा है।[८०]

कुन्त सीधे और अच्छे बांस की लकड़ी लगाकर बनाया जाता था। इसे कंपा कर दूर से वक्षस्थल पर प्रहार करते थे।[८१]

संस्कृत टीकाकार ने कुन्त का पर्याय प्रास दिया है।[८२] किन्तु सोमदेव इन दोनों को भिन्न-भिन्न मानते हैं, क्योंकि उन्होंने एक ही प्रसंग में दोनों का अलग-अलग उल्लेख किया है।[८३] कौटिल्य ने भी दोनों को भिन्न माना है।[८४] सात हाथ लम्बा कुन्त उत्तम, छह हाथ लम्बा मध्यम तथा पांच हाथ लम्बा कनिष्ठ, इस तरह तीन प्रकार के कुन्त बनाये जाते थे—

हस्ताः सप्तोत्तमः कुन्तः षड्ढस्तैश्चैव मध्यमः ।
कनिष्ठः पंचहस्तैस्तु कुन्तमानं प्रकीर्तितम् ॥
— अर्थशास्त्र २। १८, सं० टी०

१८. भिन्दिपाल

भिन्दिपाल का एक बार उल्लेख है। चण्डमारी के मन्दिर में कुछ सैनिक भिन्दिपाल लिये थे।[८५] म०म० गणपति शास्त्री के अनुसार बड़े फनवाले कुन्त को ही भिन्दिपाल कहते थे।[८६] मत्स्यपुराण (१६०, १०) के अनुसार भिन्दिपाल लोहे का (अयोमय) होता था तथा फेंककर इसका प्रहार किया जाता था। वैजयन्ती (पृ० ११७, १,३३१) में इसे लम्बे सिरे वाली लम्बी बर्छी कहा है।[८७]

---

७९ प्रासश्चतुर्विंशत्यङ्गुलो द्विपीठः सर्वलोहमयः काष्ठगर्भश्च ।
— अर्थशास्त्र २।१८ सं० टी०

८० कुन्तप्रतापः सकोपं कुन्तमुत्तालयन् । —पृ० ५५६

८१ ऋजु सुवंशोऽपि मदीय एष कुन्तः शकुन्तान्तकतर्पणाय ।
निर्भिद्य वक्षः पिठरप्रतिष्ठां तस्यासृजाजं यमुवं बिभर्ति ॥ —वही

८२ कुन्तः प्रासः । —वही, सं० टी०

८३ पृ० ५६१

८४ अर्थशास्त्र, २।१८

८५ अपरैश्च भुशुण्डिभिन्दिपाल । —पृ० १४५

८६ भिन्दिपालः कुन्त एव पृथुफलः । —अर्थशास्त्र २। १८, सं० टी०

८७ चक्रवर्ती पी० सी० — दी आर्ट आफ वार इन एंशियंट इण्डिया, पृ० १६०

१९. करपत्र

करपत्र दाँते बनी हुई लोहे की लम्बी पत्ती होती है, जिसे आजकल करौत कहा जाता है। करपत्र या करौत छोटी-बडी अनेक प्रकार की होती है और लकडी चीरने के काम में आती है। सोमदेव ने दन्तपक्ति को करपत्र की उपमा दी है।[८८]

२०. गदा

गदा का भी एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने गदा चलाने में कुशल योद्धा को गदाविद्याधर कहा है[८९]। गदाविद्याधर गदा को घुमाता हुआ कहता है कि हे दूत, जाकर अपने स्वामी से कह दे कि हमारे सम्राट से दो तीन दिन में ही आकर मिल ले, अन्यथा गदा से सिर फोड दूँगा।[९०]

गदा एक प्रकार का मोटा और भारी डण्डानुमा हथियार होता था। शिल्प और कला में इसके अनेक प्रकार मिलते हैं।[९१] भारतीय साहित्य में बलराम, भीम और दुर्योधन गदा के उत्कृष्ट चलाने वाले माने जाते हैं। विष्णु के भी शख, चक्र और कमल के अतिरिक्त एक हाथ में गदा का अकन मिलता है।[९२] गदा का निशाना प्राय सिर को बनाया जाता था जिससे सिर चूर-चूर हो जाये।[९३]

सोमदेव के वर्णन से स्पष्ट है कि गदा को जोर से घुमाकर फेंका जाता था। गदा को बार-बार घुमाने से हवा का जो तीव्र वेग होता, उससे हाथी भी भागने लगते।

२१. दुस्फोट

दुस्फोट का उल्लेख चण्डमारी देवी के मन्दिर के प्रसग में हुआ है[९४]। सस्कृत

---

८८ सा दन्तपक्ति करपत्रवक्रश्यामच्छवि। पृ० १२३

८९ गदाविद्याधर सगर्व गदामुत्तम्भयन्।—पृ० ५६२

९० दूतैव विनिवेदयात्मविभवे द्वित्रैर्दिनैर्मत्प्रभु,
पश्यागत्य यदि श्रियस्तव मना नो चेदिय दास्यति।
भ्रान्त्यावृत्तिविजृम्भितानिलवलोत्तालीकृताशागजा,
मूर्धान झटिति स्फुटच्छलवल त्वत्क मदीयगदा॥—पृ० ५६२

९१ शिवराममूर्ति—अमरावती स्कल्पचर्स, पृ० १२६

९२ वही, पृ० १२६

९३ देखो, फुटनोट सख्या ९०

९४ यमावासप्रवेशापरप्रासपट्टिमदु स्फोट।—पृ० १४५

टीकाकार ने इसका अर्थ मूसल किया है।[95] मूसल लकडी का बना एक लम्बा तथा पैना उपकरण होता था। यह प्राय खदिर की लकडी का बनाया जाता था। कौटिल्य ने इसकी गणना चल यन्त्रो मे की है।[96]

मूसल का अङ्कन शिल्प में सकर्षण बलराम के एक हाथ में किया जाता है।[97] वर्तमान मे मूसल एक घरेलू उपकरण बन गया है। धान आदि को ओखली में कूटने के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

२२ मुद्गर

मुद्गर का उल्लेख दो बार हुआ है। सम्राट यशोधर के यहाँ मुद्गरधारी सैनिक भी थे।[98] चण्डमारी के मन्दिर में भी कुछ लोग मुद्गर लिये खडे थे।[99] सस्कृत टीकाकार ने मुद्गर का अर्थ लोहे का घन किया है।[100] अमरावती की कला मे इसका अङ्कन मिलता है।[101]

२३ परिघ

परिघ का उल्लेख एक उपमा में हुआ है। घोडो को सोमदेव ने शत्रु सेना के डिगाने में परिघ के समान कहा है।[102] यह डण्डे जैसा लोहे का बना अस्त्र था। महाभारत में इसका उल्लेख कई बार हुआ है।[103] यह भी गदा की जाति का हथियार था।

२४ दण्ड

सोमदेव ने दण्डधारी योद्धाओ का उल्लेख किया है।[104] सभवतया दण्ड

---

९५ दु स्फोटाश्च मुषलानि।—वही, स० टी०

९६ मुसलयष्टि खादिर शूल।—अर्थशास्त्र २।१८, स० टी०

९७ बनर्जी – वही पृ० ३३०

९८ मुद्गरप्रहार —सपदि मम रथाग्रे मुद्गरस्याग्रत स्या।—पृ० ५५७

९९ अपरैश्च यमावासप्रवेश मुद्गर—। म० पृ० १४५

१०० मुद्गरस्य लोहघनस्य।—वही, म० टी०

१०१ शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स, फलक २०, चित्र १२

१०२ परबलस्खलने परिघा हया।—पृ० ३२५

१०३ चक्रवर्ती—द आर्ट आफ वार इन ऐंशियेण्ट इण्डिया, फुटनोट, ३

१०४ उदात्तदीर्घदण्टविडम्बितदोर्दण्टमण्डलै प्रशास्तृभि।—पृ० ३३१
दण्डपाशिकभटानादिदेश।—पृ० ५०

गदा के समान ही हथियार होता था। भारतीय मिक्कों में गदा और दण्ड का इतना साम्य है कि उनको पृथक् पृथक् करना कठिन है।[१०४]

२५. पट्टिस

पट्टिस का दो बार उल्लेख है। उत्तरापथ की सेना में[१०६] तथा चण्डमारी देवी के मन्दिर में[१०७] कुछ योद्धा पट्टिस लिये हुए थे। गणपति शास्त्री ने पट्टिस को उभयान्त त्रिशूल कहा है।[१०८] सम्भवतया पट्टिस लोहे का बना होता था, जिसके दोनों ओर त्रिशूल की तरह तीन तीन नुकीले दाँते बनाये जाते थे।

२६. चक्र

चक्र का दो बार उल्लेख है।[१०९] चक्र पहिए की तरह गोल आकार का लोहे का अस्त्र था। सोमदेव के विवरण से ज्ञात होता है कि चक्र को जोर से घुमा कर इस प्रकार फेंका जाता था कि सीधा शत्रु के सिर पर गिरे। कुशलतापूर्वक फेंके गये चक्र से हाथियों तक के सिर फट जाते थे।[११०]

चक्र की कई जातियाँ होती थीं। सुदर्शन चक्र भगवान् विष्णु का आयुध माना जाता है। कला में इसके दो रूप अंकित मिलते हैं। कहीं कहीं चक्र का अंकन पूर्ण विकसित कमल की तरह भी मिलता है जिसमें पंखुड़ियाँ आरों का कार्य करती हैं।[१११]

२७ भ्रमिल

चण्डमारी के मन्दिर में कुछ सैनिक भ्रमिल घुमाकर पक्षियों को भयभीत कर रहे थे।[११२] संस्कृत टीकाकार ने भ्रमिल का अर्थ चक्र किया है।[११३]

---

१०५ बनर्जी—वही, पृ० ३२६

१०६. करोत्तम्भित—प्रासपट्टिस—औत्तरपथबलम्।—पृ० ४६५

१०७ अपरैश्च यामावासप्रवेशपरभ्रामपट्टिस। –पृ० १४५

१०८ पट्टिस उभयान्तत्रिशूल।—अथशास्त्र २।१८ सं० टी०

१०९ पृ० ५५८, ३६०

११०, निषादीव इव स्वामिन्स्थिरीकृतनिजासन।
चक्रं भ्रमय दिक्पालपुरभाजनसिद्धये॥—पृ० ३६०
चक्रविक्रम मानेप चक्रं परिक्रमयन्,
नो चेद्वैरिकरीन्द्रकुम्भदलनव्यामक्तरक्त मुद्,
मुक्तं चक्रमकालचक्रमिव ते मूर्ध्नि प्रपाति ध्रुवम्॥—पृ० ५५८

१११ बनर्जी—वही पृ० ३२८, फलक ७, चित्र ४,७। फलक ६ चित्र १

११२ भ्रमिरभ्रमिभाषित—। पृ० १४४

११३ भ्रमिल चक्रम्।—वही, सं० टी०,

टीकाकार ने इसका अर्थ मूसल किया है।[९५] मूसल लकडी का बना एक लम्बा तथा पैना उपकरण होता था। यह प्राय खदिर की लकडी का बनाया जाता था। कौटिल्य ने इसकी गणना चल यन्त्रों मे की है।[९६]

मूसल का अङ्कन शिल्प मे सकर्षण बलराम के एक हाथ में किया जाता है।[९७] वर्तमान मे मूसल एक घरेलू उपकरण बन गया है। धान आदि को ओखली में कूटने के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

२२. मुद्गर

मुदगर का उल्लेख दो बार हुआ है। सम्राट यशोधर के यहाँ मुद्गरधारी सैनिक भी थे।[९८] चण्डमारी के मन्दिर में भी कुछ लोग मुद्गर लिये खडे थे।[९९] सस्कृत टीकाकार ने मुदगर का अर्थ लोहे का घन किया है।[१००] अमरावती की कला मे इसका अकन मिलता है।[१०१]

२३ परिघ

परिघ का उल्लेख एक उपमा में हुआ है। घोडों को सोमदेव ने शत्रु सेना के डिगाने में परिघ के समान कहा है।[१०२] यह डण्डे जैसा लोहे का बना अस्त्र था। महाभारत में इसका उल्लेख कई बार हुआ है।[१०३] यह भी गदा की जाति का हथियार था।

२४ दण्ड

सोमदेव ने दण्डधारी योद्धाओ का उल्लेख किया है।[१०४] सभवतया दण्ड

---

९५ दु स्फोटाश्च मुसलानि।—वही, स० टी०

९६ मुसलयष्टि खादिर शूल।—अर्थशास्त्र २।१८, स० टी०

९७ बनर्जी – वही पृ० ३३०

९८ मुद्गरप्रहार —सपदि मम रणाग्रे मुद्गरस्याग्रत स्या।—पृ० ५५७

९९ अपरश्च यमावासप्रवेश मुद्गर—। म० पृ० १४५

१०० मुद्गरस्य लोहघनस्य।—वही, म० टी०

१०१ शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स, फलक १०, चित्र १२

१०२ परबलस्खलने परिघा इया।—पृ० ३२५

१०३ चक्रवर्ती—द आर्ट आफ वार इन ऐंशियेण्ट इण्डिया, फुटनोट, ३

१०४ उदात्तदीर्घदण्डविटम्बितदोर्दण्डमण्डलै प्रशास्तृभि।—पृ० ३३१
दण्डपाशिकभटानादिदेश।—पृ० ५०

गदा के समान ही हथियार होता था। भारतीय सिक्कों में गदा और दण्ड का इतना साम्य है कि उनको पृथक् पृथक् करना कठिन है।[105]

२५. पट्टिस

पट्टिस का दो बार उल्लेख है। उत्तरापथ की सेना में[106] तथा चण्डमारी देवी के मन्दिर में[107] कुछ योद्धा पट्टिस लिये हुए थे। गणपति शास्त्री ने पट्टिस को उभयान्त त्रिशूल कहा है।[108] सम्भवतया पट्टिस लोहे का बना होता था, जिसके दोनों ओर त्रिशूल की तरह तीन तीन नुकीले दांते बनाये जाते थे।

२६ चक्र

चक्र का दो बार उल्लेख है।[109] चक्र पहिए की तरह गोल आकार का लोहे का अस्त्र था। सोमदेव के विवरण से ज्ञात होता है कि चक्र को जोर से घुमा कर इस प्रकार फेंका जाता था कि सीधा शत्रु के सिर पर गिरे। कुशलतापूर्वक फेंके गये चक्र से हाथियों तक के सिर फट जाते थे।[110]

चक्र की कई जातियाँ होती थी। सुदर्शन चक्र भगवान् विष्णु का आयुध माना जाता है। कला में इसके दो रूप अंकित मिलते है। कहीं-कहीं चक्र का अंकन पूर्ण विकसित कमल की तरह भी मिलता है जिसमें पंखुड़ियाँ आरों का कार्य करती है।[111]

२७ भ्रमिल

चण्डमारी के मन्दिर में कुछ सैनिक भ्रमिल घुमाकर पक्षियों को भयभीत कर रहे थे।[112] संस्कृत टीकाकार ने भ्रमिल का अर्थ चक्र किया है।[113]

---

१०५ बनर्जी—वही, पृ० ३२६

१०६ करोत्तम्भिन—प्रासपट्टिस—औत्तरपथबलम्।—पृ० ४६५

१०७ अपरैश्च यामावासप्रवेशपरप्रासपट्टिस।—पृ० १४५

१०८ पट्टिस उभयान्तत्रिशूल।—अथशास्त्र २।१८ स० टी०

१०९ पृ० ५५८, ३६०

११०, निपातीव इव स्वामिन्स्थिरीकृतनिजासन।
चक्र भ्रमय दिक्पालपुरभाजनसिद्धये॥—पृ० ३६०
चक्रविक्रम साक्षेप चक्र परिक्रमयन्,
नो चेद्वैरिकरीन्द्रकुम्भदलनव्यासक्तरक्त मुहु-,
मुक्त चक्रमकालचक्रमिव ते मूर्ध्नि प्रपाति ध्रुवम्॥—पृ० ५५८

१११ बनर्जी—वही पृ० ३२८, फलक ७, चित्र ४,७। फलक ६ चित्र १

११२ भ्रमिलभ्रमिभीषित—। पृ० १४४

११३ भ्रमिल चक्रम्।—वही, प० टी०,

२८. यष्टि

सोमदेव ने याष्टीक सैनिकों का उल्लेख किया है।[११४] संस्कृत टीकाकार ने याष्टीक का पर्याय प्रतिहारी दिया है।[११५] यष्टि धारण करने वाले प्रतिहारी याष्टीक कहलाते थे। म० म० गणपति शास्त्री ने यष्टि को मूसल की तरह नुकीली तथा खदिर की लकडी से बनने वाली बताया है।[११६] सोमदेव ने भी एक स्थान पर हाथी की सूड को यष्टि से उपमा दी हैं, इससे भी यष्टि के स्वरूप की पहचान हो जाती है।[११७]

शिवभारत (२५,२२) तथा भट्टीकाव्य (५,२४) में भी याष्टीक सैनिकों के उल्लेख आये है।[११८]

२९ लांगल

पांचाल नरेश के दूत के प्रसग में लांगलधारी सैनिक का उल्लेख है।[११९] लांगल सभवतया सम्पूर्ण लोहे का बनता था। सोमदेव के वर्णन से ज्ञात होता है कि लांगल का आकार ठीक वैसा ही होता था जैसा वर्तमान में खेत जोतने के काम में लिया जाने वाला हल। सोमदेव ने लिखा है कि लांगल का प्रयोक्ता यदि कुशल हो तो अकेला ही सम्पूर्ण युद्धरूपी खेत को जोत डालता है। विपक्षियों के शरीर की नसें चरमरा जाती हैं, चमडा फटकर अलग हो जाता है, खून सहस्रधार होकर बहने लगता है और शरीर की हड्डियां धनुष की कोटि की तरह चटपट शब्द करती हुई सौ टूक हो जाती हैं।[१२०]

हल संकर्षण बलराम का आयुध माना जाता है।[१२१]

---

११४ इतस्ततष्टीकमानैर्याष्टीकैर्विनीयमानानुकसेवकम्।—पृ० ३७२

११५ याष्टीकैः प्रतिहारैः।—वही, सं० टी०

११६ मुसलयष्टि खादिर शूल।—अर्थशास्त्र २।१८, सं० टी०

११७ यष्टिरद।—पृ० ३०१

११८ उद्धृत, आप्टे – संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृ० १३१२

११९ सं० पू०, पृ० ५५६

१२० लागलगरल सोल्लुण्ठालाप लांगलमुदानयमान — हे धीराः, कृत भवतां
समरमरम्भेण, यस्मादिदमेकमेव—
त्रुटदतनुशिरान्ना कोणकृत्तिप्रताना,
क्षरदविरलरलस्फारधारासहस्रा।
स्फुटदटनिकठोरष्टाक्रनास्थी समीके
मम रिपुहृदयालीलांगल लेलिहीति॥ —पृ० ५५६

१२१ बनर्जी – वही, पृ० २२८

३०. शक्ति

शक्ति के प्रयोग में कुशल सैनिक को सोमदेव ने शक्तिकार्तिकेय कहा है।[१२२] शक्ति सम्पूर्ण रूप से लोहे का बना भाले के समान अत्यन्त तीक्ष्ण आयुध था।[१२३] यह स्कन्दकार्तिकेय तथा दुर्गा का अस्त्र माना जाता है। कार्तिकेय की मूर्ति के बायें हाथ में शक्ति का अंकन देखा जाता है।[१२४] सोमदेव के द्वारा प्रयोग किये गये शक्तिकार्तिकेय पद में भी यही ध्वनि है।

३१ त्रिशूल

त्रिशूल का भी उल्लेख पांचाल नरेश के दूत के प्रसंग में हुआ है।[१२५] स्वयं सोमदेव के वर्णन से त्रिशूल के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो जाती है। त्रिशूल की तीन शिखाएँ होती हैं। इसका प्रहार वक्षस्थल पर किया जाता है। त्रिशूल भैरव का अस्त्र माना जाता है।[१२६]

शिल्प में भी त्रिशूल महादेव का अस्त्र माना गया है। कहीं-कहीं परशु के साथ तथा कहीं कहीं केवल त्रिशूल का अंकन मिलता है।[१२७]

३२ शंकु

शंकुधारी सैनिक को सोमदेव ने शंकुशार्दूल कहा है।[१२८] शंकु लोहे या खदिर की लकड़ी का बना एक प्रकार का भाला या बर्छी जैसा शस्त्र होता था। इसका प्रयोग फेंक कर करते थे।[१२९]

---

१२२ पृ० ५६२

१२३ सर्वलौहमयीशक्तिरायुधविशेष ।—वही, सं० टी०
तुलना – शक्तिश्च विविधास्तीक्ष्णा ।—महाभारत, आदि पर्व, ३०,४६

१२४ भट्टशाली – द आइकोनोग्राफी आफ बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मनिकल स्कल्पचर्स, पृष्ठ १४७, फलक ५७, चित्र २ (ए)

१२५ पृ० ५६०

१२६ त्रिशूलभैरव सायं त्रिशूलं वल्गयन्—
इदं त्रिशूलं तिसृभिः शिखाभिर्मार्गत्रयं वक्षसि ते विधाय—पृ० ५६०

१२७ बनर्जी – वही पृ० २३०, फलक १, चित्र १६, १६, २१ (केवल त्रिशूल) फलक १, चित्र १५, फलक ८, चित्र १,३, फलक ६ चित्र १,२

१२८ पृ० ५६३

१२९ अथ शंकुचिता रक्षा शतघ्नीमथ शत्रवे (क्षिपत्) ।—रघुवंश, १२।९५

३३. पाश

पाश का उल्लेख भी एक बार हुआ है। लक्ष्मी-प्राप्ति की इच्छा को आशा-पाश कहा गया है। सोमदेव के वर्णन से लगता है कि पाश का प्रयोग पैरों में रुकावट डाल कर गत्यवरोध के लिए किया जाता था।[१३०]

पाश के सम्बन्ध में डाक्टर पी० सी० चक्रवर्ती ने निम्नप्रकारसे विशेष जानकारी दी है —

ऋग्वेद (९,८३,४ – १०,७३ ११) में पाश वरुण तथा सोम का अस्त्र बताया गया है। कर्णपर्व (५३,२३) में इसे शत्रु के पैरों को बाँधने वाला, अतएव पादबन्ध कहा है। अग्निपुराण (२५१,२) के अनुसार पाश दस हाथ लम्बा तथा किनारों पर फन्दे युक्त होना चाहिए। इसका सामना हाथ की ओर रहना चाहिए। पाश सन (जूट), मूज, भाग, तांत, चमडा अथवा किसी अन्य मजबूत धागे से बनी रस्सी का बनाना चाहिए, इत्यादि।

नीतिप्रकाशिका (४,४५,६) के अनुसार पाश पीतल की बनी छोटी पत्तियों से बनाया जाता था। शुक्रनीति (४।७) के अनुसार पाश तीन हाथ लम्बा डण्डे के आकार का बनाया जाता था, जिसमें तीन नुकीले दांते तथा लोहे की रस्सी (तार या साकल) लगी होती थी। सम्भवतया प्राचीन पाश का विकास इस रूप में हुआ हो।[१३१]

३४. वागुरा

श्वेत केशों को सोमदेव ने मनरूपी मृग की चेष्टा नष्ट करने के लिए वागुराके समान कहा है।[१३२] सं० टीकाकार ने वागुरा का अर्थ बंधनपाश किया है।[१३३]

वागुरा भी एक प्रकार का पाश ही था। पाश और वागुरा में अन्तर यह था कि पाश द्वारा शत्रु के चलते-फिरते कूट यन्त्र फँसाए जाते थे तथा वागुरा से गज या हाथी पर सवार सैनिकों को खींच लिया जाता था।[१३४]

---

१३० लक्ष्मीलवलाभाशापाशस्खलितमतिमृगीप्रचारस्य।—पृ० ४३३
१३१ चक्रवर्ती – द आर्ट आफ वार इन ऐंशियेंट इंडिया, पृ० १७२
१३२ हृदयहरिणस्येहाध्वंसप्रसाधनवागुरा।—पृ० २५३
१३३ वागुरा बन्धनपाशा।—सं० टी०, वही
१३४ अग्रवाल – हर्षचरित, पृ० ४०, फलक ४, चित्र २०

३५. क्षेपणिहस्त

क्षेपणिहस्त का एक बार उल्लेख है। यह एक लम्बी रस्सी में बीच में चमडा या रस्सी का ही बिना हुआ चौडा पट्टा-सा लगाकर बनाया जाता है। इस पट्टे में पत्थर के टुकडे रख कर जोर से घुमाकर छोडते है। वर्तमान में इसे 'गुयनिया' कहते है। इसके द्वारा फेंका गया पत्थर का टुकडा बन्दूक की गोली की तरह चोट करता है। पक्षियो से खेत की रखवाली करने के लिए रखवाला एक ऊँचे मचान पर से क्षेपणिहस्त द्वारा चारो ओर दूर-दूर तक पत्थर फेंकता है। जोर से क्षेपणिहस्त छोडने से सन्न न-न की आवाज होती है। सोमदेव ने भी इसी भाव को व्यक्त किया है। वे कहते है कि हे राजन्, राजधानीरूपी खेत में स्थित होकर दूरस्थ भी शत्रुरूपी पक्षियो को सेनारूपी पत्थरो के द्वारा महान् शब्द करते हुए क्षेपणिहस्त की तरह भगाओ (या मारो)।[१३५]

३६ गोलधर

गोलधर का एक बार यशोधर के जुलूस के प्रसग में उल्लेख है।[१३६] सस्कृत टीकाकार ने इसका पर्याय गोफणहस्त किया है।[१३७] आप्टे साहब ने गोलासन का एक अर्थ एक प्रकार की बन्दूक भी किया है।[१३८]

■

---

१३५ दूरस्थानपि भूपाल क्षेत्रेऽस्मिन्नरिपक्षिण ।
बलोपलमहाघोषै क्षिप क्षेपणिहस्तवत् ॥—पृ० ३६

१३६ गोलधनुर्धरयोधाधिष्ठितवृत्तिभि ।—पृ० ३३२

१३७ गोलधराश्च गोफणहस्ता ।—वही, स० टी०

१३८ ए कांइड आफ गन, आप्टे – सस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृ० ६७५

अध्याय तीन

ललित कलाएँ और शिल्प-विज्ञान

परिच्छेद एक

गीत, वाद्य और नृत्य

गीत, वाद्य और नृत्य के लिए प्राचीन शब्द तौर्यत्रिक था। अमरकोषकार ने लिखा है कि तौर्यत्रिक शब्द से गीत, वाद्य और नृत्य का ग्रहण होता है (अमरकोष, १।६।११)। सोमदेव ने लिखा है कि मारिदत्त राजा ने तौर्यत्रिक में गन्धर्वलोक को जीत लिया था (तौर्यत्रिकातिशयविशेषविजितगन्धर्वलोक, १९।६, हिन्दी)। सोमदेव के युग में गीत, वाद्य और नृत्य का खूब प्रचार था। सम्राट् यशोधर को गीतगन्धर्वचक्रवर्ती, वाद्यविद्यावृहस्पति तथा नृत्तवृत्तान्तभ"त (३७६-३७७ हिन्दी) कहा गया है। गन्धर्व जाति सगीत में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। बृहस्पति द्वारा वाद्यविद्या पर लिखित कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही होता। वे विद्या के देवता अवश्य माने जाते हैं। भरतमुनि का नाटचशास्त्र प्रसिद्ध है। सोमदेव ने भरतमुनि का अनेक बार स्मरण किया है। सहस्रकूट चैत्यालय को भरतपदवी के समान विधि, लय और नाट्य से युक्त बताया है (भरतपदवी इव विधिलयनाटयाडम्बर २४६।२३, उत्त०)। नृत्त, नाटच, ताण्डव, अभिनय आदि के विशेषज्ञ भरत-पुत्रों का भी सोमदेव ने स्मरण किया है (३२० । २-३, हिन्दी)।

दशवी शताब्दी में सगीत, वाद्य और नृत्य का विशेष प्रचार था। यशोधर का हस्तिपक इतना अच्छा गाता था कि महारानी भी पाशाकृष्ट की तरह उसकी ओर खिच गयीं। छठे आश्वास की दशवीं कथा में धन्वन्तरी नगर-नायक के घर रात्रि में नृत्य देखते रहने के कारण देर से घर लौटता है। महाराज यशोधर स्वय नाटचशाला में जाकर रगपूजा करते हैं तथा नृत्य आदि के विशेषज्ञों के साथ नाटचशाला में अभिनय आदि देखते है (३२०, हिन्दी)।

गीत

यशस्तिलक में गीत के विषय में पर्याप्त जानकारी आयी है। यशोधर कहता है—'उसका गला इतना मधुर है कि उसके गाने से सूखे वृक्ष भी पल्लवित और पुष्पित हो जाते हैं। ललित कलाओ में गीत का विशेष महत्त्व है। गाने में उस्ताद मनुष्य यदि स्वभाव से क्रूर भी हो तो भी स्त्रियां उसकी ओर आकर्षित होती है। गायक यदि कुरूप भी हो तो भी वह स्त्रियो के लिए कामदेव के समान

सुन्दर और प्रियदर्शन होता है। जिन स्त्रियों का दर्शन भी दुर्लभ हो वे भी गीत-से आकर्षित होकर ऐसी चली आती हैं जैसे पाश से खिंची चली आती हों। कुशल गीतकार के द्वारा गाया गया गीत मनस्विनी स्त्रियों के मन में भी एक विचित्र-सी स्थिति पैदा कर देता है।[1]

गीत और स्वर का अनन्य सम्बन्ध है। सोमदेव ने सप्त स्वरोंका उल्लेख किया है (सप्तस्वरै, पृ० ३१९)। अमरकोषकार ने वीणा के सात स्वर बताए हैं—(१) निषाद, (२) ऋषभ, (३) गान्धार, (४) षड्ज, (५) मध्यम, (६) धैवत, (७) पंचम (१।३।१)। हस्ति के बृंहित-जैसे स्वर को निषाद, बैल जैसे स्वर को ऋषभ, धनुष्टकार-जैसे स्वर को गान्धार, मयूर-जैसे स्वर को षड्ज, क्रौंच-जैसे स्वर को मध्यम, घोडे के ह्रेषित जैसे स्वर को धैवत तथा कोयल के कूकने-जैसे स्वर को पंचम स्वर कहते हैं।[2]

वाद्य

यशस्तिलक में वाद्यविषयक बहुमूल्य और प्रचुर सामग्री के उल्लेख हैं। सब का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है

आतोद्य

यशस्तिलक में वाद्यों के लिए सामान्य शब्द आतोद्य आया है। सोमदेव ने लिखा है कि नन्दिगण आतोद्य के द्वारा सरस्वती का पूजन करते थे।[3] नाट्यशास्त्र तथा अमरकोष में भी चार प्रकार के वाद्यों के लिए सम्मिलित शब्द आतोद्य ही दिया है।[4]

---

१ एष हि किल निसर्गकलकण्ठनया शुष्कानपि तरून् पल्लवयतीत्यनेकश कथित कुमारेण। गृणन्ति च कलासु गीतस्यैव परं महिमानमुपाध्याया। सुप्रयुक्तं हि गीतं स्वभावदुर्भगमपि नरं करोति युवतीनां नयनमनोविश्रामस्थानम्। भवति कुरूपोऽपि गायनः कामदेवादपि कामिनीनां प्रियदर्शनः। गानेन हि दुर्दर्शा अपि योषितः पाशेनाकृष्टा इव सुतरां समागच्छन्ते। कुशले कृतप्रयोगं हि गेयमपनाय मानग्रहमपरमेव कंचिदनन्यजनसाध्यमाधिमुत्पादयति मनस्विनीनाम्।—पृ० ५५ उत्त०

२ अमरकोष, सं० टी० १।३।१

३ आतोद्येन च नंदिभिः। पृ० ३१६

४ नाट्यशास्त्र २८।१, अमरकोष १। १। ६

घन, सुपिर, तत और अवनद्ध, ये चार प्रकार के वाद्य हैं।[५] जो वाद्य ठोकर लगा कर बजाये जाते है, वे घन कहलाते हैं। जैसे घटा आदि। जो वाद्य वायु के दबाव से बजाये जाते हैं, वे सुपिर कहलाते हैं। जैसे वेणु आदि। जो वाद्य तन्तु, तार या तांत लगाकर बनाये जाते हैं, वे तत कहलाते हैं। जैसे वीणा आदि। और जो वाद्य चमडे से मढे होते हैं, वे अवनद्ध कहलाते हैं। जैसे मृदग आदि।

यशस्तिलक में विभिन्न प्रसगो में तेईस प्रकार के वादित्रो के उल्लेख हैं[६]:

१ शख,	२ काहला,	३ दुदुभि,	४ पुष्कर,
५ ढक्का,	६ आनक,	७ भम्भा,	८ ताल,
९ करटा,	१० त्रिविला,	११ डमरुक,	१२ रुजा,
१३ घटा,	१४ वेणु,	१५ वीणा,	१६ झल्लरी,
१७ वल्लकी,	१८ पणव,	१९ मृदग,	२०. भेरी,
२१ तूर,	२२ पटह,	२३ डिण्डिम।	

इनमें से प्रथम सोलह का उल्लेख युद्ध के प्रसग में एक साथ भी हुआ है। इनके विषय में विशेष जानकारी निम्नप्रकार है

१. शख

यशस्तिलक में शख का उल्लेख कई बार हुआ है। युद्ध के प्रसग में सोमदेव ने लिखा है कि शख बजे तो दशो दिशाएँ मुखरित हो उठी।[७] एक प्रसग में सन्ध्याकाल में मृदग और आनक के साथ शख के कोलाहल की चर्चा है।[८] एक स्थान पर पूजा के अवसर पर अन्य वाद्यों के साथ शख का भी उल्लेख है (पृष्ठ ३८४ उत्त०)।

शख की सर्वश्रेष्ठ जाति पाञ्चजन्य मानी जाती है। भगवद्गीता के अनुसार श्रीकृष्ण के हाथ में पाञ्चजन्य शख रहता था। सोमदेव ने इन दोनो तथ्यो का उल्लेख किया है।[९]

सगीतशास्त्र में शख की गणना सुषिर वाद्यों में की जाती है। यह शख नामक जलकीट का आवरण है और जलस्थानो – विशेषकर समुद्रो मे उपलब्ध

---

५ घनसुपिरततावनद्धवादनाद।—पृ० ३८४ उत्त०

६ पृ० ५८० ८१

७ तारतर स्वनत्सु मुखरितनिखिलाशामुखेषु शखेषु।– पृ० ५८०

८ मृदगानकशखकोलाहले।–पृ० ११ उत्त०

९ कम्बुकुलमान्ये च पाञ्चजन्ये कृष्णकरपरिग्रहनिरवधीनि व्यधादहानि।– पृ० ७९

होता है। वाद्यों में शंख ही ऐसा है जो पूर्णतया प्रकृति द्वारा निर्मित है और अपने मौलिक रूप में भी वादन योग्य होता है। संगीत-पारिजात में लिखा है कि वाद्योपयोगी शंख का पेट बारह अंगुल का होता है तथा मुखविवर बेर के बराबर। वादन-सुविधा के लिए मुखविवर पर धातु का कलश लगाकर बनाये गये भी शंख उपलब्ध होते हैं। भारतवर्ष में शंख का प्रयोग प्राचीन काल से चला आया है और आज भी मंगल कार्यों के अवसर पर शंख फूंकने का रिवाज है।

साधारणतया शंख से एक ही स्वर निकलता है, किन्तु इससे भी राग-रागनियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं। श्री चुन्नीलाल शेष ने अपने एक लेख में लिखा है कि मैसूर राज्य के राज्यगायक स्वर्गीय पण्डित प्रभुदयाल ने काकरौली नरेश गोस्वामी श्री ब्रजभूषणलाल जी महाराज के सम्मुख इस वाद्य का प्रदर्शन किया था और उससे सब राग-रागनियाँ निकाल कर सुनायी थीं। इस शंख के पेट का परिमाण बारह अंगुल के ही लगभग था। मुखविवर पर मोम से स्वर्ण कलश चिपकाया हुआ था। मुख और स्वर्ण कलश के बीच मकड़ी के जाले की झिल्ली लगी थी।[10]

२. काहला

काहला का उल्लेख यशस्तिलक में दो बार हुआ है। एक प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि जब काहलाएँ बजने लगीं तो उनके नाद की प्रतिध्वनि से दिशाएँ पर्वत तथा गुफाएँ शब्दायमान हो उठीं।[11] संस्कृत टीकाकार ने काहला का अर्थ धतूरे के फूल की तरह मुँहवाली भेरी किया है।[12]

संगीतरत्नाकार में भी काहला को धतूरे के फूल की तरह मुँहवाला वाद्य कहा गया है[13] किन्तु यशस्तिलक के टीकाकार का काहला को भेरी कहना उपयुक्त नहीं, क्योंकि भेरी स्पष्ट ही अवनद्ध वाद्य है और काहला सुषिर वाद्य। जातक साहित्य तथा जैन कल्पसूत्र (पृ० १२०) में भेरी का उल्लेख अवनद्ध वाद्यों में हुआ है।

काहला तीन हाथ लम्बा, छिद्र युक्त तथा धतूरे के फूल की तरह मुँहवाला सुषिर वाद्य है। यह सोना, चाँदी तथा पीतल का बनाया जाता है। इसके

---

१० चुन्नीलाल शेष— अष्टछाप के वाद्य यन्त्र, ब्रजमाधुरी, वर्ष १३, अंक ४

११ ध्मायमानासु प्रतिशब्दनादितदिगन्तरगिरिगुहामण्डलासु।—पृ० ५८०

१२ काहलासु धत्तूरपुष्पाकारमुखभेरिषु।—वही, सं० टी०

१३ धत्तूरकुसुमाकारवदनेन विराजिता।—६।७६४

बजाने से हा-हू शब्द होते हैं।[१४] उडीसा में अभी भी इस वाद्य का प्रचलन है।

३. दुदुभि

यशस्तिलक में दुदुभि का दो बार उल्लेख है। युद्ध के प्रसग मे लिखा है कि जब दुदुभि बजने लगे तो उनकी ध्वनि से समुद्र क्षोभित हो उठे।[१५] यशोधर के जन्म के समय भी दुदुभि बजने के उल्लेख हैं।[१६]

दुदुभि अवनद्ध वाद्य है। यह एक मुँहवाला तथा मुँह पर चमडा मढकर बनाया जाता है और डडे से पीट पीटकर बजाया जाता है।[१७] विशेषकर मगल और विजय के अवसर पर दुदुभि बजाने का प्राचीन काल से ही प्रचलन रहा है। वेदकाल में भूमि दुदुभि और दुदुभि का प्रचुर प्रचार था।

४. पुष्कर

पुष्कर का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख है। युद्ध के समय सुर-सुन्दरियो के कानो को कष्ट देने वाले पुष्कर बजे।[१८] श्रुतसागर ने पुष्कर का अर्थ एक स्थान पर मर्दल और दूसरे स्थान पर मृदग किया है।[१९]

अवनद्ध वाद्यो के लिए पुष्कर का सामान्य अर्थ में प्रयोग होता है। कभी-कभी अवनद्ध वाद्य विशेष के लिए भी प्रयोग किया जाता है। सोमदेव ने सामान्य अर्थ में प्रयोग किया है। नाट्यशास्त्र में मृदग, पणव और दर्दुर को पुष्करत्रय कहा गया है।[२०] सगीतरत्नाकरकार ने भी उसी का सन्दर्भ दिया है।[२१] महाभारत में पुष्कर का सामान्य अर्थ में प्रयोग हुआ है।[२२] कालिदास ने

---

१४ ताम्रजा राजती यद्वा काचनी सुषिरान्तरा।
धत्तूरकुसुमाकारवदनेन विराजिता॥
हस्तत्रयमिता दैर्घ्ये काहला वाद्यते जनै।
हाहूवर्णवती वीरविरुदोच्चारकारिणी॥
—सगीतरत्नाकर ६।७६४-६५

१५ ध्वनत्सु क्षोभिताम्भोनिधिनाभिषु दुन्दुभिषु।—पृ० ५८०

१६ दुन्दुभिध्वनिरुत्तस्थे।—पृ० २२८

१७ सगीतरत्नाकर, ६।११४५-४७

१८ शब्दायमानेषु सुरसुन्दरीश्रवणारुन्तुरेषु पुष्करेषु।—पृ० ५८१

१९ पुष्करेषु मर्दलेषु।—वही, स० टी०
पुष्करवत् मृदगमुखवत्।—पृ० २२६ उत्त०, स० टी०

२० नाट्यशास्त्र ३३।२४, २५

२१ प्रोक्त मृदगशब्देन मुनिना पुष्करत्रयम्।—स० र० ६।१०२७

२२ अवादयन् दुदुभींश्च शतशश्चैव पुष्करान्।—महा० ६।१३।१०३

होता है। वाद्यों में शंख ही ऐसा है जो पूर्णतया प्रकृति द्वारा निर्मित है और अपने मौलिक रूप में भी वादन योग्य होता है। संगीत-पारिजात में लिखा है कि वाद्योपयोगी शंख का पेट बारह अंगुल का होता है तथा मुखविवर बेर के बराबर। वादन सुविधा के लिए मुखविवर पर धातु का कलश लगाकर बनाये गये भी शंख उपलब्ध होते हैं। भारतवर्ष में शंख का प्रयोग प्राचीन काल से चला आया है और आज भी मंगल कार्यों के अवसर पर शंख फूंकने का रिवाज है।

साधारणतया शंख से एक ही स्वर निकलता है, किन्तु इससे भी राग-रागनियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं। श्री चुन्नीलाल शेष ने अपने एक लेख में लिखा है कि मैसूर राज्य के राज्यगायक स्वर्गीय पण्डित प्रभुदयाल ने कांकरौली नरेश गोस्वामी श्री *व्रजभूषणलाल जी महाराज के सम्मुख* इस वाद्य का प्रदर्शन किया था और उससे सब राग-रागनियाँ निकाल कर सुनायी थी। इस शंख के पेट का परिमाण बारह अंगुल के ही लगभग था। मुखविवर पर मोम से स्वर्ण कलश चिपकाया हुआ था। मुख और स्वर्ण कलश के बीच मकडी के जाले की *झिल्ली लगी थी*।[१०]

२. काहला

काहला का उल्लेख *यशस्तिलक* में दो बार हुआ है। एक प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि जब काहलाएँ बजने लगीं तो उनके नाद की प्रतिध्वनि से दिशाएँ पर्वत तथा गुफाएँ शब्दायमान हो उठीं।[११] संस्कृत टीकाकार ने काहला का अर्थ धतूरे के फूल की तरह मुँहवाली भेरी किया है।[१२]

संगीतरत्नाकार में भी *काहला को धतूरे के फूल की तरह मुँहवाला वाद्य* कहा गया है[१३] किन्तु यशस्तिलक के टीकाकार का काहला को भेरी कहना उपयुक्त नहीं, क्योंकि भेरी स्पष्ट ही अवनद्ध वाद्य है और काहला सुषिर वाद्य। जातक साहित्य तथा जैन कल्पसूत्र (पृ० १२०) में भेरी का उल्लेख अवनद्ध वाद्यों में हुआ है।

काहला तीन हाथ लम्बा, छिद्र युक्त तथा धतूरे के फूल की तरह मुँहवाला सुषिर वाद्य है। यह सोना, चाँदी तथा पीतल का बनाया जाता है। इसके

---

१० चुन्नीलाल शेष– अष्टछाप के वाद्य-यन्त्र, *व्रजमाधुरी*, वर्ष १३, अंक ४

११ ध्मायमानासु प्रतिशब्दनादितदिगन्तरगिरिगुहामण्डलासु।—पृ० ५८०

१२ काहलासु धत्तूरपुष्पाकारमुखभेरिषु।–वही, सं० टी०

१३ धत्तूरकुसुमाकारवदनेन विराजिता।–६।७९४

बजाने से हा-हू शब्द होते हैं।[१४] उडीसा में अभी भी इस वाद्य का प्रचलन है।

३. दुदुभि

यशस्तिलक में दुदुभि का दो बार उल्लेख है। युद्ध के प्रसग मे लिखा है कि जब दुदुभि बजने लगे तो उनकी ध्वनि से समुद्र क्षोभित हो उठे।[१५] यशोधर के जन्म के समय भी दुदुभि बजने के उल्लेख हैं।[१६]

दुदुभि अवनद्ध वाद्य है। यह एक मुँहवाला तथा मुँह पर चमडा मढकर बनाया जाता है और डडे से पीट पीटकर बजाया जाता है।[१७] विशेपकर मगल और विजय के अवसर पर दुदुभि बजाने का प्राचीन काल से ही प्रचलन रहा है। वेदकाल में भूमि दुदुभि और दुदुभि का प्रचुर प्रचार था।

४. पुष्कर

पुष्कर का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख है। युद्ध के समय सुर-सुन्दरियो के कानों को कष्ट देने वाले पुष्कर बजे।[१८] श्रुतसागर ने पुष्कर का अर्थ एक स्थान पर मर्दल और दूसरे स्थान पर मृदग किया है।[१९]

अवनद्ध वाद्यों के लिए पुष्कर का सामान्य अर्थ में प्रयोग होता है। कभी-कभी अवनद्ध वाद्य विशेप के लिए भी प्रयोग किया जाता है। सोमदेव ने सामान्य अर्थ में प्रयोग किया है। नाट्यशास्त्र में मृदग, पणव और दर्दुर को पुष्करत्रय कहा गया है।[२०] सगीतरत्नाकरकार ने भी उसी का सन्दर्भ दिया है।[२१] महाभारत में पुष्कर का सामान्य अर्थ में प्रयोग हुआ है।[२२] कालिदास ने

१४ ताम्रजा राजती यद्वा काचनी सुषिरान्तरा।
धत्तूरकुसुमाकारवदनेन विराजिता॥
हस्तत्रयमिता दैर्घ्ये काहला वाद्यते जनै।
हाहूवर्णवती वीरविरुदोच्चारकारिणी॥
—सगीतरत्नाकर ६।७९४-९५

१५ ध्वनत्सु क्षोभिताम्भोनिधिनाभिषु दुन्दुभिषु।—पृ० ५८०

१६ दुन्दुभिध्वनिरुत्तस्थे।—पृ० २२८

१७ सगीतरत्नाकर, ६।११४५-४७

१८ शब्दायमानेषु सुरसुन्दरीश्रवणारुन्तुरेषु पुष्करेषु।—पृ० ५८१

१९ पुष्करेषु मर्दलेषु।—वही, स० टी०
पुष्करवत् मृदगमुखवत्।—पृ० २२९ उत्त०, स० टी०

२० नाट्यशास्त्र ३३।२४, २५

२१ प्रोक्त मृदगशब्देन मुनिना पुष्करत्रयम्।—स० र० ६।१०२७

२२ अवादयन् दुदुभीश्च शतशश्चैव पुष्करान्।—महा० ६।१३।१०३

भी रघुवंश और मेघदूत में पुष्कर का उल्लेख किया है।[२३]

५. ढक्का

यशस्तिलक मे ढक्का का उल्लेख युद्ध के प्रसंग में हुआ है। ढक्काएँ पीटी जाने लगी तो सेना के हाथियो के वच्चे डर गये।[२४] श्रुतसागर ने ढक्का का अर्थ ढोल किया है।[२५]

ढक्का या ढोल एक अवनद्ध वाद्य है। काशिकाकार ने भी अवनद्ध वाद्यों में इसका उल्लेख किया है।[२६] यह लकडी का बना वर्तुलाकार वाद्य है, जिसके दोनो मुँह पर चमडा मढा रहता है।[२७] आजकल भी ढक्का या ढोल का प्रचलन है। बडे ढोल डण्डे से पीटकर बजाये जाते है, छोटे ढोल हाथ से भी बजाये जाते है। छोटे ढोल को ढोलकी या ढुलकिया कहा जाता है।

६. आनक

आनक का यशस्तिलक में कई बार उल्लेख है। श्रुतसागर ने आनक का अर्थ पटह किया है।[२८]

आनक एक मुँहवाला अवनद्ध वाद्य है, जिसके बजाने से मेघ या समुद्र के गर्जन के समान भयानक आवाज होती है। सोमदेव ने लिखा है कि प्रलयकाल के कारण क्षुभित सप्तार्णव के शब्द की तरह घोर शब्द करनेवाले आनक बजे।[२९] संस्कृत में आनक की व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी—आनयति उत्साहवत करोति, अन्-णिच्-ण्वुल। प्राचीन साहित्य में आनक के अनेक उल्लेख मिलते हैं। महाभारत में आनक का कई बार उल्लेख है।[३०] आजकल के नौबत या नगारा से इसकी पहचान करना चाहिए।

---

२३ तूर्यैराहतपुष्करै।—रघुवंश १७।११
पुष्करेष्वाहतेषु।—मेघदूत ६८

२४ प्रहितासु विनाशितसैन्यसामजचिक्कासु ढक्कासु।—पृ० ५८०
(चिक्का करिशिशव, श्रीदेव)

२५ ढक्कासु ढोल्लवादित्रेषु।—वही, सं० टी०

२६ काशिका ४।२।३५

२७ स० र० ६।१०६० ६४

२८ महानकेषु महापटहेषु।—पृ० ३८४ हि०

२९ प्रलयकालक्षुभितसप्तार्णवघोरानकस्वानविभीविनभुवनान्तरालम्।—पृ० ४४

३० महाभारत ३।१५।७, १। २१४। ७५

७. झम्भा

यशस्तिलक में झम्भा का दो बार उल्लेख है। एक प्रसग में सोमदेव ने लिखा है कि जभाती भुजग-भामिनियो में खलबली मचानेवाली झम्भाएँ बजीं।[31] श्रुतसागर ने झम्भा का अर्थ वराग या सुषिर वादित्र विशेष किया है।[32]

यशस्तिलक में झम्भा का उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है। सगीतरत्नाकर या सगीतराज में इसके उल्लेख नहीं मिलते। प्राचीन साहित्य में भी इसके अत्यल्प उल्लेख है। रायपसेणियसुत्त में अवनद्ध वाद्यो के साथ झम्भा का उल्लेख मिलता है।[33] श्रुतसागर ने स्पष्ट शब्दो में इसे सुषिर वाद्य कहा है। वास्तव में सर्पों को जगाने-रिझाने म अभी तक सुषिर वाद्यो का ही प्रयोग देखा जाता है। इसलिए सोमदेव के उल्लेख और श्रुतसागर की व्याख्या से झम्भा को सुषिर वाद्य मानना चाहिए, किन्तु रायपसेणियसुत्त के उल्लेखों के आधार पर विचार करने से ज्ञात होता है कि यह एक अवनद्ध वाद्य ही था। सोमदेव के उल्लेख के विषय में कहा जा सकता है कि सोमदेव ने झम्भा को सर्पों को जगाने या रिझानेवाला वाद्य नहीं कहा, प्रत्युत उनमें खलबली पैदा करनेवाला कहा है। यद्यपि यह ठीक है कि सर्पों को रिझाने आदि में अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग नहीं देखा जाता, किन्तु यह तो सम्भव है ही कि उनके द्वारा खलबली पैदा की जा सकती है। इस दृष्टि से सोमदेव के उल्लेख से भी झम्भा को अवनद्ध वाद्य माना जा सकता है, पर उस स्थिति में श्रुतसागर की व्याख्या गलत होगी।

८. ताल

ताल का उल्लेख यशस्तिलक में दो वार हुआ है। युद्ध के प्रसग में लिखा है कि डरे हुए हाथियो ने कान फडफडाये तो तालो की आवाज दुगुनी हो गयी।[34]

घन वाद्यों में ताल का सर्वप्रथम उल्लेख किया जाता है।[35] ताल का जोडा होता है। ये छ हअगुल व्यास के, गोल कांसे के बने हुए बीच में से दो अगुल गहरे होते हैं। मध्यमें छेद होता है, जिसमें एक डोरी द्वारा वे जुडे रहते है और दोनों हाथो से पकडकर बजाये जाते हैं। ताल की ध्वनि बहुत देर तक गूँजती है, सोमदेव ने इसीलिए इसका प्रगुणित विशेषण दिया है।

---

३१ सजिताप्नु विजृम्भितभुजगभामिनीसरम्भासु झम्भासु।-पृ० ५८१
३२ झम्भासु वरांगासु सुषिरवादित्रविशेषेषु।—वही, स० टी०
३३ रायपसेणियसुत्त, पृ० ६२, ६८
३४ प्रगुणितेषु भयोत्तम्भिताभरकरिकर्णतालेषु।—पृ० ५८१
३५ सगीतराज, ३।३।४।६-१६

९. करटा

यशस्तिलक में करटा का उल्लेख युद्ध के प्रसंग में है। सोमदेव ने लिखा है कि रणवीरों को उत्साहित करने वाली करटाएँ बजी।[३६] करटा का अर्थ श्रुतसागर ने वादित्र विशेष किया है।

करटा एक प्रकार का अवनद्ध वाद्य है। इसका खोल असन वृक्ष की लकडी का दो मुँह का बनता है। दोनों ओर चौदह अंगुल वर्तुलाकार चमडे से मढा जाता है। यह कमर में बांध कर अथवा कन्धे पर लटका कर दोनों हाथों से बजाया जाता है।[३७]

१०. त्रिविला

यशस्तिलक में त्रिविला का दो बार उल्लेख है। युद्ध के प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि समरदेवता की छाती फुलाने वाली त्रिविलाएँ विलंबित लय में बज रही थीं।[३८]

त्रिविली को संगीतरत्नाकर में अवनद्ध वाद्यों में गिनाया है। त्रिविला और त्रिविली एक ही वाद्य ज्ञात होता है। यह दोनों ओर चमडे से मढा तथा मध्य में मुष्टिग्राह्य होता है। सूत की डोरियों से कषाव लाया जाता है। इसके मुँह सात अंगुल के होते हैं और दोनों ओर हाथों से बजाया जाता है।[३९] यह डमरुक से मिलता-जुलता प्रकार है।

११. डमरुक

डमरुक का यशस्तिलक में युद्ध के प्रसंग में एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने लिखा है कि निरन्तर बज रहे डमरुओं की ध्वनि सुनते सुनते युद्ध में राक्षसियाँ जमुहाई लेने लगीं।[४०]

डमरुक का प्रचलन आज भी है और इसे डमरु कहा जाता है। डमरु दोनों ओर चमडे से मढा हुआ काठ का वाद्य है जो बीचमें पकडने के लिए पतला रहता है। बजाने के लिए दोनों ओर रस्सी में छोटी छोटी लकडियाँ बंधी रहती हैं। डमरु बीच में पकडकर हिला हिलाकर बजाते हैं।

---

३६ प्रोत्तालितासु रणरभोत्साहितसुभटघटासु करटासु।–पृ० ५८१

३७ संगीतरत्नाकर ६।१०७८ ८४

३८ विनसर्न्तीसु विलम्बलयप्रमोदितसमरदेवतावक्षःस्थलासु त्रिविलासु।–पृ० ५८१

३९ संगीतरत्नाकर ६।११४०–४४

४० प्रवर्तितेषु निरन्तरध्वनिप्रवर्तिताखचरराक्षसीरेषु डमरुकेषु।–पृ० ५८१

१२. रुंजा

रुंजा का यशस्तिलक में केवल एक बार उल्लेख है। युद्ध के प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि रुंजाओं की बहुत देर तक की गूंज से वीरलक्ष्मी के गृह निकुंज जर्जरित हो गये।[४१]

रुंजा की गणना अवनद्ध वाद्यों में की जाती है। यह काठ अथवा धातु का अठारह अंगुल लम्बा तथा ग्यारह अंगुल के दो मुंह वाला वाद्य है। मुंह पर कोमल चमड़ा मढ़ा जाता है तथा दोनों ओर के मुखों का चमड़ा डोरी से कसा हुआ होता है, जिसमें छल्ले या कड़े पड़े रहते हैं। इसके दाहिने मुख को एक टेढ़े बांस से घिस कर तथा बायें को एक लकड़ी से पीट कर बजाया जाता है।[४२]

१३. घंटा

घंटे का उल्लेख भी युद्ध के प्रसंग में है। सोमदेव ने लिखा है कि शत्रु-कटकों की चेष्टाओं को लूटने वाले जयघंटे बजे।[४३]

घंटा एक प्रकार का घन वाद्य कहलाता है।[४४] इसका प्रचलन अब भी है। विजय या युद्ध के अवसर पर जो घंटा बजाया जाता था, उसे जयघंटा कहते थे। घंटे छोटे-बड़े अनेक प्रकार के बनते हैं।

१४. वेणु

यशस्तिलक में वेणु का उल्लेख दो बार हुआ है।[४५] यह एक सुषिर वाद्य है जो बांस में छिद्र करके बनाया जाता है। बांस का बनने के कारण ही इसे वेणु कहा गया। वेणु के उल्लेख प्राचीन साहित्य में बहुत मिलते हैं। आज भी इसका प्रचलन है और इसे बांसुरी कहा जाता है।

१५. वीणा

यशस्तिलक में वीणा का एक बार उल्लेख है।[४६] संगीत शास्त्र में तत

---

४१ स्फारितासु प्रदीर्घकूजितजर्जरितवीरलक्ष्मीनिकेतनिकुंजासु रुंजासु।-पृ० ५८१

४२ संगीतरत्नाकर ६।११०२–८
संगीतराज ३, ४, ४, ६८–७४
संगीतपारिजात २, १०७–१०६

४३ जयन्तीषु विद्विष्टकटकचेष्टितलुण्ठासु जयघण्टासु।-पृ० ५८२

४४ संगीतरत्नाकर ६।१५

४५ पृ० ५८२, पृ० ३८४ उत्त०

४६ पृ० ५८१

वाद्यो के लिए वीणा नाम का सामान्य प्रयोग होता है। सोमदेव ने भी सामान्य अर्थ में प्रयोग किया है। वीणाएँ तार तथा बजाने के प्रकार भेद से अनेक प्रकार की होती हैं। सगीतरत्नाकर में दस भेद आये है।

१६. झल्लरी

झल्लरी का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख है।[४७] भरत ने नाट्यशास्त्र मे झल्लरी का उल्लेख किया है।[४८] सगीतरत्नाकर में इसे अवनद्ध वाद्यो में गिनाया गया है। यह एक ओर चमडे से मढा वाद्य है, जो बायें हाथ में पकडकर दायें हाथ से बजाया जाता है।[४९] इसके बहुत छोटे आकार को भाण कहते है।

अहोबल ने झालर का उल्लेख किया है। श्री चुन्नीलाल शेप ने झालर और झल्लरी को एक माना है।[५०] किन्तु यह मानना ठीक नहीं। झालर एक प्रकार का घन वाद्य है जब कि झल्लरी अवनद्ध वाद्य।

१७ वल्लकी

यशस्तिलक में वल्लकी का एक बार उल्लेख है।[५१] सगीतरत्नाकर में भी इसका उल्लेख आता है, किन्तु विशेष विवरण नही है।[५२]

वल्लकी लौकी शब्द का अपभ्रंश रूप प्रतीत होता है। गोल लौकी या तूंबी लगाकर बनायी गयी वीणा विशेष को वल्लकी कहा जाता था।

१८. पणव

यशस्तिलक में पणव का एक बार उल्लेख है।[५३] यह एक प्रकार का छोटा ढोल है। भरत ने अवनद्ध वाद्यों में इसका उल्लेख किया है।[५४] बाद में इसका लोप हो गया लगता है। सगीतरत्नाकर तथा सगीतराज में इसके उल्लेख नहीं है।

---

४७ पृ० ५८२, पृ० ३८४ उत्त०

४८ नाट्यशास्त्र ३३।१३, १६

४९ सगीतरत्नाकर ६।११३८

५० ब्रजमाधुरी, वर्ष १३ अक ४, पृ० ४७

५१ पृ० ५८१

५२ सगीतरत्नाकर ३।२१३

५३ पृ० ३८४ उत्त०

५४ नाट्यशास्त्र ३३।१०, १२, १६, ५८

१९. मृदग

सोमदेव ने मृदग का दो वार उल्लेख किया है।[५५] भरत ने इसे पुष्करत्रय में गिनाया है।[५६] इसका खोल मिट्टी का बनता है इसीलिए इसका नाम मृदग पडा। इसके दोनो मुँह चमडे से मढे जाते हैं। मृदग खडे होकर गले में डालकर तथा बैठकर सामने रखकर हाथो से बजाते हैं। सगीतरत्नाकर में मर्दल का वर्णन करते हुए कहा है कि मर्दल के ही प्रकार विशेष को मृदग कहते हैं।[५७] बगाल में अभी जिसे खोल कहा जाता है, उसी से मृदग की पहचान करना चाहिए।

२०. भेरी

सोमदेव ने भेरी का एक बार उल्लेख किया है।[५८] यह मृदग जाति का वाद्य है जो तीन हाथ लम्बा दो मुँह वाला, धातु का बनता है। मुख का व्यास एक हाथ का होता है। दोनो मुँह चमडे से मढे होकर डोरियों से कसे रहते हैं और उनमें कासे के कडे पडे रहते है। सगीतरत्नाकर में लिखा है कि यह तांबे की बनी तीन वालिस्त लम्बी होती है। यह दाहिनी ओर लकडी तथा बायीं ओर हाथ से बजायी जाती है।[५९]

२१. तूर्य या तूर

यशस्तिलक में तूर्य के लिए तूर्य[६०] और तूर[६१] दो शब्द आये है। यशोधर के राज्याभिषेक के समय तूर्य बजाये गये।

तूर एक प्रकार का सुषिर वाद्य है। आजकल इसे तुरही कहा जाता है। तुरही के अनेक रूप देखने में आते है। दो हाथ से चार हाथ तक की तुरही बनती है। इसका रूप भी कलात्मक होता है।

---

५५ पृ० ४८६, पृ० ३८४ उत्त०

५६ नाट्यशास्त्र ६३।१४–१५

५७ सगीतरत्नाकर ६।१०२७

५८ पृष्ठ ३८४ उत्त०

५९ सगीतरत्नाकर ६।११४८–५७

६० सतूर्यनिनदम्।–पृ० १८४ हि०

६१ तूरस्वर परुष।–पृ० ६३ हि०
शवतूरम्।–पृ० वही

वाद्यो के लिए वीणा नाम का सामान्य प्रयोग होता है। सोमदेव ने भी सामान्य अर्थ में प्रयोग किया है। वीणाएँ तार तथा बजाने के प्रकार भेद से अनेक प्रकार की होती है। सगीतरत्नाकर में दस भेद आये है।

१६ झल्लरी

झल्लरी का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख है।[४७] भरत ने नाट्यशास्त्र मे झल्लरी का उल्लेख किया है।[४८] सगीतरत्नाकर में इसे अवनद्ध वाद्यो में गिनाया गया है। यह एक ओर चमडे से मढा वाद्य है, जो बायें हाथ में पकडकर दायें हाथ से बजाया जाता है।[४९] इसके बहुत छोटे आकार को भाण कहते हैं।

अहोबल ने झालर का उल्लेख किया है। श्री चुन्नीलाल शेप ने झालर और झल्लरी को एक माना है।[५०] किन्तु यह मानना ठीक नहीं। झालर एक प्रकार का घन वाद्य है जब कि झल्लरी अवनद्ध वाद्य।

१७ वल्लकी

यशस्तिलक में वल्लकी का एक बार उल्लेख है।[५१] सगीतरत्नाकर में भी इसका उल्लेख आता है, किन्तु विशेष विवरण नहीं है।[५२]

वल्लकी लौकी शब्द का अपभ्रंश रूप प्रतीत होता है। गोल लौकी या तूंबी लगाकर बनायी गयी वीणा विशेप को वल्लकी कहा जाता था।

१८. पणव

यशस्तिलक में पणव का एक बार उल्लेख है।[५३] यह एक प्रकार का छोटा ढोल है। भरत ने अवनद्ध वाद्यों में इसका उल्लेख किया है।[५४] बाद में इसका लोप हो गया लगता है। सगीतरत्नाकर तथा सगीतराज में इसके उल्लेख नहीं है।

---

४७ पृ० ५८२, पृ० ३८४ उत्त०
४८ नाट्यशास्त्र ३३।१३, १६
४९ सगीतरत्नाकर ६।११३८
५० ब्रजमाधुरी, वर्ष १३ अंक ४, पृ० ४७
५१ पृ० ५८१
५२ सगीतरत्नाकर ३।२१३
५३ पृ० ३८४ उत्त०
५४ नाट्यशास्त्र ३३।१०, १२, १६, ५८

ज्येष्ठ या उत्तम, राजाओं के लिए मध्यम तथा जनसाधारण के लिए अवर प्रेक्षागृह की रचना होनी चाहिए।[६५] मध्यम प्रेक्षागृह में पाठ्य और गेय अधिक सरलता से सुने जा सकते हैं। इसलिए अन्य दोनों की अपेक्षा मध्यम प्रेक्षागृह अधिक अच्छा है।[६६]

अभिनय

नाट्यशाला के प्रसंग में अभिनय का भी उल्लेख यशस्तिलक (३२०।३) में आया है। यशोधर ने प्रयोगभंग तथा अनेक प्रकार के विचित्र आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक अभिनय करने में सिद्धहस्त (प्रयोगभंगीविचित्राभिनयतन्त्रैर्भरतपुत्रैः, ३२०।३) अभिनेताओं के साथ नाट्यशाला में अभिनय देखा।

रंगपूजा

अभिनय प्रारम्भ होने के पूर्व सर्वप्रथम रंगपूजा की जाती थी। रंगपूजा न करने वाले को तिर्यग्योनि का भागी तथा करने वाले को स्वर्गप्राप्ति और शुभ अर्थ प्राप्ति होना कहा गया है।[६७] यशस्तिलक में रंगपूजा का विस्तार से वर्णन है। सम्राट् यशोधर के नाट्यशाला में पहुँचने पर रंगपूजा प्रारम्भ होती है (पृ० ३१८-३२२, हि)। इस प्रसंग में सरस्वती को सम्बोधित करके आठ पद्य निबद्ध किये गये हैं (इति पूर्वरंगपूजाप्रक्रमप्रवृत्त सरस्वतीस्तुतिवृत्तम्, पृ० ३२२, हि)।

'सफेद कमल पर आसन, अधर पर मन्द स्मित, केतकी के पराग से पिंजरित सुभग अंगयष्टि, धवल दुकूल, चारुलोचन, सिर पर जटाजूट, कानों में बाल चन्द्रमा के समान अवतंस, श्वेतकमलों का हार, एक हाथ में ध्यान मुद्रा, दूसरे में अक्षमाला, तीसरे में पुस्तक और चौथा हाथ वरद मुद्रा में।'[६८]—यह है सरस्वती का पूर्ण स्वरूप। भरत ने नाट्यशास्त्र में रंगपूजा के प्रसंग में देवी-देवताओं की जो लम्बी सूची दी है, उसमें सरस्वती भी है। प्राचीन साहित्य तथा पुरातत्त्व में सरस्वती के किंचित भिन्न-भिन्न अनेक रूप मिलते हैं।[६९] विद्या

---

६५ नाट्यशास्त्र, २।७, ८, ११

६६ वही, २।२१

६७ नाट्यशास्त्र, १।१२२–१२६

६८ यश० पृ० ३१८, श्लो० २६२–६३, हि०

६९ भट्टशाली–द आइकोनोग्राफी ऑव् बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मेनिकल स्कल्पचर्स इन द ढाका म्युजियम, पृ० १८१–१८६

२२. पटह

यशस्तिलक में पटह का एक बार उल्लेख है।[६२] यह एक प्रकार का अवनद्ध वाद्य है। सगीतपारिजात में इसे ढोलक कहा है। सगीतरत्नाकर में इसके मार्ग पटह और देशी पटह दो भेद आये हैं और दोनो का ही विस्तृत विवेचन किया गया है।[६३]

२३. डिण्डिम

डिण्डिम का यशस्तिलक में एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने इसकी ध्वनि को व्यालो को जगानेवाली कहा है।[६४]

डिण्डिम डमरु की तरह का वाद्य है। इसका भाड मिट्टी का बना होता है और दोनो मुँहों पर पतली झिल्ली मढी जाती है। झिल्ली को किसी डोर से नहीं बाँधा जाता किन्तु वह मुख पर सरेस जैसी किसी चिपकनेवाली वस्तु से चिपकी रहती है। बजाने के लिए बीच मे डोरा बँधा रहता है जिसके अन्त में दो छोटी गाठें होती है। आजकल इसे डिमडिमी कहते है।

नृत्य

यशस्तिलक में नृत्य या नाट्यशास्त्र से सबन्धित सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में है। सबका विवेचन निम्नप्रकार है

नाट्यशाला

दरबार से उठकर सम्राट् नाटयशाला में पहुँचे (कदाचित् नाटयशालासु, २१७।३, हि०)। नाटयशाला का फर्श कामिनियो के चरणालक्तक से राग-रंजित हो रहा था (कामिनीजनचरणालक्तकरसरागरजितरगतलासु, ३१६।३, हि०)।

भरतमुनि ने नाटक खेलने के लिए नाटयशाला, नाटयमण्डप या प्रेक्षागृह का विधान किया है। ये नाटयमण्डप तीन प्रकार के बनाये जाते थे —(१) विकृष्ट, (२) चतुरश्र और (३) त्र्यश्र। इन तीनो का प्रमाण क्रम से उत्तम, मध्यम और अवर (जघन्य) होता था। भरत ने लिखा है कि देवो के लिए

---

६२. पृ० ५८

६३ सगीतरत्नाकर ६।८०५

६४ डिण्डिमध्वनिरिव व्यसनव्यालप्रबोधनकर। —पृ० ६७ उत्त०

ज्येष्ठ या उत्तम, राजाओं के लिए मध्यम तथा जनसाधारण के लिए अवर प्रेक्षागृह की रचना होनी चाहिए।[६५] मध्यम प्रेक्षागृह में पाठ्य और गेय अधिक सरलता से सुने जा सकते हैं। इसलिए अन्य दोनों की अपेक्षा मध्यम प्रेक्षागृह अधिक अच्छा है।[६६]

अभिनय

नाट्यशाला के प्रसंग में अभिनय का भी उल्लेख यशस्तिलक (३२०।३) में आया है। यशोधर ने प्रयोगभंग तथा अनेक प्रकार के विचित्र आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक अभिनय करने में सिद्धहस्त (प्रयोगभंगीविचित्राभिनयनर्न्नैर्भरतपुत्रैं, ३२०।३) अभिनेताओं के साथ नाट्यशाला में अभिनय देखा।

रंगपूजा

अभिनय प्रारम्भ होने के पूर्व सर्वप्रथम रंगपूजा की जाती थी। रंगपूजा न करने वाले को तिर्यग्योनि का भागी तथा करने वाले को स्वर्गप्राप्ति और शुभ अर्थ प्राप्ति होना कहा गया है।[६७] यशस्तिलक में रंगपूजा का विस्तार से वर्णन है। सम्राट् यशोधर के नाट्यशाला में पहुँचने पर रंगपूजा प्रारम्भ होती है (पृ० ३१८-३२२, हि)। इस प्रसंग में सरस्वती को सम्बोधित करके आठ पद्य निबद्ध किये गये हैं (इति पूर्वरंगपूजाप्रक्रमप्रवृत्त सरस्वतीस्तुतिवृत्तम्, पृ० ३२२, हि)।

'सफेद कमल पर आसन, अधर पर मन्द स्मित, केतकी के पराग से पिंजरित सुभग अंगयष्टि, धवल दुकूल, चारुलोचन, सिर पर जटाजूट, कानों में बाल चन्द्रमा के समान अवतंस, श्वेतकमलों का हार, एक हाथ में ध्यान मुद्रा, दूसरे में अक्षमाला, तीसरे में पुस्तक और चौथा हाथ वरद मुद्रा में।'[६८]—यह है सरस्वती का पूर्ण स्वरूप। भरत ने नाट्यशास्त्र में रंगपूजा के प्रसंग में देवी-देवताओं की जो लम्बी सूची दी है, उसमें सरस्वती भी है। प्राचीन साहित्य तथा पुरातत्त्व में सरस्वती के किंचित भिन्न-भिन्न अनेक रूप मिलते हैं।[६९] विद्या

---

६५ नाट्यशास्त्र, २।७, ८, ११

६६ वही, २।२१

६७ नाट्यशास्त्र, १।१२२–१२६

६८ यश० पृ० ३१८, श्लो० २६२–६३, हि०

६९ भट्टशाली–द आइकोनोग्राफी ऑव् बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मनिकल स्कल्पचर्स इन द ढाका म्युजियम, पृ० १८१–१८९

और सस्कृति की अधिष्ठात्री यह देवी वैदिक, जैन तथा बौद्ध तीनो धर्मों में समान रूप से पूज्य रही है (स्मिथ–जैन स्तूप आफ मथुरा, पृ० ३६)। ऋग्वेद से लेकर बाद के अधिकाश साहित्य में सरस्वती का वर्णन मिलता है (मेकडानल–वैदिक माइथोलोजी, पृ० ८७)।

नृत्य के भेद

यशस्तिलक में नृत्य के लिए कई शब्द आये है। जैसे नृत्य (६२०), नृत्त (३७७।१), नाटय (३२०), लास्य (३५५), ताण्डव (३२०) और विधि (२४६ उ०)। कतिपय अन्य शब्दों और वर्णनो से भी नृत्य-विधान का परिचय मिलता है।

नृत्य, नृत्त और नाटय शब्द देखने में समानार्थक से लगते हैं, किन्तु वास्तव में ऐसा नही है। धनजय ने इन तीनों के भेद को स्पष्ट किया है,[७०] जिसे आगे दिखाएँगे। लास्य और ताण्डव नृत्य के भेद है। विधि का अर्थ यशस्तिलक के सस्कृत टीकाकार ने नृत्य किया है। यह नाटचशास्त्र का कोई प्राचीन पारिभाषिक शब्द प्रतीत होता है, जिसका अब ठीक अर्थ नहीं लगता। सहस्रकूट-चैत्यालय को भरत पदवी की तरह विधि, लय और नाटच से युक्त कहा गया है (भरतपदवीव विधिलयनाटचाडम्बर, २४६।२३ उत्त०)।

नाटय

काव्यो में वर्णित धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त प्रकृति के नायको तथा उस उस प्रकृति की नायिकाओ एव अन्य पात्रों का आगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक अभिनयो द्वारा अवस्थानुकरण करना नाटच कहलाता है।[७१] अवस्थानुकरण से तात्पर्य है – चाल-ढाल, वेश-भूषा, आलाप-प्रलाप, आदि के द्वारा पात्रों की प्रत्येक अवस्था का अनुकरण इस ढग से किया जाये कि नटो में पात्रों की तादात्म्यापत्ति हो जाये। जैसे नट दुष्यन्त की प्रत्येक प्रवृत्ति की ऐसी अनुकृति करे कि सामाजिक उसे दुष्यन्त ही समझें।

नाटच दृश्य होता है, इसलिए इसे 'रूप' भी कहते है और रूपक अलकार की तरह आरोप होने के कारण रूपक भी कहते हैं। इसके नाटक आदि दस भेद होते है।[७२]

---

७० दशरूपक १।७, ६, १०

७१ दशरूपक १।७

७२ वही, १।७–८

नाट्य प्रधान रूप से रस के आश्रित रहता है। सामाजिक को रसानुभूति कराना ही नाट्य का चरम लक्ष्य है। शृंगार, वीर या करुण रस की परिपुष्टि नायक की प्रकृति के अनुसार, नाटक में की जाती है।

नृत्य

भावो पर आश्रित अनुकृति को नृत्य कहते हैं (अन्यद्भावाश्रय नृत्यम्, दश० १।८)। नाट्य प्रधान रूप से रस के आश्रित होता है, किन्तु नृत्य प्रधान रूप से भावाश्रित होता है। धनजय के टीकाकार धनिक ने इन दोनो के भेद को और भी अधिक स्पष्ट किया है जो इस प्रकार है[७३] –

१ नाट्य रसाश्रित है, नृत्य भावाश्रित, इसलिए इन दोनो में विषय भेद है।

२. नाट्य में आंगिक आदि चारो प्रकार का अभिनय रहता है, जबकि नृत्य में केवल आंगिक अभिनय की प्रधानता है।

३ नाट्य दृश्य और श्रव्य दोनो होता है, जबकि नृत्य में श्रव्य कुछ भी नहीं होता। इसमे कथनोपकथन का अभाव रहता है।

४ नाट्य-कर्ता नट कहलाता है, नृत्य कर्ता नर्तक।

५ नाट्य 'नट् अवस्पन्दने' धातु से बना है और नृत्य 'नृत् गात्रविक्षेपे' धातु से बना हैं।

एक त्र्यर्थक पद्य में सोमदेव ने नृत्य की मुद्रा का पूरा चित्र खींचा है।[७४] तीनों अर्थ इस प्रकार हैं—

१ नृत्य के पक्ष में।

२ प्रमदारति अर्थात् स्त्रीसम्भोग के पक्ष में।

३ सभामण्डप या दरबार के पक्ष में।

नृत्य के पक्ष मे

जिसमें कुन्तल चँवर कम्पित हो रहे हैं, कांची का कल-कल शब्द हो रहा है, कटाक्ष पात द्वारा भाव निवेदन किया गया है, ऊरु और चरणो के यथावसर

---

७३ वही, २।६

७४. चचत्कुन्तलचामर कलरणत्कांचीलयाडम्बरम्,
भ्रूभंगार्पितभावसूक्ष्मचरणन्यासासनानन्दितम्।
खेलत्पाणिपताकमीक्षणपथानीतांगहारोत्सवम्,
नृत्य च प्रमदारत च नृपतिस्थान च ते स्तान् मुदे॥ –आ०१, श्लोक १७४

न्यास से सामाजिकों को आनन्दित किया गया है, जिसमें हस्तपताकाएँ सचालित हो रही हैं तथा आंगिक अभिनय द्वारा नृत्य का आनन्द दृष्टिपथ में अवतरित हो रहा है, ऐसा नृत्य तुम्हारी प्रसन्नता के लिए हो।

उस अर्थ में कुन्तल पर चँवर का आरोप तथा पाणि पर पताका का आरोप विशिष्ट है, अन्य अर्थ श्लेष से निकल आते हैं।

प्रमदारति के पक्ष मे

जिसमें केश कम्पित हो रहे है, काची का शब्द हो रहा है, कटाक्षपात द्वारा रति का भाव प्रकट किया गया है, ऊरु और चरण न्यास के विशेष आसन द्वारा रति का आनन्द प्रकट किया गया है, हाथ हिल रहे है, अगहार पर जिसमें दृष्टि गडी है, ऐसी प्रमदारति आपको आनन्द प्रदान करे।

इस पक्ष में 'ऊरुचरणन्यासासनानन्दितम्' तथा 'ईक्षणस्थानीतागहारोत्सवम्' पदो के अर्थ विशेष बदले है।

सभामण्डप के पक्ष मे

जिसमें चचल वेशी के चँवर ढोरे जा रहे है, सचरणशील वारविलासिनी अथवा दासियो की काची का कलकल शब्द हो रहा है, जिसमें भ्रूक्षेप मात्र से आज्ञा या काय निर्देश किया गया है, आसन पर ऊरु और चरणों का न्यास किया गया है, हाथो में ली हुई पताकाएँ उड रही हैं, तथा जिसमें मन्त्री, पुरोहित, सेनापति आदि राज्याग का समूह आनन्दित किया गया है, ऐसा सभामण्डप आपको प्रसन्नता के लिए हो।

इस पक्ष में 'भ्रूभगार्पितभात्र' तथा 'अगहार' पद का अर्थ विशेष बदला है।

एक अन्य स्थल पर (पृ० १९६।११, हिन्दी) पैरो में घुंघुरू बाँधकर नृत्य करने का उल्लेख है। यशोधर के राजभवन में नृत्य हो रहा था जिसमे पवन को तरह चचल हस्त-सचालन और बीच बीच में घुंघरुओ की मधुर ध्वनि हो रही थी।[७५]

नृत्त

ताल और लय के आधार पर किये जाने वाले नर्तन को नृत्त कहते हैं (नृत्त ताललयाश्रयम्)।[७६]

---

७५. नृत्यहस्तैरिव पवमानचचचलनसगतागलुभगवृत्तिभिर्विविधवर्णविनिर्माणमनोहरा- डम्बरैरन्तरान्तरमुक्तकलक्वणन्मणिकिंकिणीजालमालाभि।—१९५।११, हिन्दी

७६ दश० १।६

नृत्त में अभिनय का सर्वथा अभाव होता है। केवल ताल और लय के आधार पर द्रुत, मन्द या मध्यम पादविक्षेप किया जाता है। ताल संगीत में स्वर की मात्रा का तथा नृत्त में पादविक्षेप की मात्रा का नियामक होता है। लय नृत्त की गति को तीव्र, मन्द या मध्यम करने की सूचना देता है। इस प्रकार नृत्य और नृत्त के भेदक तत्त्व ये हैं—

१ नृत्य में आंगिक अभिनय रहता है, नृत्त अभिनय शून्य है।

२ नृत्य भावाश्रित है, जबकि नृत्त ताल और लय के आश्रित।

३ नृत्य शास्त्रीय पद्धति के अनुसार चलता है, जबकि नृत्त ताल और लय के आश्रित होकर भी शास्त्रीय नहीं। इसीलिए नृत्य मार्ग (शास्त्रीय) कहलाता है तथा नृत्त देशी।

४ नृत्य के उदाहरण 'भरतनाट्यम्,' 'कत्थक' या उदयशंकर के भावनृत्य हैं। नृत्त के उदाहरण लोकनृत्य हो सकते हैं।

नृत्त के भेद

नृत्त के दो भेद हैं—(१) मधुर, (२) उद्धत। मधुर नृत्त को लास्य तथा उद्धत नृत्त को ताण्डव कहते हैं। नृत्य के भी यही भेद हैं। नृत्य और नृत्त के ये दोनो प्रकार लास्य और ताण्डव नाट्य के उपस्कारक होते हैं।[७७] नाट्य में पदार्थाभिनय के रूप में नृत्य का तथा शोभाजनक होने के कारण नृत्त का प्रयोग किया जाता है। वस्तु, नेता और रस इनके भेदक तत्त्व हैं। (वस्तुनेतारसस्तेषां भेदक, दश० १।११)।

लास्य

नृत्य तथा नृत्त में सुकुमार तथा उद्धत भावो की व्यंजना के लिए भिन्न सरणी का आश्रय लिया जाता है। भावो की सुकुमार व्यंजना को लास्य कहते हैं। सावन आदि के अवसर पर किये जाने वाले कामिनियो के मधुर तथा सुकुमार नृत्य लास्य कहे जा सकते हैं। मयूर का कोमल नर्तन लास्य के अन्तर्गत आता है। यशस्तिलक में यन्त्रधारा गृह का वर्णन करते हुए भवन-मयूर के लास्य का उल्लेख है। यन्त्र के बने हुए अनेक हाथी, सिंह, सर्प आदि के मुँह से घर्घर शब्द करता हुआ पानी निकलता था जिससे क्रीडा-मयूरो को मेघगर्जन का भ्रम होता और वे आनन्दविभोर होकर नाचने लगते।[७८]

---

७७ दश० १।१०

७८ विविधव्यालवदनविनिर्गज्जलधाराध्वनितलयलास्यमानभवनागणबर्हिणम्।

—३५५।७, हिन्दी

दशरूपककार ने लिखा है कि नाट्यशास्त्र में सुकुमार नृत्यका सनिवेश भगवती पार्वती ने किया था।[७९]

ताण्डव

उद्धत नृत्य को ताण्डव कहते हैं। नृत्य और नृत्त दोनो ही लास्य और ताण्डव के भेद से दो दो प्रकार के होते है।[८०] सोमदेव ने ताण्डव का उत्ताल विशेषण दिया है (उत्तालताण्डव, ३५६।१, हिन्दी)। ताण्डव नृत्य में सिद्धहस्त अभिनेताओं को 'ताण्डवचण्डीश' कहा गया है (३२०।२, हिन्दी)। महादेव का ताण्डव नृत्य प्रसिद्ध है। धनजय के अनुसार नाटय में ताण्डव का सनिवेश महादेव ने किया था।[८१] महादेव की नटराज मुद्रा की अनेक मनोज्ञ मूर्तियाँ मिलती है।[८२]

■

---

७९ दश० १।४

८० वही १।१०

८१ दश० १।४

८२ भटशाली—द आइकोनोग्राफी ऑव् बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मेनिकल स्कल्पचर्स इन द ढाका म्युजियम

परिच्छेद दो

चित्र-कला

यशस्तिलक में चित्रकला के उल्लेख भी कम नहीं हैं और जितने हैं वे कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं ।

भित्ति-चित्र

पांचवें उच्छ्वास में एक जैन मन्दिर का अतीव रोचक वर्णन है । उसी प्रसग में सोमदेव ने अनेक भित्ति-चित्रों का उल्लेख किया है ।[1]

कला की दृष्टि से भित्ति चित्रों की अपनी विशेषता है । भित्ति चित्र बनाने के लिए भीतर का उपलेप (प्लास्टर) कैसा होना चाहिए और उसे कैसे बनाना चाहिए, उस पर लिखाई करने के लिए जमीन कैसे तैयार करनी चाहिए, इत्यादि बातों का सविस्तर वर्णन अभिलपितार्थचिन्तामणि तथा मानसोल्लास में आया है । जमीन तथा रगो में पकड के लिए सरेस दिया जाता था, जिसे वज्रलेप कहते थे । उपलेप पर जमीन तैयार करके भावुक एव सूक्ष्म रेखा-विशारद चित्रकार चिन्तन द्वारा अर्थात् अन्तर्दृष्टि से देखकर उस पर अनेक भाव तथा रस वाले चित्र अच्छी रेखाओं और समुचित रगो से बनाता था । आलेखन के लिए वह कलम के अतिरिक्त पेंसिल की-सी किसी अन्य चीज का भी प्रयोग करता था जिसका नाम वर्तिका था । पहले इसी से आकार टीपता था फिर गेरु से सच्ची टिपाई करता था, तब समुचित रग भरता था । ऊँचाई दिखाने के लिए उजाला (लाइट) तथा निचाई के लिए छाया (शेड) देता था । तैयार चित्र के हाशिए की पट्टी काले रग से करता था और वस्त्र, आभरण, चेहरे आदि की लिखाई अलक्तक से करता था ।

सोमदेव ने जिन भित्ति चित्रो का उल्लेख किया है वे दो प्रकार के है—१–व्यक्ति-चित्र, २–प्रतीक चित्र । व्यक्ति चित्रों में बाहुबलि, प्रद्युम्न, सुपार्श्व, अशोकरोहिणी तथा यक्षमिथुन का उल्लेख है । प्रतीक-चित्रो में तीर्थंकरों की माता के द्वारा देखे जाने वाले सोलह स्वप्नो का विवरण है ।

---

१. कुकविकृतिरिव चित्रबहुला ।–२४६।२२ उत्त०

व्यक्ति-चित्र

१ बाहुबलि (विजयसेनैव बाहुबलिविदिता, २४६।२० उत्त०)

जैन परम्परा में बाहुबलि एक महान् तपस्वी और मोक्षगामी महापुरुष माने गये है। ये आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र तथा चक्रवर्ती भरत के भाई थे। भरत के चक्रवर्तित्व प्राप्ति के बाद ये सन्यस्त हो गये और लगातार बारह वर्ष तक तप करते रहे। सुडौल, सौम्य और विशाल शरीर के धारक इस तपस्वी ने ऐसी समाधि लगाई कि वर्षा, जाडा और गर्मी किसी से भी विचलित नहीं हुआ। चारो ओर पेड पौधे और लताएँ उग आयीं और शरीर का सहारा पाकर कधो तक चढ गयी। बाहुबलि का यही चित्र शिल्प और ललित कला में कलाकार ने उकीरा है। दक्षिण भारत में अनेक मनोज्ञ मूर्तियाँ बाहुबलि के उक्त स्वरूप की अभी भी विद्यमान है। ससार को आश्चयचकित करने वाली श्रवणबेलगोल (मैसूर) की मूर्ति इसी महापुरुष की है जो उन्मुक्त आकाश में निरालम्ब खडी चराचर विश्व को शान्ति का अमर सन्देश दे रही है।

२ प्रद्युम्न (प्रकटरतिजीवितेशा, २४६।२२ उत्त०)

प्रद्युम्न सौन्दर्य और कान्ति के सर्वश्रेष्ठ प्रतीक माने जाते है। इसीलिए इन्हें रतिजीवितेश अर्थात् कामदेव कहा गया है। प्रद्युम्न का पूरा चित्र दीवार पर उकीरा गया था।

३ सुपार्श्व (रूपगुणनिका इव सुपार्श्वगता, २४६।२० उत्त०)

सोमदेव ने लिखा है कि यह मन्दिर रूपगुणनिका की तरह सुपार्श्वगत था। रूपगुणनिका और पार्श्वगत दोनों ही चित्रकला के पारिभाषिक शब्द है। चित्र उकीरने के लिए व्यक्ति का अध्ययन रूपगुणनिका कहलाता है। इसी तरह पार्श्वगत चित्र के नव अगो में से एक है। विष्णुधर्मोत्तर (३९, १ भाग ३) में इन नव अगो का विवरण आया है (नव स्थानानि रूपाणाम्, वही)।

सोमदेव ने जिस मन्दिर का उल्लेख किया है उसमें सम्भवतया सुपार्श्वनाथ की मूर्ति थी जिसे कलाकार की दृष्टि से देखने पर केवल पार्श्वगत अग ही दिखाई देता था। सुपार्श्वनाथ जैन परम्परा में सातवें तीर्थंकर माने गये हैं।

४ अशोक तथा रोहिणी (अशोकरोहणीपेशला, २४६।२१ उत्त०)

जैन परम्परा में अशोक राजा तथा रोहणी रानी की कथा और चित्रो की परम्परा पुरानी है। प्राचीन पाण्डुलिपियों तक में इनके चित्र मिलते है (डॉ० मोतीचन्द्र – जैन मिनिएचर पेटिंग्ज़, चित्र १७)।

५ यक्षमिथुन (यक्षमिथुनसनाथा, २४६।२१ उत्त०)

तीर्थंकरो की पूजा-अर्चा के लिए यक्षमिथुनो के आने का शास्त्रो में बहुत जगह उल्लेख है। सम्भवतया ऐसे ही किसी प्रसग में यक्षमिथुन चित्रित किये गये थे।

प्रतीक-चित्र

जैन साहित्य में ऐसे उल्लेख आते हैं कि तीर्थंकरो के गर्भ में आने के पहले उनकी माता सोलह स्वप्न देखती है। श्वेताम्बर परम्परा में चौदह स्वप्नो का वर्णन आता है। सोमदेव ने जिस मन्दिर का उल्लेख किया है उसमें ये सोलह स्वप्न भित्ति पर चित्रित किये गये थे –

१ ऐरावत हाथी (सनिहितैरावता, २४६।२४ उत्त०)
२. वृषभ (आसन्नसौरभेया, २४६।२४ उत्त०)
३ सिंह (निलीनोपकण्ठीरव , २४६।२५ उत्त०)
४ लक्ष्मी (रमोपशोभिता, २४६।२५ उत्त०)
५ लटकती पुष्पमालाएँ (प्रलम्बितकुसुमशरा, २४६।२६ उत्त०)
६ ७ चन्द्र, सूर्य (सविधविधुवुध्नमण्डला, २४७।१ उत्त०)
८ मत्स्ययुगल (शकुलीयुगलाकिता, २४७।१ उत्त०)
९ पूर्णकुम्भ (पूर्णकुम्भाभिरामा, २४७।२ उत्त०)
१० पद्मसरोवर (कमलाकरसेविता, २४७।२ उत्त०)
११ सिंहासन (प्रसाधितसिंहासना, २४७।३ उत्त०)
१२. समुद्र (जलनिधिमति, २४७।३ उत्त०)
१३ फणयुक्तसर्प (उन्मीलिताहिलोका, २४७।३ उत्त०)
१४ प्रज्वलित अग्नि (प्रत्यक्षहुताशना, २४७।४ उत्त०)
१५ रत्नो का ढेर (समणिनिचया, २४७।५ उत्त०)
१६ देवविमान (प्रदर्शितदेवालया, २४७।५ उत्त०)

रंगावलि या धूलि-चित्र

रगावलि या धूलि-चित्रों का यशस्तिलक मे छह बार उल्लेख हुआ है। राज्याभिषेक के बाद महाराज यशोधर राजभवन को लौट रहे थे। उस समय अनेक लोग मगल सामग्री जुटाने में लगे थे। किसी कुलवृद्धा ने किसी सेविका कन्या को डपटते हुए कहा – तत्काल रगावलि बनाने में जुट जाओ।[२] आस्थान-

---

२ अकालक्षेप दचस्व रगवल्लिप्रदानेषु। –पृ० ३५०

मंडप में कर्पूर की सफेद धूलि से रंगावलि बनाई गयी थी।[3] राजमहिषी के महल में एक स्थान पर मणि लगाकर स्थायी रूप से रंगावलि अंकित की गयी थी।[4] अन्यत्र कुंकुम रंगे मरकत पराग से फर्श पर तह देकर अधखिले मालती के फूलों से रंगावलि बनाई गयी थी।[5] एक अन्य प्रसंग में भी पुष्पों द्वारा रचित रंगावलि का उल्लेख है।[6]

रंगावलि बनाने के लिए पहले जमीन को पतले गोबर से लीपकर अच्छी तरह साफ कर लिया जाता था। इसे परभागकल्पन कहते थे।[7] इस तरह साफ की गयी जमीन पर सफेद या रंगीन चूर्ण से रंगावलि बनाई जाती थी। आज-कल इसे रंगोली या अल्पना कहा जाता है। प्राय. प्रत्येक मांगलिक अवसर पर रंगावलि बनाने का प्रचलन भारतवर्ष में अब भी है।

चित्रकला में रंगावलि को क्षणिक-चित्र कहते हैं। क्षणिक-चित्र के दो प्रकार होते हैं – धूलि चित्र और रस-चित्र।[8]

चित्रकर्म

सोमदेव ने एक विशेष संदर्भ में प्रजापतिप्रोक्त चित्रकर्म का उल्लेख किया है।[9] इसका एक पद्य भी उद्‌धृत किया है—

> श्रमणं तेजलिप्तांगं नवभिर्भक्तिभिर्युतम्।
> यो लिखेत् स लिखेत्सर्वां पृथ्वीमपि ससागराम्॥[10]

श्रुतसागर ने यहाँ श्रमण का अर्थ तीर्थंकर और तेजलिप्तांग का अर्थ करोड़ों सूर्यों की प्रभा के समान तेजयुक्त किया है तथा मधुमाधवी के अनुसार नव-भक्तियों को इस प्रकार गिनाया है—

---

३ अनल्पकर्पूरपरागपरिकल्पितरंगावलिविधानम्। –पृ० ३६६

४ चरणनखस्फुटितेन रंगवल्लीमणीन् इव असहमानया। –पृ० २४ उत्त०

५ घुसृणरसारुणितमरकतपरागपरिकल्पितभूमितलभागे मनाग्मोदमानमालतीमुकुल-विरचितरंगवलिनि। –पृ० २८ उत्त०

६ पर्यन्तपादपे संपादितकुसुमोपहारं प्रदत्तरंगावलि। –पृ० १३३

७ रंगवल्लीपु परभागकल्पनम्। –पृ० २४७ उत्त०

८ वी० राघवन्–संस्कृत टेक्स्ट ऑन पेंटिंग, इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, जिल्द ६। पृ० ६०५–६

९ प्रजापतिप्रोक्ते च चित्रकर्मणि। –पृ० १९२ उत्त०

१० पृ० वही। मुद्रित प्रति का 'तेललिप्तांग' और 'भिक्ति' पाठ गलत है।

शालोऽथ वेदिरथ वेदिरथोऽपि शाल-
वेदीव शाल इह वेदिरथोऽपि शाल ।
वेदी च भाति सदसि क्रमत यदीये,
तस्मै नमस्त्रिभुवनविभवे जिनाय ॥

स्पष्ट ही यह सन्दर्भ तीर्थंकर के समवशरण को व्यक्त करता है। जैन शास्त्रों के अनुसार तीर्थंकर को केवलज्ञान होने के उपरान्त इन्द्र कुबेर को आज्ञा देकर एक विराट सभामण्डप का निर्माण कराता है, जिसमें तीर्थंकर का उपदेश होता है। इसी सभामडप को समवशरण कहा जाता है। जैसा कि श्रुत-सागर ने लिखा है इसकी रचना गोलाकार होती है और शाल और वेदी, शाल और वेदी के क्रम से विन्यास किया जाता है। प्राचीन जैन चित्रों में समवशरण का सुन्दर अकन मिलता है।

सोमदेव द्वारा उल्लिखित प्रजापति-प्रोक्त चित्रकर्म उपलब्ध नहीं होता। सभवतया यह ब्राह्मीय चित्रकर्म शिल्पशास्त्र था, जिसका सार तजोर ग्रन्थागार की १५४३१ सख्या वाली पाण्डुलिपि में उपलब्ध है।

अन्य उल्लेख

चित्रकला के अन्य उल्लेखो में सोमदेव ने एक स्थान पर खम्भो पर बने चित्रो का उल्लेख किया है (केतुकाण्डचित्रै, १८।४ स० पू०)। एक अन्य स्थान मर भित्तियों पर बने हुए सिहों का उल्लेख किया है (चित्रार्पितादिपैरिव, ९०।६ स० पू०)। झरोखो से झाँकती हुई कामिनियों का वर्णन भी एक स्थान पर आया है (गवाक्षमार्गेषु विलासिनीना विलोचनैर्मौक्तिकविबकान्तै ३४२।३-६ स० पू०)। सस्कृत साहित्य तथा कला एव शिल्प में अन्यत्र भी ऐसे उल्लेख आये हैं।

■

वास्तु-शिल्प

यशस्तिलक में वास्तु-शिल्प सम्बन्धी विविध प्रकार की सामग्री के उल्लेख मिलते हैं। विभिन्न प्रकार के शिखरयुक्त चैत्यालय (देवमन्दिर), गगनचुंबी महाभागभवन, त्रिभुवनतिलक नामक राजप्रासाद, लक्ष्मीविलासतामरस नामक आस्थानमण्डप, श्रीसरस्वतीविलासकमलाकर नामक राजमन्दिर, दिग्वलय-विलोकनविलास नामक क्रीडाप्रासाद, करिविनोदविलोकनदोहद नामक प्रधाव-धरणिप्रासाद, मनसिजविलासहंसनिवासतामरस नामक वासभवन, गृहदीर्घिका, प्रमदवन, यन्त्रधारागृह आदि का विस्तृत वर्णन विभिन्न प्रसगों में आया है। सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन इस प्रकार है –

चैत्यालय

देवमन्दिर के लिए यशस्तिलक में चैत्यालय शब्द का प्रयोग हुआ है। सोमदेव ने लिखा है कि राजपुरनगर विविध प्रकार के शिखरयुक्त चैत्यालयों से सुशोभित था।[1] शिखर क्या थे मानो निर्माणकला के प्रतीक थे।[2] शिखरों से विशेष कान्ति निकलती थी। सोमदेव ने इसे देवकुमारों को निरवलम्ब आकाश से उतरने के लिए अवतरण मार्ग कहा है[3]। शिखर ऐसे लगते थे मानो शिशिर-गिरि कैलाश का उपहास कर रहे हो।[4] शिखर की अटनि पर सिंह निर्माण किया गया था। सोमदेव ने लिखा है कि अटनि पर बने सिंहों को देख कर चन्द्रमृग चकित रह जाते थे।[5] शिखरों की ऊँचाई की कल्पना सोमदेव के इस कथन से की जा सकती है कि सूर्य के रथ का घोडा थक कर मानो क्षण भर विश्राम के लिए शिखरों पर ठिठक रहता था।[6] देवयानों को चक्कर काट कर ले जाना पडता था।[7] निरन्तर विहार करते हुए विद्याधरों की कामिनियों के

---

१ विचित्रकोटिभि कूटैरुपशोभितम्। – पृ० २१ पू०

२ घटनाश्रिया श्रियमुद्वहद्भि। – वही

३ देवकुमारकाणामनालम्बे नभस्यवतरणमार्गनिह्नोचितरुचिभि। – पृ० १७

४ उपहसितशिशिरगिरिहराचलशिखरै। – वही

५ अटनितटनिविष्टविकटमटोत्कटकरटिरिपुसमीपसंचारचकितचन्द्रमृग। – वही

६ अरुणरथतुरगचरणाक्षुण्णक्षणमात्रविश्रमै। – वही

७ अमरचरचमूविमानगतिविक्रमविधायिभि। – वही

कपोलो का स्वेदजल चैत्यालयो के शिखरो पर लगी पताकाओ को हवा से सूख जाता था।[८]

ध्वज दण्डो में चित्र बनाये जाते थे। सोमदेव ने लिखा है कि सटकर चलती सुर-सुन्दरियो के चचल हाथो से ध्वज-दण्डो के चित्र मिट जाते थे।[९] ध्वजस्तम्भ की स्तम्भिकाओ में मणिमुकुर लगे थे[१०]। शिखरो पर रत्नजटित काचनकलश लगाये गये थे, जिनसे निकलनेवाली कान्ति से आकाश लक्ष्मी का चदोवा-सा बन रहा था।[११] पानी निकलने के लिए चन्द्रकान्त के प्रणाल बनाये गये थे।[१२] किंपिरि (कगूरे) सूर्यकान्त के बने थे, जो सूर्य की रोशनी में दीपको की तरह चमकते थे।[१३] उज्ज्वल आमलासार पर कलहस श्रेणी बनायी गयी थी।[१४] उपरितल पर घूमते हुए मयूर-बालक दिखाये गये थे।[१५] सामने ही स्तूप बनाया गया था।[१६] विटको पर शुक-शावक बैठे हरित अरुणमणि का भ्रम पैदा कर रहे थे।[१७] चाप पक्षियो के पखो से मेचक रचना ढक गयी थी।[१८] पालिध्वजाओ में क्षुद्र घटिकाएँ लगायी गयी थी।[१९] चूने से ऐसी सफेदी की गयी थी मानो आकाशगगा का प्रवाह उमड आया हो।[२०] चैत्यालय ऐसे लगते थे मानो आकाशवृक्ष के फूलो के गुच्छे हों, श्वेतद्वीपसृष्टि हो, आकाशदेवता के शिखण्डमण्डन का पुण्डरीक समूह हो, तीनो लोको के भव्य जनो के पुण्योपार्जन क्षेत्र हो, आकाश-समुद्र की फेनराशि हो, शकर का अट्टहास हो, स्फटिक के क्रीडाशैल हों, ऐरावत के कलभ हो। चारों ओर से पड रही माणिक्यो की कान्ति द्वारा मानो भक्तो के स्वर्गारोहण के लिए सोपान परम्परा रच रहे हो, ससार-सागर से तिरने के लिए जहाज हों (पृ० २०, २१)।

---

८ वही पृ० १८

९ अतिसविधसचरत्सुरसुन्दरीकरचापलविलुप्तकेतुकाण्डचित्रै । – वही

१० अनेकध्वजस्तम्भस्तम्भिकोत्तभितमणिमुकुर। – वही

११ अप्रत्नरत्नचयनिचितकाचनकलश। – वही

१२ चन्द्रकान्तमयप्रणाल। – वही

१३ दिनकृतकान्तकिंपिरि। –वही

१४ अमलकामलासारविलसत्कलहसश्रेणी। – पृ० १९

१५. उपरितनतलचलत्प्रचलाकिबालक । – वही

१६ उपान्तस्तूप। – वही

१७ १८ पृ० २०

१९ किंकिणीजालवाचालपालिध्वज। –वही

२० अनवधिसुधाप्रधावद्धामसदिग्धस्वधुनीप्रवाहै। –वही

चैत्यालयों के इस वर्णन में सोमदेव ने प्राचीन वास्तुशिल्प के कई पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया है। जैसे – अटनि, केतुकाण्डचित्र, ध्वजस्तम्भस्तम्भिका, प्रणाल, आमलासारकलश, किंपिरि, स्तूप, विटक।

प्राचीन वास्तुशिल्प में अटनि अर्थात् बाहरी छज्जे पर सिंह-रचना का विशेष रिवाज था। इसे झम्पासिंह कहते थे। केतुकाण्ड अर्थात् ध्वजा दण्डों पर चित्र बनाये जाते थे। ध्वजा देवमन्दिर का एक आवश्यक अंग था। ठक्कुर फेरु ने वास्तुसार (३।३५) में लिखा है कि देवमन्दिर के अच्छे शिखर पर ध्वजा न हो तो उस मन्दिर में असुरों का निवास होता है। प्रासाद के विस्तार के अनुसार ध्वजा-दण्ड बनाया जाता था। एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद में पौन अंगुल मोटा ध्वजादण्ड और उसके आगे क्रमशः आधा-आधा अंगुल बढाना चाहिए (३।३४ वही)। दण्ड की मर्कटी (पाटली) के मुख भाग में दो अर्द्धचन्द्र का आकार बनाने तथा दो तरफ घंटी लगाने का विधान बताया गया है।[21] ध्वजस्तम्भों के आधार के लिए स्तम्भिकाएँ बनायी जाती थीं। उनमें मणिमुकुर लगाने की प्रथा थी। स्तम्भिकाओं की रचना घण्टोदय के अनुसार की जाती थी।[22] चैत्यालय में देवमूर्ति के प्रक्षालन का जल बाहर निकालने के लिए प्रणाल की रचना की जाती थी। देवमूर्ति अथवा प्रासाद का मुख जिस दिशा में हो तदनुसार प्रणाल बनाया जाता था। प्रासादमण्डन तथा अपराजितपृच्छा में इसका ब्योरेवार वर्णन किया गया है। शिखर के ऊपर और कलश के नीचे आमलासारकलश की रचना की जाती थी। शिखर के अनुपात से आमलासार बनाया जाता था। प्रासादमंडन में लिखा है कि दोनों रथिकाओं के मध्य भाग जितनी आमलासारकलश की गोलाई करना चाहिए, आमलासार के विस्तार से आधी ऊँचाई, ऊँचाई का चार भाग करके पौन भाग का गला, सवा भाग का आमलासार, एक भाग की चन्द्रिका और एक भाग की आमलसारिका बनाना चाहिए (४।३२,३३)। आमलासार के ऊपर कांचन कलश स्थापित किया जाता था। कलश की स्थापना मांगलिक मानी जाती थी (प्रासादमंडन ४।३६)। मंडन ने ज्येष्ठ, कनीय और अभ्युदय के भेद से कलश के तीन प्रकार बताये हैं। सोमदेव ने चैत्यालयों के मुंडेर को किंपिरि कहा है। सूर्यकान्त के बने किंपिरि सूर्य की रोशनी में मणिदीपों की तरह चमकते थे। चैत्यालय के समीप ही स्तूप बनाये जाते थे। विटक को श्रुतसागर ने बाहर निकला हुआ काष्ठ कहा है।[23] वास्तु-

---

२१ अपराजितपृच्छा, सूत्र १४४, प्रासादमंडन ४।४५

२२ घण्टोदयप्रमाणेन स्तम्भिकोदय कारयेत्। –वही

२३ बहिर्निर्गतानि काष्ठानि। –पृ० २०

शिल्प में अन्यत्र इस शब्द का प्रयोग देखने में नहीं आता। सम्भवतया छज्जे के नीचे लगी काठ की धरन विटक कहलाती थी।

चैत्यालयो के अतिरिक्त राजपुर में श्रीमानो के गगनचुम्बी (अभ्रंलिहं) प्रासाद थे। मणिजड़ित उत्तुंगतोरण लगाये गये थे।[२४] तोरणो से निकलती किरणों से देवताओ के भवन मानो पीले हो रहे थे।[२५]

त्रिभुवनतिलक प्रासाद

सोमदेव ने लिखा है कि सिप्रा के तट पर राज्याभिषेक के बाद यशोधर ने लौट कर त्रिभुवनतिलक नामक प्रासाद में प्रवेश किया। त्रिभुवनतिलक प्रासाद श्वेत पाषाण या संगमर्मर (सुधोपलासार, ३४२) का बनाया गया था। शिखरों पर स्वर्णकलश (कांचनकलश, ३४३) लगाये गये थे। पूरे प्रासाद पर चूने से सफेदी की गयी थी।[२६] रत्नमय खम्भों वाले ऊँचे-ऊँचे तोरणो के कारण राजभवन कुबेरपुरी की तरह लगता था (पृ० ३४४)।

यहाँ सोमदेव ने तोरण को 'उत्तुंगतरंगतोरण' कहा है। तोरणो के रत्नमय खम्भों (रत्नमयस्तम, ३४४ पृ०) पर मुक्ताफल की लम्बी-लम्बी मालाएँ लटकती हुई दिखाई गयी थीं।[२७] बड़े-बड़े प्रवालमणि (प्रवलप्रवाल, वही) तथा दिव्य दुकूल भी अंकित थे। ऊपर लगी ध्वजाओ में मरकतमणि लगे हुए थे, जिनसे नीली कान्ति निकल रही थी।[२८] एक ओर महामण्डलेश्वर राजाओ के द्वारा उपहार में आये श्रेष्ठ हाथियों के मदजल से भूमि पर छिड़काव हो रहा था।[२९] दूसरी ओर उपहार में प्राप्त उत्तम घोडे मुँह-से फेन उगलते श्वेत कमल बनाते-से बँधे थे।[३०] दूतो के द्वारा लाये गये उपहार एक ओर रखे थे (वही ३४४)। राजभवन प्रजापतिपुर सदृश होने पर भी दुर्वासा (मलिनवस्त्रधारी) रहित था। इन्द्रभवन सदृश होने पर भी अपारिजात (शत्रुसमूहरहित) था। अग्निगृह सदृश होने पर भी अधूमश्यामल (मणिमाणिक्यों की प्रभायुक्त) था। धर्मधाम (यमराज का घर) होकर भी अदुरीहितव्यवहार (पापव्यवहार)

२४ उत्तुंगतोरणमणि। –पृ० २१

२५ पिंजरितामरभवनै। –वही

२६ सुधादीधितिप्रब॰धै धवलिताखिलदिग्वलयम्। –३४४

२७ आवलंबितमुक्ताप्रलंब। –३४४ पृ०

२८ उपरितनदेशोत्तंभितध्वजप्रान्तप्रोतमरकतमणि। –वही

२९ महामंडलेश्वरैरनवरतमुपायनीकृतकरीन्द्रमदलक्ष्मीजनितसमार्जनम्। –वही

३० उपाहूताजानेय हयाननोद्गीर्णडिंडीरपिण्डपुण्डरीकविहितोपहारम्। –वही

चैत्यालयों के इस वर्णन में सोमदेव ने प्राचीन वास्तुशिल्प के कई पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया है। जैसे – अटनि, केतुकाण्डचित्र, ध्वजस्तम्भस्तम्भिका, प्रणाल, आमलासारकलश, किंपिरि, स्तूप, विटक।

प्राचीन वास्तुशिल्प में अटनि अर्थात् बाहरी छज्जे पर सिंह-रचना का विशेष रिवाज था। इसे झम्पासिंह कहते थे। केतुकाण्ड अर्थात् ध्वजा दण्डों पर चित्र बनाये जाते थे। ध्वजा देवमन्दिर का एक आवश्यक अंग था। ठक्कुर फेरु ने वास्तुसार (३।३५) में लिखा है कि देवमन्दिर के अच्छे शिखर पर ध्वजा न हो तो उस मन्दिर में असुरों का निवास होता है। प्रासाद के विस्तार के अनुसार ध्वजा-दण्ड बनाया जाता था। एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद में पौन अंगुल मोटा ध्वजादण्ड और उसके आगे क्रमशः आधा-आधा अंगुल बढ़ाना चाहिए (३।३४ वही)। दण्ड की मर्कटी (पाटली) के मुख भाग में दो अर्द्धचन्द्र का आकार बनाने तथा दो तरफ घंटी लगाने का विधान बताया गया है।[२१] ध्वजस्तम्भों के आधार के लिए स्तम्भिकाएँ बनायी जाती थीं। उनमें मणिमुकुर लगाने की प्रथा थी। स्तम्भिकाओं की रचना घण्टोदय के अनुसार की जाती थी।[२२] चैत्यालय में देवमूर्ति के प्रक्षालन का जल बाहर निकालने के लिए प्रणाल की रचना की जाती थी। देवमूर्ति अथवा प्रासाद का मुख जिस दिशा में हो तदनुसार प्रणाल बनाया जाता था। प्रासादमण्डन तथा अपराजितपृच्छा में इसका ब्योरेवार वर्णन किया गया है। शिखर के ऊपर और कलश के नीचे आमलासारकलश की रचना की जाती थी। शिखर के अनुपात से आमलासार बनाया जाता था। प्रासादमडन में लिखा है कि दोनों रथिकाओं के मध्य भाग जितनी आमलासारकलश की गोलाई करना चाहिए, आमलासार के विस्तार से आधी ऊँचाई, ऊँचाई का चार भाग करके पौन भाग का गला, सवा भाग का आमलासार, एक भाग की चन्द्रिका और एक भाग की आमलसारिका बनाना चाहिए (४।३२,३३)। आमलासार के ऊपर कांचन कलश स्थापित किया जाता था। कलश की स्थापना मांगलिक मानी जाती थी (प्रासादमडन ४।३६)। मंडन ने ज्येष्ठ, कनीय और अभ्युदय के भेद से कलश के तीन प्रकार बताये हैं। सोमदेव ने चैत्यालयों के मुंडेर को किंपिरि कहा है। सूर्यकान्त के बने किंपिरि सूर्य की रोशनी में मणिदीपों की तरह चमकते थे। चैत्यालय के समीप ही स्तूप बनाये जाते थे। विटक को श्रुतसागर ने बाहर निकला हुआ काष्ठ कहा है।[२३] वास्तु-

---

२१ अपराजितपृच्छा, सूत्र १४४, प्रासादमडन ४।४५

२२ घण्टोदयप्रमाणेन स्तम्भिकोदयं कारयेत्। –वही

२३ बहिर्निर्गतानि काष्ठानि। –पृ० २०

शिल्प में अन्यत्र इस शब्द का प्रयोग देखने में नहीं आता। सम्भवतया छज्जे के नीचे लगी काठ की घरन चिटक कहलाती थी।

चैत्यालयो के अतिरिक्त राजपुर में श्रीमानो के गगनचुम्बी (अभ्रलिहं) प्रासाद थे। मणिजडित उत्तुंगतोरण लगाये गये थे।[२४] तोरणो से निकलती किरणों से देवताओं के भवन मानो पीले हो रहे थे।[२५]

त्रिभुवनतिलक प्रासाद

सोमदेव ने लिखा है कि सिप्रा के तट पर राज्याभिषेक के बाद यशोधर ने लौट कर त्रिभुवनतिलक नामक प्रासाद में प्रवेश किया। त्रिभुवनतिलक प्रासाद श्वेत पाषाण या संगमर्मर (सुधोपलासार, ३४२) का बनाया गया था। शिखरो पर स्वर्णकलश (काचनकलश, ३४३) लगाये गये थे। पूरे प्रासाद पर चूने से सफेदी की गयी थी।[२६] रत्नमय खम्भों वाले ऊँचे-ऊँचे तोरणों के कारण राजभवन कुबेरपुरी की तरह लगता था (पृ० ३४४)।

यहाँ सोमदेव ने तोरण को 'उत्तुंगतरंगतोरण' कहा है। तोरणों के रत्नमय खम्भों (रत्नमयस्तम्भ, ३४४ पृ०) पर मुक्ताफल की लम्बी-लम्बी मालाएँ लटकती हुई दिखाई गयी थीं।[२७] बडे-बडे प्रवालमणि (प्रबलप्रवाल, वही) तथा दिव्य दुकूल भी अंकित थे। ऊपर लगी ध्वजाओं में मरकतमणि लगे हुए थे, जिनसे नीली कान्ति निकल रही थी।[२८] एक ओर महामण्डलेश्वर राजाओ के द्वारा उपहार में आये श्रेष्ठ हाथियों के मदजल से भूमि पर छिडकाव हो रहा था।[२९] दूसरी ओर उपहार में प्राप्त उत्तम घोडे मुँह से फेन उगलते श्वेत कमल बनाते-से बँधे थे।[३०] दूतों के द्वारा लाये गये उपहार एक ओर रखे थे (वही ३४४)। राजभवन प्रजापतिपुर सदृश होने पर भी दुर्वासा (मलिनवस्त्रधारी) रहित था। इन्द्रभवन सदृश होने पर भी अपारिजात (शत्रुसमूहरहित) था। अग्निगृह सदृश होने पर भी अधूमश्यामल (मणिमाणिक्यों की प्रभायुक्त) था। धर्मधाम (यमराज का घर) होकर भी अदुरीहितव्यवहार (पापव्यवहार)

---

२४ उत्तुंगतोरणमणि। –पृ० २१

२५ पिंजरितामरभवनै। –वही

२६ सुधादीधितिप्रबन्धै धवलिताखिलदिग्वलयम्। –३४४

२७ आवलंबितमुक्ताप्रलंब। –३४४ पृ०

२८ उपरितनदेशोत्त भितध्वजप्रान्तप्रोतमरकतमणि। –वही

२९ महामण्डलेश्वरैरनवरतमुपायनीकृतकरीन्द्रमदलक्ष्मीजनितसमार्जनम्। –वही

३० उपाहूताजानेय हयाननोद्गीर्णडिण्डीरपिण्डपुण्डरीकविहितोपहारम्। –वही

शून्य था। पुण्यजनावास होकर भी अराक्षसभाव था। प्रचेत पस्त्य (वरुणगृह) होकर भी अजडाशय था। वातोदवसित (वायुभवन) होकर भी अचपलनायक (स्थिरस्वामी) था। धनदधिष्ण्य (कुबेरगृह) होकर भी अस्थाणुपरिणत (ठूंठरहित) था। शम्भूशरण होकर भी अव्यालावलीढ था। ब्रघ्नसौध होकर भी अनेकरथ था। चन्द्रमन्दिर होकर भी अमृदुप्रताप था। हरिगेह होकर भी अहिरण्यकशिपुनाश था। नागेशनिवास होकर भी अद्विजिह्वपरिजन (दोगला-रहित) था, वनदेवता निवास होकर भी अकुरग था।

कहीं धर्मराजनगर की तरह सूक्ष्मतत्त्ववेत्ता विद्वान् सम्पूर्ण ससार के व्यवहार का विचार कर रहे थे। कहीं पर ब्रह्मालय की तरह द्विजन्मा (ब्राह्मण) लोग निगमार्थ (नीति शास्त्र) की विवेचना कर रहे थे। कहीं पर तण्डुभवन की तरह अभिनेता इतिहास का अभिनय कर रहे थे। कहीं पर समवशरण की तरह प्रमुख विद्वान् तत्त्वोपदेश कर रहे थे। कहीं सूर्य के रथ की तरह घोडो को सिखाने के लिए घसीटा जा रहा था। कही अगराज भवन की तरह सारग (हाथी) शिक्षित किये जा रहे थे। कुलवृद्धाएँ दासियों तथा नौकर चाकरों को नाना प्रकार के निर्देश दे रही थीं। ऊँचे तमगो के झरोखो से स्त्रियां झांक रही थीं। कीर्तिसाहार नामक वैतालिक इस त्रिभुवनतिलक नामक भवन का वर्णन इस प्रकार करता है—

यह प्रासाद शुभ्रध्वजा-श्रेणियो द्वारा कहीं हवा से हिल रही हिलोरों वाली गगा की तरह लगता है, तो कही स्वर्णकलशों की अरुण किरणो के कारण सुमेरु की छाया की तरह। कहीं अतिश्वेत भित्तियो के कारण समुद्र की शोभा धारण करता है तो कहीं गगनचुम्बी शिखरो के कारण हिमालय की सदृशता धारण करता है। यह भवन-लक्ष्मी का क्रीडास्थल, साम्राज्य का महान् प्रतीक, कीर्ति का उत्पत्तिगृह, क्षितिवधू का विश्रामधाम, लक्ष्मी का विलासदर्पण, राज्य की अधिष्ठात्री देवी का कुलगृह तथा वाग्देवता का क्रीडास्थान प्रतीत होता है (पृ० ३५२-५३)।

त्रिभुवनतिलक प्रासाद के वर्णन में सोमदेव ने जो अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी हैं, उनमें पुरदरागार, चित्रभानुभवन, धर्मधाम, पुण्यजनावास, प्रचेत पस्त्य, वातोदवसित, धनदधिष्ण्य, ब्रघ्नसौध, चन्द्रमन्दिर, हरिगेह, नागेशनिवास, तण्डु-भवन इत्यादि की जानकारी विशेष महत्त्व की है। सूर्यमन्दिर, अग्निमन्दिर आदि बनाने की परम्परा प्राचीन काल से थी। इनके भग्नावशेष या उल्लेख आज भी मिलते हैं।

केवल सोमदेव के उल्लेखों के आधार पर यद्यपि यह कहना कठिन है कि दशमी शती में उपर्युक्त सभी प्रकार के मन्दिर विद्यमान थे, तो भी इतनी जानकारी तो मिलती ही है कि प्राचीन काल में इन सभी के मंदिर निर्माण की परम्परा रही होगी।

इसी प्रसग में प्रासाद या भवन के लिए आये पुर, आगार, भवन, धाम, आवास, पस्त्य, उद्वसित, धिष्ण्य, शरण, सौध, मन्दिर, गेह और निवास शब्द भी महत्त्वपूर्ण है। भवन या मन्दिर के लिए इतने शब्दों का प्रयोग अन्यत्र एक साथ नहीं मिलता।

त्रिभुवनतिलक या इसी प्रकार के नामो की परम्परा भी प्राचीन है। भोज ने चौदह प्रकार के भवनो का उल्लेख किया है, उनमें एक भुवनतिलक भी है।

आस्थानमण्डप

सोमदेव ने यशोधर के लक्ष्मीनिवासतामरस नामक आस्थानमण्डप का विस्तृत वर्णन किया है। भोज ने भी (अ० ३०) लक्ष्मीविलास नामक भवन का उल्लेख किया है। गुजरात के बडोदा आदि स्थानो में विलास नामान्तक भवनो की परम्परा अभी तक प्रचलित है।

आस्थानमण्डप राजभवन का वह भाग कहलाता था, जिसमें बैठ कर राजा राज्य कार्य देखते थे।[31] इसे मुगलकाल में दरबारे आम कहा जाता था।

आस्थानमण्डप राजा के निवासस्थान से पृथक् होता था। प्रातःकालीन दैनिक कृत्यों से निवृत्त हो यशोधर ने आस्थानमंडप की ओर प्रयाण किया। सबसे पहले उन्हें गजशाला या हाथीखाना मिला। उसमें बडे-बडे दिग्गज हाथी गोलाकार बँधे थे। उनके अरुण माणिक्यों से मढे गजदन्तो में पड रही परछाईं से उनके कुम्भस्थलों की सिन्दूर शोभा द्विगुणित हो रही थी। और गण्डस्थलो से झरते मद के सौरभ से भ्रमरियों के झुण्ड के झुण्ड खिचे आते थे जिनसे आकाश नीला-नीला हो रहा था (पृ० ३६७)।

गजशाला के बाद यशोधर ने अश्वशाला या घुडसार देखी। घुडसार में यहाँ-वहाँ कई पक्तियों में घोडे बँधे थे। उनको नेत्र, चीन, चित्रपटी, पटोल, रल्लिका आदि वस्त्रों की जीनें पहनायी गयी थी। घास के हर कौर के साथ उनके मुख प्रकीर्णक हिल-हिल कर उनकी आँखो के कोने चूम रहे थे। अपने

---

३१ सर्वेषामाश्रमिणामितरव्यवहारविश्रामिणा च कार्याण्यपश्यम्। —पृ० ३७३

शून्य था। पुण्यजनावास होकर भी अराक्षसभाव था। प्रचेत पस्त्य (वरुणगृह) होकर भी अजडाशय था। वातोदवसित (वायुभवन) होकर भी अचपलनायक (स्थिरस्वामी) था। धनदधिष्ण्य (कुबेरगृह) होकर भी अस्थाणुपरिणत (ठूठरहित) था। शभूशरण होकर भी अव्यालावलीढ था। व्रघ्नसौध होकर भी अनेकरथ था। चन्द्रमन्दिर होकर भी अमृदुप्रताप था। हरिगेह होकर भी अहिरण्यकशिपुनाश था। नागेशनिवास होकर भी अद्विजिह्वपरिजन (दोगला-रहित) था, वनदेवता निवास होकर भी अकुरग था।

कहीं धर्मराजनगर की तरह सूक्ष्मतत्त्ववेत्ता विद्वान् सम्पूर्ण ससार के व्यवहार का विचार कर रहे थे। कहीं पर ब्रह्मालय की तरह द्विजन्मा (ब्राह्मण) लोग निगमार्थ (नीति शास्त्र) की विवेचना कर रहे थे। कहीं पर तण्डुभवन की तरह अभिनेता इतिहास का अभिनय कर रहे थे। कही पर समवशरण की तरह प्रमुख विद्वान् तत्त्वोपदेश कर रहे थे। कहीं सूर्य के रथ की तरह घोडो को सिखाने के लिए घसीटा जा रहा था। कहीं अगराज भवन की तरह सारग (हाथी) शिक्षित किये जा रहे थे। कुलवृद्धाएँ दासियों तथा नौकर चाकरो को नाना प्रकार के निर्देश दे रही थी। ऊँचे तमगो के झरोखो से स्त्रिया झांक रही थीं। कीर्तिसाहार नामक वैतालिक इस त्रिभुवनतिलक नामक भवन का वर्णन इस प्रकार करता है—

यह प्रासाद शुभ्रध्वजा-श्रेणियो द्वारा कहीं हवा से हिल रही हिलोरो वाली गगा की तरह लगता है, तो कही स्वर्णकलशों की अरुण किरणों के कारण सुमेरु की छाया की तरह। कहीं अतिश्वेत भित्तियो के कारण समुद्र की शोभा धारण करता है तो कहीं गगनचुम्बी शिखरो के कारण हिमालय की सदृशता धारण करता है। यह भवन-लक्ष्मी का क्रीडास्थल, साम्राज्य का महान् प्रतीक, कीर्ति का उत्पत्तिगृह, क्षितिवधू का विश्रामधाम, लक्ष्मी का विलासदर्पण, राज्य की अधिष्ठात्री देवी का कुलगृह तथा वाग्देवता का क्रीडास्थान प्रतीत होता है (पृ० ३५२ ५३)।

त्रिभुवनतिलक प्रासाद के वर्णन में सोमदेव ने जो अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी हैं, उनमें पुरदरागार, चित्रभानुभवन, धर्मधाम, पुण्यजनावास, प्रचेत पस्त्य, वातोदवसित, धनदधिष्ण्य, व्रघ्नसौध, चन्द्रमन्दिर, हरिगेह, नागेशनिवास, तण्डु-भवन इत्यादि की जानकारी विशेष महत्त्व की है। सूर्यमन्दिर, अग्निमन्दिर आदि बनाने की परम्परा प्राचीन काल से थी। इनके भग्नावशेष या उल्लेख आज भी मिलते हैं।

केवल सोमदेव के उल्लेखो के आधार पर यद्यपि यह कहना कठिन है कि दशमी शती में उपर्युक्त सभी प्रकार के मन्दिर विद्यमान थे, तो भी इतनी जानकारी तो मिलती ही है कि प्राचीन काल में इन सभी के मंदिर निर्माण की परम्परा रही होगी।

इसी प्रसग में प्रासाद या भवन के लिए आये पुर, आगार, भवन, धाम, आवास, पस्त्य, उद्वसित, धिष्ण्य, शरण, सौध, मन्दिर, गेह और निवास शब्द भी महत्त्वपूर्ण है। भवन या मन्दिर के लिए इतने शब्दो का प्रयोग अन्यत्र एक साथ नहीं मिलता।

त्रिभुवनतिलक या इसी प्रकार के नामो की परम्परा भी प्राचीन है। भोज ने चौदह प्रकार के भवनो का उल्लेख किया है, उनमें एक भुवनतिलक भी है।

आस्थानमण्डप

सोमदेव ने यशोधर के लक्ष्मीनिवासतामरस नामक आस्थानमण्डप का विस्तृत वर्णन किया है। भोज ने भी (अ० ३०) लक्ष्मीविलास नामक भवन का उल्लेख किया है। गुजरात के बडोदा आदि स्थानों में विलास नामान्तक भवनो की परम्परा अभी तक प्रचलित है।

आस्थानमण्डप राजभवन का वह भाग कहलाता था, जिसमें बैठ कर राजा राज्य कार्य देखते थे।[31] इसे मुगलकाल में दरबारे आम कहा जाता था।

आस्थानमण्डप राजा के निवासस्थान से पृथक् होता था। प्रातःकालीन दैनिक कृत्यों से निवृत्त हो यशोधर ने आस्थानमडप की ओर प्रयाण किया। सबसे पहले उन्हें गजशाला या हाथीखाना मिला। उसमें बडे-बडे दिग्गज हाथी गोलाकार बँधे थे। उनके अरुण माणिक्यो से मढे गजदन्तों में पड रही परछाईं से उनके कुंभस्थलो की सिन्दूर शोभा द्विगुणित हो रही थी। और गण्डस्थलो से झरते मद के सौरभ से भ्रमरियो के झुण्ड के झुण्ड खिचे आते थे जिनसे आकाश नीला-नीला हो रहा था (पृ० ३६७)।

गजशाला के बाद यशोधर ने अश्वशाला या घुडसार देखी। घुडसार में यहाँ-वहाँ कई पंक्तियों में घोडे बँधे थे। उनको नेत्र, चीन, चित्रपटी, पटोल, रल्लिका आदि वस्त्रो की जीनें पहनायी गयी थीं। घास के हर कौर के साथ उनके मुख प्रकीर्णक हिल-हिल कर उनकी आँखो के कोने चूम रहे थे। अपने

---

३१ सर्वेषामाश्रमिणामितरव्यवहारविश्रामिणा च कार्याण्यपश्यम्। —पृ० ३७३

दायें पैरों की टाप से वे बार-बार धरती खोद रहे थे मानो अपनी विजय परम्पराओं का प्रतिपादन कर रहे हों। उनकी हिनहिनाहट से समीपवर्ती सौधों के उत्संग गूंज रहे थे (पृ० ३६८)।

राजभवन के निकट ही गज तथा अश्वशाला बनाने की परम्परा प्राचीन थी। इसका मुख्य कारण यह था कि प्रातःकाल गज व अश्वदर्शन राजा के लिए मांगलिक माना जाता था। गजवर्णन के प्रसंग में स्वयं सोमदेव ने लिखा है कि जो राजा प्रातःकाल गजपूजन-दर्शन करता है वह रण में कीर्तिशाली तो होता ही है, निःसन्देह सार्वभौम भी होता है। प्रसन्नवदन गज का उषाकाल में दर्शन करने से दुःस्वप्न, दुष्टग्रह तथा दुष्टचेष्टा का नाश होता है (पृ० ३००)।

राजभवन के निकट गज और अश्वशाला फतेहपुर सीकरी के प्राचीन महलों में आज भी देखी जाती है।

आस्थानमण्डप कालागुरु की सुगन्धित धूप से महक रहा था। फड़फड़ाती ढेरों पताकाएँ आकाश-सागर में हंसमाला-सी लगती थीं। उच्च प्रासाद शिखर पर माणिक्य जटित कलशों से कान्ति निकल रही थी। फल, फूल और पल्लव युक्त वन्दनवारों के बीच-बीच में कीर कामिनियाँ बैठी थीं। बीच-बीच में तार हार लटकाये गये थे। स्फटिक के कुट्टिमतल पर गाढ़ी केशर का छिड़काव किया गया था। कर्पूरधूलि से रंगोली बनायी गयी थी। मरकतमणि की बनी वितर्दिका पर कमल, मालती, वकुल, तिलक, मल्लिका, अशोक आदि के अधखिले फूलों के उपहार चढ़ाये गये थे। उदीर्ण मणिस्तम्भिका पर सिंहासन सजाया गया था जो कल्पवृक्ष से वेष्टित सुमेरुशिखर सा लगता था। दोनों पार्श्वों में उज्ज्वल चमर ढोरे जा रहे थे। ऊपर सफेद दुकूल का वितान था। दीवारों में नीचे से ऊपर तक रत्नफलक जड़े थे, जिनमें उपासना के लिए आये सामन्तों के प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे।

विविध प्रकार के मणियों से बनी विभिन्न प्रकार की आकृतियों को देख कर डरे हुए भूपालबालक (राजकुमार) कंचुकियों को परेशान कर रहे थे। लगता था जैसे इन्द्र की सभा हो। याष्टीक सैनिक निकटवर्ती सेवकों को डाँट-डपट कर निर्देश दे रहे थे अपनी पोशाक ठीक करो, धन और जवानी के जोश में बको मत, बिना अनुमति किसी को घुसने न दो, अपनी-अपनी जगह सँभल कर रहो, भीड़ मत लगाओ, आपस में फिजूल की बकवास मत करो, मन को न डुलाओ, इन्द्रियों को काबू में रखो, एकटक महाराज की ओर देखो कि महाराज क्या पूछते हैं, क्या कहते हैं, क्या आदेश देते हैं, क्या नयी बात कहते हैं (३७१–७२)।

कपिलिका रखी थी ।[४८] तुहिनतरु के बने वलीकों पर उपकरण टांगे गये थे ।[४९] मणि के पिंजड़े में शुक-सारिका बैठी कामकथा में लीन थी ।[५०]

उपर्युक्त वर्णन में आये कूर्चस्थान, सचारिमहेमकन्यका, तथा वलीक आदि शब्द विशेष महत्त्व के हैं । कूर्चस्थान का अर्थ श्रुतसागर ने सभोगोपकरणस्थापन-प्रदेश किया है । सचारिमहेमकन्यका के विषय मे यन्त्रशिल्प प्रकरण में विचार किया गया है । इस प्रकार की यान्त्रिक पुत्तलिकाओ के निर्माण की परम्परा सोमदेव के पूर्व से चली आ रही थी और बाद तक चलती रही । वलीक शब्द का अर्थ श्रुतसागर ने पट्टिका किया है । यह अर्थ पर्याप्त नही है । वृक्षो पर उप-करण टांगने की परम्परा का उल्लेख कालिदास ने भी किया है । जब शकुन्तला पतिगृह को जाने लगी तब वृक्षो ने उसे समस्त आभूषण दिये (शाकुन्तल, अ० ४) । सम्भवतया सोमदेव का उल्लेख इसी ओर सकेत करता है । कपूरवृक्ष के वलीक बनाये गये थे, जिनमें बीच-बीच में पुष्पमालाएँ टंगी थी और उपकरण टंगे थे ।[५१]

दीर्घिका

दीर्घिका का उल्लेख यशस्तिलक में कई बार हुआ है । दो स्थानो पर विशेष वर्णन भी है जलक्रीडा के प्रसग में प्रथम आश्वास में और यन्त्रधारागृह के वर्णन में तृतीय आश्वास में ।

दीर्घिका प्राचीन प्रासाद-शिल्प का एक पारिभाषिक शब्द था । यह एक प्रकार की लम्बी नहर होती थी जो राजप्रासादो में एक ओर से दूसरी ओर दौडती हुई अन्त में प्रमदवन या गृहोद्यान को सींचती थी । बीच बीच में जल के प्रवाह को रोक कर पुष्करणी, गन्धोदककूप, क्रीडावापी इत्यादि बना लिये जाते थे । कही जल को अदृश्य करके आगे विविध प्रकार के पशु-पक्षियों के मुँह से पानी झरता हुआ दिखाते थे । लम्बी होने के कारण इसका नाम दीर्घिका पडा । सोम-देव ने यशोधर के महल की दीर्घिका का विस्तृत वर्णन किया है । इसका तलभाग

---

४८. सचारिमहेमकन्यकासोच्छ्वसितमुखवासताम्बूलकपिलिके ।—वही

४९ तुहिनतरुविनिर्मितवलीकान्तरमुक्त । —वही

५०. मणिपिंजरोपविष्टशुकसारिका । —वही

५१. तुहिनतरुविनिर्मितवलीकान्तरमुक्तकुसुमस्रक्सौरभाधिवास्यमानसुरताचमानिकोप-करणवस्तुनि । —पृ० २६ उत्त०

नाम दिया है। यह वासभवन सतखण्डा महल का सबसे ऊपरी भाग था।[३८] यशोधर अधिरोहिणी (सीढ़ियों) से चढ कर वहाँ गया। सोमदेव का यह उल्लेख विशेष महत्त्व का है। इससे ज्ञात होता है कि दशमी शताब्दी में इतने ऊँचे-ऊँचे प्रासादों की रचना होने लगी थी। ग्वालियर जिले के चंदेरी नामक स्थान के खण्डित कुपक महल की पहचान सात खण्ड के प्रासाद से की जाती है। मालवा के मुहम्मद शाह ने १४४५ में इसके बनाने की आज्ञा दी थी। वर्तमान में इसके केवल चार खण्ड शेष रहे हैं।[३९] सोमदेव ने एक स्थान पर और भी सप्ततल प्रासाद का उल्लेख किया है।[४०] यशोधर सभा विसर्जित करके चल कर (चरणमार्गेणैव, २३) महादेवी के वासभवन में गया था। प्रतिहार-पालिका ने द्वार पर क्षण भर के लिए यह कह कर रोक लिया कि अन्य स्त्री-जनासक्ति जान कर महादेवी कुपित हैं। सम्राट् ने अपना प्रणयकोप जाहिर किया तब कहीं उसने रास्ता दिया। हँस कर देहली छोड दी[४१] और कक्षान्तरों को पार कराती भवन में ले गयी।

इस वासभवन की सुनहरी दीवारों पर यक्षकर्दम का लेप किया गया था और कर्पूर से दन्तुरित किया गया था।[४२] रजत वातायनों पर कस्तूरी का लेप किया गया था, जिससे झरोखे से आने वाली हवा सुगन्धित होकर आ रही थी।[४३] स्फटिक की देहली को गाढे स्यन्दरस से साफ किया था।[४४] कुंकुम रंगे मरकत-पराग से फर्श (तलभाग) पर तह देकर अधखिले मालती के फूलों से रंगोली बनायी गयी थी।[४५] कालागुरु चन्दन की धूप निरन्तर जल रही थी, जिसके धुएँ से वितान पर्यन्त लटकती मुक्तामालाएँ धूसरित हो गयी थीं।[४६] कूर्चस्थान पर फूलों के गुलदस्ते रखे थे।[४७] संचरणशील हेमकन्यका के कन्धे पर ताम्बूल-

---

३८ सप्ततलप्रासादोपरितनभागवर्तिनि। –पृ० २९ उत्त०

३९ इंडियन आर्किटेक्चर, भाग २, पृ० ६५

४० सप्ततलागाराग्रिमभूमिभागिनि जिनसद्मनि। –पृ० ३०२, उत्त०

४१ सपरिहास समुत्सृष्टप्रद्वावग्रहणी। –पृ० २७, वही

४२ यक्षकर्दमखचितकर्पूरदलदन्तुरितजातरूपभित्तिनि। –पृ० २८

४३ मृगमदशकलोपलिप्तरजतवातायनविवरविहरमाणसमीरसुरभिते। –वही

४४ सान्द्रस्यन्दसमार्जितामलकदेहलीशिरसि। –वही

४५ घुसृणरसारुणितमरकतपरागपरिकल्पितभूमितलभागे मनाङ्मोदमानमालतीमुकुल विरचितरंगवलिनि। –वही

४६ अनवरतदह्यमानकालगुरुधूपधूमधूसरितवितानपर्यन्तमुक्ताफलमाले। –वही

४७ कूर्चस्थानविनिवेशितप्रसूनसमूह। –पृ० २९

कपिलिका रखी थी।[४८] तुहिनतरु के बने वलीकों पर उपकरण टांगे गये थे।[४९] मणि के पिंजडे में शुक-सारिका बैठी कामकथा में लीन थी।[५०]

उपर्युक्त वर्णन में आये कूर्चस्थान, सचारिमहेमकन्यका, तथा वलीक आदि शब्द विशेष महत्त्व के हैं। कूर्चस्थान का अर्थ श्रुतसागर ने सभोगोपकरणस्थापन-प्रदेश किया है। सचारिमहेमकन्यका के विषय मे यन्त्रशिल्प प्रकरण में विचार किया गया है। इस प्रकार की यान्त्रिक पुत्तलिकाओ के निर्माण की परम्परा सोमदेव के पूर्व से चली आ रही थी और बाद तक चलती रही। वलीक शब्द का अर्थ श्रुतसागर ने पट्टिका किया है। यह अर्थ पर्याप्त नही है। वृक्षो पर उप-करण टांगने की परम्परा का उल्लेख कालिदास ने भी किया है। जब शकुन्तला पतिगृह को जाने लगी तब वृक्षो ने उसे समस्त आभूषण दिये (शाकुन्तल, अ० ४)। सम्भवतया सोमदेव का उल्लेख इसी ओर सकेत करता है। कपूरवृक्ष के वलीक बनाये गये थे, जिनमे बीच-बीच में पुष्पमालाएं टंगी थी और उपकरण टंगे थे।[५१]

दीर्घिका

दीर्घिका का उल्लेख यशस्तिलक मे कई बार हुआ है। दो स्थानो पर विशेष वर्णन भी है जलक्रीडा के प्रसग में प्रथम आश्वास में और यन्त्रधारागृह के वर्णन में तृतीय आश्वास में।

दीर्घिका प्राचीन प्रासाद-शिल्प का एक पारिभाषिक शब्द था। यह एक प्रकार की लम्बी नहर होती थी जो राजप्रासादो में एक ओर से दूसरी ओर दौडती हुई अन्त में प्रमदवन या गृहोद्यान को सींचती थी। बीच बीच में जल के प्रवाह को रोक कर पुष्करणी, गन्धोदककूप, क्रीडावापी इत्यादि बना लिये जाते थे। कही जल को अदृश्य करके आगे विविध प्रकार के पशु-पक्षियों के मुंह से पानी झरता हुआ दिखाते थे। लम्बी होने के कारण इसका नाम दीर्घिका पडा। सोम-देव ने यशोधर के महल की दीर्घिका का विस्तृत वर्णन किया है। इसका तलभाग

४८. सचारिमहेमकन्यकासोत्तसितमुखवासताम्बूलकपिलिके।—वही
४९ तुहिनतरुविनिर्मितवलीकान्तरमुक्त।—वही
५० मणिपिंजरोपविष्टशुकसारिका।—वही
५१. तुहिनतरुविनिर्मितवलीकान्तरमुक्तकुसुमस्रक्सौरभाधिवास्यमानसुरतावमानिकोप-करणवस्तुनि।—पृ० २६ उत्त०

मरकत मणि का बना था।[५२] भित्तियाँ स्फटिक की थीं।[५३] सीढ़ियाँ स्वर्ण की बनायी गयी थीं।[५४] तटप्रदेश मुक्ताफल के बने थे।[५५] जल को कहीं हाथी, मकर इत्यादि के मुँह से झरता हुआ दिखाया गया था।[५६] जल तरगों पर कर्पूर का छिडकाव किया गया था।[५७] किनारो पर चन्दन का लेप किया गया था, जिससे लगता था मानो क्षीर सागर का फेन उसके किनारे पर जम गया है।[५८] आगे जल के प्रवाह को रोक कर पुष्करणी बनायी गयी थी, जिसमें कमल खिले थे।[५९] उसके आगे गधोदक कूप बनाया गया था जिसमें कस्तूरी और केसर से सुवासित शीतल जल भरा था।[६०] कुछ आगे जल को मृणाल की तरह एकदम पतली धारा के रूप में बहता दिखाया गया था।[६१]

आगे यान्त्रिक शिल्प के विविध उपादान—यन्त्रवृक्ष, यन्त्रपक्षी, यन्त्रपशु, यन्त्रपुत्तलिका आदि बने थे जिनसे तरह तरह से पानी झरता हुआ दिखाया गया था।[६२] यन्त्रशिल्प प्रकरण में इनका विशेष विवरण दिया गया है।

अन्त मे दीर्घिका प्रमदवन में पहुँची थी जहाँ विविध प्रकार के कोमल पत्तो और पुष्पों से पल्लव और प्रसूनशय्या बनायी गयी थी।[६३]

सोमदेव के इस वर्णन की तुलना प्राचीन साहित्य और पुरातत्त्व की सामग्री से करने पर ज्ञात होता है कि दीर्घिका निर्माण की परम्परा भारतवर्ष में प्राचीन काल से लेकर मुगलकाल तक चली आयी। प्राचीन साहित्य में इसके अनेक उल्लेख मिलते हैं। कालिदास ने रघुवश मे (१६।१३) दीर्घिका का वर्णन किया है। बाणभट्ट ने हर्ष के राजमहल के वर्णन में हर्षचरित में और कादम्बरी में

---

५२ मरकतमणिविनिर्मितमूलासु। —पृ० ३८ पू०
५३ कर्केतकोपलसम्पादितभित्तिभगिकासु। —वही
५४ काचनोपचितसोपानपरम्परासु। —वही
५५ मुक्ताफलपुलिनपेशलपर्यन्तासु। —वही
५६ करिमकरमुखमुच्यमानवारिभरिताभोगासु। —वही ३९
५७ कर्पूरपारीद तुरिततरगसगमासु।—वही
५८ दुग्धोदधिवेलास्विव चन्दनधवलासु।—वही
५९ वनस्थलीष्विव सकमलासु।—वही
६० मृगमदामोदमेदुरमध्यासु सकेसरासु। —वही
६१ विरहिणीशरीरयष्टिष्विव मृणालवलयनीषु। —वही
६२ विविधयन्त्रश्लाघनीषु।—वही
६३ विचित्रपल्लवप्रसूनफलस्फारार्चिकासु।—वही

दीर्घिका का विस्तृत वर्णन किया है। डॉक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस सामग्री का विस्तार से विवेचन किया है।[६४]

मुगलकालीन राजप्रासादो मे जो दीर्घिका बनायी जाती थी, उसका उर्दू नाम नहरे विहिश्त था। हारू रशीद के महल में इस प्रकार की नहर का उल्लेख आता है। देहली के लाल किले के मुगल महलो की नहरे विहिश्त प्रसिद्ध है।

वस्तुत प्राचीन राजकुलो के गृह-वास्तु की यह विशेषता मध्यकाल में भी जारी रही। विद्यापति ने कीर्तिलता में प्रासाद का वर्णन करते हुए क्रीडाशैल, धारागृह, प्रमदवन तथा पुष्पवाटिका के साथ कृत्रिमनदी का भी उल्लेख किया है।[६५] यह भवन दीर्घिका का ही एक रूप था।

दीर्घिका का निर्माण केवल भारतवर्ष में ही नहीं पाया जाता, प्रत्युत प्राचीन राजप्रासादो की वास्तुकला की यह ऐसी विशेषता थी जो अन्यत्र भी पायी जाती है। ईरान में खुसरू परवेज के महल मे भी इस प्रकार की नहर थी। कोहे विहिस्तून से कसरें शीरीं नामक नहर लाकर उसमें पानी के लिए मिलायी गयी थी। ट्यूडर राजा हेनरी अष्टम के हेम्टन कोर्ट राज प्रासाद में इसे लाग वाटर कहा गया है। यह दीर्घिका के अति निकट है।

वन

यशस्तिलक मे प्रमदवन का दो प्रसगों में वर्णन है -- मारिदत्त युवतियो के साथ प्रमदवन में रमण करता था (३७–३८)। सम्राट् यशोधर ग्रीष्म ऋतु में मध्याह्नका समय मदनमदविनोद नामक प्रमदवन में बिताता था (५२२–३८)।

प्रमदवन राजप्रासाद का महत्त्वपूर्ण अग होता था। यह प्रासाद से सटा हुआ बनता था। इसमें क्रीडाविनोद के पर्याप्त साधन रहते थे। अवकाश के क्षणों में राज्य-परिवार के सदस्य इसमें मनोविनोद करते थे। सोमदेव ने इसका विस्तार से वर्णन किया है।

प्रमदवन के अनेक महत्त्वपूर्ण अग थे -- उद्यान-तोरण, क्रीडाकुत्कील, खात-वलय, जलकेलिवापिका, कुल्योपकण्ठ, मकरध्वजाराधनवेदिका, वनदेवताभवन, कदलीकानन, विहारधरा, सरित्सारणी, छायामण्डप तथा यन्त्रधारागृह। यन्त्र-धारागृह के विन्यास का विस्तृत वर्णन है।

■

---

६४ हर्षचरित • एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० २०६
  कादम्बरी एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७१

६५ कीर्तिलता, पृ० १३६

यन्त्रशिल्प

यशस्तिलक में अनेक प्रकार के यान्त्रिक उपादानों का उल्लेख है। उनमें से अधिकांश यन्त्रधारागृह के प्रसग में आये हैं तथा कुछ अन्य प्रसगों पर। यन्त्रधारागृह के प्रसग में यन्त्रमेघ, यन्त्रपक्षी, यन्त्रपशु, यन्त्रव्याल, यन्त्र-पुत्तलिका, यन्त्रवृक्ष, यन्त्रमानव तथा यन्त्रस्त्री का उल्लेख है। अन्य प्रसगो में यन्त्रपर्यंक तथा यन्त्रपुत्रिकाओं का उल्लेख है। विशेष वर्णन इस प्रकार है –

यन्त्रजलधर

यन्त्रधारागृह में यन्त्रजलधर या यान्त्रिकमेघ की रचना की गयी थी। उससे झरझर पानी बरस रहा था और स्थलकमलिनी की क्यारी सिंच रही थी।[1]

यन्त्रधारागृह में मायामेघ या यन्त्रजलधर का निर्माण प्राचीन वास्तुकला का एक अभिन्न अग था। भोज ने शाही घरानों के लिए पाँच प्रकार के वारि-गृहों का विधान किया है, जिनमें प्रवर्षण नाम के एक स्वतन्त्र गृह का उल्लेख है। इस गृह में आठ प्रकार के मेघो की रचना की जाती थी तथा उन मेघो में से हजार हजार धाराओ के रूप में जल बरसता दिखाया जाता था।[2]

सोमदेव के पूर्व बाणभट्ट ने भी यन्त्रमेघ या मायामेघ का एक सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किया है – मायामेघ के पीछे से झांकता हुआ रग-विरगा चित्रलिखित इन्द्रधनुष, सामने से उडती हुई बलाकाओं की पंक्तियाँ और उनके मुखों से निकलती हुई सहस्रो धाराएँ, इन सबकी सम्मिलित छटा ऐसी प्रतीत होती थी मानो आकाश में मेघो की बदलचल हो रही हो।[3]

हेमचन्द्र ने यन्त्रधारागृह में चारों ओर से उठते हुए जलौघ का वर्णन किया

---

१ पर्यन्तयन्त्रजलधरवर्षाभिषिच्यमानस्थलकमलिनीकेदारम्। –स० पृ० ५३०

२ धारागृहमेकं स्यात्प्रवर्षणाख्यं ततो द्वितीयं च।
प्रणाल जलमग्नं नद्यावर्तं तथान्यदपि ॥
जलदकुनाष्टकयुक्तं पूर्ववदन्यद् गृहं समारचयेत्।
वर्षद्धारानिकरं प्रवर्षणाख्यं तत्प्नोति ॥ –समरांगणसूत्रधार ३१।११७, १४२

३ स्फटिकबलाकावलीवान्तवारिधारालिखितेन्द्रायुधा सचार्यमाणा मायामेघमाला।
उद्धृत – डॉ० अग्रवाल – कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ३७२

है। सम्राट् जब यन्त्रधारागृह में पहुँचे तो उन्होंने देखा कि चारो ओर से निकल रहे दीर्घ जलप्रवाह से सारा वन-प्रान्त जलमय हो रहा है।[४]

यन्त्रव्याल

यन्त्रधारागृह में यन्त्र जलधर की तरह विविध प्रकार के यन्त्र-व्यालो की भी रचना की गयी थी। इन हिंस्र जन्तुओं के मुँह से वमन होते हुए जल की घरघराहट से भवन-मयूर नाचने लगते थे।[५] विविध व्याल का अर्थ श्रुतदेव ने कृत्रिम गज, सर्प, सिंह, व्याघ्र, चीता आदि किया है।[६] कादम्बरी में चन्द्रकान्त के प्रणाल से निकलने वाले निर्झर के शब्द से प्रमुदित होकर शब्द करते हुए मयूरो का वर्णन आया है।[७] भोज ने भी लिखा है कि यन्त्रधारागृह में नृत्य करते हुए मयूरो से मंडित प्रदेश होना चाहिए।[८]

यन्त्रहंस

यन्त्रधारागृह में चन्द्रकान्तमणियो के प्रणालो की रचना की गयी थी। उनसे झरझर पानी निकल रहा था जिससे क्रीडा हंस संतुष्ट हो रहे थे।[९] बाण ने ठीक यही दृश्य कादम्बरी में प्रस्तुत किया है – यन्त्रधारागृह में एक ओर चन्द्रकान्तमणि की टोटी से झरना झरता था और बीच में पुछार मोरो की मिली हुई ग्रीवाओं से निर्मित फव्वारे की जलधाराएँ छूट कर फुहार उत्पन्न करती थीं। शिशिरोपचारो के वर्णन में यन्त्रमय कलहंसों की पंक्ति से जलधार छूटने का भी उल्लेख है (उत्कीलितयन्त्रमयकलहंसपंक्तिमुक्ताम्बुधारेण)।[१०]

यन्त्रगज

यन्त्रधारागृह में यन्त्रगज की रचना की गयी थी। उसकी सूँड से जल-सीकर बरस कर स्त्रियो के अलकजाल पर मुक्ताफल की शोभा उत्पन्न कर रहे

---

४ रेल्लन्ता वणभागा तओ पलोट्टा जवा जलाओघा।
वामाउ दक्खिणाओ समुद्दतो पच्छिमाहिन्तो॥ –कुमारपालचरित ४।२६

५ विविधव्यालवदनविनिर्गलज्जलधाराध्वनितलयनास्यमानभवनागणबर्हिणम्। वही, ५३०

६ विविधा नानाप्रकारा ये व्याला कृत्रिमगजसर्पसिंहव्याघ्रचित्रकादय। –सं० टी०

७ शशिमणिप्रणालनिर्झरप्रमोदमुखरमयूररवरम्ये।
उद्धृत, डॉ० अग्रवाल – कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७२

८ नृत्यद्भि परमपुष्टै शिखण्डिभिर्मण्डितोद्देशम्। –समरांगणसूत्रधार ३१।१२७

९ चन्द्रकान्तमयप्रणालविलसत्स्रोत संतर्प्यमाणविनोदवारलम्। – वरटा हंसिनी, सं० पू० पृ० ५३०

१० डॉ० अग्रवाल – कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७६

थे।[११] बाणभट्ट ने भी कादम्बरी के हिमगृह में स्वर्णकमलिनियों से खेलते हुए करि-कलभों का वर्णन किया है।[१२]

समरांगणसूत्रधार में भोज ने भी यान्त्रिक गजों की रचना का विधान किया है। भोज ने लिखा है कि जलक्रीडा करते हुए ऐसे करि-मिथुन की रचना करना चाहिए जो सूँड से परस्पर जल के सीकर उछाल रहे हों तथा सीकरों के आनन्द के कारण जिनके नेत्र मुद्रित हो गये हों।[१]

यन्त्रमकर

यन्त्रधारागृह में यन्त्रमकरों की रचना की गयी थी। इनके मुँह से निकलने वाले झरनों के फुहार उड़कर कामिनियों के स्तन-कलशों पर पड़ते थे जिससे उनका चन्दनलेप आर्द्र बना हुआ था।[१४]

भोज ने लिखा है कि कृत्रिम शफरी, मकरी तथा अन्य जलपक्षियों से युक्त कमलवापी बनाना चाहिए।[१५]

हेमचन्द्र ने यन्त्रधारागृह में वेदी पर बने हुए मकरमुखों से पानी निकलने का वर्णन किया है।[१६] स्वयं सोमदेव ने एक अन्य प्रसंग में मकरमुखी प्रणालों का उल्लेख किया है (करिमकरमुखमुच्यमानवारिभरिताभोगासु, सं० पू० ३९)। प्राचीन वास्तुशिल्प में मकरमुखी प्रणालों का खूब चलन था। बाण ने प्रदोष के वर्णन में मकरमुखी प्रणाल का उल्लेख किया है।[१७] सारनाथ के संग्रहालय में इस तरह का एक मकरमुखी प्रणाल सुरक्षित है।[१८]

---

११. करटिकरविकीर्यमाणसीकरासारसूत्रितागनालकमुक्ताफलाभरणम्।
— सं० पू० पृ० ५३०

१२ क्वचित् क्रीडितकृत्रिमकरिकलभयूथकाकुलीक्रियमाणा काञ्चनकमलिनिका।
—कादम्बरी ११६, उद्धृत—डॉ० अग्रवाल—कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७३

१३ कार्याण्यस्मिन् करिणां मिथुनान्यभितोऽम्बुकेलियुक्तानि।
अन्योन्यपुष्करोज्झितसीकरमयपिहितनयनानि ॥ —समरांगणसूत्रधार ३१।१३४

१४ मकरमुखमुक्तनिर्झरनीहारोल्लास्यमानकामिनीकुचकुम्भचन्दनस्थासकम्।
—सं० पू० पृ० ५३०

१५ कृत्रिमशफरीमकरीपक्षिभिरपि चाम्बुसम्भवैर्युक्ताम्।
कुर्यादम्भोजवतीं वापीमाहार्ययोगेन ॥ —समरांगणसूत्रधार ३१।१६३

१६ वेइअ मयर-मुहाहिंअ आ मूल सिर च फलिह थम्भाओ।
वारोत्तरगयाओ नीहरिया वारि धाराओ ॥ —कुमारपालचरित ४।२७

१७ अग्रवाल – हर्षचरित, पृ० १७

१८ वही, पृ० १७, फलक १, चित्र ६

यन्त्रवानर

यन्त्रधारागृह में एक ओर लतागृह में यन्त्रवानरो की रचना की गयी थी। उनके मुँह से पानी निकल रहा था, जिससे अभिमानिनी स्त्रियो के कपोलो की तिलकपत्र रचना धुली जा रही थी।[१९] भोज ने भी हिमगृह में वानरमिथुन की रचना करने का विधान बताया है।[२०]

यन्त्रदेवता

यन्त्रधारागृह में विविध प्रकार के यान्त्रिक जलदेवताओ की रचना की गयी थी। उनका विन्यास इस तरह किया गया था, जिससे वे जलकेलि में परस्पर झगडते हुए से प्रतीत होते थे। वही पास में कलहप्रिय नारद की हर्षोन्मत्त अवस्था का यन्त्र था। निकट ही मरीचि आदि सप्तर्षियो की यान्त्रिक पुत्तलिकाएँ थीं। उनके मुँह से निविड नीरप्रवाह निकल रहा था और विलासिनी स्त्रियो की जघाओ से टकरा रहा था। सोमदेव ने इस समूचे दृश्य को कल्पना के निम्नलिखित धागे में पिरोया है —

'जलकेलि करते करते जलदेवता आपस में झगडने लगे। कलह देख कर आनन्दित होने के स्वभाव के कारण नारद उस झगडे को देख कर हर्षोन्मत्त हो नाचने लगे और उस नृत्य को देख कर सप्तर्षियो की मण्डली इतनी खुश हुई कि हसी में मुँह से फेन के फव्वारे फूट पडे और कामिनियो की जाँघो से आकर लगे।'[२१]

यन्त्रवृक्ष

यन्त्रधारागृह में यन्त्रवृक्ष की रचना की गयी थी। उसके स्कन्ध पर बनी हुई देवियाँ हाथो से जल उछाल रही थीं। यह जल वल्लभाओ के अवतस किसलयो से आकर टकराता था, जिससे उनमें ताजगी बनी हुई थी।[२२] भोज ने भी यन्त्रवृक्षों का विधान बताया है।[२३]

---

१९ विलासवल्लरीवनवानराननोद्गीर्णपानीयापनीयमानमानिनीकपोलतलतिलकपत्रम्। —स० पू० ५३०

२० मिथुनैश्च वानराणा जम्पकनिवहैश्चानेकविधै। —समरागणसूत्रधार ३१।१४६

२१ तुमुलजलकेलिकलहावलोकनोन्मदनारदोत्तालताण्डवाडम्बरितशिखण्डिमण्डली - निष्ठ्यूतनिविडनीरप्रवाहविडम्ब्यमानविलासिनीजघनम्। —स० पू० ५३०

२२ कनककानाकानोकहस्कन्धासीनसुरसुन्दरीहस्तोदस्तोदकापाद्यमानवल्लभावतसकिस - लयाश्वासम्। —स० पू० ५३१

२३ कल्पतरुभिर्विचित्रै। —समरागणसूत्रधार, ३१।१२८

यन्त्रपुत्तलिकाएँ

यन्त्रधारागृह में यान्त्रिक पुत्तलिकाओ का विन्यास किया गया था। ये पुत्तलिकाएँ दो प्रकार की थी – (१) पवनकन्यकाएँ, (२) मेघपुरन्ध्रियाँ।

पवनकन्यकाएँ चमर ढोर रही थीं, जिससे उत्पन्न हुए मन्द मन्द पवन द्वारा सभोगक्रीडा से थकी हुई सीमन्तिनियो का मन आनन्दित हो रहा था।[२४]

मेघपुत्तलिकाओ का विन्यास यन्त्रधारागृह में यहाँ वहाँ कई स्थानों पर किया गया था। उनके स्तनरूप कलशो से पानी झरता था, जिसमें स्नान किया जा सकता था।[२५]

यन्त्रधारागृह के अतिरिक्त अन्य प्रसगो पर भी यान्त्रिक पुत्तलिकाओ के उल्लेख आये है। महादेवी अमृतमती के पलग के समीप व्यजनपुत्रिकाएँ बनी थीं। ये पुत्रिकाएँ पखा झलती रहती थीं।[२६] उज्जयिनी के वर्णन के प्रसग में भी व्यजनपुत्रिकाओ का उल्लेख है। शिप्रा का शीतल पवन पखा झलने वाली पुत्तलिकाओ को व्यर्थ बना देता था।[२७] ताम्बूलवाहिनी पुत्रिका का भी एक प्रसग में उल्लेख आया है।[२८]

भोजदेव ने अनेक प्रकार की यान्त्रिक पुत्तलिकाओ का विधान बताया है। ये पुत्तलिकाएँ हस्तावलम्बन, ताम्बूलप्रदान, जलसेचन, प्रणाम, दर्पण दिखाना, वीणा बजाना आदि कार्य करती थीं।[२९]

यन्त्रस्त्री

यन्त्रधारागृह का सबसे बडा आकर्षण वहाँ की यन्त्रस्त्री थी, जिसके दोनो हाथ छने पर नखाग्रो से, स्तन छूने पर दोनो चूचुको से, कपोल छूने पर दोनों नेत्रों से, सिर छूने पर दोनो कर्णावतसो से, कटि छूने पर करधनी की डोरियों से तथा त्रिवली छूने पर नाभि से चन्दनचर्चित जल की शीतल धाराएँ फूट पडती थीं –

---

२४ पवनकन्यकोद्भमरचामरानिलविनोद्यमानसुरतश्रान्तसीमन्तिनीमानसम्।
—स० पू० ५३१

२५ पयोधरपुरन्ध्रिकास्तनकलशविधीयमानमज्जनावसरम्। —वही ५३१

२६ उपान्तयन्त्रपुत्रिकोत्क्षिप्यमानव्यजनपवनापनीयमानसुरतश्रम। —पृ० ३७ उत्त०

२७ वृथा रतिषु पौराणा यन्त्रव्यजनपुत्रिका। —प० पू० २०५

२८ सचारिमहेमकन्यकासोत्तमितमुखवासताम्बूलकपिलिके। —२६ उत्त०

२९ करग्रहणताम्बूलप्रदानजलसेचनप्रणामादि।
आदर्शानतिलोकनवीणावाद्यादि च करोति॥ – समरांगणसूत्रधार ३१।१०४

हस्ने स्पृष्टा नखान्ते कुचकलशतटे चूचुकप्रक्रमेण,
वक्त्रे नेत्रान्तरास्या शिरसि कुवलयेनावतसार्पितेन।
श्रोण्या काचीगुणाग्रैस्त्रिवलिपु च पुनर्नाभिरन्ध्रेण धीरा,
यन्त्रस्त्री यत्र चित्र विकिरति शिशिराश्चन्दनस्यन्दधारा ॥

—स० पू० ५३१, ५३२

भोज ने भी इस वर्णन के बिलकुल तद्रूप ही यन्त्रस्त्री के निर्माण किये जाने का वर्णन किया है।[30]

भोज के करीब एक सौ वर्ष बाद हेमचन्द्र ने भी ठीक इसी तरह के यन्त्रो का वर्णन किया है। कुमारपाल के यन्त्रधारागृह में शालभजिकाओ के विभिन्न अगों से झरता हुआ पानी दिखाया गया था। सोमदेव के वर्णन के समान इन शाल-भजिकाओ के भी दोनो कानो से, मुँह से, दोनो हाथो से, दोनो चरणो से, दोनों कुचों से तथा उदर से, इस तरह दस अगो से पानी निकलता था।[31] सोमदेव ने दस स्थानो में पैरों की गणना नहीं की उसके बदले दोनो आँखो की गणना की है। हेमचन्द्र ने आँखो की गणना नहीं की, बल्कि पैरो की गणना की है।

एक ही यन्त्र के दस स्थानो से झरता हुआ पानी अत्यन्त मनोज्ञ दृश्य प्रस्तुत करता होगा। सोमदेव ने तो उसकी यान्त्रिकता की विशेषता बता कर उस शिल्पी की ओर भी ध्यान खींचा है जिसने इस उत्कृष्ट शिल्प की रचना की थी।

यन्त्रपर्यंक

अमृतमति महादेवी के भवन में आकर यशोधर जिस पलग पर सोया उसका यान्त्रिक विधान इतना सुन्दर था कि मन्दाकिनी प्रवाह की तरह उच्छ्वास मात्र से तरलित हो उठता था।[32] भोजदेव ने ऐसी शय्या का विधान बताया है जो नि श्वास के साथ ऊपर उठ जाये और आश्वास के साथ नीचे आ जाये।[33]

---

३० स्तनयोर्युगेन सृजती जलधारे तत्र कापि कार्या स्त्री।
आनन्दाश्रुलवानिव सलिलकणान् पक्ष्मभि काचित् ॥
नाभिह्रदनदिकामिव विनिर्गता कापि बिभ्रती धाराम्।
काप्यगुलीनखांशुभिरिव योषित् सिंचती कार्या ॥
—समरागणसूत्रधार, ३१।१३६, १३७

३१ पचालिआहि मुक्का कन्नेसुन्तो जल मुहासुन्तो।
हत्थेहिंतो चरणाहिंतो वच्छाहि उअरेहि ॥ —कुमारपालचरित ४।२८

३२ मन्दाकिनिप्रवाहमुच्छ्वसितमात्रेणापि तरलतरान्तरालविहितसुखसवेशम् यन्त्र सुन्दरम्। —उत्तरार्ध, ३१

३३ नि श्वासेन वियद्याति श्वासेनायाति मेदिनीम्। —समरांगणसूत्रधार ३१।६८

इस प्रकार यशस्तिलक में वर्णित यन्त्रशिल्प के उपर्युक्त तुलनात्मक विवेचन से प्राचीन वास्तुशिल्प का रमणीय दृश्य प्रस्तुत हो जाता है। बाण की साक्षी से यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि भारतीय वास्तुशिल्प में इस तरह का यान्त्रिक विधान छठी-सातवी शती से प्रारम्भ हो गया था। हेमचन्द्र के विवरण से बारहवीं शती तक इसके स्पष्ट साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

वारियन्त्रों के विषय में भोज ने कहा है कि इनके निर्माण करने के दो उद्देश्य होते है—एक तो क्रीडा निमित्त, दूसरे कार्य सिद्धयर्थ।[३४] अन्य यन्त्रो के विषय में भी यही बात कही जा सकती है।

यन्त्रधारागृह में वारियन्त्रो से विभिन्न रूपो में जल झरते हुए दिखाकर मनोरंजन के विविध उपादान उपस्थित किये जाते थे। इन वारियन्त्रो में जल पहुँचाने का एक विशेष प्रकार था। प्राचीन राजप्रासादो में बहते हुए जल की एक कृत्रिम नदी होती थी, जिसे सस्कृत साहित्य में दीर्घिका कहा गया है। दीर्घिका में या तो किसी पर्वतीय नदी आदि से जल का प्रबन्ध किया जाता था अथवा प्राय राजभवन के ही एक भाग में जल को ऊपर किसी स्थान में सगृहीत कर लिया जाता था।[५] यही जल जब वारियन्त्रो में छोडा जाता था तो ऊपरी दबाव के कारण तेजी से निकलता था।

■

३४ क्रीडार्थं कार्यसिद्ध्यर्थंन्- समरांगणसूत्रधार ३१।१०६

३५ अग्रवाल—कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७२

अध्याय चार

यशस्तिलककालीन भूगोल

परिच्छेद एक

जनपद

यशस्तिलक में सैतालिस जनपदो का उल्लेख है। विशेष जानकारी इस प्रकार है—

१. अवन्ति

यशस्तिलक में अवन्ति का विस्तृत वर्णन किया गया है।[1] अवन्ति मालव का प्राचीन नाम था, इसकी राजधानी उज्जैन थी। सोमदेव ने अवन्ति को स्वर्ग का उपहास करनेवाली[2] तथा समस्त लोगो की अभिलषित वस्तुओ का भाण्डार होने से सुर-पादपों (कल्पवृक्षो) के अहकार का तिरस्कार करनेवाली कहा है।[3]

अवन्ति जनपद में स्थान स्थान पर दान-शालाएँ,[4] प्रपा और तालाब,[5] बगीचे तथा धर्मशालाएँ[6] बनी थी। वहाँ के लोग विशेष अतिथि-प्रिय थे।[7]

२. अंग

यशस्तिलक में अग मण्डल का दो बार उल्लेख हुआ है। एक विभिन्न देशो से आये हुए दूतो के प्रसग में,[8] दूसरा छठे उच्छ्वास की आठवीं कथा में।[9] इनके अनुसार अग देश की राजधानी चम्पा थी। वहाँ वसुवर्धन नामक राजा राज्य करता था।[10] उसकी लक्ष्मीमति रानी थी।[11] प्राचीन भारत में, वर्तमान विहार प्रान्त के भागलपुर, मुगेर आदि जिलो का प्रदेश अग कहलाता था।

---

१ पृ० १९६ से २०४

२ प्रहसितवसुवसतिकान्तय ।–वही

३ निखिललोकाभिलापविलासिवस्तुसपत्तिनिरस्तसुरपादपमदो जनपद । –वही

४ सपादितसत्रमैत्रीमनोभि । — पृ० १९९

५ प्रपानिवेशै सर प्रदेशै । — पृ० २००

६ वससिसतानैललाप्रतानै ।— पृ० २०१

७ कृतकृतार्थातिथय । — पृ० २०१, नित्य कृतातिथेयेन धेनुकेन सुधारसै । –पृ० १९८

८ अन्यैश्चांगकलिंग । — पृ० ४६९ स० पू०

९ अगमण्डलेपु—चम्पाया पुरि । — पृ० २९१ उत्त०

१० वसुवर्धनाभिधानो वसुधापते । – वही

११ लक्ष्मीमतिमहादेवी । – वही

३. अश्मक

यशस्तिलक में अश्मक का दो जगह उल्लेख है।[१२] एक स्थान पर अश्मक को अश्मन्तक कहा गया है। अश्मक और अश्मन्तक एक ही शब्द हैं।

यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने अश्मन्तक को सपादलक्षपर्वत बतलाया है।[१३] एक अन्य प्रसंग में बर्बर नरेश का उल्लेख है।[१४] संस्कृत टीकाकार ने बर्बर को सपादलक्ष के पहाड़ी प्रदेश का शासक कहा है।[१५] इस तरह अश्मक, अश्मन्तक और बर्बर प्रदेश एक ही होना चाहिए। अश्मक की राजधानी पोदनपुर थी। पोदनपुर की पहचान हैदराबाद के निजामाबाद जिले में स्थित बोधन ग्राम से की जाती है। यह गोदावरी नदी की एक सहायक नदी के निकट बसा है।[१६]

पोदनपुर का उल्लेख यशस्तिलक में भी आया है।[१७] इसके अनुसार यह रम्यक देश में था।[१८] पर्भनी शिलालेख के अनुसार चालुक्य सामन्त युद्धमल्ल प्रथम सपादलक्ष देश का शासक था और उसके हाथी पोदन में तेल भरे तालाब में नहाते थे।[१९]

पालि साहित्य में अश्मक को अस्सक कहा है।[२०] अस्सक की राजधानी पोटन बतायी गयी है। सुत्तनिपात (गा० ९७७) के अनुसार अस्सक गोदावरी के तट पर स्थित था।

इस विवरण से ज्ञात होता है कि हैदराबाद का निजामाबाद जिला तथा उससे सम्बद्ध प्रदेश अश्मक कहलाता था। बहुत सम्भव है कि बरार का सबसे

---

१२ अश्मन्तक देशविदाय याहि। – पृ० १८८।२ हि०
अश्मकवरावैश्वानर। –पृ० ३७७। २ हि०

१३ अश्मन्तक सपादलक्षपर्वतनिवासिन्। – पृ० १८८ सं० टी०

१४ पृ० २५१।५ हि०

१५ पृ० ३१६ सं० टी०

१६ सालेटोर—दी सदन अश्मक, जैन एन्टीक्वैरी, भा० ६, पृ० ६०

१७ आ० ७, क० २८

१८ रम्यकदेशाभिवेशोपेतपोदनपुरनिवेशिन। – आ० ७, क० २८

१९ अस्त्यादित्यभवो वंशश्चालुक्य इति विश्रुत।
तत्राभूद् युद्धमल्लाख्यो नृपतिर्विक्रमार्णव॥
सपादलक्षभूभर्ता तैलवाप्या च पोदने।
अवगाहोत्सवं चक्रे शक्रश्रीर्मददन्तिनाम्॥

२० दीर्घनिकाय, महागोविन्द सुत्तन्त

दक्षिण प्रदेश तथा हैदराबाद का उत्तर भाग भी इसमें शामिल रहा है। डॉ० सरकार तथा डॉ० मिराशी ने इसके विषय में विशेष विवरण दिया है।[२१]

४. अन्ध्र

यशस्तिलक में अन्ध्र का दो बार उल्लेख है। मारिदत्त को अन्ध्र प्रदेश की स्त्रियों के साथ क्रीडा करने वाला बताया है।[२२] सोमदेव के उल्लेख से ज्ञात होता है कि अन्ध्र की स्त्रियाँ प्राचीन काल से ही पुष्प प्रसाधन की बहुत शौकीन रही हैं। मारिदत्त को अन्ध्र स्त्रियों के अलकों में लगी वल्लरी को बढाने के लिए मेघ के समान कहा है।[२३] सोमदेव के कथन से उस समय के अन्ध्र की सीमाओं का पता नहीं चलता।

५. इन्द्रकच्छ

सोमदेव ने लिखा है कि इन्द्रकच्छ देश में रोरुकपुर नाम का नगर था जिसे मायापुरी भी कहते थे।[२४] मुद्रित प्रति में रोरुकपुर नाम छूट गया है।

रोरुकपुर बौद्ध ग्रन्थों का रोरुक जान पडता है। दीर्घनिकाय, महागोविन्द सुत्त (पृ० १७५) के अनुसार रोरुक सौवीर देश की राजधानी थी। कच्छ की खाडी में यह व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र था।[२५] सोमदेव ने रोरुकपुर के औदायन नामक एक अत्यन्त सेवाभावी सम्राट् का वर्णन किया है। उसकी अतिथि-सत्कार की चर्चा इन्द्रपुरी तक में पहुँच गयी थी और दुनिया में उसका कोई भी सानी नहीं माना जाता था (*आ० ६, क० ९*)।

६. कम्बोज

यशस्तिलक में कम्बोज का तीन बार उल्लेख है। संस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर कम्बोज को वाल्हीक बताया है।[२६] एक स्थान पर लिखा है कि कम्बोज

---

२१ सरकार–दी वाकाटकाज एण्ड दी अश्मक कन्टरी, इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, भा० २२, पृ० २३३
मिराशी–हिस्टॉरीकल डाटाज इन दण्डिनाज दशकुमारचरित, एनाल्स ऑव् भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, भाग २६, पृ० २०

२२ अन्ध्रीकुचकुड्मलकृतविलास। –पृ० १८०। अन्ध्रीणां तिलगदेशस्त्रीणां। –वही, सं० टी०

२३ आन्ध्रीणामलकवल्लरीविजृम्भणजलधर। –पृ० ३३

२४ इन्द्रकच्छदेशेषु रोरुकदेशेषु, मायापुरीत्यपरनाम। –भा० ६, क० ९

२५ रै० डेविड –बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० ३८

२६ काम्बोज वाल्हीकदेशोद्भवम्। –पृ० २०८ सं० टी०

की स्त्रियों के सिर बड़े-बड़े होते हैं।[२७] यहाँ कम्बोज को टीकाकार ने कश्मीर आदि देश कहा है।[२८] पर टीकाकार का यह कथन ठीक नहीं है। कम्बोज की पहचान गन्धार के एकदम उत्तर पश्चिम में की जाती है।[२९] वास्तव में कम्बोज के विषय में भारतीय इतिहासकारों के दो मत हैं।

कम्बोज के घोड़े अच्छी किस्म के माने जाते थे।[३०] सोमदेव की सूचनानुसार यशोधर के अन्तःपुर में कम्बोज की भी कमनीय कामिनियाँ थीं।[३१]

७ कर्णाट

यशस्तिलक में कर्णाट का उल्लेख तीन बार हुआ है। संस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर कर्णाट का अर्थ वनवास,[३२] एक स्थान पर दक्षिणापथ[३३] तथा एक अन्य स्थान पर विदर आदि देश किया है।[३४] हैदराबाद जनपद का बीदर नामक स्थान प्राचीन विदर है।

गोदावरी और कावेरी के बीच का प्रदेश जो पश्चिम में अरब सागर तट के समीप है तथा पूर्व में ७८ अक्षांश तक फैला है, कर्णाट कहलाता था।[३५]

८. करहाट

यशस्तिलक के अनुसार करहाट विन्ध्याचल से दक्षिण की ओर एक अत्यन्त समृद्धिशाली जनपद था। सोमदेव ने इसे स्वर्ग की लक्ष्मी के निकट कहा है।[३६] यहाँ की एक विशाल गोशाला का सोमदेव ने विस्तार से वर्णन किया है।

वर्तमान में करहाट की पहचान बम्बई प्रदेश के सतारा जिले में कोहना और कृष्णा नदी के संगम पर स्थित करहाट प्रदेश से की जाती है।

---

२७ कम्बोजपुरन्ध्रीणां बृहन्मुण्डानाम्। –पृ० १८६, सं० टी०

२८ कम्बोजपुरन्ध्रीणां कश्मीरादिदेशस्त्रीणाम्। –वही

२९ रे० डेविड, वही, पृ० २८

३० कुलेन काम्बोजम्। –पृ ३०८

३१ कम्बोजीनां नाभिवलभिगभसंभोगभुजंग। –पृ० ३४।
कम्बोजपुरन्ध्रीतिलकपत्र। –पृ० १८८

३२ कर्णाटानां वनवासयोषितानाम्। –पृ० ३४ सं० टी०

३३ कर्णाटयुवतीनां दक्षिणापथस्त्रीणाम्। –पृ० १८०

३४ कर्णाटयुवतीनां विदरादिदेशस्त्रीणाम्। –पृ० १८६

३५ सोर्स ऑव् कर्णाटक हिस्ट्री भाग १, पृ० ७

३६ त्रिदशदेशाश्रयश्रीनिकट। –पृ० १८२

९. कलिंग

यशस्तिलक में कलिंग का उल्लेख कई बार हुआ है। संस्कृत टीकाकार ने इसे उत्कल देश और दक्षिण समुद्र तथा सह्य और विन्ध्य पर्वत के मध्य का भाग बताया है।[३७]

कलिंग अच्छे किस्म के हाथियो के लिए प्रसिद्ध था। यशोधर के लिए कलिंगाधिपति ने उपहार में हाथी भेंट किये।[३८]

सोमदेव ने सुदत्त को कलिंग के महेन्द्र पर्वत का अधिपति बताया है तथा महेन्द्र पर्वत को हाथियो की भूमि कहा है।[३९]

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में महेन्द्र पर्वत का उल्लेख है। दक्षिण के पहाडी राज्यों में उसने कलिंग की भी विजय की थी। यह वर्तमान गजम जिले में है।[४०]

१०. क्रथकैशिक

क्रथकैशिक को संस्कृत टीकाकार ने विराट देश बताया है।[४१] विराट वर्तमान जयपुर और अलवर के आसपास का क्षेत्र कहलाता था। प्राचीन विदर्भ क्रथकैशिक कहलाता था।

११. काची

काचो को यशस्तिलक के टीकाकार ने दक्षिण समुद्र के तट का देश कहा है।[४२]

प्राचीन पल्लव को काची या काचीवरम् कहते थे।

१२. काशी

काशी का उल्लेख सोमदेव ने जनपद के रूप में किया है। जनपद का नाम काशी था और वाराणसी उसकी राजधानी थी।[४३] यशस्तिलक से काशी की

---

३७ उत्कलानां च देशस्य दक्षिणस्यार्णवस्य च।
सह्यस्य चैव विन्ध्यस्य मध्ये कालिंगजं वनम्॥ –पृ० २११ सं० टी०

३८ अवलगति कलिंगाधीश्वरस्त्वा करीन्द्रै। –पृ० ४६६

३९ पृ० २३५–३६, उत्त०

४० सरकार – सेलेक्टेड इस्क्रिप्शन, पृ० २५६

४१ क्रथकैशिको विराटदेश। –पृ० ३७७ सं० टी०

४२ कांचीनाम दक्षिणसमुद्रतटदेश। –पृ० ५६८

४३ काशिदेशेषु वाराणस्याम्। –पृ० ३६० उत्त०

सीमाओं की जानकारी नहीं मिलती। सोमदेव ने काशी के घर्षण नामक राजा, उसके उग्रसेन नामक सचिव तथा पुष्प नामक पुरोहित से सम्बन्धित एक कथा दी है।[४४]

१३ कीर

यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने कीर का अर्थ कश्मीर किया है।[४५] कीर देश का स्वामी उपहार में कश्मीर अर्थात् केसर भेजता है।[४६] वर्तमान में कीर की पहचान पंजाब की कुल्लू वेली से की जाती है।

१४. कुरुजांगल

यह कुरु देश का एक भाग था। सोमदेव ने कुरुजांगल (९८।७, आ० ६, क० २०) तथा केवल जांगल नाम (आ० ७, क० २८) से इसका उल्लेख किया है। हस्तिनापुर इस प्रदेश की प्रसिद्ध नगरी थी। सोमदेव ने इसका दो बार उल्लेख किया है।

१५. कुन्तल

संस्कृत टीकाकार ने कुन्तल का अर्थ पूर्व देश किया है।[४७] उत्तर कनारा जिले के बनवासी नामक प्रमुख नगर के चारों ओर का प्रदेश कुन्तल कहा जाता था। बनवासी के कदम्बों के अधीन प्रदेशों में उत्तर कनारा तथा मैसूर, बेलगांव और धारवाड के भाग सम्मिलित थे।[४८] उत्तरकालीन कदम्बों के शिलालेखों में कदम्ब वंश के पूर्वज को कुन्तल देश का शासक बतलाया गया है।

अन्यत्र कुन्तल के अन्तर्गत अपेक्षाकृत विस्तृत प्रदेश बतलाया है। नीलगुण्ड प्लेट में अंकित नीचे लिखे श्लोक में उत्तरकालीन चालुक्य सम्राट् जयसिंह द्वितीय का वर्णन है। उनका दूसरा नाम मल्लिकामोद था और वह कुन्तल देश के शासक थे, जहाँ कृष्णवर्णा नदी बहती थी।

> विख्यातकृष्णवर्णे तैलस्नेहोपलब्धसरलत्वे।
> कुन्तलविषये नितरां विराजते मल्लिकामोद ॥

---

४४ वही

४५ कीरनाथ काश्मीरदेशाधिप। –पृ० ४७०

४६ काश्मीरै कीरनाथ। –वही

४७ कुन्तलकान्तानां पूर्वदेशस्त्रीणाम्। –पृ० १८८

४८ सरकार – इण्डियन हिस्टॉ० क्वा०, जिल्द २२, पृ० २२३

राष्ट्रकूटो और उत्तरकालीन कदम्बो को समकालीन शिलालेखो में तथा संस्कृत ग्रन्थो में कुन्तल का शासक बतलाया है। राष्ट्रकूटो की राजधानी मान्यखेट थी। हैदराबाद दक्षिण के गुलबर्गा जिले में स्थित आधुनिक मलखेट ही पुराना मान्यखेट था। किन्तु उत्तरकालीन चालुक्यो की राजधानी कल्याण थी, जो बीदर के निकट और मलखेड के एकदम उत्तर में लगभग ५० मील दूर है। उदयसुन्दरी कथा में लिखा है कि कुन्तल देश की राजधानी प्रतिष्ठान (गोदावरी पर स्थित आधुनिक पैठण) थी। अतः कुन्तल के अन्तर्गत केवल बम्बई प्रदेश का उत्तरकनारा जिला तथा मैसूर, बेलगांव और धारवाड के प्रदेश ही सम्मिलित नहीं थे, किन्तु उत्तर में वह बहुत आगे तक फैला था और जिसे आज दक्षिण मराठा प्रदेश कहते हैं, वह भी उसमें सम्मिलित था।[४९]

१६. केरल

यशस्तिलक में केरल का उल्लेख छह बार हुआ है।[५०] संस्कृत टीकाकार ने पांच स्थानों पर केरल को दक्षिण में कहा है। एक स्थान पर मलयाचल के निकट कहा है।[५१] यशस्तिलक से केरल की प्राचीन सीमाओ का पता नही चलता।

१७. कौंग

कौंग का उल्लेख केवल एक बार हुआ है (पृ० ४३१, स० पू०)। मैसूर का दक्षिणी प्रदेश नन्दिदुर्ग पर्यन्त तथा कोयम्बटूर और सालेम का प्रदेश कौंग कहलाता था।[५२]

१८. कौशल

यशस्तिलक में कौशल का दो बार उल्लेख हुआ है। यशोधर के दरबार में जो राजे उपहार लेकर उपस्थित हुए उनमें कौशल नरेश भी था।

---

४९ इंडियन हिस्टॉ० क्वा० जिल्द २२, पृ० ३१० पर प्रो० मिराशी का लेख

५०, केरलीनां नयनदीर्घिकाकेलिकलहंस। –पृ० ३४

केरलमहिलामुखकमलहंस।—पृ० १८८

केलि केरल सहर। –पृ० ३६६

केरलेषु कराल। –पृ० ४३१

दूता केरलचोलसिंहलशक। –पृ० ४६६

केरलकुलकुलिशपात। –पृ० ५६७

५१ केरलमलयाचलनिकटवर्तिन्। –पृ० ३६६

५२ रेप्सन–इण्डियन कोइन्स, पृ० ३६

सीमाओं की जानकारी नहीं मिलती। सोमदेव ने काशी के घर्पण नामक राजा, उसके उग्रसेन नामक सचिव तथा पुष्प नामक पुरोहित से सम्बन्धित एक कथा दी है।[४४]

१३. कीर

यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने कीर का अर्थ कश्मीर किया है।[४५] कीर देश का स्वामी उपहार में कश्मीर अर्थात् केसर भेजता है।[४६] वर्तमान में कीर की पहचान पंजाब की कुल्लू वेली से की जाती है।

१४. कुरुजांगल

यह कुरु देश का एक भाग था। सोमदेव ने कुरुजांगल (९८।७, आ० ६, क० २०) तथा केवल जांगल नाम (आ० ७, क० २८) से इसका उल्लेख किया है। हस्तिनापुर इस प्रदेश की प्रसिद्ध नगरी थी। सोमदेव ने इसका दो बार उल्लेख किया है।

१५. कुन्तल

संस्कृत टीकाकार ने कुन्तल का अर्थ पूर्व देश किया है।[४७] उत्तर कनारा जिले के बनवासी नामक प्रमुख नगर के चारों ओर का प्रदेश कुन्तल कहा जाता था। बनवासी के कदम्बों के अधीन प्रदेशों में उत्तर कनारा तथा मैसूर, बेलगांव और धारवाड के भाग सम्मिलित थे।[४८] उत्तरकालीन कदम्बों के शिलालेखों में कदम्ब वंश के पूर्वज को कुन्तल देश का शासक बतलाया गया है।

अन्यत्र कुन्तल के अन्तर्गत अपेक्षाकृत विस्तृत प्रदेश बतलाया है। नीलगुण्ड प्लेट में अंकित नीचे लिखे श्लोक में उत्तरकालीन चालुक्य सम्राट् जयसिंह द्वितीय का वर्णन है। उनका दूसरा नाम मल्लिकामोद था और वह कुन्तल देश के शासक थे, जहाँ कृष्णवर्णा नदी बहती थी।

विख्यातकृष्णवर्णे तैलस्नेहोपलब्धसरलत्वे।
कुन्तलविषये नितरां विराजते मल्लिकामोद॥

---

४४ वही
४५ कीरनाथ काश्मीरदेशाधिप।—पृ० ४७०
४६ काश्मीरे कीरनाथ।—वही
४७ कुन्तलकान्तानां पूर्वदेशस्त्रीणाम्।—पृ० १८८
४८ सरकार—इण्डियन हिस्टॉ० क्वा०, जिल्द २२, पृ० २२२

राष्ट्रकूटो और उत्तरकालीन कदम्बो को समकालीन शिलालेखो में तथा संस्कृत ग्रन्थो में कुन्तल का शासक बतलाया है। राष्ट्रकूटो की राजधानी मान्य-खेट थी। हैदराबाद दक्षिण के गुलबर्गा जिले में स्थित आधुनिक मलखेट ही पुराना मान्यखेट था। किन्तु उत्तरकालीन चालुक्यो की राजधानी कल्याण थी, जो बीदर के निकट और मलखेड के एकदम उत्तर में लगभग ५० मील दूर है। उदयसुन्दरी कथा में लिखा है कि कुन्तल देश की राजधानी प्रतिष्ठान (गोदावरी पर स्थित आधुनिक पैठण) थी। अब कुन्तल के अन्तर्गत केवल बम्बई प्रदेश का उत्तरकनारा जिला तथा मैसूर, बेलगांव और धारवाड के प्रदेश ही सम्मिलित नहीं थे, किन्तु उत्तर में वह बहुत आगे तक फैला था और जिसे आज दक्षिण मराठा प्रदेश कहते हैं, वह भी उसमें सम्मिलित था।[४९]

१६. केरल

यशस्तिलक में केरल का उल्लेख छह बार हुआ है।[५०] संस्कृत टीकाकार ने पांच स्थानों पर केरल को दक्षिण में कहा है। एक स्थान पर मलयाचल के निकट कहा है।[५१] यशस्तिलक से केरल की प्राचीन सीमाओ का पता नही चलता।

१७ कोंग

कोंग का उल्लेख केवल एक बार हुआ है (पृ० ४३१, स० पू०)। मैसूर का दक्षिणी प्रदेश नन्दिदुर्ग पर्यन्त तथा कोयम्बटूर और सालेम का प्रदेश कोंग कहलाता था।[५२]

१८. कोशल

यशस्तिलक में कोशल का दो बार उल्लेख हुआ है। यशोधर के दरबार में जो राजे उपहार लेकर उपस्थित हुए उनमें कोशल नरेश भी था।

---

४९ इण्डियन हिस्टॉ० क्वा० जिल्द २२, पृ० ३१० पर प्रो० मिराशी का लेख

५०, केरलीनां नयनदीर्त्रिकाकेलिकलहंस । -पृ० ३४

केरलमहिलामुखकमलहंस।—पृ० १८८

केलिं केरल सहर। -पृ० ३१६

केरलेषु कराल । -पृ० ४३१

दूता केरलचोलसिंहलशक। -पृ०४६१

केरलकुलकुलिशपात। -पृ० ५६७

५१ केरलमलयाचलनिकटवर्तिन्। -पृ० ३६६

५२ रेप्सन-इण्डियन कोइन्स, पृ० ३६

वह कौशेय के वस्त्र उपहार में लाया था।[५३] कौशल बुद्धकालीन षोडश महाजनपदो में गिना जाता था। सोमदेव ने इस तरह की कोई विशेष जानकारी नही दी है।

१९. गिरिकूट पत्तन

गिरिकूट पत्तन का उल्लेख एक कथा के प्रसग में हुआ है। वहाँ विश्व नाम का राजा था। उसके पुरोहित का नाम विश्वदेव था। विश्वदेव के नारद नामक पुत्र हुआ। नारद और डहाल के पुरोहित क्षीरकदम्ब के पुत्र पर्वत की शिक्षा-दीक्षा एक साथ हुई थी। सोमदेव की सूचनानुसार पुराणो के नारद मुनि और पर्वत यही है। इस प्रसग से लगता है गिरिकूट पत्तन डहाल के आसपास रहा होगा।[५४]

२०. चेदि

यशस्तिलक में चेदि जनपद का उल्लेख दो बार हुआ है। सस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर चेदि को कुण्डिनपुर[५५] तथा दूसरे स्थान पर डहाल[५६] देश कहा है।

चेदि मध्यदेश का एक महत्त्वपूर्ण जनपद था।

२१. चेरम

चेरम का उल्लेख दो बार हुआ है।[५७] केरल और चेरम एक ही जनपद के नाम थे।

२२ चोल

यशस्तिलक में चोल का उल्लेख चार बार हुआ है। सस्कृत टीकाकार ने चोल को एक प्रसग में मजिष्ठादेश[५८] कहा है तथा एक अन्य स्थान पर सभग

---

५३ कौशेयै कौशलेन्द्र। —पृ० ४७०, आ० ६, क० १५

५४ गिरिकूटपत्तनवसतेर्विश्वनाम्नो विश्वभरापते। —पृ० ३५।३, उत्त०

५५ हे चेदीश कुण्डिनपुरपते। — पृ० १८८, स० टी०

५६ चैद्यो नाम डाहालदेश। — पृ० ५६८, स० टी०

५७ चेरम पर्यंट मलयोपकण्ठ। — पृ० १८७

पल्लवपाण्ड्यचोलचेरमहर्म्यविनिर्माण। — पृ० ५६५

५८ दूता केरलचोलसिंहलशक। — पृ० ४६६, चोलस्त्र मजिष्ठादेशभूप। — स० टी०

देश।[५९] मंजिष्ठा और सभग दोनो एक ही हैं।

एक स्थान पर टीकाकार ने चोल को गगापुर कहा है[६०] जो गंगकोण्डा कोलापुरम् का सस्कृत रूप लगता है। ११ और १२वी शती में यह चोल की राजधानी रही है। इस प्रकार वर्तमान त्रिचनापल्ली और तंजौर के जिले तथा पुद्दुकोट्टा राज्य का भाग पहले चोल कहलाता था।

२३. जनपद

जनपद का उल्लेख मात्र एक बार हुआ है। इसकी राजधानी भूमितिलकपुर थी। जनपद की पहचान अभी नहीं हो पायी है, फिर भी यशस्तिलक के आधार पर लगता है कि यह कुरुक्षेत्र के आसपास का भाग रहा होगा। दो मित्र भूमि-तिलकपुर से चल कर कुरुजागल के हस्तिनापुर में पहुँचते है।[६१]

२४ डहाल

यशस्तिलक मे डहाल का उल्लेख एक बार हुआ है। डाहाल या डहाल को चेदी राजाओ की राजधानी बताया जाता हैं। सोमदेव के अनुसार यहाँ अच्छी किस्म के गन्ने की खेती होती थी।[६२] डहाल की स्वस्तिमती नाम की नगरी में अभिचन्द्र, द्वितीय नाम विश्वावसु, नामक राजा राज करता था।[६३]

२५. दशार्ण

सोमदेव ने दशार्ण का दो बार उल्लेख किया है।[६४] एक स्थान पर सस्कृत टीकाकार ने दशार्ण को गोपाचल (ग्वालियर) से चालीस गव्यूति (८० कोस) दूर लिखा है।[६५] पूर्वी मालवा और उससे सम्बद्ध प्रदेश दशार्ण कहलाता है।

---

५९ चोलीनयनोत्पलवनविकास। – पृ० १८०
चोलीना सभगदेशस्त्रीणाम्। – वही, स० टी०
चोलीषु भ्रूलतानतनमलयानिल। – पृ० ३३

६० चोलेश जलधिमुल्लध्य तिष्ठ। – पृ० १८७,
चोलदेशो दक्षिणापथे वर्तते। सगापुर (गगापुरपते) – स० टी०

६१ जनपदाभिधानास्पदे जनपदे भूमितिलकपुरपरमेश्वरस्य। – पृ० २८३ उत्त०

६२ इक्षुरणावतारैर्विराजितमण्डलाया डहालायाम्। – पृ० ३५३ उत्त०

६३ डहालायामस्ति स्वस्तिमती नाम पुरी, तस्यामभिचन्द्रापरनामवसुविश्वावसुर्नाम-नृपति। वही

६४ पृ० ५६८ स० पृ०, १५३ उत्त०

६५ दशार्णं नाम नगर गोपाचलाद् गव्यूतिचत्वारिंशति वर्तते। – पृ० ५६८

दशार्ण को राजधानी विदिशा थी। विदिशा और उदयगिरि पहाडो के मध्य में प्राचीन राजधानी के भग्नावशेष पाये जाते हैं। धसान और वेत्रवती इसकी प्रसिद्ध नदियाँ हैं। कालिदास के मेघ ने दशार्ण में पहुँच कर विदिशा का आतिथ्य स्वीकार किया था और वेत्रवती के निर्मल जल का पान किया था (मेघदूत १।६७)।

२६. प्रयाग

सोमदेव ने प्रयाग का जनपद के रूप में उल्लेख किया है (प्रयागदेशेषु, पृ० ३४५ उत्त०)। प्रयाग के सिंहपुर नगर में सिंहसेन नामक राजा राज करता था।[६६]

२७. पल्लव

यशस्तिलक में पल्लव का उल्लेख तीन बार हुआ है।[६७] प्राचीन समय में काची (काचीवरम्) प्रदेश को पल्लव कहते थे। इस पर पल्लवो का राज्य था। नवमी शताब्दी के अन्त में उन्हें चोलो ने हरा दिया। जब सोमदेव ने अपना यशस्तिलक लिखा तब तक इस घटना को घटे अर्ध शताब्दी से अधिक बीत चुकी थी, किन्तु पल्लव राज्य की स्मृतियाँ फिर भी शेष थीं। चोलो के आधिपत्य में पल्लव सामन्त यत्र तत्र राज्य कर रहे थे।

२८ पाचाल

उत्तरप्रदेश का रुहेलखण्ड प्राचीन पचाल देश कहलाता था। यशस्तिलक में इसके दो स्थानो पर उल्लेख आये हैं।[६८]

२९ पाण्डु या पाण्डच

पाण्डु या पाण्डच का उल्लेख दो बार हुआ है। सोमदेव ने लिखा है कि पाण्डच नरेश सुन्दर मध्यमणिवाला मोतियों का हार उपहार में लेकर यशोधर

---

६६ प्रयागदेशेषु सिंहपुरे सिंहसेनो नाम नृपतिः। —पृ० ३४५ उत्त०

६७ पल्लवीषु नितम्बस्थलीखेलनकुरग। —पृ० ३४

पल्लव लघुकेलीरमणपेहि। —पृ० १८७

पल्लवरमणीकृत विरहखेद। —पृ० १८८

६८ पृ० ३६६, ४६६

के दरबार में उपस्थित हुआ।[69] एक स्थान पर आया है कि चण्डरसा नामक स्त्री ने कबरी में छिपाये हुए असिपत्र से मुण्डीर नामक राजा को मार डाला था।[70]

३०. भोज

भोज या भोजावनी का एक बार उल्लेख है।[71] विदर्भ या बरार भोजावनी कहा जाता था। भोजावनी कहने का प्रयोजन यही है कि यहाँ बहुत काल तक भोज राजाओं का साम्राज्य था। रघुवंश में भी इस बात का उल्लेख है।[72]

३१. बर्बर

बर्बर का एक बार उल्लेख है।[73] इसकी व्याख्या अश्मक के प्रसंग में की गयी है।

३२. मद्र

मद्र का भी एक बार उल्लेख है।[74] इसकी पहचान पंजाब प्रान्त में रावी और चेनाब के बीच में स्थित स्यालकोट से की जाती है।

३३. मलय

यशस्तिलक में मलय का दो बार उल्लेख है। दोनों स्थानों पर मलय की अंगनाओं का वर्णन किया गया है।[75] मलय पर्वत के आसपास का प्रदेश मलय नाम से प्रसिद्ध था।

३४ मगध

सोमदेव ने यशोधर को मगध की स्त्रियों के लिए विलासदर्पण की तरह कहा है।[76] संस्कृत टीकाकार ने मगध को राजगृह (वर्तमान राजगृही) कहा है।[77]

---

६९ अयमपि च समास्ते पाण्ड्यदेशाधिनाथस्तरलगुलिकहारप्राभृतव्यग्रहस्त ।–पृ० ४६६

७० कबरीनिगूढेनासिपत्रेण चण्डरसा मुण्डीरम् । – पृ० १५३ उत्त०

७१ गर्जी जहीहि भोजावनीश । – पृ० १८५

७२ रघुवंश ५।३९

७३ गर्व बर्बर मुंच । – पृ० ३६६

७४ प्रविश रे मद्रेश देशान्तरम् । – पृ० ३६६

७५ मलयस्त्री रतिभरकेलिमुग्ध । – पृ० १८०
मलयांगनागनखदाननिरत । – पृ० १८८

७६ मागधवधूविलासदर्पण । – पृ० ५६८

७७ मागधवधूनां राजगृहस्त्रीणाम् । – वही, सं० टी०

३५ यौधेय

सोमदेव ने यौधेय का विस्तार से वर्णन किया है।[७८] यह एक समृद्धिशाली जनपद था जिसे देख कर देवताओ का भी मन चल जाता था। यहाँ सभी प्रकार का गोधन – गाय, भैंस, घोडे, ऊँट, बकरी, भेड – पर्याप्त था। स्वर्ण की कमी न थी। पानी के लिए मात्र वर्षा पर निर्भर नहीं रहना पडता था। यहाँ की जमीन काली थी। हल जोतने वाले बहुत थे। पानी सुलभ था। खेती के विशेषज्ञ पर्याप्त थे। खूब बाग बगीचे थे। पेड-पौधो की कमी न थी। सडकें साफ सुथरी थीं। गाँव इतने पास पास बसे हुए थे कि एक गाँव के मुर्गे उडकर दूसरे गाँव मे पहुँच जाते थे (कुक्कुटसपात्याग्रामा)। सब परस्पर सौहार्द से रहते थे।

३६ लम्पाक

यशस्तिलक में लम्पाक का मात्र एक बार उल्लेख हुआ है।[७९] इसकी पहचान वर्तमान लाघमन से की जाती है। युवानच्वाग ने इसे लानपो लिखा है।[८०]

३७. लाट

लाट का अर्थ यशस्तिलक के सस्कृत टीकाकार ने भृगुकच्छ किया है।[८१] पालि में भरुकच्छ नाम आता है। वर्तमान भडौंच से इसकी पहचान की जाती है। नर्मदा के मुहाने पर यह एक अच्छा नगर तथा जिला है। प्राचीन समय में पूर्वी गुजरात को लाट कहते थे।

३८. वनवासी

बुहलर ने विक्रमाकदेव चरित के प्राक्कथन में लिखा है कि तुगभद्रा और वरदा के मध्य में एक कोने में वनवासी स्थित था। यशस्तिलक के सस्कृत टीकाकार ने वनवासी का अर्थ गिरिसोपानगरादि किया है।[८२] अर्थात् वनवासी में गिरिसोपा (उत्तर कनारा जिले में स्थित गेरसोप्पा) तथा अन्य नगर थे। महावश (१२।३१) में भी वनवास का नाम आया है। गेगर ने लिखा है कि उत्तर कनारा जिले में वनवासी नाम का एक कस्बा आज भी वर्तमान है।[८३]

---

७८ पृ० १२ से २५

७९ लम्पाकपुरपुरन्ध्रिकाधरमाधुर्यपश्यतो हरे। – पृ० ५७४

८० वाटरस् आन युवानच्वाग, भाग १ पृ० १८१

८१ लाटीना भृगुकच्छदेशोद्भवाना स्त्रीणाम्। – पृ० १८०, स० टी०

८२ गिरिसोपानगरादिस्त्रीणाम्। – पृ० १९९

८३. इम्पीरियल गजट ऑव इडिया

३९ बग या बंगाल

यशस्तिलक में दो बार वग[८४] तथा एक बार वगाल का उल्लेख हुआ है। प्रो० हन्दिकी ने दोनों को एक बताया है किन्तु सोमदेव ने स्पष्ट ही एक ही स्थान पर दोनों का अलग अलग उल्लेख किया है। कल्चुरी विज्जल (११५७–६७ई०) के अब्लूर शिलालेख में भी वग और वगाल का अलग-अलग उल्लेख है।[८६] प्राचीन वग का दक्षिणी प्रदेश ही बाद में वगाल नाम से प्रसिद्ध हुआ। चन्द्रद्वीप अर्थात् बाकरगज और उससे सम्बद्ध प्रदेश बगाल कहलाता था।[८७] ग्यारहवीं शती में ढाका जिला बगाल में था। चौदहवीं शताब्दी में सोनारगांव बगाल की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध था और वगाल ढाका से चटगांव तक फैला हुआ था।[८८]

४० वगी

वगी का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख हुआ है।[८९] वगी और वेंगी एक ही प्रतीत होते हैं। गोदावरी और कृष्णा नदी के मध्य में स्थित जिले, जहाँ पूर्वीय चालुक्यो का राज्य था, वेंगी कहलाता था। किन्तु यशस्तिलक की टीका में वगी को रतनपुर कहा है।[९०] रतनपुर आजकल मध्यप्रदेश के विलासपुर के उत्तर में स्थित है। यह दक्षिण कोशल की राजधानी थी और वहां त्रिपुरी के चेदी वश की एक शाखा राज्य करती थी। टीकाकार का वगी को रतनपुर बताना उचित नहीं है।

४१ श्रीचन्द्र

श्रीचन्द्र का केवल एक बार उल्लेख है।[९१] सस्कृत टीकाकार ने श्रीचन्द्र को कैलाश पर्वत का स्वामी वताया है। यह सम्राट् यशोधर के लिए चन्द्रकान्त के उपहार लेकर उपस्थित हुआ था।[९२]

---

८४ अन्यैश्चागकलिंगवगपतिभिः। –पृ० ४६६
वगेषु स्फुलिंग। –पृ० ४२१

८५ वगालेषु मण्डल। –वही

८६ इडियन हिस्टॉरीकल क्वार्टरली, भाग २२, पृ० २८०

८७ सरकार—दी सिटी ऑव् बगाल भारतीय विद्या, जिल्द ५, पृ० ३६

८८ वही

८९ वगीवनिताश्रवणावतस।—पृ० ९८ हि०। बगीमण्डले।—पृ० ९५ उत्त०

९०. वही, स० टी०

९१ पृ० ३१४ हि०

९२ श्रीचन्द्रश्चन्द्रकान्तै।—पृ० ३१४ हि०

४२ श्रीमाल

श्रीमाल का भी एक बार उल्लेख है।[९३] जोधपुर राज्य के भिनमाल नामक स्थान से इसकी पहचान की जाती है। कुवलयमाला कहा (८वी शती) में भिल्लमाल का उल्लेख है। यह जैनो का एक गढ था। यहाँ से निकलने वाले जैन वर्तमान में राजस्थान, पश्चिम भारत तथा उत्तरप्रदेश में पाये जाते हैं। इनको श्रीमाल कहा जाता है, वे भी स्वय अपने को श्रीमाल मानते हैं।[९४]

४३ सिन्धु

सिन्धु देश का उल्लेख सोमदेव ने वहाँ के घोडो के साथ किया है। सिन्धु देश के राजा ने अच्छी किस्म के बहुत से घोडे लेकर अपने दूत को सम्राट् यशोधर के पास भेजा।[९५]

वहाँ से आने वाले घोडो का कालिदास ने भी उल्लेख किया है।[९६]

सिन्धु देश सिन्धु नदी के दोनों किनारो पर इसके मुहाने तक विस्तृत था। कालिदास के अनुसार इसमें गन्धर्व निवास करते थे जिन्हें भरत ने पराजित किया।[९७] इस देश में तक्षशिला और पुष्कलावती अवस्थित थे। इनका नाम भरत ने अपने दोनो पुत्रों तक्ष और पुष्कल के नाम पर रखा था और उन्हें वहाँ का राज्य सौंप दिया था।[९८]

सिन्धु हमेशा घोडो के लिए प्रसिद्ध रहा है। अमरकोपकार ने इसी कारण सैन्धव और गन्धर्व घोडो के पर्याय दिये है।[९९] सोमदेव ने सिन्धु के घोडो का उल्लेख किया है।

४४ सूरसेन

सूरसेन का भी एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने लिखा है कि सूरसेन जनपद में वसन्तमति ने अपने अधरो में विषमिला अलक्तक लगाकर सुरतविलास

---

९३ पृ० ३१४ हि०

९४ भारतीय विद्या जिल्द दो, भाग १-२ में श्री जिनविजय जी

९५ तुरगनिवह एष प्रेषित सैन्धवैस्ते। —पृ० ३१४ हि०

९६ रघु० १५।८७

९७ वही १५।८८

९८ वही १५।८९

९९ अमरकोष २।८।४५

नामक राजा को मार डाला था।[100] मथुरा का पुराना नाम सूरसेन था।

४५ सौराष्ट्र

सौराष्ट्र का दो बार उल्लेख हुआ है।[101] संस्कृत टीकाकार ने सौराष्ट्र के गिरिनार का भी उल्लेख किया है।[102]

४६ यवन

सोमदेव ने यशोधर को यवनकुल के लिए वज्राग्नि के समान कहा है।[103] सोमदेव ने लिखा है कि यवनदेश में मणिकुण्डला नामक महारानी ने अपने पुत्र को राज्य दिलाने के लिए शराब में विष मिलाकर अजराज नामक राजा को मार डाला था।[104] एक अन्य प्रसंग में यवनी स्त्रियों का उल्लेख है।[105] श्रुतदेव ने यवन का अर्थ खुराशान देश किया है,[106] जो उचित नहीं है। अजराज तक्ष-शिला में राज्य करता था।

४७. हिमालय

हिमालय का जनपद तथा पर्वत दोनों रूपों में उल्लेख है। इसके लिए हिमा-चल (पृ० २१३) के अतिरिक्त शिशिरगिरि (पृ० ४७०), तुषारगिरि (पृ० ५७४), तथा प्रालेयशैल (पृ० ३२२) नाम भी आये हैं।

हिमाचल प्रदेश का अधिपति सम्राट् यशोधर के दरबार में ग्रन्थिपर्ण की भेंट ले कर उपस्थित हुआ।[107]

■

---

१०० सूरसेनेषु सुरतविलासम्।—पृ० १५२

१०१ पृ० ३४ सं० पू० तथा पृ० ३०२ उत्त०

१०२ सौराष्ट्रीषु गिरिनारिसौराष्ट्रियोपित्सु।—पृ० ३४ सं० टी०

१०३ यवनकुलवज्रानिल।—पृ० ५६८ सं० पू०

१०४ विषदूषितमद्यगण्डूषेण मणिकुण्डला महादेवी यवनेषु निजतनुजराज्यार्थमजराज जघान।—पृ० १५२ उत्त०

१०५. यवनी नितम्बनखपदविमुग्ध।—पृ० १८०

१०६ यवनो नाम खुराशानदेश।—वही, सं० टी०

१०७ शिशिरगिरिपतिर्ग्रन्थिपर्णैरुदीर्णै।—पृ० ४७१

परिच्छेद दो

नगर और ग्राम

सोमदेव ने यशस्तिलक में चालीस ग्राम और नगरो का उल्लेख किया है। इनके विपय में विशेप जानकारी इस प्रकार है —

१ अहिच्छत्र

अहिच्छत्र की पहचान उत्तरप्रदेश के बरेली जिले में स्थित रामनगर नामक ग्राम से की जाती है। जैन अनुश्रुति के अनुसार इस ग्राम में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने कठोर तपस्या की थी। कमठ नामक व्यन्तर ने उनके ऊपर घोर उपसर्ग किया, फिर भी वे अपनी तपस्या में अडिग रहे। उनकी इस कठोर साधना का यश चारों ओर फैल गया। सोमदेव ने इसी भाव का सकेत किया है।[१] यशस्तिलक के उल्लेख के अनुसार अहिच्छत्र पाचाल देश में था। पाचाल उत्तरप्रदेश के रुहेलखण्ड प्रदेश को माना जाता है। अन्यत्र इसकी विशेप चर्चा की गयी है। यशोधर महाराज को अहिच्छत्र के क्षत्रियों में शिरोमणि कहा गया है।[२]

२, अयोध्या

यशस्तिलक के उल्लेखानुसार अयोध्या कोशल में थी। कोशल देश का यशस्तिलक में अन्यत्र भी उल्लेख आया है। अयोध्या कोशल की राजधानी थी। रघु और उनके उत्तराधिकारियो ने बहुत समय तक अयोध्या को अपनी राजधानी बनाये रखा। रघुवश मे इसके अनेक उल्लेख आते है।

३ उज्जयिनी

उज्जयिनी का यशस्तिलक में एक अत्यन्त सुदर एव पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है। उज्जयिनी अवन्ति जनपद में थी।[५] यह नगरी पृथुवश में उत्पन्न होनेवाले

---

१ श्रीमत्पार्श्वनाथपरमेश्वरयश प्रकाशनामत्रे अहिच्छत्रे –आ० ६, क० १५

२ अहिच्छत्रक्षत्रियशिरोमणि। –पृ० ३७७।२ हिन्दी

३ कोशलदेशमध्यायामयोध्याया पुरि। –आ० ६ क० ८

४ पृ० ३१४।३ हिन्दी

५ अवन्तिपु विख्याता।–पृ० २०४

राजाओ की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध रही है।[६] वहाँ के प्रासादो पर ध्वजाएँ लगायी गयी थीं।[७] सफेद पताकाओं के कारण सब ऐसे लगते थे जैसे हिमालय की चोटियाँ हों।[८] वहाँ पर नवीन पल्लव तथा मालाओ वाले तोरण बनाये गये थे।[९] वहाँ के लोग मयूर पालने के शौकीन थे जो कि मकानो पर खेलते रहते थे।[१०] भवनो के साथ ही गृहोद्यान थे, जिनमें सभी ऋतुओ के फल-फूल लगे थे।[११]

उज्जयिनी के पास ही सिप्रा नदी बहती थी जिसकी ठंडी-ठंडी हवा का नागरिक रात्रि में घर बैठे आनन्द लेते थे।[१२] भवनो में गृहदीर्घिकाएँ बनायी गयी थीं।[१३] नगरी में देवालय, बगीचे, सत्र, धर्मशालाएँ, वापी, वसति, सार्वजनिक स्थान बनाये गये थे।[१४] उज्जयिनी धन धान्य से इतनी समृद्ध थी कि मानो वहाँ समुद्रो के सभी रत्न, राजाओ की सभी वस्तुएँ तथा सभी द्वीपों की सारभूत सामग्री इकट्ठी हो गयी हो।[१५]

वहाँ की कामिनियाँ अतिशय रूपवती थी। लोग चरित्रवान् थे, त्यागी थे, दानी थे, धर्मात्मा थे।[१६]

४. एकचक्रपुर

इसका एक बार उल्लेख है। सभवतया एकचक्रपुर विन्ध्याचल के समीप था। एकपाद नामक परिव्राजक गगा (जाह्नवी) में स्नान करने के लिए एकचक्रपुर से चला और उसे रास्ते में विन्ध्याटवी मिली।[१७]

---

६ पृथुवशोद्भवात्मनाम् विश्वभरेशानाम्। –वही

७ सौधनद्धध्वजाग्रान्न।–वही

८ सितकेतुसमुच्छ्रय हराद्रिशिखराणीव।–वही

९ नवपल्लवमालाका यत्र तोरणपक्तय।–वही

१० क्रीडत्कलापिरम्याणि हर्म्याणि। पृ–२०५

११ सर्वर्तुश्रीश्रितच्छायानिष्कुटोद्यानपादपा।–वही

१२ नक्त सिप्रानिलैर्यत्र जालमार्गानुगै।–वही

१३ गृहदीर्घिका। –पृ० २०६

१४ पृ० २०८

१५ सवरत्नानि वार्धीना सर्ववस्तूनि भूभृताम्।
द्वीपाना सर्वसाराणि यत्र सजग्मिरे मिथ।–पृ० २०६

१६ पृ० २०६

१७ एकचक्रात्पुरादेकपान्नामपरिव्राजको जाह्नवीजलेषु मज्जनाय मजन् विन्ध्याटवी-
विषये।–पृ० ३२७ उत्त०

५. एकानसी

एकानसी का अर्थ यशस्तिलक के सस्कृत टीकाकार ने उज्जयिनी किया है ।[१८] अन्यत्र[१९] एकानसी को अवन्ति जनपद में बताया है। इससे टीकाकार के अर्थ की पुष्टि होती है।

६. कनकगिरि

यशस्तिलक के सस्कृत टीकाकार के अनुसार उज्जयिनी के समीप सुवर्णगिरि पर स्थित नगर का नाम कनकगिरि था ।[२०] उज्जयिनी से इसकी दूरी केवल चार कोस (गव्यूतिद्वय) थी। यशोधर को कनकगिरि का स्वामी बताया गया है ।[२१]

७ कंकाहि

यह उज्जयनी के निकट एक छोटा-सा गांव था। इसके निवासी नमदे तथा चमडे के जीन बनाते थे ।[२२]

८ काकन्दी

यशस्तिलक में काकन्दी का उल्लेख तीन बार हुआ है। इन साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि काकन्दी काम्पिल्य के आस-पास था। काम्पिल्य की पहचान उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में स्थित काम्पिल्य नामक स्थान से की जाती है। यशस्तिलक में कृपण सागरदत्त अपने भानजे की मृत्यु का समाचार पाकर काम्पिल्य से काकन्दी जाता है और जल्दी लौट आता है। इससे ये दोनों पास-पास प्रतीत होते हैं। बाद के अनुसन्धान और उत्खनन से काकन्दी की स्थिति उत्तरप्रदेश के देवरिया जिले में मानी जाने लगी है। नोनखार स्टेशन से लगभग तीन मील दक्षिण खुखुन्दू नामक ग्राम से इसकी पहचान की जाती है। यहाँ प्राचीन जैन मन्दिर भी है तथा उत्खनन में प्राचीन वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं।

यशस्तिलक के उल्लेखानुसार काकन्दी व्यापार का एक बहुत बडा केन्द्र था। सोमदेव ने इसे सम्पूर्ण ससार के व्यापार या व्यवहार का केन्द्र कहा है ।[२३]

---

१८ पृ० २२६ उत्त०

१९ आ० ७, क० २५

२० पृ० ५६६

२१ पृ० ३७६ हि०

२२ उज्जयिनीनिकषा नमताजिनजेणाजीवनोटज:कुले कंकाहिनामके। –पृ० २१८, उत्त०

२३ सकलजगद्‌व्यवहारावतारत्रिवेया काकन्द्याम्। – आ० ७, क० ३२

जैन अनुश्रुति के अनुसार काकन्दी बारहवें जैन तीर्थंकर पुष्पदन्त की जन्मभूमि थी। सोमदेव ने इस तथ्य का समर्थन किया है।[२४]

९. काम्पिल्य

काम्पिल्य की पहचान उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में स्थित काम्पिल्य नामक स्थान से की जाती है। यशस्तिलक के अनुसार काम्पिल्य पांचाल देश में थी।[२५]

१०. कुशाग्रपुर

कुशाग्रपुर मगध का केन्द्र तथा पुरानी राजधानी थी।[२६] युवानच्वांग ने भी कुशाग्रपुर का उल्लेख किया है और उसे मगध का केन्द्र तथा पुरानी राजधानी बताया है। वहाँ एक प्रकार की सुगन्धित घास बहुतायत से होती थी, उसी के कारण उसका नाम कुशाग्रपुर पड़ा। हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में सुरक्षित परंपरा के अनुसार प्रसेनजित कुशाग्रपुर का राजा था। कुशाग्रपुर में लगातार आग लगने के कारण प्रसेनजित ने यह आज्ञा दी थी कि जिसके घर में आग पायी जायेगी वह नगर से निकाल दिया जायेगा। इसके बाद राजमहल में आग पायी जाने के कारण प्रसेनजित ने नगर छोड़ दिया क्योंकि वह स्वयं राजघोषणा से बंधा था। इसके बाद उसने राजगृह नगर बसाया।[२७] राजगृह बिहार प्रान्त में पटना के दक्षिण में स्थित आज का राजगिरि है। राजगिरि को पंचशैलपुर भी कहते हैं। वह पांच पहाड़ियों से घिरा है। सोमदेव ने भी इसका दूसरा नाम पंचशैलपुर लिखा है।[२८]

११ किन्नरगीत

किन्नरगीत को सोमदेव ने दक्षिण श्रेणी का नगर बताया है।[२९]

---

२४ श्रीमत्पुष्पदन्तभदन्तावतारावनीर्णत्रिदिवपतिसंपादितो थावेन्दिरासत्या काकन्द्यां पुरि। – आ० ७, क० २४

२५ पांचालदेशेषु त्रिदशनिवेशानुकूलोपशल्ये काम्पिल्ये। – आ० ७, क० ३२

२६ मगधदेशेषु कुशाग्रनगरोपान्तापातिनि। – आ० ६, क० ६

२७, वाटर्स—इंडियन हिस्टॉ० क्वा० जिल्द २२, पृ० २२८

२८ राजगृहापरनामावसरे पञ्चशैलपुरे। – पृ० ३०४, उत्त०

२९ दक्षिणश्रेण्यां किन्नरगीतनामनगरनरेन्द्रेण। – आ० ६, क० ८

१२ कुसुमपुर

पाटलिपुत्र का दूसरा नाम कुसुमपुर था (आ० ४)।

१३ कौशाम्बी

कौशाम्बी का दो बार उल्लेख है।[30] इसकी पहचान इलाहाबाद के पश्चिम मे करीब बीस मील दूर जमुना के किनारे स्थित कोसम नामक स्थान से की जाती है। स० टीकाकार ने लिखा है कि कौशाम्बी नगरी वत्स देश मे गोपाचल (ग्वालियर) से (४४ गव्यूति) ८८ कोस दूर है।[31]

बौद्ध ग्रन्थो में (महासुदस्सनसुत्तन्त) कौशाम्बी को एक बहुत बडी नगरी बताया गया है।

१४. चम्पा

सोमदेव के अनुसार चम्पा प्राचीन अगदेश की राजधानी थी।[32] बिहार प्रान्त के भागलपुर और मुगेर जिले के आस पास का भाग अग कहलाता था। चम्पा वर्तमान भागलपुर के पास माना जाता है।

१५ चुकार

यशस्तिलक में बृहस्पति की कथा के प्रसग में चुकार का उल्लेख आया है।[33] लोत्रनाजनहर नामक एक बदमाश ने साधुचरित बृहस्पति की बदनामी उडा दी। फल यह हुआ कि मिथ्यावाद के कारण वे इन्द्रसभा में प्रवेश न पा सके।

१६. ताम्रलिप्ति

यशस्तिलक के अनुसार ताम्रलिप्ति पूवदेश के गौडमण्डल में था।[34] वर्तमान तामलुक जो कि बगाल के मिदनापुर जिले में है, से इसकी पहचान की जाती है।

---

३० पृ० २७७।४, हिं०, ३२१।६ उत्त०

३१ पृ० ५६८, स० टी०

३२ अगमण्डलेपु चम्पाया पुरि। — आ० ६, क० ८

३३ पृ० १३८ उत्त०

३४ आ० ६, क० १२

१७. पद्मावतीपुर

पद्मावतीपुर को यशस्तिलक के टीकाकार ने उज्जयिनी बताया है।[३५] एक हस्तलिखित प्रति में भी किनारे पर यही नाम लिखा है। पर यह ठीक नहीं। पद्मावतीपुर वर्तमान पवाया है, जो ग्वालियर जिले में है।

१८ पद्मिनीखेट

पद्मिनीखेट का एक बार उल्लेख है।[३६] यहाँ के एक वणिक्पुत्र की कथा आयी है। यशस्तिलक से इसके विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती।

१९. पाटलिपुत्र

पाटलिपुत्र वर्तमान का पटना है। यहाँ की वारविलासिनियों के उल्लेख आये हैं।[३७]

एक अन्य पाटलिपुत्र का उल्लेख है।[३८] यह सौराष्ट्र (काठियावाड) का पालीताना है।

२०. पोदनपुर

अश्मक के प्रसंग में पोदनपुर के विषय में लिखा जा चुका है। यह गोदावरी नदी के किनारे अश्मक की राजधानी थी।[३९]

२१ पौरव

पौरवपुर को संस्कृत टीकाकार ने अयोध्या कहा है।[४०]

२२. हनपुर

एक कथा के प्रसंग में बलवाहनपुर का उल्लेख है।[४१]

---

३५ पृ० ५६६

३६. आ० ७, क० २७

३७. पाटलिपुत्रपण्यागनाभुजंग। – पृ० ३७७।४ हि०

३८ आ० ६, क० १२

३९ रम्यकदेशनिवेशोपेतपोदनपुरनिवेशिनो।—२५० उ०

४० पृ० ६८,

४१ आ० ६, क० १५

२३ भावपुर

भावपुर का उल्लेख भी एक कथा के प्रसंग में आया है।[४२]

२४. भूमितिलकपुर

यशस्तिलक के अनुसार भूमितिलकपुर जनपद नामक प्रदेश की राजधानी थी।[४३] जनपद की अभी ठीक पहचान नहीं हो पायी है। यशस्तिलक की कथा से यह कुरुक्षेत्र के आस पास का प्रदेश ज्ञात होता है। भूमितिलकपुर से निष्कासित दो मित्र कुरुजांगल के हस्तिनापुर में आकर ठहरते हैं।[४४]

२५. मथुरा

यशस्तिलक में उत्तर मथुरा (वर्तमान मथुरा) तथा दक्षिण मथुरा (वर्तमान मदुरा) दोनों के उल्लेख हैं।[४५]

२६. मायापुरी

मायापुरी इन्द्रकच्छ की राजधानी थी। इसका दूसरा नाम रोरुकपुर भी था।[४६]

२७. मिथिलापुर

मिथिलापुर का भी एक कथा के प्रसंग में उल्लेख हुआ है।[४७]

२८. माहिष्मती

माहिष्मती का दो बार उल्लेख है। संस्कृत टीकाकार ने इसे यमुनपुर दिशा में बताया है।[४८] इन्दौर के पास नर्मदा के किनारे स्थित महेश्वर अथवा मध्य प्रान्त के निमाड जिले में स्थित मान्धाता से इसकी पहचान करनी चाहिए।

---

४२ आ० ६, क० १५
४३ आ० ६, क० ५
४४ आ० ६, क० ५
४५ आ० ६, क० १०
४६ इन्द्रकच्छदेशेषु (रोरुकपुर) मायापुरीत्यपरनामावसरस्य पुरस्य प्रभो ।
— पृ० २६४ उ०
४७ आ० ६, क० २०
४८ हिमालयमलयमगधमध्यदेशमाहिष्मतीपतिप्रभृतीनामवनिपानां वसति । — पृ० ४६८
माहिष्मतीयुवतिरतिकुसुमचाप । — पृ० ५६८
माहिष्मतीनाम नगरी यमुनपुरदिशि पत्तनम् । — सं० टी०

माहिष्मती पूर्व कलचुरी नरेशों की राजधानी थी। कलचुरी ने महाराष्ट्र पर आन्ध्रभृत्य के पतन और चालुक्यों के उत्थान काल में शासन किया।[४९]

कलचुरी साम्राज्य के संस्थापक कृष्णराज छठी शताब्दी के मध्य में माहिष्मती में रहे। बाद मे राजधानी जबलपुर के पास त्रिपुरी में चली गयी।[५०]

२९. राजपुर

राजपुर यौधेय की राजधानी थी।[५१] यौधेय की पहिचान भावलपुर के वर्तमान जोहियों से की जाती है। प्राचीन काल में यह एक बहुत बडा प्रदेश था।[५२] मुल्तान के दक्षिण में बहावलपुर स्टेट (पश्चिमी पाकिस्तान) का राजनपुर ही प्राचीन राजपुर प्रतीत होता है।

३० राजगृह

बिहार प्रान्त का वर्तमान राजगृही। यहाँ की पाँच पहाडियों के कारण यह पचशैलपुर भी कहलाता था।[५३]

३१ वलभी

वलभी का दो बार उल्लेख है।[५४] यह सौराष्ट्र के मैत्रकों की राजधानी थी। भावनगर के उत्तर-पश्चिम में लगभग २० मील पर वला नाम से आज उसके भग्नावशेष पाये जाते हैं।

३२ वाराणसी

वर्तमान वाराणसी। सोमदेव ने वाराणसी को काशी जनपद में बताया है।[५५]

३३ विजयपुर

यशस्तिलक के अनुसार विजयपुर मध्यप्रदेश में था।[५६]

---

४९ भण्डारकर—अरली हिस्ट्री ऑव् डेक्कन, तृ० सं०, नोट्स पृ० २५१

५० इण्डि० हिस्टॉ० क्वा०, वाल्यूम २१, पृ० ८४

५१ पृ० १३, हिं०

५२ रैपसन—इण्डियन क्वाइन्स, पृ० १४

५३ मगधदेशेषु राजगृहापरनामावसरे पचशैलपुरे। – पृ० ३०४ उत्त०

५४ आ० ७, क० २३, ३७७।५ हिं०

५५ आ० ७, क० ३१

५६ आ० ६, क० ७

३४. हस्तिनापुर

यशस्तिलक में हस्तिनापुर का दो बार उल्लेख है। सोमदेव के अनुसार यह नगर कुरुजागल जिले में था।[५७] कुरुजागल को एक स्थान पर केवल जागलदेश भी कहा है।[५८] यशोधर के अन्त पुर में कुरुजागल की कामिनियो का उल्लेख है।[५९]

३५ हेमपुर

एक कथा के प्रसग में हेमपुर का उल्लेख है।[६०]

३६ स्वस्तिमति

सोमदेव ने लिखा है कि स्वस्तिमति डहाल प्रदेश में थी।' डहाल चेदि राजाओ की राजधानी थी। यशस्तिलक के उल्लेखो से ज्ञात होता है कि वहाँ गन्नो की अच्छी खेती होती थी।[६२] वहाँ पर अभिचन्द्र, द्वितीय नाम विश्वावसु, नाम का राजा राज करता था।[६३] उसकी वसुमति नाम की पटरानी थी।[६४] उनके लडके का नाम वसु तथा पुरोहित का क्षीरकदम्ब था। क्षीरकदम्ब की पत्नी का नाम स्वस्तिमति तथा लडके का नाम पर्वत था।

३७ सोपारपुर

यह मगध प्रान्त का एक नगर था। इसके निकट नाभिगिरि नाम का पर्वत था।[६५]

३८ श्रीसागरम् (सिरीसागरम्)

यशस्तिलक के अनुसार श्रीसागरम् अवन्ति जनपद में था।[६६]

---

५७ कुरुजांगलमण्डले हस्तिनागपुरे। – आ० ६, क० २०

५८ आ० ७, क० २८

५९ कुरजागलललनाकुचतनुत्र। – पृ० ६८७ हि०

६० आ० ६, क० १५

६१ डहालायामस्ति स्वस्तिमती नाम पुरी। – पृ० ३१३ उत्त०

६२ कामकोदण्डकारणकान्तारैरिक्षुवणावन[illegible]जिनमट[illegible]यान्। – पृ० ३१३ उत्त०

६३ तस्यामभिचन्द्रापरनामवसुविश्वावसुनाम नृपति। – पृ० ३१३ उत्त०

६४ वसुमतिनामाग्रमहिषी। – वही

६५. मगधविषये सोपारपुरपर्यन्तधाम्नि [illegible] – आ० ६, क० १५

६६. आ० ७, क० २६

३९ सिंहपुर

यह नगर प्रयाग देश में था।[६७] युवान च्वांग ने भी इसका उल्लेख किया है।

४० शंखपुर

शंखपुर संभवतया अयोध्या के निकट कोई ग्राम था। यशस्तिलक की एक कथा में लिखा है कि अनन्तमती को शंखपुर के निकट स्थित पर्वत के पास में छोड़ा गया और वहाँ से एक वणिक् उसे अयोध्या ले आया।[६८]

■

---

६७ आ० ७, क० २७

६८ आ० ६, क० ८

३४. हस्तिनापुर

यशस्तिलक में हस्तिनापुर का दो बार उल्लेख है। सोमदेव के अनुसार यह नगर कुरुजांगल जिले में था।[५७] कुरुजांगल को एक स्थान पर केवल जांगलदेश भी कहा है।[५८] यशोधर के अन्तःपुर में कुरुजांगल की कामिनियों का उल्लेख है।[५९]

३५ हेमपुर

एक कथा के प्रसंग में हेमपुर का उल्लेख है।[६०]

३६ स्वस्तिमति

सोमदेव ने लिखा है कि स्वस्तिमति डहाल प्रदेश में थी।[६१] डहाल चेदि राजाओं की राजधानी थी। यशस्तिलक के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि वहाँ गन्नों की अच्छी खेती होती थी।[६२] वहाँ पर अभिचन्द्र, द्वितीय नाम विश्वावसु, नाम का राजा राज करता था।[६३] उसकी वसुमति नाम की पटरानी थी।[६४] उनके लड़के का नाम वसु तथा पुरोहित का क्षीरकदम्ब था। क्षीरकदम्ब की पत्नी का नाम स्वस्तिमति तथा लड़के का नाम पर्वत था।

३७. सोपारपुर

यह मगध प्रान्त का एक नगर था। इसके निकट नाभिगिरि नाम का पर्वत था।[६५]

३८ श्रीसागरम् (सिरीसागरम्)

यशस्तिलक के अनुसार श्रीसागरम् अवन्ति जनपद में था।[६६]

---

५७ कुरुजांगलमण्डले हस्तिनागपुरे। – आ० ६, क० २०

५८ आ० ७, क० २८

५९ कुरुजांगलललनाकुचतटेषु। – पृ० ६८७ हि०

६० आ० ६, क० १५

६१ डहालायामस्ति स्वस्तिमती नाम पुरी। – पृ० ३५३ उत्त०

६२ कामकोदण्डकाण्डकान्तारैरिक्षुवणावतारैर्विराजितमण्डलायाम्।–पृ० ३५३ उत्त०

६३ तस्यामभिचन्द्रापरनामवसुविश्वावसुर्नाम नृपतिः। – पृ० ३५३ उत्त०

६४ वसुमतिनामाग्रमहिषी। – वही

६५. मगधविषये सोपारपुरपर्यन्तधाम्नि नाभिगिरिनाम्नि महीधरे।– आ० ६, क० १५

६६. आ० ७, क० २६

३९ सिंहपुर

यह नगर प्रयाग देश में था।[६७] युवाग च्वाग ने भी इसका उल्लेख किया है।

४० शखपुर

शखपुर सभवतया अयोध्या के निकट कोई ग्राम था। यशस्तिलक की एक कथा में लिखा है कि अनन्तमती को शखपुर के निकट स्थित पर्वत के पास में छोडा गया और वहाँ से एक वणिक् उसे अयोध्या ले आया।[६८]

■

६७ आ० ७, क० २७
६८ आ० ६, क० ८

बृहत्तर भारत

१. नेपाल

नेपाल का दो बार उल्लेख है। सोमदेव ने लिखा है कि नेपाल नरेश कस्तूरी को प्राभृत लेकर यशोधर के दरबार में उपस्थित हुआ।[१] एक अन्य प्रसंग में नेपाल शैल का उल्लेख है तथा उसी के साथ वहाँ पर कस्तूरी प्राप्त होने के तथ्य का भी उल्लेख है।[२]

२. सिंहल

सिंहल का तीन बार उल्लेख है। यशस्तिलक के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि भारत और सिंहल के अटूट सम्बन्ध थे।[3]

३. सुवर्णद्वीप

सुवर्णद्वीप की पहचान सुमात्रा से की जाती है। यशस्तिलक में दो मित्र सुवर्णद्वीप जाते हैं और वहाँ से अपार धन कमाकर लौटते हैं।[४] यहाँ की राजधानी शैलेन्द्र थी। एक ताम्रपत्र भी मिला है।[५]

४. विजयार्ध

विजयार्ध का एक बार उल्लेख है।[६] यशस्तिलक से इसके विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती।

---

१ क्षितिप, मृगमदैरेष नेपालपाल । – पृ० ४७० सं० पू०

२ पृ० ५७४, वही

३ सिंहलीपु मुखकमलमकरन्दपानमधुकर । – पृ० ३४, वही
दूता केरलचोलसिंहल । – पृ० ४६६, वही
सिंहलमहिलाननतिलकवह्नी । – पृ० १८१, वही

४ आ० ७, क० २७

५ डॉ० अग्रवाल– नागरीप्रचारिणी पत्रिका (विक्रमांक)

६ विजयार्धावनीधरस्य विद्याधरविनोदपादपोत्पादक्षोण्या दक्षिणश्रेण्याम् ।
– पृ० २१८ उत्त०

५. कुलूत

श्रुतदेव ने कुलूत को मरवादेश कहा है ।[७] यशस्तिलक के उल्लेख से प्रतीत होता है कि कुलूत देश की कामिनियां विशेष सुन्दर होती थीं, उनके कपोलो पर लावण्य झलकता था ।[८]

■

७ कुलूतोमरवादेश । – पृ० ५७४

८ कुलूतकुलकामिनीकपोललावण्यधामनि । – वही

वन और पर्वत

१. कालिदासकानन

पाचाल देश में अहिच्छत्र के निकट जलवाहिनी नदी के किनारे आमों का एक बहुत बडा बगीचा था, जिसे कालिदासकानन कहते थे ।[1]

सोमदेव ने यशस्तिलक में कालिदास का आम के अर्थ में एक अन्य स्थल पर भी प्रयोग किया है ।

२. कैलास

यशस्तिलक में यशोधर को कैलासलाछन कहा गया है ।[2] हिमालय की एक चोटी का नाम अब भी कैलास है ।

३. गन्धमादन

गन्धमादन को श्रुतदेव ने हिमाचल के पास में बताया है ।[3] यशस्तिलक के उल्लेखानुसार गन्धमादन में भोजपत्र बहुतायत से होते थे ।[4]

४. नाभिगिरि

मगध में सोपारपुर नगर के किनारे नाभिगिरि नाम का पर्वत था ।[5]

५. नेपालशैल

यशस्तिलक में नेपाल पर्वत की तराई में कस्तूरी मृग पाये जाने का उल्लेख है ।[6]

---

१ जलवाहिनीनामनदीतटनिकटनिविष्टप्रतनने महति कालिदासकानने ।
— आ० ६, क० १

२ कैलासलाछन । — पृ० ५६६

३ गन्धमादन नाम वन हिमाचलोपकठे वर्तते । — पृ० ५७४, स० टी०

४ भूर्जवल्कलोन्माथमन्थरे । — वही

५. मगधविषये सोपारपुरपर्यन्तधाम्नि नाभिगिरिनाम्नि महीधरे । — आ० ६, क० १५

६ नेपालशैलमेखलामृगनाभिसौरभनिर्भरे । — पृ० ५७४

एक अन्य स्थल पर नेपालदेश का भी उल्लेख है।[७]

६. प्रागद्रि

प्रागद्रि या उदयाचल का भी एक बार उल्लेख है।[८]

७. भीमवन

शखपुर के समीप में भीमवन था।[९] उस प्रदेश में किरातों का राज्य था। भीमनामक किरातराज भीमवन में शिकार खेलने आया।[१०]

८. मन्दर

मन्दर का अर्थ टीकाकार ने अस्ताचल किया है।[११]

९. मलय

मलय पर्वत का एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने लिखा है कि मलयपर्वत की तलहटी में लताएँ अधिक थीं।[१२]

१० मुनिमनोहरमेखला

राजपुर के समीप ही एक छोटी-सी पहाड़ी थी जिसे मुनिमनोहरमेखला कहते थे।[१३]

११. विन्ध्या

विन्ध्याचल का दो बार उल्लेख है। विन्ध्या में मातगो की वस्तियाँ थीं।[१४] विन्ध्या के दक्षिण में श्रीसमृद्ध करहाट नाम का जनपद था।[१५]

---

७ पृ० ४७०

८ पृ० २१३

९ शखपुराभ्यर्णभागिनि भीमवननाम्नि कानने। – पृ० २०३ उत्त०

१० मृगयाप्रशमनमागतेन भीमनाम्ना किरातराजेन। – वही

११ मन्दरश्चास्तपर्वत। – पृ० २१८, स० टी०

१२ मलयमेखलालग्नानतनुतूहलिन। – पृ० ५७६

१३. राजपुरस्याविदूरवर्तिनि मुनिमनोहरमेखल नाम खर्वतर पर्वतम्।– पृ० १३२

१४ पृ० ३२७ उत्त०

१५ विन्ध्याद्दक्षिणस्या दिशि करहाटो नाम जनपद। – १८७, वही

१२. शिखण्डिताण्डवमण्डन

सुवेला पर्वत से पश्चिम की ओर शिखण्डिताण्डवमण्डन नाम का वन था।[१६] सोमदेव ने इस वन का विस्तृत एव आलकारिक वर्णन किया है, किन्तु उस सम्पूर्ण वर्णन से भी इस वन की पहचान करने में कोई मदद नहीं मिलती।

१३. सुवेला

हिमालय के दक्षिण की ओर सुवेला नामक पर्वत था।[१७] सोमदेव ने सुवेला पर्वत का विस्तार के साथ आलकारिक वर्णन किया है।

हिमालय के दक्षिण में शिवालिक पर्वत श्रेणिया हैं। सुवेला की पहचान इसी से करना चाहिए। गडक, घाघरा, गगा, यमुना, गोमती, कोशी आदि नदियाँ यहाँ से होकर निकलती हैं।

१४ सेतुबन्ध

स० टीकाकार ने सेतुबन्ध का अर्थ दक्षिण पर्वत दिया है।[१८]

१५. हिमालय

यशस्तिल्क में हिमालय का कई बार उल्लेख है। हिमालय के शिखरो पर तपस्वियो के आश्रम थे।[१९] इसकी चोटिया बर्फ से ढकी रहती थीं, इसलिए इसका प्रालेयशैल तथा तुषारगिरि नाम पडा। तुषारगिरि के झरने हेमन्त ऋतु की ठडी हवा में जमकर निष्पन्द हो जाते थे।[२०]

■

---

१६ सुवेलशैलादपरदिग् शिखण्डिताण्डवमण्डनम्। – पृ० १०३ उत्त०

१७ हिमालयाद्दक्षिणदिक्कपोल शैल सुवेलोऽस्ति लताविलोल। – पृ० १६७ उत्त०

१८ सेतुबन्धश्चार्वाक्पर्वत। – पृ० २१३, स० पू०

१९ प्रालेयशैलशिखराश्रमतापसानाम्। – पृ० ३२२

२० तुषारगिरिनिर्झरनीहारनिष्पन्दिनि। – पृ० ५७४

परिच्छेद पाँच

सरोवर और नदियाँ

१. मानस

यशस्तिलक में मानस या मानसरोवर तथा उसमें हंसो के निवास का उल्लेख है।[१] विश्वनाथ कविराज ने लिखा है कि कवि-समय में ऐसी प्रसिद्धि है कि वर्षा के आते ही हंस मानसरोवर के लिए चले जाते हैं।[२] कालिदास ने इस तथ्य का उल्लेख किया है।[3]

मानसरोवर झील हिमालय पर नेपाल के उत्तर और तिब्बत के दक्षिण में ब्रह्मपुत्र के उद्गम स्थान के समीप कैलास चोटी के निकट दक्षिण में है।

२ गंगा

गंगा के विषय में यशस्तिलक में पर्याप्त जानकारी आयी है।[४] गंगा हिमालय से निकलती है। इसमें एक बार भी स्नान करने से पाप दूर हो जाते हैं।[५] हिमालय के शिखरो पर आश्रम बनाकर रहने वाले तापस लोग गंगा के जल का उपयोग करते थे।[६] गंगा के किनारे-किनारे भी तपस्वियों के आश्रम थे।[७]

गंगा का दूसरा नाम भागीरथी था। उस समय भी भागीरथी के विषय में यह प्रसिद्ध था कि महादेव उसे सिर से धारण करते हैं।[८]

गंगा का एक नाम जाह्नवी भी था। जाह्नवी में स्नान करने के लिए दूर-दूर से लोग जाते थे।[९] ठंड के दिनो में भी लोग जाह्नवी में स्नान करने से नहीं चूकते थे, भले ही ठंड से अकड जायें।[१०]

---

१ मानसहंसविलासिनि। – पृ० ५७४

२ प्रावृषि, मानस यान्ति हंसा। – साहित्यदर्पण ७।२३

३ आकैलासाद् बिसकिसलयाच्छेदपाथेयवन्त। – मेघदूत पूर्व० १४

४ पृ० ३२२–२७

५ या नाकलोकमुनिमानसकल्मषाणा कार्श्यं करोति सकृदेव कृताभिषेकम्। – वही

६ प्रालेयशैलशिखराश्रमतापसाना, सेव्य च यत्वत्र तदम्बु मुदेऽस्तु गांगम्। – वही

७ यास्तीराश्रमवासितापसकुलै। – वही

८ कम्रान्ते शशिमौलिना च शिरसा भागीरथीसम्भवा। – वही

९ जाह्नवीजलेषु मज्जनाय मजन्। – पृ० ३२७ उत्त०

१० जाह्नवीजलमज्जनजातजडभावे। – वही

३. जलवाहिनी

पांचाल देश के वर्णन प्रसंग में जलवाहिनी नामक नदी का उल्लेख है।[११] इस नदी के किनारे आमों का एक विशाल वन था।[१२] पांचाल नरेश के पुरोहित की पत्नी को एक बार असमय में आम खाने का दोहद हुआ। पुरोहित आम की तलाश में घूमता हुआ जलवाहिनी के किनारे विशाल आम्रवन मे पहुँचा तथा वहाँ एक वृक्ष में आम पाकर आम तोड़ा और एक विद्यार्थी के हाथ घर भेज दिया।[13]

यमुना, नर्मदा, गोदावरी, चन्द्रभागा, सरस्वती, सरयू, सिंधु और शोण नदी का एक साथ उल्लेख है।[१४]

४. यमुना

यमुना के लिए दूसरा नाम तरणितीरणी आया है।[१५] यह नदी हिमालय के यमुनोत्री नामक स्थान से निकल कर प्रयाग में आ कर गंगा में मिली है।

५. नर्मदा

वर्तमान नर्मदा जो विन्ध्याचल की अमरकटक नामक पर्वतश्रेणी से निकल कर पश्चिम में बहती हुई अरबसागर की खंभात की खाडी में गिरती है।

६. गोदावरी

वर्तमान गोदावरी नदी जो पश्चिमीघाट पर्वत की चन्दोर पहाडी से निकल-कर पूर्व की ओर बहती हुई बंगाल समुद्र की बंगाल खाडी में गिरी है।

७. चन्द्रभागा

चन्द्रभागा का उल्लेख मिलिन्दपञ्हो (११४) तथा ठाणांग सुत्र (५।४७०) में भी आता है। यह नदी हिमालय से निकलकर किस्थवार के ऊपर दो पहाडी झरनो के साथ बहती है। किस्थवार से आगे रिस्थवार तक यह दक्षिण की ओर

---

११ जलवाहिनीनाम नदी। – पृ० ३०६ उत्त०

१२ महति कालिदासकानने। – वही

१३ अध्याय ६, क० १५

१४ यमुनानर्मदागोदाचन्द्रभागासरस्वती।
सरयूसिंधुशोणोत्थैजलैर्देवोऽभिषिच्यताम्॥ – ९

१५ पृ० ५७५

जाती है। यह जम्मू के निकट बहती है। उससे आगे वितस्ता (झेलम) के साथ दबाव बनाती हुई दक्षिण पश्चिम की ओर जाती है।[१६]

८. सरस्वती

सरस्वती नदी का दो बार उल्लेख है। इसके किनारे उदवास करने वाले तापस रहते थे।[१७]

सरस्वती हिमालय की शिवालिक पहाडो से निकलकर यमुना और शतद्रू (सतलज) के बीच दक्षिण की ओर बहती हुई मनु के अनुसार विनाशन मे पहुँचकर अदृश्य हो जाती है।[१८]

९. सरयू

सरयू हिमालय की शिवालिक पहाडी से निकलकर गगा में मिली है।

१० शोण

यह मैकाल की पहाडियो से निकल कर उत्तर-पूर्व की ओर बहती हुई पटना के पूर्व गंगा में मिल जाती है।

११. सिन्धु

हिमालय के कैलाशगिरि से निकल कर वर्तमान में पश्चिमी पाकिस्तान में बहती हुई अरबसागर में गिरी है।

१२. सिप्रा

सिप्रा उज्जयिनी नगरी के समीप में बहती थी। रात्रि में सिप्रा की ठडी-ठडी हवा उज्जयिनी के नागरिको के भवनो में गवाक्षों (जालमार्ग) से प्रवेश करके उन्हें आनन्दित करती थी।[१९] पाचवें आश्वास में सिप्रा का अतिविस्तृत आलकारिक वर्णन किया गया है। वर्तमान सिप्रा ही प्राचीनकाल में भी सिप्रा कहलाती थी।

■

---

१६ बी० सी० ला० – हिस्टॉरिकल ज्योग्राफी ऑव् ऐन्सियट इण्डिया, पृ० ७३

१७ सरस्वतीसलिलोद्वासतापसे। – पृ० ५७५

१८ वही, पृ० १२१

१९ नक्तं सिप्रानिलैयत्र। पृ० २०५

अध्याय पाँच

यशस्तिलक की शब्द-सम्पत्ति

यशस्तिलक की शब्द-सम्पत्ति

यशस्तिलक संस्कृत के प्राचीन, अप्रसिद्ध, अप्रचलित तथा नवीन शब्दो का एक विशिष्ट कोश है। सोमदेव ने प्रयत्नपूर्वक ऐसे अनेक शब्दो का यशस्तिलक में संग्रह किया है। वैदिक काल के बाद जिन शब्दो का प्रयोग प्राय समाप्त हो गया था, जो शब्द कोश-ग्रन्थो में तो आये हैं, किन्तु जिनका प्रयोग साहित्य में नही हुआ या नही के बराबर हुआ, जो शब्द केवल व्याकरण-ग्रन्थोमें सीमित थे तथा जिन शब्दों का प्रयोग किन्हीं विशेष विषयों के ग्रन्थो में ही देखा जाता था, ऐसे अनेक शब्दो का संग्रह यशस्तिलक में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त यशस्तिलक में ऐसे भी अनेक शब्द है, जिनका संस्कृत साहित्य में अन्यत्र प्रयोग नहीं मिलता। बहुत से शब्दो का तो अर्थ और ध्वनि के आधार पर सोमदेव ने स्वय निर्माण किया है। लगता है सोमदेव ने वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक, व्याकरण, कोश, आयुर्वेद, धनुर्वेद, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, ज्योतिष तथा साहित्यिक ग्रन्थो से चुनकर विशिष्ट शब्दो की पृथक्-पृथक् सूचियाँ बना ली थी और यशस्तिलक में यथास्थान उनका उपयोग करते गये। यशस्तिलक की शब्द-सम्पत्तिके विषय में सोमदेव ने स्वय लिखा है कि काल के कराल व्याल ने जिन शब्दो को चाट डाला उनका मैं उद्धार कर रहा हूँ। शास्त्र समुद्र के तल में डूबे हुए शब्द-रत्नो को निकालकर मैंने जिस बहुमूल्य आभूषण का निर्माण किया है, उसे सरस्वती देवी धारण करे।[१]

प्रस्तुत प्रबन्ध में मैंने ऐसे लगभग एक सहस्र शब्द दिये हैं। आठ सौ शब्द इस अध्याय में हैं तथा दो सौ से भी अधिक शब्द अन्य अध्यायो में यथास्थान दिये है। इस अध्याय में शब्दो को वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक आदि श्रेणियो में वर्गीकृत न करके अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया है। शब्दो पर मैंने तीन प्रकार से विचार किया है – १ कुछ शब्द ऐसे हैं, जिन पर विशेष प्रकाश डालना उपयुक्त लगा। ऐसे शब्दो का मूल संदर्भ, अर्थ तथा आवश्यक टिप्पणी

---

१ अरालकालव्यालेन ये लीढा साम्प्रत तु ते।
शब्दा श्रीसोमदेवेन प्रोत्थाप्यन्ते किमद्भुतम् ॥
उद्धृत्य शास्त्रजलधेर्नितले निमग्नै पर्यागतैरिव चिरादभिधानरत्नै।
या सोमदेवविदुषा विहिता विभूषा वाग्देवता वहतु सम्प्रति तामनर्घ्याम् ॥
—आ० ५, पृ० २६६

दी गयी है। २ सोमदेव के प्रयोग के आधार पर जिन शब्दो के अर्थ पर विशेष प्रकाश पड़ता है, उन शब्दों के पूरे सन्दर्भ दे दिये हैं। ३ जिन शब्दो का केवल अर्थ देना पर्याप्त लगा, उनका सन्दर्भ-सकेत तथा अर्थ दिया है।

शब्दो पर विचार करने का आधार श्रीदेवकृत टिप्पण तथा श्रुतसागर की अपूर्ण सस्कृत टीका तो रहे ही हैं, प्राचीन शब्दकोश तथा मोनियर विलियम्स और प्रो० आप्टे के कोशों का भी उपयोग किया है। स्वय सोमदेव का प्रयोग भी प्रसगानुसार शब्दो के अर्थ को खोलता चलता है। श्लिष्ट, क्लिष्ट, अप्रचलित तथा नवीन शब्दो के कारण यशस्तिलक दुरूह अवश्य लगता है, किन्तु यदि सावधानीपूर्वक इसका सूक्ष्म अध्ययन किया जाये तो क्रम-क्रम से यशस्तिलक के वर्णन स्वय ही आगे पीछे के सन्दर्भो को स्पष्ट करते चलते हैं। इस प्रकार यशस्तिलक की कुजी यशस्तिलक मे ही निहित है। सोमदेव की बहुमूल्य सामग्री का उपयोग भविष्य मे कोश ग्रन्थो में किया जाना चाहिए।

अकम् (अकविलोकगणनमपि, १९६।१ उत्त०) कष्ट

अकल्पः (परिपाकगुणकारिणीं क्रियामकल्पस्य, ४३।२) रोगी

अर्क (४०५।२) आक का वृक्ष

अर्कनन्दनः (भूयाद्गन्धवहैं सार्धमनुलोमोर्कनन्दन, ३३४।१) कौआ

अखिलद्वीपदीपः (विदूरितरजोभिरखिलद्वीपदीपैरिव, ९१।३) सूर्य सोमदेव ने तात्पर्य के आधार पर यह शब्द स्वय गढा है। सूर्य सारे ससार को दीपक की तरह प्रकाशित करता है, इसलिए उसे अखिलद्वीपदीप कहा है।

अगमः (अगमविटपान्तरितवपुषाम्, ९५।१, अगमाग्रपल्लवमरम्, १९९।२ उत्त०) वृक्ष

अगस्ति (४०५।३) अगस्त वृक्ष

अग्निजन्मन् (२०३।८ उत्त०) कुत्ता

अग्रमहिषी (१२३।१) पटरानी

अध्यक्षम् (४०६।९) प्रत्यक्ष

अजिनजेण (२१८।९ उत्त०) चमडे की जीन

अजगव (अजगवैरिन्द्रायुधस्पर्धिभि, ५७९।८) धनुष

अर्जुन (१९४।५ उत्त०) मयूर, अर्जुन वृक्ष

अर्जुनज्योतिः (सदाचारकैरवार्जुनज्योतिषम्, ३०४।४ उत्त०) सूर्य

अतसी (कुथितातस्यतैलधारावपातप्रायम्, ४०४।५) अलसी

अदितिसुत. (अदितिसुतनिकेतनपताकाभोगाभि, ४५।४) सूर्य

अध्वनय (३६।२) पथिक

अधोक्षज (अधोक्षजमिव कामवन्तम्, २९८।४) नारायण

अन्तर्वंशिक (२३।९ उत्त०) अन्तःपुररक्षक सैनिक

अन्तर्वाणिन् (नर्तकशिरोमणिभिरन्तर्वाणिभि, ४७७।८) शास्त्रवेत्ता, विद्वान्

अन्ध (विपकलुषितमन्ध' कस्य भोज्याय जातम्, ४१६।१) भोजन

अनन्ता (मूलमिवानन्तालनाया, २०४।५ उत्त०) पृथ्वी

अनग (ऐरावतकुलकलभैरिवानगवनस्य, २।१३, ९११२) आकाश

अनायतनम् (१४३।७) अनुचित स्थान

अनाश्वान् (५०१६) अनशनशील अशन् शब्द से सोमदेव ने अनाश्वान् कर्ताकारक का रूप बनाया है।

अनीकस्थः (अनीकस्थेन विनिवेदितद्विरदावस्था, ४९५।४) अनीकस्थ नामक गजसेना का अधिकारी

अनुप्रेक्षा (ससारसागरोत्तरणपोतपात्रदशा द्वादशाप्यनुप्रेक्षा, २५६।३) अनुप्रेक्षा जैन सिद्धान्त का एक पारिभाषिक शब्द है। ससार से विराग उत्पन्न करनेवाली भावनाओ का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा कहलाता है। ये बारह मानी गयी हैं—अनित्य, अशरण, ससार, एकत्व, पृथक्त्व, अशुचि, आस्रव, सवर, निर्जरा, लोक, धर्म और बोधिदुर्लभ। सोमदेव ने इनका विस्तार से वर्णन किया है।

अनुपदीना (अनवानुपदीनापटलसमश्रवसम्, ४२।८ उत्त०) जूती

अनुरुसारथिः (अनुरुसारथिरथोन्माथ, २७।४) सूर्य (शिशु० १।२)

अण्डज (उण्डीन मुहुरण्डजै, ६१५।९) पक्षी

अणकेहित्व (अणकेहितचिन्तामणि, ४५०।११) दुराचारी

अप्रत्नम् (अप्रत्नरत्नचयनिचितकाचनकलश, १८।५) नवीन

अभ्रपुष्पम् (आमोदसदर्भिताभ्रपुष्पे, २००।२) जल

अभ्रिय (अभ्रियमदर्भनिर्भर नभ इव, ४६४ ५) वज्राग्नि

अभीरु (सुभटानीकमिवाभीरुप्रतिष्ठितम्, १९५।१ उत्त०) भय रहित, इन्दीवरी

अम्बरिपम् (अनम्बरिपमप्यरिभेदस्फारकम्, १९५।४ उत्त०) युद्ध

अमरधेनु (२२०।५) कामधेनु

अमृता (चन्द्रमित्रामृतास्पदम्, १९४।३ उत्त०) गुरुचि नामक वनौषधि

अमृतमरीचि (२०१७ उत्त०) चन्द्र

अमृतरुचिः (१७१।३) चन्द्र

अमृतरोचिष् (१७२।५) चन्द्र

अरिभेद (१९५।४) खदिर वृक्ष

अलगर्द (निर्मोदालगर्दगलगुहास्फुरत्, (४५।३) सर्प

अलाबूफलम् (४०४।७) तूँमा

अलिक (१५९।९) ललाट

अवहार (अम्बुरुहकुहरविहरदवहार, २०८।६ उत्त०) जलव्याल, मगर

अवक्षेप' (१००।५ उत्त०) तिरस्कार

अवधि. (अवधिबोधप्रदीपेन, १३६।२) अवधिज्ञान। जैन दर्शन में ज्ञान के पाँच भेद माने गये हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा सीमित भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल के पदार्थों को जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है।

अवतोका (१८६।२ उत्त०) श्रुतसागर ने इसका अर्थ सींग रहित या मुण्डी गाय किया है, मो० वि० में इसका अर्थ जिसका गर्भ गिर गया है, किया गया है।

अवन्तिसोमम् (अनल्पराजिकावर्जितावन्तिसोम, ४०६।१) काजी

अवग्रहणी. (समुत्सृष्टग्रहावग्रहणीदेशया, २७ ६, प्रतीक्ष्यमाणगृहगृहावग्रहणो, १८५।४ उत्त०) देहली

अवसान (भारतकथेव धृतराष्ट्राव साना, २०६।५ उत्त०) मृत्यु, सीमा, तट

अविः (१२।६) भेड

अवहेलः (पुरोहितस्यावहेलेन, ४३१।७) तिरस्कार, उपेक्षा। हिन्दी में अवहेलना शब्द अभी भी इसी अर्थ में प्रचलित है।

अवासस् (१०१।१० उत्त०) निर्ग्रन्थ

अपडक्षीण (२१५।५ उत्त०) मत्स्य

अष्टापद (स्वर्धुनीप्रवाहमिव कृताष्टापदावतारम्, १९४।२ उत्त०) कैलास पर्वत। हिमालय की कैलास चोटी से गगा का उद्गम मानते हुए, यह प्रयोग किया गया है। अष्टापद का दूसरा श्लिष्ट अर्थ शरभ भी यहाँ लेना है। अष्टापद का कैलास अर्थ में प्रयोग महत्त्वपूर्ण है।

अष्ठीलम् (कठोराष्ठीलपृष्ठकमठ, ६७।५) कछुए के पृष्ठ का मध्यभाग

अशिशिवदान. (१४१।८) निर्मल चरित्र

असतापम् (अमृतकान्तिमिवासतापम् २९९।१) असतापम् का सामान्य अर्थ सताप न देनेवाला है। गजशास्त्र में गज के गुणों मे असताप की गणना की जाती है। अस्त्र इत्यादि को सहन करना, विचलित न होना असताप है (अस्त्रादीना च सहनादसताप विदुर्बुधा, – स० टी०)।

असहतव्यूह (दण्डासहतभोगमण्डल विधीन्व्यूहान्, ३०४।५) युद्ध में व्यूह रचना के जो अनेक प्रकार थे, उनमें एक असहतव्यूह भी था। इसमें सेना को यहाँ-वहाँ छिट-पुट बिखेर दिया जाता था।

असराला (प्रसारितासरालरसना, ४६।३) लम्बी, दीर्घ

असितार्ति (असितार्तिमिव तेजस्विनम्, २९८।३ उत्त०) अग्नि

अहिमधाम (अहिमधामवृष्णि, १९।३) सूर्य

अहिपति (१६७।११) सर्पों का स्वामी अर्थात् शेषनाग

अहिवलयित (४१५।१०) सर्पवेष्टित

अहीश्वर (३४४।१) सर्पों का ईश्वर अर्थात् शेषनाग

अगजः (सत्त्व तिरोभवति भीतमिवागजाग्ने, २८२।३) काम

आकर्प. (आकर्पेण शीर्पदेशे दृढदत्त प्रहारकल, १९७।४ उत्त०) फलक, क्रीडापट्ट

आच्छोदना (जलव्याल इवाच्छोदनाभिरतोऽपि, ४१।४) स्वच्छ जल, शिकार, शिकार या मृगया के अर्थ में आच्छोदना शब्द का प्रयोग साहित्य में कम देखा जाता है।

आचारान्ध (बुधसगविदग्धोऽपि कथ त्वमद्याचारान्ध इवावभाससे, ८८।२ उत्त०) मूर्ख, व्यवहार मे अधा अर्थात् मूर्ख। अर्थ को अपेक्षा सोमदेव ने यह शब्द स्वय बना लिया है।

आज्यम् (आज्यावीक्षणमेतदस्तु, २५११।८, नासिकाजलिपेयपरिमलै प्राज्यैराज्यै, ४०१।३) घृत

आजवकम् (३६।२) धनुष

आतपनयोग (आतपनयोगयुतोऽपि, १३७।४, उत्त०) ग्रीष्मकाल में खुले मैदान में पर्वत आदि पर तपस्या करना आतपनयोग कहलाता है।

आधोरण (२०।५) आधोरण नामक गजपरिचारक

आनक (२१४।१) आनक नामक अवनद्ध वाद्य

आनर्त (१७९।४) नाचते हुए

आनाय: (तन्नयानायनिक्षेपात्, ३८८। १०, युवजनमृगाणा बन्धनायानाय इव, ५८।५ उत्त०) जाल

आमलकम् (आमलकशिलातलमिव स्वच्छकलम्, २०९।७ उत्त०) स्फटिक

आलमकम् (सर्पि सितामलकमुद्गकषाययुक्तम्, ५१८।१) आंवला

आम्रातकम् (अगस्तिचूताम्रातकपिचुमन्द, ४०५।३) आंमडा

आमिक्षा (आमिक्षया च समेधितमहसम्, ३२४।२) श्रुतसागर ने लिखा है कि उबाले हुए दूध मे दही मिलाने से आमिक्षा बनती है (शृते क्षीरे दधिक्षिप्तमामिक्षा कथ्यते बुधै, स० टी०)।

आय शूलिक (१४१।३) कठोर कर्म करनेवाला

आवसथ (पुत्रप्रार्थनमनोरथावसथस्य, २२४।२) गृह, पृष्ठ ७८।६ पर भी इसका प्रयोग हुआ है।

आवाल (बिभर्त्याबालभूमिसु, ९७।६) क्यारी। वृक्ष के चारो ओर पानी रोकने के लिए बनायी गयी मिट्टी की मेंड। साहित्य में आलवाल का प्रयोग मिलता है (रघु० १५१, शिशु० १३।५०)।

आपीड (पिष्टापीडविडम्ब्यमानजरती, २२७।५) समूह

आरेय (वालेयकारेयजातिभि:, १८६।३ उत्त०) भेड

आर. (९५।६) मगल गृह

आरामा. (ब्रह्मवादा इव प्रपचिता-रामा, १३।४) अविद्या

आवान (तापसावानवितानित, ५।१ उत्त०) तपस्वियों के गैरिक वस्त्रो के लिए यहाँ आवान शब्द का प्रयोग किया है।

आस्तरक (४०३।५) शय्या परि-चारक

आसुतीवलः (पर्युपास्यासुतीवलद्वि-तीय, ३२४ १) यज्वा—यज्ञ करने वाला

आसेचनकः (१७६।३) जिसके देखने से जी न भरे। अमरकोष में लिखा है कि जिसके देखने से तृप्ति न हो उसे आसेचनक कहते है (३।१।५३)।

आश्चर्यित (१८४।४) चकित

आशाकरटिन् (२८।१) दिग्गज

इत्वर (३३१।४) शीघ्र गमनशील, आवारा

इन्दिरानुज (रत्नाकर इवेन्दिरानुजेन, २४२।४) चन्द्रमा। इन्दिरा लक्ष्मी का नाम है। लक्ष्मी और चन्द्रमा दोनो की उत्पत्ति समुद्र से मानी जाती है। इस नाते चन्द्रमा लक्ष्मी का लघुभ्राता हुआ। इस अर्थ साधर्म्य के आधार पर सोमदेव ने इस शब्द का गठन किया है।

इन्दिन्दिरः (१२१।३) भ्रमर

इन्दिरामन्दिरम् (१८९।४) लक्ष्मीनिवास, विष्णु का एक नाम।

इन्दुमणि. (२०५।५ उत्त०) चन्द्र-कान्त

इरमद. (इरमददाहदूषितविटप पादप इव, २२७।२ उत्त०) मेघ

इरमददाहः (२२७।२ उत्त०) बिजली

ईषा (रविरथेषाडम्बरम्, ३०।३) लम्बी लकडी जो हल या रथ में लगायी जाती है। हल की लकडी हलीपा कहलाती है। बुदेलखण्ड में अभी भी हल की लकडी को हरीस कहते है। लागलीपा, हलीपा इत्यादि प्रयोग व्याकरण ग्रन्थो में मिलते हैं। साहित्य में इसका प्रयोग कम देखा जाता है।

उच्चिर्लिंगम् (लपनचापलच्युतोच्चि-लिंग, १९८।१ उत्त०) अनार

उटजम् (२१८।९ उत्त०) घर

उडुप (तरगवेडिकोडुपसपन्नपरिकरा, २१७।१ उत्त०) डोंगी

उत्तस (२४६।२) कर्णपूर, मुकुट

उत्तायक' (उत्तायकस्य हि पुरुषस्य हस्तायातमपि कार्य निधानमिव न सुखेन जीयति, १४३।५ उत्त०) उतावला

उत्तायकत्वम (केवलमत्रोत्तायकत्व परिहतव्यम्, १४३।५ उत्त०) उतावलापन, जल्दीबाजी

उत्तारः (६१६।६) उत्कृष्ट

उत्तानशय (२३२।६) ऊपर को मुंह करके सोना

उद्भेद (२२।९ उत्त०) अङ्कुर

उद्धानम् (२२७।४ उत्त०) अगार

उदकद्विप (उद्दामोदकद्विपदशनदश्यमान, २०९।३ उत्त०) जलगज उदक् और द्विप शब्दो को मिलाकर जलहस्ती के अर्थ में सोमदेव ने यह एक नया शब्द बना दिया है।

उदक्या (३३२।१) रजस्वला स्त्री मनु० ४ ५७।५, भाग० ६।१८।४९ में भी यह शब्द आया है।

उदन्या (अनन्यसामान्योदन्यानुद्रुत, २००।२ उत्त०) प्यास

उदन्त (मिथ सभापणकथा प्रावर्ततामुदन्त, २२४।४) वार्ता

उदारम् (२।२) अति मनोहर

उदुम्बर (६६।१ उत्त०) श्रुतसागरने इसका अर्थ जन्तुफल किया है। जैन साहित्यमें बड, पीपल, ऊमर, कठूमर और पाकर इन पाँच फलो को उदुम्बर कहा जाता है। इनमें सूक्ष्म जीव पाये जाते है, इसलिए जैन गृहस्थ को इनका खाना त्याज्य है।

उन्माथ (४७।६) हिंसक

उन्दुरः (उन्दुरमूत्रमितकुथितातस्य तैल, ४३।२ उत्त०) मूषक, चूहा

उप्तम् (लवने यत्र नोप्तस्य, १६।७) बोयी हुई फसल

उपकण्ठम् (१८०।३) ग्राम या नगरके बाहर का निकट प्रदेश।

उपकार्या (२२१।६) तम्बू

उपदंश (ऐर्वारुकोपदशनिकायम्, ४०४।७) चबैना, किसी भी चीज को अवकाश के क्षणो में रुचि के लिए चबाना (मो० वि०)।

उपन्यासः (तथोपन्यासहीनस्य वृथा शास्त्रपरिग्रह, ४८१।४) कथन, प्रयोग (मालवि० १।३।८)।

उपलम्बा (उपलम्बाप्रलम्बस्तम्बविलम्बमान, १९८।३ उत्त०) लता

उपस्पर्शन (आचरितोपस्पर्शन, ३२३।६) आचमन, मो० वि० में उपस्पर्शनम् का अर्थ स्नान दिया हुआ है।

उमा (अविषमलोचनोऽपि सम्पन्नोमासमागम, ५३।३) कीर्ति, पार्वती

उपसंव्यानम् (८२।७ उत्त०): अधोवस्त्र

उरणः (२१९।२ उत्त०) भेड

उल्लोच (१९।१, ५९५।९) चन्द्रातप या चदोवा

औशीरम् (लयनशिलाश्लाघ्यमेखल परिकल्पितौशीर इव, १३४।२) विस्तर

एकानसी (एकानसीमनुप्राप्य, २२६।१ उत्त०) उज्जयिनी

एकायन (३७२।२): एकाग्र

एकशृंगमृग (विषाणविकटमेकशृंग-मृगमण्डलमिव, ४६१।७) गैंडा हाथी

एडः (जड एव एडो वा, १३९।४ उत्त०) बधिर, बहरा (देशी)

एणायित (१२८५) मृग के समान आचरण

ऐकागारिक (परिमुषितनगरनापित-प्राणद्रविणसर्वस्वमेकमेकागारिकम्, २४५।१७) चोर

ऐलक (छगलाविकैलकसनाथस्य, २२१।७ उत्त०) भेड। (प्राकृत एलग दस० ५ १।२२, पन्न० १) (महा० ३।१४२।३७)

ऐर्वारुकम् (असमस्तसिद्धैर्वारुकोपदंश-निकायैं, ४०४।७) कडवी ककडी। कडवी कचरिया (अम० २।४।१५६)

औधस्यम् (स्मरसमर्दर्छादितौधस्यैं, २४९।३) दुग्ध

औदनम् (जीर्णयावनालौदनादि, ४०४।५) भात

क्वथ्यमान (क्वथ्यमानासु जलदेवता-नामावमथपरसर्पेपु, ६६।५) उबलना सम्भवतया आयुर्वेद का क्वाथ (काढा) शब्द भी इसी से बना है। इस तरह क्वथ्यमान का अर्थ होगा, काढे की तरह उबल कर छनकना–क्रम पड जाना। संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग नहीं मिलता। वास्तव में मूलत यह वैद्यक-शास्त्र का ही शब्द ज्ञात होता है। अन्यत्र भी सोमदेव ने इसका प्रयोग किया है (सशुष्यत्स्मरिति क्वथत्तनु-मिति, ५३४।१)।

कृक. (१९०।१ उत्त०) गर्दन

कृष्णलेश्या (कृष्णलेश्यापटलैरिव, २४८।२४ उत्त०) लेश्या जैन सिद्धान्त का एक पारिभाषिक शब्द है। जीव के ऋजु और वक्र आदि भाव लेश्या कहलाते हैं। इसके छह भेद हैं—पीत, पद्म, शुक्ल, कृष्ण, नील, कापोत। सबसे ऋजु परिणाम वाले जीव की शुक्ल लेश्या मानी गयी है और सबसे कुटिल परिणाम वाले की कृष्ण लेश्या।

क. (१००।५) वायु

ककुभ (कुभीरभयभ्राम्यत्ककुभकुहूत्कार मुखरम्, २०८।५ उत्त०) बाल कुर्कुट

कजम् (कजकिंजल्ककलुषकालिन्दी, ४६४।२, कजकिंजल्कपुज, २०७।४ उत्त०) कमल का एक अर्थ पानी भी कोश ग्रन्थों में है। उसी से 'के जायते इति कजम्' इस प्रकार कमल अर्थ में कज का प्रयोग किया है।

कच्छप (२०९।३ उत्त०) कछुआ

कटक (४५१।६) सेना

कटिन् (१६९।३ उत्त०) जगली सूअर

कदर्य (कदर्याणा धुरि वर्णनीय, ४०४।१) मलिन वस्त्रधारी। श्रुत-सागर ने एक पद्य दिया है—कदर्य-हीनकीनाशकिंपचानमितपचा। कृपण क्षुल्लक क्षुद्र क्लीबा एकार्थवाचका। अर्थात् ये शब्द एकार्थवाचक हैं।

कदलम् (कम्पितकाम्भा कदलम्, ५१२।९) केला

कदलिका (कदलिकाग्रलग्नभुजगाशन-वर्हे, ४६५।६) ध्वजा

कदली (कदलीप्रवालान्तरगम्, २००।२ उत्त०) : मृग

कन्द (विपकिसलयकन्दा, ५१६।६) : सूरण

कन्दल (६१३।५) नवाकुर

कन्तु (जन्तु कन्तु निकेतनम्, ११४) मनोहर

कन्था (भयेन किं मन्दविसर्पिणीना कन्या त्यजन्कोऽपि निरीक्षितोऽस्ति, ८९।९ उत्त०) दुर्विधकुटुम्बेपु जरत्कन्थापटच्चराणि, ५७।५) कपडो को सिलकर बनाया गया गद्दा। देशी भाषा में इसे कथरी कहते हैं। श्रुतसागर ने कन्था को कथण्डिका कहा है।

कपिलिका (तूर्णं सज्जसे ताम्बूलकपिलिकायाम्, २५०।७, मुखवासताम्बूल कपिलिके, २९।२ उत्त०) : डिब्बा या डिबिया। इस तरह ताम्बूलकपिलिका का अर्थ हुआ पान का डिब्बा या पानदान।

कमल (वनस्थलीष्विव सकमलासु, ३९।२) मृग। साहित्य में कमल का मृग अर्थ में प्रयोग कम मिलता है। सोमदेव के पूर्व बाण ने इसका प्रयोग किया है।

कमली (कमलीव दोपागमरुचिरपि, ४१।२) चन्द्रमा। कमल का मृग अर्थ कोश मे आता है। बाण ने मृग अर्थ में प्रयोग किया है। सोमदेव ने मृग अर्थ में तो कमल का प्रयोग किया ही है, "कमलो यस्यास्तीति कमली" बनाकर चन्द्रमा के अर्थ में कमली का प्रयोग किया है। जैसे मृग से मृगाक बनता है, उसी तरह कमल से कमली बना है।

कमलानन्दन (१४८।१) : सूर्य

कमलवन्धु (५७०।५) सूर्य

कर्कर्म् (शिखण्डित तटिनिकटकर्करम्, २०९।४ उत्त०) शिला, नदी के किनारे की पाषाण शिला। श्रुतसागर ने इसे पर्वतदन्त कहा है।

कर्कारु (ईपत्खिन्नकर्कारुर्कश, ४०५।१) कलिंग फल, कुम्हडा (अम०)। छोटा कुम्हडा कर्कारु कहलाता है (भाव० मिश्र ६।१०।५६)।

कर्मन्दिन् (कर्मन्दीव न तृप्यति विषविषमोल्लेखेपु, ४०८ २) तपस्वी

करक (मेघोद्गीर्णप्रतत्कठोरकरकासारत्रसत् ७४।६) ओला

करल (सारिकाशावसकुलकुलायकरलोपकण्ठ, १०२।३) वृक्ष। श्रीदेव ने एक अर्थ मचकुन्द भी दिया है। अर्थात् करल वृक्ष सामान्य अर्थ में भी प्रयुक्त होता है तथा मचकुन्द नामक वृक्ष विशेप के भी अर्थ में।

करशाखा (१४२।३) अंगुलि

करटी (चन्द्राधविशतिनख करटी जयाय, ३०१।८) : हस्ती। महाभारत (१।२१०।२०) में हस्ती के लिए करट शब्द आया है।

एकशृंगमृग (विषाणविकटमेकशृंग-मृगमण्डलमिव, ४६१।७) गैंडा हाथी

एडः (जड एव एडो वा, १३९।४ उत्त०) बधिर, बहरा (देशी)

एणायित (१२८५) मृग के समान आचरण

ऐकागारिक (परिमुषितनगरनापित-प्राणद्रविणसर्वस्वमेकमेकागारिकम्, २४५।१७) चोर

ऐलक (छगलाविकैलकसनाथस्य, २२१।७ उत्त०) भेड। (प्राकृत एलग दस० ५ १।२२, पन्न० १) (महा० ३।१४२।३७)

ऐर्वारुकम् (असमस्तसिद्धैर्वारुकोपदश-निकायै, ४०४।७) कडवी ककडी। कडवी कचरिया (अम० २।४।१५६)

औधस्यम् (स्मरसमर्दर्छर्दितौधस्यै, २४९।३) दुग्ध

औदनम् (जीर्णयावनालौदनादि, ४०४।५) भात

क्वथ्यमान (क्वथ्यमानासु जलदेवता-नामावमथपरसेपु, ६६।५) उबलना सभवतया आयुर्वेद का क्वाथ (काढा) शब्द भी इसी से बना है। इस तरह क्वथ्यमान का अर्थ होगा, काढे की तरह उबल कर छनकना—कम पड जाना। सस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग नही मिलता। वास्तव में मूलत यह वैद्यक-शास्त्र का ही शब्द ज्ञात होता है। अन्यत्र भी सोमदेव ने इसका प्रयोग किया है (सशुण्यत्सरिति क्वथत्तनु-मिति, ५३४।१)।

कृक (१९०।१ उत्त०) गर्दन

कृष्णलेश्या (कृष्णलेश्यापटलैरिव, २४८।२४ उत्त०) लेश्या जैन सिद्धान्त का एक पारिभाषिक शब्द है। जीव के ऋजु और वक्र आदि भाव लेश्या कहलाते है। इसके छह भेद है—पीत, पद्म, शुक्ल, कृष्ण, नील, कापोत। सबसे ऋजु परिणाम वाले जीव को शुक्ल लेश्या मानी गयी है और सबसे कुटिल परिणाम वाले की कृष्ण लेश्या।

क' (१००।५) वायु

ककुभ (कुभीरभयभ्राम्यत्ककुभकुहूत्कार मुखरम्, २०८।५ उत्त०) बाल कुर्कुट

कजम् (कजकिंजल्ककलुषकालिन्दी ४६४।२, कजकिंजल्कपुज, २०७।४ उत्त०) कमल का एक अर्थ पानी भी कोश ग्रन्थो में है। उसी से 'के जायते इति कजम्' इस प्रकार कमल अर्थ में कज का प्रयोग किया है।

कच्छप (२०९।३ उत्त०) कछुआ

कटक (४५१।६) सेना

कटिन् (१६९।३ उत्त०) . जगली सूअर

कदर्य (कदर्याणा धुरि वर्णनीय, ४०४।१) मलिन वस्त्रधारी। श्रुत-सागर ने एक पद्य दिया है—कदर्य-हीनकीनाशकिंपचानमितपचा। कृपण क्षुल्लक क्षुद्र क्लीवा एकार्थवाचका। अर्थात् ये शब्द एकार्थवाचक है।

कदलम् (दयितक्रामशा कदलम्, ५१२।९) केला

कदलिका (कदलिकाप्रलग्नभुजगाशन-वर्ह, ४६५।६) ध्वजा

कदली (कदलोप्रवालान्तरगम्, २००।२ उत्त०): मृग

कन्द (विषकिसलयकन्दा, ५१६।६): सूरण

कन्दल (६१३।५) नवांकुर

कन्तु (जन्तु कन्तु निकेतनम्, १।४) मनोहर

कन्था (भयेन किं मन्दविसर्पिणीना कन्था त्यजन्कोऽपि निरीक्षितोऽस्ति, ८९।९ उत्त०) दुर्विधकुटुम्बेषु जरत्कन्थापटच्चराणि, ५७।५) कपड़ों को सिलकर बनाया गया गद्दा। देशी भाषा में इसे कथरी कहते हैं। श्रुतसागर ने कन्था को कथण्डिका कहा है।

कपिलिका (तूर्णं सज्जसे ताम्बूलकपिलिकायाम्, २५०।७, मुखवासताम्बूल कपिलिके, २९।२ उत्त०): डिब्बा या डिबिया। इस तरह ताम्बूलकपिलिका का अर्थ हुआ पान का डिब्बा या पानदान।

कमल (वनस्थलीष्विव सकमलासु, २९।२) मृग। साहित्य में कमल का मृग अर्थ में प्रयोग कम मिलता है। सोमदेव के पूर्व बाण ने इसका प्रयोग किया है।

कमली (कमलीव दोषागमरुचिरपि, ४१।२) चन्द्रमा। कमल का मृग अर्थ कोश में आता है। बाण ने मृग अर्थ में प्रयोग किया है। सोमदेव ने मृग अर्थ में तो कमल का प्रयोग किया ही है, "कमलो यस्यास्तीति कमली" बनाकर चन्द्रमा के अर्थ में कमली का प्रयोग किया है। जैसे मृग से मृगाक बनता है, उसी तरह कमल से कमली बना है।

कमलानन्दन (४४८।१): सूर्य

कमलबन्धु (५७०।५) सूर्य

कर्करम् (शिलण्डित तटिनिकटकर्करम्, २०९।४ उत्त०) शिला, नदी के किनारे की पाषाण शिला। श्रुतसागर ने इसे पर्वतदन्त कहा है।

कर्कारु (ईषत्खिन्नकर्कारुकर्कश, ४०५।१) कलिंग फल, कुम्हड़ा (अम०)। छोटा कुम्हड़ा कर्कारु कहलाता है (भाव० मिश्र ६।१०।५६)।

कर्मन्दिन् (कर्मन्दीव न तृप्यति विषविषमोल्लेखेषु, ४०८।२) तपस्वी

करक (मेघोद्गीर्णपतत्कठोरकरकासारत्रसत् ७४।६) ओला

करल (सारिकाशावसकुलकुलायकरलोपकण्ठ, १०२।३) वृक्ष। श्रीदेव ने एक अर्थ मचकुन्द भी दिया है। अर्थात् करल वृक्ष सामान्य अर्थ में भी प्रयुक्त होता है तथा मचकुन्द नामक वृक्ष विशेष के भी अर्थ में।

करशाखा (१४२।३) अंगुलि

करटी (चन्द्रार्धविशतिनख करटी जयाय, ३०१।८): हस्ती। महाभारत (१।२१०।२०) में हस्ती के लिए करट शब्द आया है।

करटिरिपु (५६।३) सिंह
करपत्रम् (१२३।८) करोत, आरा
करिवैरिन् (२०११६ उत्त०) सिंह
करक (चूर्ण्यमानकरकप्राकारम्, ४८।५) ककाल, मरे हुए पशु के शरीर का ढाचा।
कलशी (निरवधिप्रधावप्रारम्भैर्मथ्यमान पयस्या कलशीमिव, २१५।७ उत्त०) मथानी
कलहित (६१९।८) क्रोधित
कलम् (आमलकशिलातलमिव स्वच्छ-कलम्, २०९।७ उत्त०) काय, शरीर
कलिः (युगत्रयावसानमिव कलिपरि-गृहीतम्, १९५।४ उत्त०) हरड का पेड, कलिकाल
कलाची (मृणालवलयालङ्कृतकलाचो-देशाभि ५३२।५) कलाई
कवचम् (असमनोकरसमपि तकवचम्, १९७ ३ उत्त०) पर्पट वृक्ष
ककेलक (ककेलकोपलसपादितभित्ति-भगिकासु, ३८।५) स्फटिक मणि
कचुलिका (देव्या कचुलिका मदन मञ्जरिकानामाग्राहि २१६।४ उत्त०) दासी, अन्त पुरकी वृद्ध दासी। जिस प्रकार अन्त पुर का वृद्ध परिचारक कचुकी कहलाता है उसी प्रकार वृद्ध परिचारिका के लिए सोमदेव ने कचुकि शब्द का प्रयोग किया है।
कपपट्टिका (३७६।१२) कसोटी। यह शब्द श्रुतसागर ने निकपाश्म के पर्याय मे दिया है।
कशा (समर्पितकशावशेषकदनकन्दुक-विनोदविनीताजानेयजुहूराणनिवह, २१४।४) कोडा। घोडे को हाकने वाला चमडे का कोडा जिसे आजकल चामकोडा भी कहते है।
कशिपु (३४६।३) भोजन और वस्त्र
कस (३५१ ६) जाओ
कक्ष (२५०।२) लता
क्रव्याद् (क्रव्यादसमाजसह्लयव्यसनः ११८।७) राक्षस
काकतालीयन्याय (२४९।३) असभावित सयोग काकतालीयन्याय कहलाता है। कौआ ताल पर आकर बैठा और ताल का फल गिरा। यद्यपि ताल का फल गिरना ही था, किन्तु कौआ का आना एक सयोग हुआ। कौआ का आना और ताल का गिरना यह काकतालीयन्याय है।
काकमाची (गुडपिप्पलिमधुमरिचै सार्धं सेव्या न काकमाची,५१२।१०) मकोय वायसी (अम० २।४।१५२) आयुर्वेद मे यह महत्त्वपूर्ण ओषधि मानी जाती है (भाव० मिश्र, ६।४।२४६–४७)।
काकन्तिका (काकन्तिकाफल-मालोपरचित, ३९८।४) गुजाफल, गुमची
काकोल (उलूकवालकालोकनाकुल-काकोलकुल १०२।१) कौआ (महा० उ० ५।१२, याज्ञ० स्मृ० ११।७४, महा० ११।१६।७)।
काचनार (१०६।१) कचनार पुष्प

कातरेक्षण (कातरेक्षणविपाणक्वाण-विनिवेदित, ३९९।१) महिष

काद्रवेय (अक्रमगति काद्रवेयेषु, २०२।४) सर्प (शिशुपाल० २०।४३)

काण्ड (केतुकाण्डचित्रै, १८।४) दण्ड, ध्वजा का डंडा या बाँस

कामवत् (अधोक्षजमिव कामवन्तम्, २९८।४) यह गजशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है। समस्त प्राणियो को मारने की इच्छा रखने वाले गज को कामवत् कहा जाता है। मो० वि० मे इसका केवल तीव्र इच्छावान् (डिजायरस) अर्थ दिया है।

कारण्डः (उत्तरलतरतरत्कारण्डोच्च-ण्डतुण्ड–,२०८।१ उत्त०) चक्रवाक

कारवेलम् (कोहल कारवेलम्, ५१६।७) करैला

कालशेयम् (कट्वलकालशेयविशिष्ट, ४०६।४) तक्र, मट्ठा, छाछ

कालागुरु (३६८।५) कृष्ण अगर चन्दन

कालिदासः (अकविलोकगणनमपि सकालिदासम्, १९६।१ उत्त०) आम्रवृक्ष

कालेय (२४३।४) केसर

कालेयकलक (कालेयकलत्रपकिला-चार १६३।३) लोकापवाद

काश्यपी (काश्यपीश्वरेण, १४५।३) पृथ्वी (महा० १३।६२।६२, भामिनी वि० १।६८)

कासर (सा मृत्वा कमनीयवालधिरभूच्छागी पुन कासर, २२५।२ उत्त०) भैसा। एक अन्य प्रसग में (४८।५) भी सोमदेव ने इसका प्रयोग किया है।

काहल. (मिथुनचरपतगप्रलापकाहले, २४७।६) गम्भीर। सोमदेव ने काहल नामक वादित्र का भी उल्लेख किया है।

कादिशीक (कादिशीक इवानवस्थित-क्रियोऽपि, ४।।२) भय से भागा हुआ

किंपाक (किंपाकफलमिवापातमधुर, ९७।७ उत्त०) कच्चा अथवा दोष-पूर्ण पका। रामायण में (२।६६।६) किंपाक का उल्लेख आया है।

किंपिरि (किंपिरिपर्यन्तस्फुरत्कृशानु–१९।३) उपरितल, छत

किर्मीर (किर्मीरमणिविनिर्मितत्रिशर-कण्ठिकम्, ४६२।१) चितकवरा

कीकट. (कीकटानामुदाहरणभूमि, ४०३।६) निर्धन

कीकस (११६।२) हड्डी

कीर्तिशेष (१९२।२ उत्त०) मृत

कुज (भूर्जकुजवल्कलदुकूले, २४६।२) वृक्ष। पृथ्वी का एक नाम कोश ग्रन्थो में 'कु' भी आता है। उसी से बनाकर कुज का वृक्ष अर्थ में प्रयोग किया है।

कुट (पलिताकुरितकुटहारिकाकुन्तल-कलापै, ५६।२) घट। पानी भरने वाली नौकरानियो के लिए सोमदेव ने कुटहारिका शब्द का प्रयोग किया है।

कुट्टिमभूमि (यत्र स्खलद्गतैर्वाले कान्ता कुट्टिमभूमय, १९७।५) आगन

कुठ (२०९।१) वृक्ष। श्रुतसागर ने कुठार की व्युत्पत्ति देते हुए लिखा है– कुठान वृक्षान् इयर्ति गच्छतीति कुठार।

कुड्या (स्तवकरचितकुड्या, ५३४।४) भित्ति, दीवाल

कुण्ठ (१८०।३) मन्द

कुत्कील (स्फटिकोत्कीर्णक्रीडाकुत्कीलै-रिव, २१।२) पर्वत। क्रीडाकुत्कील अर्थात् क्रीडापर्वत। कुत्कील का उल्लेख अन्यत्र भी हुआ है (सर्जार्जुन विजयिषु कुत्कीलकुंजेषु, ५४३।४)। मो० वि० में कुकील शब्द पर्वत के लिए आया है।

कुतपिन् (नृत्ताय वृत्त कुतपीव भाति २२९।२ उत्त०) नगाडा बजाने वाला। कुतप को मो० वि० में एक प्रकार का वादित्र कहा है। सोमदेव ने कुतप से ही कुतपिन् बनाया है।

कुतपाकुर (अम्बुजासनशयमिव कुत-पाकुरालकृतमध्यम्, ३२०।२) दर्भ या ताजा कुशा। घास

कुन्द (हेमन्त इव पल्लवितान्नितकुन्द-कन्दल, २०९।७) श्रुतसागर ने इसका अर्थ अवभृथ (यज्ञोपरान्त स्नान) किया है, जो ठीक नहीं लगता। कुन्द का अर्थ कोशों में कमल आता है।

कुथितम् (उन्दुरमूत्रमितकुथितातस्य तैल-धारावपातप्रायम्, ४०४।६) दुर्गन्ध-युक्त। कुथितम् कुथ् धातु से बना है। सोमदेव ने इसका अन्यत्र भी प्रयोग किया है (कुथ्यत्कलेवरकरकहत-प्रचार, ११७।६, कुथ्यत् स्नसाजाल कम्, १२९।१२)। व्याकरण ग्रन्थों में ही इसका प्रयोग देखा जाता है।

किंपच (किंपचाना प्रथमगण्य, ४०३ ७) कृपण

कुफणि (आकुफणिकृतकालायसवलय, ४६२।२) घुटना

कुम्भिन् (२२१।६) हाथी

कुम्भिनी (मितद्रवखुरक्षोभितकुम्भिनी-भागम्, ४६५।१) पृथ्वी, सोमदेव ने इसका एकाधिक बार प्रयोग किया है (३०७।६)।

कुम्भीनस (३७८।२) सर्प

कुम्भीर (कुम्भीरमयभ्राम्यत, २०८।५ उत्त०) नक्र, मगर, (महा० १३।३।५९)

कुम्पल (पतत्सतानकुम्पल– ९७।१) कोंपल

कुमुदचक्षुष् (१५।७ उत्त०) चन्द्र

कुरर (कुररकूजितवहलम्, २०९।६ उत्त०) कुरर पक्षी (रामा० ३।६०। २१)

कुरल (५६९।३, कुरलालिकुलाव-लिह्यमानमूलता, ५२५।२) अलक, घुघराले बाल

कुरगिका (२०४।५) हरिणी

कुरंगाक (४५।६ उत्त०) चन्द्र

कुवलीफलम् (कुवलीफलस्थूलत्रापुपमणि, १९८।३) बदरी फल

कुवलयित (४६५।५) कुवलय सदृश

कूर्चस्थानम् (कूर्चस्थानविनिवेशितप्रसून समूह, २८।६, उत्त०) श्रुतसागर ने इसका अर्थ सभोगोपकरण रखने का स्थान किया है।

कूटपाकल (करिणा कूटपाकल इव, १०१।७ उत्त०) हस्ति वातज्वर।

कूर्पर (४४।१ उत्त०) कछुए का खोल

केवलम् (यस्योन्मेलति केवले, २।१) केवलज्ञान। यह जैन सिद्धान्त का एक पारिभाषिक शब्द है। जैन धर्म में ज्ञान के पाच भेद माने गये हैं— मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय और केवलज्ञान। जो ज्ञान तीन काल के तीनो लोको के पदार्थों को एक साथ हस्तामलकवत् स्पष्ट जानता है, उसे केवलज्ञान कहा गया है।

केसर (३९।३) केसर

केसर (कान्तावक्त्रमधूनि वाञ्छति पुनर्यस्मिन्नय केसर, ५९०।१०) बकुल वृक्ष

कैवर्त (ते च कैवर्तास्तदादेशात्, (२१६।७) मछुआ

कोकुन्द (करालकोकुन्दोड्डमरम्, ४०६।१) श्रुतसागर ने कोकुन्द का अर्थ अण्डराणि किया है।

कोण (कोणकोटिकलकन्दुकान्तर, ३२।१) किनारे पर मुडी हुई लाठी, जैसी आजकल हाकी बनती है।

कोणप (कोणपकरालकरविकीर्यमाण, ४८।६) राक्षस

कोथ (कोथप्रदीर्णतनुतुम्बफलोपमेयाम्, १२२ ८) कुष्टरोग

कोलिक (१२६।४) जुलाहा। देशी भाषा में जुलाहा को अभी भी कोरी कहा जाता है।

कोशारोपणम् (करिणा कोशारोपणमकरवम्, ५०६।३) दात मढना। यह गजशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है। गज के दांतों के किनारो पर लोहे, चांदी या स्वर्ण से मढना कोशारोपण कहलाता है।

कोहलिनीफलम् (कोहलिनीफलपुष्पयोरिव सह भावे, ३१७।३) कूष्माण्ड, कुम्हडा। कुम्हडा का फल और पुष्प एक साथ ही बेल में लगते है। आगे पुष्प और उसी से लगा हुआ फल होता है। जिस पुष्प में फल नहीं रहता, वह बिना फल के ही झड जाता है अर्थात् उसमें बाद में फल नहीं आता।

कौलेयक (१८६।६ उत्त०) कुत्ता

क्षपा (४६४।२) हरदी

क्षिपस्ति (४३।५ उत्त०) बाहू

क्षुप (७०।१ हि०) पौधा

क्षुद्र (१४७।९ उत्त०) दुष्ट जानवर। मो० वि० में क्षुद्र का अर्थ केवल दुष्ट दिया है।

क्षेत्रज्ञ (१३।३) कृषि विशेषज्ञ या कृषक

क्षेपणि (३९०।६) श्रुतसागर ने इसे गोला गोफणि कहा है। देशी भाषा में इसे गुथनिया कहते हैं।

खट्वाङ्ग (४५।२) कौल सम्प्रदाय के साधुओं का एक उपकरण। सोमदेव ने इसका कई बार प्रयोग किया है।

खदरिका (२६।८ उत्त०) धूर्त स्त्री

खरकर (खरकरानुव्रजनपराम्बर, ४।१ उत्त०) सूर्य

खरमयूख (७१।१२) सूर्य

खारपटिकः (आ पापाचार खारपटिक, ४२७।६) मु० प्रति का कापटिक पाठ गलत है। श्रीदेव ने खारपटिक का अर्थ ठक अर्थात् ठग दिया है।

खाण्डवम् (नेत्रनासारसनानन्दभावैः खाण्डवे, ४०१।४) खाड (देशी), खाण्डव नामक मिष्ठान्न

खुरली (शस्त्रप्रयोगखुरलीं खलु क करोतु, ६००।८) सैनिक व्यायाम

खेट (खेचरखेट २३३।१ उत्त०) नीच

खेयम् (३७८।४) खाई

गृष्टि (गणतिथिभिर्गृष्टिभि, १८६।१ उत्त०). एक बार व्याई गाय। कालिदास ने भी प्रयोग किया है (रघु० २।१८)।

गृध्नुता (२४३।२ उत्त०) लालच कालिदास ने रघु को लिखा है कि वह अगृध्नु होकर अर्थ का उपार्जन करता था।

गजायित (१२२।८) गज के समान आचरण

गन्धर्व (भरतप्रयोग इव सगन्धर्वाः, १२।६) अश्व

गन्धवाहा (१२८।२) नाक

गणिका (१५९।४ उत्त०) हथिनी

गण्डक (प्रचण्डगण्डकवदनविदार्यमाण, २००।३ उत्त०) गेंडा

गवर (खर्वति गर्वरेषु गर्वे, ६८।२) भैंसा

गल (यमदंष्ट्राकोटिकुटिल पपात गलनाले गल, २१७।८) मछली पकड़ने का लोहे का काटा।

गवल (गवलवलयावखण्डन, ३९८।४). महिषशृंग

गायत्री (अवेदवचनमपि गायत्रीसारम्, १९५।५ उत्त०) खदिर वृक्ष

गिरिक (३०।१) गेंद

गिरिकलीला (गिरिकलीलालुलितमहाशिला, ३०।१) कन्दुकक्रीडा

गुड (गुडपिप्पलिमधुमरिचैं, ५१२।१०) गुड,

गुलुच्छ (२४४।२) फूलों का गुच्छा

गुवाक (गुवाकफलकपायितवदनवृत्तिभि, ४६६।३) सुपारी का पेड़

गुह्या (गुह्यापिहितमेहना, ३९८।६) लंगोट

गोमिनी (गोमिनीपतिरजालवपुषि, ७७।६) लक्ष्मी

गोसव (११७।४ उत्त०) गोयज्ञ

गोष्ठम् (१८४।४ उत्त०) गोशाला

गौरखुर (गौरखुराकुलितहस्तै, १४५। १) श्रुतसागर ने इसका अर्थ गर्दभ के समान पशु किया है। कोशों में गौर को मृग विशेष कहा है।

गौरधामन् (२३११३) चन्द्रमा।मो० वि० में गौर शब्द चन्द्र के लिए दिया है।

घर्घरमालिका (मुक्त्वा घर्घरमालिका कटितटात्, २३४।५) काची, करधनी

घड्घा (महाघडघाघ्रातचित्तस्य, ४४६।९) तृष्णा। निर्णयसागर वाली प्रति का जघा पाठ गलत है।

घन (१९४।३ उत्त०) समूह,घनीभूत

घटदासी (४२४।१) नौकरानी

घोटिका (५३।३ उत्त०) घोड़ी

घोरघृणि (६६।३) सूर्य

चक्रकम् (अवालमालूरमूल्कचक्रकोपक्रमम् ४०५।१) खट्टे पत्तोवाला साग। खटुआ देशी भाषा में प्रचलित है।

चक्रिन् (४१३।५) कुम्हार

चण्डभाव (२६९।९) गुस्सा मो० वि० में चण्ड शब्द आया है। अत्यन्त क्रोधी स्त्री को चण्डी कहते हैं (चण्डी त्वत्यन्तकोपना)।

चण्डातकम् (१५०।६) जांघिया, घघरी

चन्द्र (१९३।६) स्वर्ण, कर्पूर

चन्द्रकापीड(कनकार्धचन्द्रचुम्बितचन्द्रकापीड, ३९७।७) मयूर की पूँछ का बना मुकुट

चन्द्रलेखा (धूर्जटिजटाजूटमिव चन्द्रलेखाध्यासितम्, १९५।३) वाकुची। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है।

चमूर (१४४।५) व्याघ्र

चलन (३४।४) पैर

चार्वी (चार्वी चिनोति परिमुचति चण्डभावम्, २६९।९) बुद्धि

चाष (चापच्छदमूर्छत्, २०।२) भास पक्षी, जलकाक

चिकुर (३८।२) केश

चित्रक (नाटेरमित्र सचित्रकम्, १९४।२) चीता

चित्रशिखण्डि (चित्रशिखण्डिमण्डली, ९२।४) सप्तर्षि। मरीचि, अंगिरस, पौलस्त्य, अत्रि, पुलह, क्रतु तथा वशिष्ठ ये सप्तर्षि माने जाते हैं (महा० १२।३३५,२९)।

चिपिट (अनवरतचिपिटचर्वणदीर्णदशनाग्रदेशै, ४६६।३) चिउडा, चावल का चिउडा

चिर्भटिका (अभृष्टचिर्भटिकाभक्षण, ४०५।१) कचरी, छोटा फूट

चिल्ली(तरगरेखास्विल्लीषु १९१।४) भौंह। चिल्ली एक प्रकार का साग भी होता है, जिसका सोमदेव ने अन्यत्र उल्लेख किया है (५१६।७)।

चिलीचिम (चिलीचिमनिरीक्षण, २१३।१) मत्स्य

चुरी (१९८।६ उत्त०) कच्चा कुआँ

चुलुकी (२१६।२ उत्त०) मगरी या मगरनी

क्षेपणि (३९०।६) श्रुतसागर ने इसे गोला गोफणि कहा है। देशी भाषा में इसे गुथनिया कहते हैं।
खट्वाङ्‌ग (४५।२) कौल सम्प्रदाय के साधुओं का एक उपकरण। सोमदेव ने इसका कई बार प्रयोग किया है।
खदरिका (२६।८ उत्त०) धूर्त स्त्री
खरकर (खरकरानुव्रजनपराम्बर, ४।१ उत्त०) सूर्य
खरमयूख (७१।१२) सूर्य
खारपटिकः (आ पापाचार खारपटिक, ४२७।६) मु० प्रति का कापटिक पाठ गलत है। श्रीदेव ने खारपटिक का अर्थ ठक अर्थात् ठग दिया है।
खाण्डवम् (नेत्रनासारसनानन्दभावै खाण्डवै, ४०१।४) खाड (देशी), खाण्डव नामक मिष्ठान्न
खुरली (शस्त्रप्रयोगखुरली खलु क करोतु, ६००।८) सैनिक व्यायाम
खेट (खेचरखेट २३३।१ उत्त०) नीच
खेयम् (३७८।४) खाई
गृष्टि (गणतिथिभिर्गृष्टिभि, १८६।१ उत्त०) : एक बार ब्याई गाय। कालिदास ने भी प्रयोग किया है (रघु० २।१८)।
गृध्नुता (२४३।२ उत्त०) लालच कालिदास ने रघु को लिखा है कि वह अगृध्नु होकर अर्थ का उपार्जन करता था।
गजायित (१२२।८) गज के समान आचरण
गन्धर्व (भरतप्रयोग इव सगन्धर्वाः, १२।६) अश्व
गन्धवाहा (१२८।२) नाक
गणिका (१५९।४ उत्त०) हथिनी
गण्डक (प्रचण्डगण्डकवदनविदार्यमाण, २००।३ उत्त०) गैंडा
गवर (खर्वति गवरेषु गवें, ६८।२) भैंसा
गल (यमदंष्ट्राकोटिकुटिल पपात गलनाले गल, २१७।८) मछली पकड़ने का लोहे का काटा।
गवल (गवलवलयावखण्डन, ३९८।४) महिषशृंग
गायत्री (अवेदवचनमपि गायत्रीसारम्, १९५।५ उत्त०) खदिर वृक्ष
गिरिक (३०।१) गेंद
गिरिकलीला (गिरिकलीलालुलितमहाशिला, ३०।१) कंदुकक्रीडा
गुड (गुडपिप्पलिमधुमरिचै, ५१२।१०) गुड,
गुलुंच (२४४।२) फूलों का गुच्छा
गुवाक (गुवाकफलकपायितवदनवृत्तिभि, ४६६।३) सुपारी का पेड
गुह्या (गुह्यापिहितमेहनः, ३९८।६) लंगोट
गोमिनी (गोमिनीपतिरसालवपुषि, ७७।६) लक्ष्मी
गोसव (११७।४ उत्त०) गोयज्ञ
गोष्ठम (१८४।४ उत्त०) गोशाला

आधार पर लोक भाषा से स्वय निर्मित किया लगता है। कोश ग्रन्थो में इसका प्रयोग नहीं मिलता।

डामरिक. (डामरिकनिकायसायक-विद्धवृद्धवराह, १९८।७ उत्त०) बहेलिया। श्रुतसागर ने डामरिक का अर्थ चोर किया है पर सोमदेव के प्रयोग से बहेलिया अर्थ अधिक उपयुक्त लगता है।

तण्डुलीय. (वास्तूलतण्डुलीय, ५१६।७) श्रुतसागर ने इसे अल्पमरिचशाक कहा है। इसे आजकल चौलाई कहते है।

तपस्विनी (समर्थस्थानमिव तपस्विनीप्रचुरम् १९५।२ उत्त०) मुण्डीकह्लार

तमग (१८१।८) तमग, कगूरा

तमोपह (३७२।८) सूर्य

तमोरातिमडल (७।६ उत्त०) सूर्य

तर्कुक (विभवाभिवृद्धिस्तर्कुकलोकसतर्पणाय २६६।३ उत्त०) याचक

तर्ण (तरीतर्णतुवरतरग २१७।१ उत्त०) नदी में तैरने के लिए बनाया गया घास का घोडा।

तर्णक (राजन्ते यत्र गेहानि खेरत्तर्णकमण्डलैं, १९७।३, अस्प्रर्णतर्णह्रस्वनाकर्णनोदीपेन, ११।७ उत्त०) वत्स बछडा।

तरण्ड (तरीतर्णतुवरतरगतरण्ड, २१७।१ उत्त०) पानी पर तैरनेवाला काठका पटिया जिसे फलक कहते है।

तरक्षु (तरक्षुचक्षुर्दुर्लक्ष्य, १९८।६ उत्त०) जगली कुत्ते

तरसम् (तरसरसिकराक्षस, ६।५ उत्त०) कच्चा मास

तरी (तरीतर्णतुवरतरगतरण्ड, २१७।१ उत्त०) नौका

तल्ल (५२३ ६) ताल

तलवर (२४५।१७ उत्त०) अगरक्षक, कोतवाल

तलिका (८३।३) कडाही

तलिनम् (३०९।५) सूक्ष्म, छोटा

तार (२०९।६) तारा, नक्षत्र

तारेश्वर (तारेश्वर इव चतुरुदधिमध्यवर्तिन, २०९।६) चन्द्रमा। तारा या तारक नक्षत्रो को कहते है, उनका ईश्वर तारेश्वर।

तुवरतरग (तरीतर्णतुवरतरग, २१७।१ उत्त०) पानी पर तैरने वाला काठका पटिया। श्रुतसागर ने इसका अर्थ 'दौघिकफलतरणोपाय' किया है।

तूलिनी (तूलिनीकुसुमकुड्मलाकृति, ३९७।७) सेंमल का पेड

त्रपु (१८५।७) रागा

त्रिनेत्रम् (१९७।२ उत्त०) नारियल

त्रोटी (२४९।२) चूंच

दधिमुख (१६२।५ उत्त०) गधा

दर्प (२५३।१) कामदेव, मो० वि० में दर्पक शब्द कामदेव के लिए आया है।

दशबलः (२०२।२) बुद्ध

दंश. (५८७।२) दांत

चुलुकीसूनु (तेन चुलिकीसूनुना, २१६.२ उत्त०) मगर

चूण्ढी (चौण्ढ्य धनाना पुन., ५२०।२) चूरी बिना बधा छोटा कुआँ। हेम-नाममाला में चूरी और चूण्ढी दोनों शब्द आये हैं, अन्य कोशों में केवल चूरी शब्द मिलता है। सोमदेव ने दोनों शब्दों का प्रयोग किया है (त्रिलातवेल्लिकोचचुलिचितचुरीवारि— १९८।६ उत्त०)।

चेटक (४२३।६) परस्त्री-लम्पट

चेतक (१७१।२ उत्त०) हरड का पेड

चेतोभव (५३१।१) कामदेव

चोलकम् (४३९।७, ४६६।४) चोला, चागा अर्थात् एक प्रकार का लम्बा कोट।

छागलधेनु (२२२।५ उत्त०) बकरी

छेक (९०।२) चतुर, होशियार

जगत्स्रष्टा (३८१।८) महादेव

जरण्ड (१२६ ८) पुराना, जीर्ण

जनुपान्धत्वम् (६७।१ उत्त०) जन्मान्धत्व

जनापवाद (१४८।९ उत्त०) लोकापवाद

जम्बूक (जलनिधिमिव जम्बूकाध्युपितम्, १९४।४ उत्त०) शृगाल, वरुण

जरूथम् (पिथुरापितजरूथमन्थर-कपालशकलम्, ४७।६) गीला मांस

जातवेदस् (३६ ३ हि०) अग्नि

जातिस्मरणम् (तदाकर्णनाच्च सजात-जातिस्मरणो, २६४।२० उत्त०) यह जैन सिद्धान्त का एक पारिभाषिक शब्द है। कर्मों के विशेष क्षयोपशमके कारण पूर्व जन्म या पूर्व जन्मों के वृत्त का स्मरण जातिस्मरण कहलाता है।

जानक (जानकोत्रासितहरिण, १९८।३ उत्त०) श्रुतसागरने जानकका अर्थ आरण्यवृषभ या वानर किया है। सोमदेव के सन्दर्भ से वानर अर्थ ही अधिक उपयुक्त लगता है।

जीवन्ती (चिल्ली जीवन्ती, ५१६।७) राजडोडी

जुहूराण. (विनीताजानेयजुहूराणनिवहा, २१४.४) अश्व

जेमनम् (जेमनावसरेषु स्वहस्तवर्तितकार्यैः, १८२।२ उत्त०) जीमनवार (देशी), भोज

जैवात्रिकमन्त्रम् (यायजूकलोकैर्जनितजैवात्रिकमन्त्रैः, ३२४ ३) आयुवर्धक मन्त्र

झिल्लीका (झिल्लीकाझल्लरीस्वर-सूचित, २४६।५) झिल्ली नामक कीडा। अभी भी इसे झिल्ली कहते हैं। यह प्राय बरसात में अधिक पैदा होते हैं और सन्ध्या होते ही बोलने लगते हैं।

टिरिटिल्लितम् (विजहीत धनयौवन-मदोल्लासितानि टिरिटिल्लितानि, ३७१।४, मिथ्या वपुःटिरिटिल्लित न सहते, ३९६।५) व्यर्थ बकवास, देशी भाषा में जिसे टें टें मचाना कहते हैं। सोमदेव ने यह शब्द ध्वनि के

आधार पर लोक भाषा से स्वय निर्मित किया लगता है। कोश ग्रन्थो में इसका प्रयोग नही मिलता।

डामरिक. (डामरिकनिकायनायक-विद्धवृद्धवराह, १९८।७ उत्त०) बहेलिया। श्रुतसागर ने डामरिक का अर्थ चोर किया है पर सोमदेव के प्रयोग से बहेलिया अर्थ अधिक उपयुक्त लगता है।

तण्डुलीय (वास्तूलतण्डुलीय, ५१६।७) श्रुतसागर ने इसे अल्पमरिचशाक कहा है। इसे आजकल चौलाई कहते हैं।

तपस्विनी (समर्थस्थानमिव तपस्विनी-प्रचुरम् १९५।२ उत्त०) मुण्डीकह्लार

तमग (१८१।८) . तमग, कगूरा

तमोपह (३७२।८) सूर्य

तमोरातिमडल (७।६ उत्त०) सूर्य

तर्कुक (विभवाभिवृद्धिस्तर्कुकलोकसतर्पणाय २६६।३ उत्त०) याचक

तर्ण (तरीतर्णतुवरतरग २१७।१ उत्त०) नदी में तैरने के लिए बनाया गया घास का घोडा।

तर्णक (राजन्ते यत्र गेहानि खेरतर्णक-मण्डलै, १९७।३, अभ्यर्णतर्णकस्त-नाकर्णनोदीपेन, ११।७ उत्त०) वत्स बछडा

तरण्ड (तरीतर्णतुवरतरगतरण्ड, २१७।१ उत्त०) पानी पर तैरनेवाला काठका पटिया जिसे फलक कहते हैं।

तरक्षु (तरक्षुचक्षुर्दुर्लक्ष्य, १९८।६ उत्त०) जगली कुत्ते

तरसम् (तरसरसिकराक्षस, ६।५ उत्त०) कच्चा मास

तरी (तरीतर्णतुवरतरगतरण्ड, २१७।१ उत्त०) नौका

तल्ल (५२३ ६) ताल

तलवर (२४५।१७ उत्त०) अगरक्षक, कोतवाल

तलिका (८३।३) कडाही

तलिनम् (३०९।५) सूक्ष्म, छोटा

तार (२०९।६) तारा, नक्षत्र

तारेश्वर (तारेश्वर इव चतुरुदधिमध्य-वर्तिन, २०९।६) चन्द्रमा। तारा या तारक नक्षत्रो को कहते है, उनका ईश्वर तारेश्वर।

तुवरतरग (तरीतर्णतुवरतरग, २१७।१ उत्त०) पानी पर तैरने वाला काठका पटिया। श्रुतसागर ने इसका अर्थ 'दीधिकफलतरणोपाय' किया है।

तूलिनी (तूलिनीकुसुमकुड्मलाकृति, ३९७।७) सेमल का पेड

त्रपु (१८५।७) रागा

त्रिनेत्रम् (१९७।२ उत्त०) नारियल

त्रोटी (२४९।२) चूंच

दधिमुख (१६२।५ उत्त०) . गधा

दर्प (२५३।१) कामदेव, मो० वि० में दर्पक शब्द कामदेव के लिए आया है।

दशबलः (२०२।२) बुद्ध

दश. (५८७।२) . दांत

द्रविणोदशम् (समेधितमहस द्रविणोदशम्, ३२४।२) अग्नि
द्वयातिग (परिकल्पितोशीर इव द्वयातिगानाम्, १३४।२) रागद्वेषरहित
दन्दशूक (कुपितेनोर्ध्वचलितदृशा दन्दशूकेश्वरेण, ६६।४) सर्प। दन्दशूकेश्वर = शेषनाग
दन्ति (१९४।१ उत्त०) हाथी, पर्वत
दम्यमान (क्वचिद्दम्यमानसागरगण २४९।२) खेदित। दम् धातु से दम्यमान बना है।
दर्दरीकम् (१०३।२) अनार
दरद (दरदद्रवापाटलफलकान्ति, ४६४।४) हिंगु या हींग
दशलोचन (दशम दशलोचनदंष्ट्राकुरात्, ४४२।२) यम
दृष्टान्त (२२३।५ उत्त०) मृत्यु
दृति (चर्मकारदृतिद्युतिम्, १२५।२) चमडे की मसक
दाक्षायणीदेश (कबुरितसर्वदाक्षायणीदेशम्, ४६६.६) आकाश, हलायुध कोश में यह शब्द आया है।
दार्वाघाट (अखर्वगर्वदार्वाघाटपेटक, २०७।५ उत्त०) सारस
दारू (नादत्ते दारव पादपरित्राणम्, ४०८।१) काष्ठ। देवदारु में दारु शब्द अब भी सुरक्षित है। बुंदेलखण्ड में कहीं-कहीं लकडी को अभी भी दारु कहा जाता है।
दासेरक (दलितदामदासेरार्भक, १८५।१) ऊँट
द्वापर (३७२।८) सदेह
दिव्यचक्षुस् (१२८।१) अन्धा
द्विजाति (वसन्त इव समानन्दित द्विजाति, २१०।२) कोकिल
द्विजिह्व (३४६।४) दोगला, चुगलखोर, सर्प, दुर्जन
द्विप (१९९।२ उत्त०) हाथी
द्विरदन (द्विरदनकुलेषु, ११।४ उत्त०) . हाथी। संभवतया यहाँ द्विरद और नकुल दो पद हैं। श्रुतसागर ने एक पद माना है और हाथी अर्थ किया है।
दिनाधिप (१९७।३ उत्त०) सूर्य
दिवाकीर्ति (दिवाकीर्ते नप्ता, ४०३।४) नाई
दीदिवि (अतिदीर्घविशदच्छविभिर्दीदिभी, ४०१): भात
दीविन् (उदीर्णदर्पदीवितुमुलकोलाहल, २०८।७ उत्त०) जल सर्प
दुमत्त (बलवद्बलालोन्मीलितदुमलाकुलकलभप्रचारम्, १९९ ७ उत्त०) वृक्ष
दुर्वर्णम् (दुतदुर्वर्णरसरेखारुचिभिरिव मरुमरीचिवीचिभि, ६६.२) चाँदी। सोमदेव ने इसका प्रयोग एकाधिक बार किया है। (१०८)
दुस्फोट (१४५।१) मूसल
द्रुहिणद्विज (द्रुहिणद्विजकुलकोलाहले, २४८ ६) हंस। ब्रह्मा का एक नाम द्रुहिण भी है। हंस उनका वाहन है। इसी आधार पर सोमदेव ने हंस के

लिए द्रुहिणद्विज शब्द का प्रयोग किया है। अन्यत्र ऐसा प्रयोग नहीं मिलता। सोमदेव ने हस के लिए एक स्थान पर द्रुहिणवाहन भी कहा है (द्रुहिणवाहनस्थितिप्रभेदिपु, ७२।२)।

देवखात (मरुस्थलेष्विव देवखातेषु, ६८।५) अगाध सरोवर

दैर्घिकेयम् (परिम्लायत्सु दैर्घिकेयकान्तारेसु, ६७।३) कमल, दीर्घिका में उत्पन्न होने वाला। अर्थ के आधार पर सोमदेव ने यह शब्द स्वय रच लिया है। कोश ग्रन्थो में इसका प्रयोग नहीं मिलता।

दौलेय (पकिलगर्तगर्वरमिलद्दौलेयवाले २१७।५ उत्त०) कच्छप, कछुआ

द्युसद् (१९८।६) देव

ध्वजिन् (ध्वजकुलजातस्तात, ४३०।१) तेली

ध्यामलम् (निर्धूमधूमध्यामलेषु, ६६।१) मलिन

धगद्धगिति (२२७।३ उत्त०) धगधग होता हुआ, व्यवहार में धधकधधक कर जलना का प्रयोग होता है।

धनजय (प्रवर्धमानध्यानधैर्यधनजय—६२।३) अग्नि

धृतराष्ट्र (२०६।५ उत्त०) धृतराष्ट्र, हस

धृष्णि (अहिमधामघृष्णिसधुक्षित, १९।३) सूर्य किरण

धान्वन्धरा (धान्वन्धरारन्ध्रेष्विव प्रधिपु, ९८।५) मरुभूमि

धिष्ण्यम् (धनदधिष्ण्यमिवाप्यस्थाणुपरिगतम्, २४६।१) मन्दिर, कुबेर के मन्दिर को धनदधिष्ण्य कहते थे।

धूमकेतु (२५४।८) अग्नि

धेनु (१८४।६ उत्त०) दूध देनेवाली गाय

धेनुप्रिया (४९७।६) हथिनी

धेनुष्या (११।७ उत्त०): उत्तम गाय

नखायुध (६८।१) शेर

नन्द्यावर्त (स्वस्तिकनन्द्यावर्तविन्यासाभि, २९७।५) एक मागलिक उपकरण

नन्दिनी (नन्दिनीनरेन्द्रस्य, १३५।१) उज्जयिनी

नमतम् (नमताजिनजेणाजीवनोटजाकुले, २१८।९ उत्त०) ऊनी नमदे, ऊन को कूटकर जमाया गया मोटा वस्त्र। आज भी कश्मीर में नमदे बनते हैं। निर्णयसागर वाली प्रति का तमत पाठ गलत है।

नरकारि (२९३।७ हि०) विष्णु

नाकु (अनेकनाकुनिर्गलनिर्मोक, १९८।४ उत्त०) वल्मीक, साँप का बिल जिसे देशी भाषा में 'बाँबी' कहा जाता है।

नागरग (९५।५) नारगी

नाटेर (१९४।२ उत्त०) अभिनेता मो० वि० में नाटेर का अर्थ अभिनेत्री का लडका किया है।

नाडीजघ (१२४।१० उत्त०) बन्दर

नाथहरि (उन्माथनाथहरियूथयुद्धबाध्यमान, १८५।३) वृषभ

नालीकिनी (आकुलभवन्नालीकिनीकाननम्, २१७।३) कमलिनी

नासीर (तव नासीरोद्धतरेणुराग, १८५।६) सेना

निगल (४४०।९) लोहे की साकल

निगद्यागमम् (निगद्यागममिव गहनावसानम्, १९३।५ उत्त०) गणित शास्त्र

निचिकी (निचिकीनिटलनिक्षिप्यमाण, १८४।८ उत्त०) गाय। कलोर या उत्तम नई गाय

निचुल (निचुलमूलविलनिलीन, १०१।६) वृक्ष

नित्यजागरूकसुत (१८७।३ उत्त०) कुत्ता

निप (४९।२) घडा

निपाजीव (निपाजीव इव स्वामिन्स्थरीकृतनिजासन, ३९०।७) कुभकार

निलोठनम् (सोपानमार्गेण निलोठित, १९०।८ उत्त०) लुढकाना। लुठ् धातु से नि उपसर्गपूर्वक निलोठिन् शब्द बनाया गया है।

निलिम्पकः (१८।२) देव। मो० वि० में निलिम्प शब्द आया है।

निवर्तनम् (त्रिचतुराणि निवर्तनान्यतिक्रान्तम् १३९।२) श्रुतसागर ने इसे क्षेत्रमयमान कहा है। व्यवहार की भाषा में दो तीन फर्लांग, इसी तरह दो-तीन खेत या निवर्तन कहा गया है।

निशादर्श (८५।३) चन्द्र

नशीथिनी (३५७ ४) रात्रि

निश्रेणीकम् (असौघतलमपि सनिश्रेणीकम् १९७।१ उत्त०). खजूर वृक्ष

निपद्या (२२५।१ हि०) शाला, भवन

निष्कुटोद्यानम् (निष्कुटोद्यानपादप, २०५।३) गृहवाटिका

नीक (असमनीकरसिकमपि सकवचम् १९७।३ उत्त०) छोटी नदी, नहर

नेत्र (१६९।५ उत्त०) एक प्रकार का मृग

नेत्रम् (३६८।२) एक प्रकार का महीन वस्त्र

नैकपेय (गोमायुनैकपेयजुष्यमाण, ४९।२) राक्षस

पत्सलम् (भवेत्पत्सलवत्सल,५०८।८) भोजन

पतत्रिन् (२५९।८) पक्षी

पट्टिश (प्रासपट्टिशबाणासनम् ४६५। १) पट्टिश नामक अस्त्र

पटोलम् (नेत्रचीनचित्रपटीपटोलरल्लिका, ३६८।२) गुजरात की पटोल नामक साडी या पटोल वस्त्र।

पर्पट.(सद्यः सभृष्टा पर्पटा, ५१६।८) पापड

परमान्न (शर्करासपर्कसमासन्ने, परमान्ने, ४०२।४) खीर

परिणय (८१।६ उत्त०) विवाह

परिधानम् (परिधानेन वृत्तमौलि पुमानिव, ३८५।८) धोती,'परदनिया' देशी भाषा में आज भी प्रचलित है।

परुपरश्मि (५९७।१ उत्त०) सूर्य

परेष्टुका (पूगतिथिभि परेष्टुकाभि, १८६।१ उत्त०) बहुत बार ब्याई हुई

गाय (प्रचुरप्रसूता)।

पल्लवक' (मुनिद्रुमदलेष्विवसकोचनोचितेषु पल्लवकलोव सृपाटीपटेसु, ११।२ उत्त०) विद्वान्

पलाण्डु (पलाण्डुमुण्डिकाडम्बरम्, ४०५।५) प्याज

पलाशः (४८।३) राक्षस

पलिक्नी (सख्यातीताभि पलिक्नीभि, १८६।२ उत्त०) गाभिन गाय

पलिश (पलिशदेशाश्रयिणा तेन, १८०।२ उत्त०) जहाँ बैठकर मृग का शिकार किया जाता है उसे पलिश कहते हैं।

पवनाशन (१९।६) साँप

पवनकन्यका (५३१।४) चमर ढोरने वाली कृत्रिम पुत्तलियाँ

पश्यतोहर (२५८।८) देखते-देखते चुरा लेने वाला चोर, सुनार

पस्त्यम् (पस्त्यभित्तिमणिघोतै, २०६। १) गृह, सोमदेव ने पस्त्य का एक से अधिक बार प्रयोग किया है (प्रचेत पस्त्यमिवाप्यजडाशयम्, ३४५।५)।

पृषतः (पृषत्खुरखण्ड्यमान, २००।२ उत्त०) मृग, सेहुल

पृषदाज्य (पृषदाज्येनाभिक्षया च समेधित महसम्, ३२४।२) ताजा घी

पृषदश्वः (चापलविलास पृषदश्वेषु, २०२।२) वायु

पकजातम् (२८१।९) कमल

पकिल (१६३।४). पापी

पकेज (४१६।६) कमल

पचजना (नगनगरग्रामारण्यजन्मसमवायै पचजनै, १४५।४): मनुष्य, पच लोग

प्रजापति (२०६।२ उत्त०) राजा

प्रचलाकिन् (उपरितनतलचलत्प्रचालाकिबालक, १९।५). मयूर। भवभूति ने भी प्रचलाकि का प्रयोग किया है (उत्त० २।२९)।

प्रत्यगम् (असत्यता नीतोऽ्य प्रत्यगफलनिर्देश, १९१।२) सामुद्रिक शास्त्र

प्रत्यबसानम् (१५०।८) भोजन

प्रतारणम् (७२।२ उत्त०) ठगना

प्रधावधरणि (प्रधावधरणिष्विव स्रोतस्विनीषु, ६८।५) गजशिक्षा प्रदेश, नगर के बाहर का वह प्रदेश जहाँ गजो को शिक्षित किया जाता था या घुडदौड आदि होती थी। इसका कई बार प्रयोग हुआ है (प्रधावधरणिषु करिविनोदविलोकनदोहदम्, ४९५।८)। इसे करिविनयभूमि भी कहते थे (४८२.५)।

प्रधि (धान्वन्धरारन्ध्रेष्विव प्रधिषु, ६८।५) कुआँ

प्रणधि (अवधोरिताधोरणप्रणिधिभि, ३०।५) अकुश

प्रणालम् (चन्द्रोपलप्रणालाग्रै, २०५। ७) नाली, परनाला देशी भाषा में प्रचलित है।

प्रायोपवेशनम् (प्रायोपवेशनवासिन्यपि कुट्टिनी, ४२९।३) सन्यास

प्रवहणम् (मदीये निलये प्रवहण कर्तव्यम्, १५०।२ उत्त०) पक्तिभोज

प्रष्ठौही (वाध्यमानप्रष्ठोहीपक्षम् १८५। ३ उत्त०) । कुछ दिन के गर्भ वाली गाय

प्रसवम् (अनवधिप्रचारप्रसवस्तवक, ४६५।२) पुष्प

प्रसख्यानम् (पारिरक्षक इव प्रसख्यानोपदेशेषु, २३६।२) गणितशास्त्र

प्रस्फोटन (प्रस्फोटनस्फारमारुत– २२६।५ उत्त०) सूर्य

पाकः (शुकपाक, सोत्कण्ठमुत्कण्ठस्व, ३५१।५) महामत्स्य, श्रुतसागर ने सहस्रदष्ट्र अर्थ किया है।

पाण्डुरपृष्ठा (५६।५ उत्त०) कुलटा

पाथोनिधि (२५०।४) । समुद्र

पामर। (पामरपुत्री च यस्य जनयित्री, ४३०।१) । नीच

पारणा (उपकल्पितपारणास्विव, २।१६।१) उपवास के बाद का भोजन

पारदरसः (पारदरस इव द्वन्दपरिगत ११२।१) पारा

पारिपुंख (पारिपुख इवानात्मीनवृत्तिरपि, ४१।१) बौद्ध

पालिन्द। (पालिन्दमन्दिरोदरतारतरोच्चार्यमाण, २४७।४) नरेन्द्र, राजा

पालिन्दी (प्रबलानलान्दोलितपालिन्दीसवर्तिभि, १९९।६) तरग, लहर

पिचण्ड (कथ नामाय पिचण्ड स्फायताम्, ४०२।९) पेट, तोंद

पिचुमन्द (पिचुमन्दकन्दलसदनम्, ४०५।३) नीम। पृ० ७१६ पर भी प्रयोग किया है।

पिण्डी (पिण्डीभाण्डशालिनाम् ४२९। ८) खली। तैल निकालने के बाद शेष बचा तिलहन का छूँछ—सीठी

पित्तम् (उद्रिक्तपित्तास्विव, ६६।५) । आयु

पिप्पलि (गुडपिप्पलिमधुमरिचै, ५१२।१०) पीपल (छोटी पीपल)

पिष्टातक (पिष्टातकचूर्णा ,३३८।४) पिष्टातक चूर्ण। इसके लिए सोमदेव ने केवल पिष्ट शब्द का भी प्रयोग किया है (२२७।५)।

पिथुर (पिथुरार्पितजरूथमन्थरकपालशकलम्, ४८।६) राक्षस

पिंजनम् (२२३।९ उत्त०) रूई धुनने की पींजन

पितृपति (१५१।३) यम

प्रियाल (प्रियालमजरीकणकलित, १०५।६) प्रियाल वृक्ष

पीलुः (मदतिलकितकपोल पीलुकुलमिव ४६१।८) । गज

पुटकिनी (पुटकिनीपुटपटलान्तरगम्, २०७।५ उत्त०) कमलिनी

पुण्यजन (पुण्यजनावासमिवाप्यराक्षसभावम्, ३४४।५) यम, सज्जन व्यक्ति

पुण्ड्रेक्षु (पुण्ड्रेक्षुकाण्डमडपसपादनीभि, १०३।२) पौंडा, गन्ना सफेद मोटे गन्ने को अभी भी पौंडा, कहा जाता है।

पुलाक (३८६।७) हाथी को खिलाई जाने वाली रोटी।

पुरुदंश (पुरुदंशोनिशाखरनखर, ४८।६) : बिलाव, बिल्ली। इसका प्रयोग सोमदेव ने एक से अधिक बार किया है (पुरुदशोदर्शनप्रकाशकेश, १६१।४)।

पुरधूर्त (मुग्धेषु पुरधूर्तवत्, ४२३।९) : शृगाल

पुष्पधय (गलन्तीषु पुष्पधयेषु वृतिषु, ६८।२) भ्रमर

पुष्पदन्तम् (अपहसितपुष्पदन्त कुवलयकमलावबोधनाद्देव, ३२८।३) चन्द्रसूर्य

पुष्पशरः (१६०।७) : कामदेव

पुष्पास्त्र (१२४।९) कामदेव

पूतनम् (अराक्षसक्षेत्रमपि सपूतनम्, १९६।३ उत्त०) : राक्षसी

पूतिपुष्पफलम् (पूतिपुष्पफलदुष्टदशाविदानीं वक्षोरुहौ, १२४।५) कपित्थ, कैंथ

पूषन् (द्यौ पूष्णा भोगिलोको, २३१।४) सूर्य

पोगण्ड (पोगण्डचाण्डालादिकादृशोक, ३३२।२) विकलांग

पौत्री (पौत्री च मुस्ताशन, ६१।४) : जगली सुअर

पोताधानम् (कमलमूलनिलीयमानपोताधानम्, २०८।६ उत्त०) छोटी मछली

पौरोगव. (समस्तसूपशास्त्राधिगमपाटवाय पौरोगवाय, २२२।४ उत्त०) रसोइया

फेलाभुक् (फेलाभुक् प्रतिकूल, ५११।३) : जूठनखोर, एक अन्य प्रसंग में फेला को जूठन कहा है (१२८।४)।

बभ्रु. (बभ्रु शिखण्डतनयश्च भवेत्प्रहृष्ट, ५११।१०) नकुल

बस्तः (१८४।५ उत्त०) बकरा

बृहती (१९५।२ उत्त०) क्षुद्र वार्ताक

बृहद्भानु (५८।१) अग्नि

ब्रध्न (ब्रध्नदीधितिप्रबन्धाभि, ४५।६) सूर्य

ब्रह्मचारिन् (अप्रथमाश्रममपि ब्रह्मचारिबहुलम्, १९६।१ उत्त०) पलाश, पलाश के लिए केवल ब्रह्मतरु का भी सोमदेव ने उपयोग किया है (३।२, २०१।८ उत्त०)।

बकोट : (अवाचाटबकोटचेष्टितचकित, २०८।५ उत्त०) बक, बगुला

बालधि. (बालधिषु च नियुक्तयमदण्डैरिव, २९।१) पूछ

भण्डनम् (भण्डनोद्भटरटद्गलान्तरैः, ११५।४, स्वकुलभण्डनाद्भीतम्, ११५।७) युद्ध, झगडा

भण्डिल : (सोऽपि भण्डिल १९१।५) कुत्ता

भल्लूक (हरिणप्रयाणभयभीत–भल्लूकनिकरम् १९८।४ उत्त०) श्रुतसागर ने इसका अर्थ शृगाल किया है। देशी भाषा में भालू, रीछ को कहते है।

भविल (भविल इव नादत्ते दारव पाद-परित्राणम्, ४०८।१) महामुनि
भ्रमणिका (राजाध भ्रमणिकाया गतस्तरुमूल, १०१।९ उत्त०) वाटिका, श्रुतसागर ने इसका अर्थ वनक्रीडा किया है। मुद्रित प्रति का भ्रमणिकाया पाठ अशुद्ध है।
भृशायमान (५३।३ उत्त०) तेज गतिशील
भाय (४२६।८) बहनोई
भोजप्रबन्ध तथा मो० वि० में भी यह शब्द आया है।
भुजिष्या (सरस्वती विनोदभुजिष्येव, २२३।७) गणिका
भूदेव (८८।९ उत्त०) ब्राह्मण
भोगीन्द्र (५०४।८) शेषनाग
मकर (उन्मत्तमकरकरास्फालनोत्ताल-लहरिका, २०९।१ उत्त०) जलगज
मठ (मठस्थानमिदं नैव, ३८३।८) छात्रालय
मण्डल (१२।५) कुत्ता
मण्डलव्यूह (दण्डासहतभोगमण्डल विधीन्, ३०४।५) मण्डलाकार व्यूह-रचना
मण्डूकी (१५३।६ उत्त०) मेंढकी
मध्यस्थ (त्रिविष्टपव्यापारपरायणा-वस्थे मध्यस्थे, २५०।३) यम
मधुक (मधुकलोकविहितमंगलानि, २२८।१) वन्दिजन, स्तुतिपाठक
मन्द (स्त्रीवृन्दमिव मन्दस्य, ७।२) नपुंसक
मन्द (९५।६) शनिश्चर नामक गृह
मन्दीरम् (पुराणतरमन्दीरमेखलालकृत-३९८।६) मथानी की रस्सी
मनीषा (गुणेषु ये दोषमनीष-यान्धा, १।१) बुद्धि
मय (मिषमहिषमयमातंग, १४४।१, मयमुक्तस्फीतफेन, ५२४।३) ऊँट
मयु (मयुमिथुनसंगीतकानन्दिनि, २३०।२) किन्नर, गन्धर्व
मराल० (मरालकुलकामिनी, २०७।४ उत्त०) हंस
मराली (२४९।४) हंसी
मरिच (गुडपिप्पलिमधुमरिचैः, ५१२।१०) मिर्च
मल्लिकाक्ष (अनेकमल्लिकाक्षकुटु-म्बिनी, २०८।२ उत्त०) हंसविशेष
महामण्डल (महामण्डलावगुण्ठितगल-नाल, ३०९।३) सर्प विशेष
महीन (यस्येत्थ तव महिमा महीन) पृथ्वीपति, राजा। मही-पृथ्वी उसका इन —स्वामी महीन।
मृगदंश (१८६।५ उत्त०) कुत्ता
मृगधूर्त (परव्यसनान्वेषणाय मृगधूर्त-स्येव मन्दमन्दप्रचार, ४३९।८) सियार
मृगादनी (वल्लयोऽपि मृगादनीप्राय, २००।७ उत्त०) एक प्रकार की लता
मृषोद्यम् (७२।१) असत्य वचन
माकन्द (माकन्दमंजरीहृदयगम, २१३।१, माकन्दमंजरीव पुण्याकरस्य, २२३।३) आम्र
मागधी (रघुवंशमिव मागधीप्रभवम्, १९४।३ उत्त०) पिप्पली

मार्गायुक (निसर्गान्मार्गायुकक्रमश्च, १८६।७ उत्त०). मृगया कुशल, शिकार करने में चतुर।

मार्जनीयदेश. (समाश्रित्य मार्जनीय देशमाचरितोपस्पर्शन, ३२३।५) हाथ-पैर धोने का स्थान

मातृनन्दन: (अमहानवमीदिनमपि समातृनन्दनम्, १९७।१ उत्त०) करज वृक्ष

मातरिश्व: (विनीयमानात्मनि मातरिश्वनि, २५०।५) वायु

माम (भायसमोऽपि च माम, ४२६। ८) श्रुतसागर ने इसका अर्थ मामा, श्वसुर किया है। माँ के भाई को व्यवहार में मामा कहा जाता है।

मायाकार' (स्वपरजनपरीक्षणमायाकार मायाकार, १९२।७ उत्त०) प्रतिहार

मालूरम् (अवालमालूरमूलक, ४०५।१) विल्व

माप (भुजीत मापसूपम्, ५१२।११) उडद

माहेयी (माहेयीदोहव्याहाराहूयमान १८५।६ उत्त०) जिस गाय को दुहते समय घर्र-घर्र की आवाज होती है।

मिण्ठ (स्थानायानेतुमीशा पयसिकृतरतीन् हस्तिनो नैव मिण्ठा ७०।२) गजपरिचारको का मुखिया, जो गजो को नहलाने धुलाने आदि का काम करता था। बाण ने भी मेण्ठ का उल्लेख किया है (हर्ष० २०६)। हिन्दी में मेठ शब्द मजदूरी करने वालो के नायक के लिए प्रयुक्त होता है। यहाँ भी सभवतया छोटे गज-परिचारकों के मुखिया जमादार के लिए मेण्ठ आया है।

मुण्डिका (एरण्डफलपलाण्डुमुण्डिकाडम्बरम्, ४०५।५) शाक विशेष

मितद्रुव (मितद्रवखुरक्षोभित '४६५। १) अश्व, सोमदेव ने मितन्द्रु और मितन्द्रव दो शब्दो का प्रयोग किया है (१४४।१)।

मितपच (मितपचानामग्रेसर, ४०३। ७) कृपण, कजूस

मिहिर (दृष्ट्वेम मिहिर जगत्प्रियकरम्, ५४४।६) मेघ

मेघराव (वर्षारात्रमिव घनमेघरावम्, १९४।२ उत्त०) मयूर, मेघो को देखकर मयूर बोलता है। इसलिए भाव के आधार पर मयूर को मेघराव कहा है।

मैथुनिक (मैथुनिक सवरकस्यास्तरकस्य ४०३।५) श्याला, साला पत्नी का भाई। मराठी में साला को 'मेहुनिया' कहा जाता है।

मोदकम् (मोदकमन्दमठिकावलोकनात् ८८।५ उत्त०) लड्डू

मुग्धमति (प्रतार्यते मुग्धमतिर्न केन, १४।७ उत्त०) मन्द बुद्धि

मुनिजन (काननश्रीरिव सत्वरप्रचुरा मुनिजनगोचरा च, २०६।४ उत्त०) तापस पक्षी

मूकक (कोलाहलावलोकमूकमूकक-लोकम्, २०८।७ उत्त०) मडूक, मेंढक

मूर्छन्ति (२०।२) निकलना, प्रकट होना के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है।

मूढधीश्वर (९।९) : समीक्षक

मुर्मुर (विनिर्मितमुर्मुरोपहारास्विव, ६५।१) . अगार

मूलक (मालूरमूलकचक्रकोपक्रमम्, ४०५।१, भुञ्जीतमापसूप मूलक सहित न जातु हितकाम, ५१२।११) मूली

मूषा (विताप्यमानमूषाशुषिरेष्विव, ६५।३) श्रुतसागर ने इसका अर्थ स्वर्ण गलाने वाली घरी किया है। वैसे यहाँ चूहा अर्थ भी सगत बैठ जाता है।

मौकुलि (सतत धवलमौकुलिनाद, २२९।६) कौआ

यक्षकर्दमम् (२८।२ उत्त०) ककोल, अगरु, कर्पूर, कस्तूरी को मिलाकर बनायी गयी सुगन्धी। इसे चतु सम सुगन्धी भी कहते हैं।

यजत्रम्(निर्वर्तितयजत्रकर्मभि, १८५।३ हि०) हवन करना

यन्त्रधारागृहम् (३९।१० हि०) स्नानगृह

यवागू (८८।९ उत्त०) लप्सी

यष्टि (३०१।७) लाठी

यागनाग (२८८।७) पट्टहस्ति, गजशास्त्र में इसके विशेष गुणों का वर्णन है। सोमदेव ने भी अन्यत्र गज प्रसग में उनका विवरण दिया है।

याद (५२३।५) जलजन्तु

यायजूकः (३२।३) हवन करनेवाला

यावक (५६।३ हि०) अलक्तक

यावनाल (२५६।५ हि०) जुवार

याष्टीकः (२१४।३ हि०) प्रहरी

रजनिः(रजनिरसश्चूर्णरजसीव, ४२२।७) हल्दी

रतिचतुरः (रतिचतुरविकरनखमुखाव-लिख्यमान, ३५।६) कबूतर

रक्ततुण्डः (१९८।१ उत्त०) तोता

रक्ताक्षः (१८५।२ उत्त०) भैसा

रदिन् (मदनरदिमदोद्दीपनपिण्डे, १५।१ उत्त०) हस्ती, रदिन् का कई बार प्रयोग हुआ है।

रल्लकः (२००।५ उत्त०) रल्लक नामक जगली बकरा। इसके ऊन से बना वस्त्र रल्लिका कहलाता था। सोमदेव ने रल्लिका का भी उल्लेख किया है। कोश ग्रन्थो में रल्लक को एक प्रकार का मृग कहा गया है।

रल्लिका (३६८।२) रल्लक नामक जगली बकरे के ऊन से बना वस्त्र।

रसवतीगृहम् (तस्मिन्नेव रसवतीगृहे सकलरसप्रसाधन , २२२।६ उत्त०) रसोई घर

रंकु (२००।३) एक प्रकार का मृग (नैप० २।८३)।

राजिका (४०६।१) राई।

रावणशाक (९८।७ उत्त०) मास

रिंगिणीफलम् (२५७।२ हि०) भट-कटैया, कटकारी

रुरु (२००।४) मृग विशेष

रेरिहाणः (रेरिहाणनिवहविहार इव, ६०५।७) • महिष, भैंसा
रोद (२०।५) • आकाश
लगुडम् (२१६।७ उत्त०) लकुटदण्ड, लट्ठ
लक्ष्मण (२०६।५ उत्त०) लक्ष्मण (राम का छोटा भाई), सारस पक्षी
लतान्तम् (९७।१) फूल
लटह (११३।७) सुन्दर
लटहगति (१५।४) • ललित गमन
लयनम् (१३४।१) • श्रुतसागर ने अर्थ शिलोत्कीर्ण गृह किया है। यहाँ गुफा से तात्पर्य है।
लम्बस्तनीकम् (१९७।२ उत्त०) चिंचावृक्ष
लक्ष्मी (१९५।१ उत्त०) लक्ष्मी, भर-द्भृंगी नामक औषध
लंजिका (४१७।५) • वेश्या
लांगली (३।३ उत्त०) जल पिप्पली
।टिकः (१६४।५) नौकर
लुलायः (५२३।६) महिष, भैंसा
लूता (२६३।१०) मकडी
लेखपत्रम् (१९७।२ उत्त०) ताडपत्र
लेसिक (४५।३ उत्त०) लेसिक नामक गज-परिचारक, जो हाथियों को तेल लगाने आदि का काम करता था। बाण ने हर्षचरित में लेसिक परि-चारकों का उल्लेख किया है।
लोम (प्रकामायामलोमचूडैर्गणै, ४६६।५) केश, बाल
लोमचूड• (४६६।५) मुर्गा
लोहल (विविधवाद्योद्धुरध्वानलोहले, २४७।६) • व्याप्त
व्यजन (२०५।६) पंखा
व्याघ्री (२००।७ उत्त०) लता विशेष
व्याली (५१।३ उत्त०) • दुष्ट हथिनी
व्योमकेश (२१।२) शिव
वत्सलम् (४०२।६, ५०८।८) भोजन
वर्धमानम् (१९६।२ उत्त०) एरंड वृक्ष
वनीपक (१८।२) स्तुतिपाठक
वनेजम् (२४३।४) कमल, पानी का एक नाम 'वन' भी है। वन में उत्पन्न होने के कारण इसे 'वनेज' कहा है।
वप्र (४३।३) पिता, बीज डालने वाला। सभवतया 'बाप' इसी से बना है।
वर्वरक (१८४।५ उत्त०) • शिशु
वर्षधर (१३३।३) नपुंसक
वराह (१९८।७ उत्त०) सुअर
वराहवैरी (१८८।३ उत्त०) कुत्ता
वल्लक (उच्छूनोद्वेल्लितवल्लकरालक, ४०५।५) • कच्चा
वल्लवी (१९८।५) गोपी
वल्ली (२००।७ उत्त०) लता
वल्लूरम् (स्ववपुर्लूनवल्लूरम्, ४९।५) मास
वलाल• (बल वलाल, २१९।२) • वायु पृ० १९९।७ उत्त० में भी इसका प्रयोग हुआ है।
वलीकम् (तुहिनतरुविनिर्मितवलीकान्त-रमुवत्र •, २९।२ उत्त०) श्रुतसागर ने इसका अर्थ पट्टिका किया है। सभव-

मूलक । (कोलाहलावलोकमूकमूकक-लोकम्, २०८।७ उत्त०) मडूक, मेंढक

मूर्छन्ति (२०।२) निकलना, प्रकट होना के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है।

मूढधीश्वर (९।९) . समीक्षक

मुर्मुर (विनिर्मितमुर्मुरोपहारास्विव, ६५।१) . अगार

मूलक (मालूरमूलकचक्रकोपक्रमम्, ४०५।१, भुजीतमाषसूप मूलक सहित न जातु हितकाम, ५१२।११) मूली

मूषा (विताप्यमानमूषाशुषिरेष्विव, ६५।३) . श्रुतसागर ने इसका अर्थ स्वर्ण गलाने वाली घरी किया है। वैसे यहाँ चूहा अर्थ भी सगत बैठ जाता है।

मौकुलि (सतत धवलमौकुलिनाद, २२९।६) कौआ

यक्षकर्दमम् (२८।२ उत्त०) ककोल, अगरु, कर्पूर, कस्तूरी को मिलाकर बनायी गयी सुगन्धी। इसे चतु सम सुगन्धी भी कहते हैं।

यजत्रम्(निर्वर्तितयजत्रकर्मभि, १८५।३ हि०) हवन करना

यन्त्रधारागृहम् (३९।१० हि०) स्नानगृह

यवागूः (८८।९ उत्त०) रप्सी

यष्टि (३०१।७) लाठी

यागनाग' (२८८।७) पट्टहस्ति, गजशास्त्र में इसके विशेष गुणो का वर्णन है। सोमदेव ने भी अन्यत्र गज प्रसग में उनका विवरण दिया है।

याद' (५२३।५) जलजन्तु

यायजूकः (३२।३) हवन करनेवाला

यावक (५६।३ हि०) अलक्तक

यावनाल (२५६।५ हि०) जुवार

याष्टीकः (२१४।३ हि०) प्रहरी

रजनिः(रजनिरसश्चूर्णरजसीव, ४२२।७) हल्दी

रतिचतुरः (रतिचतुरविकरनखमुखाव-लिख्यमान, ३५।६) कबूतर

रक्ततुण्डः (१९८।१ उत्त०) तोता

रक्ताक्ष. (१८५।२ उत्त०) भैंसा

रदिन् (मदनरदिमदोद्दीपनपिण्डे, १५।१ उत्त०) हस्ती, रदिन् का कई बार प्रयोग हुआ है।

रल्लकः (२००।५ उत्त०) रल्लक नामक जगली बकरा। इसके ऊन से बना वस्त्र रल्लिका कहलाता था। सोमदेव ने रल्लिका का भी उल्लेख किया है। कोश ग्रथो में रल्लक को एक प्रकार का मृग कहा गया है।

रल्लिका (३६८।२) रल्लक नामक जगली बकरे के ऊन से बना वस्त्र।

रसवतीगृहम् (तस्मिन्नेव रसवतीगृहे सकलरसप्रसाधन ,२२२।६ उत्त०)· रसोई घर

रंकु' (२००।३) एक प्रकार का मृग (नैप० २।८३)।

राजिका (४०६।१) राई।

रावणशाक (९८।७ उत्त०) माष

रिंगिणीफलम् (२५७।२ हि०) भट-कटैया, कटकारी

रुरु (२००।४) मृग विशेष

रेरिहाण. (रेरिहाणनिवहविहार इव, ६०५।७) महिष, भैंसा
रोद' (२०।५) आकाश
लगुडम् (२१६।७ उत्त०) लकुटदण्ड, लट्ठ
लक्ष्मण (२०६।५ उत्त०) लक्ष्मण (राम का छोटा भाई), सारस पक्षी
लतान्तम् (९७।१) फूल
लटह (११३।७) सुन्दर
लटहगति (१५।४) ललित गमन
लयनम् (१३४।१) श्रुतसागर ने अर्थ शिलोत्कीर्ण गृह किया है। यहाँ गुफा से तात्पर्य है।
लम्बस्तनीकम् (१९७।२ उत्त०) चिचावृक्ष
लक्ष्मी (१९५।१ उत्त०) लक्ष्मी, भरङ्गी नामक औषध
लञ्जिका (४१७।५) वेश्या
लांगली (३।३ उत्त०) जल पिप्पली
।टिकः (१६४।५) नौकर
लुलायः (५२३।६) महिष, भैंसा
लूता (२६३।१०) मकडी
लेखपत्रम् (१९७।२ उत्त०) ताडपत्र
लेसिक (४५।३ उत्त०) लेसिक नामक गज-परिचारक, जो हाथियों को तेल लगाने आदि का काम करता था। बाण ने हर्षचरित में लेसिक परिचारकों का उल्लेख किया है।
लोम (प्रकामायामलोमचूडैर्गणै, ४६६।५) केश, बाल
लोमचूड़ (४६६।५) मुर्गा
लोहल (विविधवाद्योद्धुरध्वानलोहले, २४७।६) व्याप्त
व्यजन (२०५।६) पखा
व्याघ्री (२००।७ उत्त०) लता विशेष
व्याली (५१।३ उत्त०) दुष्ट हथिनी
व्योमकेश (२१।२) शिव
वत्सलम् (४०२।६, ५०८।८) भोजन
वर्धमानम् (१९६।२ उत्त०) एरड वृक्ष
वनीपक (१८।२) स्तुतिपाठक
वनेजम् (२४३।४) कमल, पानी का एक नाम 'वन' भी है। वन में उत्पन्न होने के कारण इसे 'वनेज' कहा है।
वप्त (४३।३) पिता, बीज डालने वाला। सभवतया 'वाप' इसी से बना है।
वर्वरक (१८४।५ उत्त०) शिशु
वर्षधर (१३३।३) नपुसक
वराह (१९८।७ उत्त०) सुअर
वराहवैरी (१८८।३ उत्त०) कुत्ता
वल्लक (उच्छूनोद्वेल्लितवल्लकरालक, ४०५।५) कच्चा
वल्लवी (१९८।५) गोपी
वल्ली (२००।७ उत्त०) लता
वल्लूरम् (स्ववपुर्लूनवल्लूरम्, ४९।५) मास
वलाल: (बल वलाल, २१९।२) : वायु, पृ० १९९।७ उत्त० में भी इसका प्रयोग हुआ है।
वलीकम् (तुहिनतरुविनिर्मितवलीकान्तरमुक्त , २९।२ उत्त०) श्रुतसागर ने इसका अर्थ पट्टिका किया है। सभव-

तया उनका अभिप्राय खूटी से है।

वष्कयणी (१८५।४ उत्त०) बहुत दिन की व्याई गाय, 'बकेन' या 'ठोकरी गाय' देशी भाषा में कहते हैं।

वशा (वशया वनगज इव, २७९ उत्त०) हस्तिनी

वसा (१८६।२ उत्त०) वन्ध्या गाय

वहित्रम् (३८८।८) : नौका

वृक (२१९।१) बकरा

वृन्ताकम् (५१६।७) बैंगन

वृष्णिका (१८४।६ उत्त०) : बूढी गाय

वृषः (२०४।२ उत्त०) मूसा या चूहा

वागुरा (२५३।२) : जाल, बांधने का जाल

वाजिः (१८६।३ उत्त०) अश्व

वाजिन् (३०८।५) . बाज पक्षी

वार्ताकम् (४०५।४) बैंगन

वातूल (४६।६) वायु, अंधड

वाध्री (१२२।४) चमडे की रस्सी

वान्तादः (१८८।४ उत्त०) कुत्ता

वानर (१९९।४ उत्त०) बन्दर

वामना (१९६।२ उत्त०) हथिनी

वामनम् (१९६।२ उत्त०) मदन वृक्ष

वामलूरः (२०४।४ उत्त०) वल्मीक, साप की बांमी

वारवनिता (४१।३) वेश्या, चकवी

वारला (२४३।४, २०९।५ उत्त०) - हंसिनी, कोशों में वरटा शब्द आता है।

वारस्त्री (३२३।३) वेश्या

वाली (सैकतोल्लोलवालीविहारवाचाल-वारलम्, २०९।५ उत्त०) लहर, तरग

वालेयक. (१८६।२ उत्त०) गधा

वास्तुल (वास्तुलस्तण्डुलीय ,५१६।७) वास्तुल शाक, सभवतया जिसे आज-कल 'बथुआ' कहते है।

वासनेयी (४६।२ उत्त०) रात्रि

वासवः (३१५।७) मेघ

वाहरिका (वीरणप्रोहवत्पर्यस्त-वाहरिकं, ३०।५) हाथी बांधने का खूंटा। श्रीदेव ने हाथी के पीछे के पैर को बांधने वाला खूंटा अर्थ किया है। देशी भाषा मे इसे 'पिछाडी' कहते हैं।

वाहा (१९२।१) - भुजा, बांह

विकर्तन. (७१।१०) सूर्य

विकृत. (४८६।१) रोगी

विकिर (५८ ८) पक्षी

विचकिल (५२८।५, ५३२।३) मोगरा पुष्प

विजया (१९४।४) हरड नामक औषधि

वितर्दिका (९९ ४) वेदिका, कोशों में वितर्दि का प्रयोग आया है। महा-वीरचरित में वितर्दिका भी आया है (६।२४)।

विधि (२०।४) नर्तन – नाचना

विनियोगः (१६१।७ उत्त०) अधि-कार, राजाज्ञा

विनेय (७२।४ उत्त०) शिष्य, विद्यार्थी

विटंकः (२०।१, ५९८।७). श्रुतसागर ने इसका अर्थ एक स्थान पर पक्षियों को बैठने के लिए बाहर निकाले गये मलगे तथा दूसरे स्थान पर वरण्डक किया है।

विरसाल. (४०४।५) राजमाष, उडद की एक जाति

विरेय' (६८।१) तालाब, पोखरा शब्दार्थ चिन्तामणि में नदी के लिए विरेफ शब्द आया है।

विरोचन' (५२।२, ६५।२) सूर्य, अग्नि

विलात' (१९८।६ उत्त०) भील

विलेशय (बालविलेशयवेष्टितत्रिटप-भागम् ४६२।३) सर्प

विश्वकद्रु (११५।५) कुत्ता, सोमदेव ने इसका कई बार प्रयोग किया है। श्रुतसागर ने इसका अर्थ शिकार करने में कुशल कुत्ता किया है। अभिधान चिन्तामणि में भी विश्वकद्रु का यही अर्थ किया गया है (४।३४७)।

विश्वद्युति (१५५।१) सूर्य

विशसनम् (२८।६) हिंसा, पशुवध

विष्टि (४२७।४) बेगार लेना, बिना मूल्य दिये मजदूरी कराना।

विष्वद्रीचि' (६५।१) सर्वत्र, ससार भर में

विष्वाणम् (१३४।६) भिक्षा द्वारा भोजन, भोजन (शब्दरत्नाकर ३।६३)

वीरण (३९०।२) वश, बाँस (महा० १।१३।१७)

वीरुध (२००।७ उत्त०) लता-विशेष

वेडिका (२१७।१ उत्त०): छोटी नाव

वेताल (२१।७): भूताविष्ट मृतक शरीर

वेदण्ड (२९१।५) हाथी

वेल्लिकः (१९८।६ उत्त०). बालक, सोमदेव ने भीलों के बालकों को 'विलात वेल्लिका' कहा है।

वेलावनम् (२२१।४) समुद्रतट के बगीचे

वेसर (१८६।३ उत्त०) श्रुतसागर ने इसका अर्थ द्विशरीर किया है।

वेहा (१८६।२) गर्भ गिर गयी गाय को 'वेहा' कहते है।

वैकक्ष्यम् (२४।६ उत्त०) दुपट्टा, ओढने का चादर

वैकक्षकः (३९६।५) दुपट्टा, ओढने का चादर

वैवस्वत (२१६।६ उत्त०) यम (रामा, १५।४५)

वैशिकम् (२६।१ उत्त०) माया, छल

श्वेतपिंगलः (१८६।७ उत्त०) सिंह

श्यामाक (४०६।४) साँवाँ (शाकु०-४।१३)।

शकुल (४४०।७) मत्स्य, मछली सोमदेव ने इसके शकुल और शकुलि दो रूपों का प्रयोग किया है (२४७।१ उत्त०)।

शतमख (३६४।५) इन्द्र (कुमार०-२।६४, रघु० ९।१३)।

शर्करिल (५२।९ उत्त०) रेतीला प्रदेश

शरमासुत (१८७'८ उत्त०) कुत्ता

शष्कुलि (५१२।९) कचोडी

शल्लक (२००।४ उत्त०) सेही नामक जगली पशु। इसके सारे शरीर में बडे बडे काटे होते है।

शम्भली (१८८।७ उत्त०) दासी

शभुः (३४६।२) सुख देने वाला

शसितव्रत. (४०८।६) श्रुतसागर ने इसका अर्थ दिगम्बर किया है। मनुस्मृति (१।१०४) में लिखा है कि उसका अध्ययन करने वाला ब्राह्मण कहलाता है।

शिखामणीयमान (४५४।२) शिर के मणि को तरह होता हुआ।

शिपिविष्टः (सहाराविष्ट शिपिविष्ट इव, १४७।४) महादेव

शिवप्रिय (१९५।५ उत्त०) धतूरा वृक्ष

शिशुमार (२१४।६ उत्त०) मगर (महा० १।८५।१६)।

शुचि (४०८।३) अग्नि

शुनीसूनुः (१९०।८।उत्त०) कुत्ता

शूर्पकाराति (४१।४) कामदेव, कामदेव के लिए शूर्पकाराति शब्द कुषाण युग में प्रचलित हो गया था। बुद्धचरित तथा सौन्दरानन्द में शूर्पक नामक मछुये की कहानी का उल्लेख है। वह पहले काम से अविजित था पर बाद में कुमुद्वती नामक राजकुमारी की प्रार्थना पर कामदेव ने अपने वश में करके राजकुमारी को सौंप दिया।

शेषा (शेषाया तन्दुला करे, ४१६।८) आशीर्वाद

श्रायसम् (७०।५ उत्त०) कल्याणप्रद (पाणिनि)

श्रीफल (४५९।४) : बिल्व वृक्ष

स्तभः (१५०।७) बकरा

स्थानम् (७०।२) गजशाला

सकुटीः (सकुटीच्छुटिता घोटिकेव, ५३।३ उत्त०) अश्वशाला

सत्रम् (१९९।५) दानशाला

समय (५२।२) शास्त्र

समर्थस्थानम् (१९५।२ उत्त०). आश्रम

समासमीना (१८६।१) प्रतिवर्ष ब्याने वाली गाय।

सर्वंकप (१४२।६). यम

सलिलतूलिका (५२९।५) जलशय्या, पानी के बीच में बनाया गया शयनस्थान।

सवनगृहम् (५०७।४) स्नानघर

सधिनी (१८६।२) गर्भिणी होने के बाद वृषभाक्रान्त गो।

संवर (२०६।४ उत्त०) मृग वृक्ष

सवाहकः (४०३।५) तेल मालिश करनेवाला।

संस्थपति (२८९।१) वास्तु-विद्या विशेषज्ञ

सस्थित (१५०।६) मृत

ससर्गविद्या (२०२।३) श्रुतसागर ने इसका अर्थ भरतशास्त्र किया है।

संस्कृत कोषों में (मो० वि०) समाज विज्ञान अर्थ दिया है।

सागर (३४९।२) अश्व

सामज (४८५।५) गज, सोमदेव ने गज के लिए सामज शब्द का प्रयोग कई बार किया है।

सावित्र (४६६।१) सूर्य

सारणी (५२५।३) कृत्रिम नदी, नहर

सारसनम् (१५०।६) करधनी

सारंग (३४९।३) गज

सालूर (१४४।२) मेंढक

सिचय (१९।१) : वस्त्र

सिताम्बुजम् (२११।९) सफेद कमल

सिद्धार्थक (२२।९) : पीला सरसों

सिद्धादेशः (२।१०) सिद्ध पुरुष का कथन

सिद्धायः (४२७।४) कर

सिन्धुरद्विपः (५२४।१) सिंह

सुदर्शना (१९४।५ उत्त०) इस नाम की औषधि

सुवर्णः (५३।३) स्वर्ण, राजकुल

सुव्रता (१८६।२ उत्त०) सहज दुहने वाली गाय।

सुविदत्रम् (सुविदत्रवस्तुन्यस्तहस्ते, ३२४।५) मांगलिक वस्तु

सुधा (३५२।८). जल

सूतिकासद्म (२२६।७) प्रसूति गृह

सुरवारणः (२४५।८ उत्त०) : ऐरावत हाथी

सुरसुरभिः (१८५।८ उत्त०) : कामधेनु

सूनाकृत (सूनाकृतो गृहमुपेत्य ससारमेयम्, ४१५।७) श्रुतसागर ने इसका अर्थ खाटकिन् किया है। आजकल खटीक कहते हैं।

सोभाजन (४०५।४). सहजन वृक्ष

सोमम् (१९६।३ उत्त०) हरीतिकी नामक औषधि, हरड़

सौखशायनिकः (३६६।५) सुख शयन की बात पूछने वाला।

सौरभेय (६८।२) बैल

सौवस्तिक. (४५२।१०) पुरोहित

हरिणः (१८२।३). स्वर्ग

हरितवाहवाहनः (८५।१) : सूर्य

हरिहस्तिन् (१२।५ उत्त०) ऐरावत (इन्द्र का हाथी)

हल्लः (सोल्लासहल्लानना, २२७।३) आशीर्वाद देने वाला

हलम् (१३।४) मित्र, हल

हलम् (२९६।५) पैरों की अँगुलियाँ

हंसायित (१२८।७) हंस के समान आचरण

हिंजीरकम् (६१७।१०). नूपुर

चित्र फल

फलक १

१ कचुक

३ चोलक (ख)

२ चोलक (क)

४ चण्डातक (क)

५ चण्डातक (ख)

फलक ९
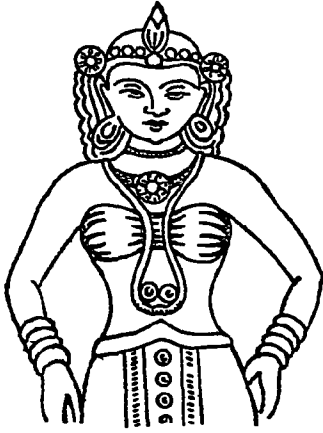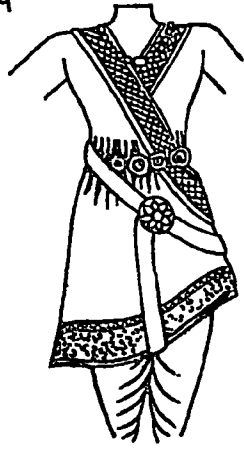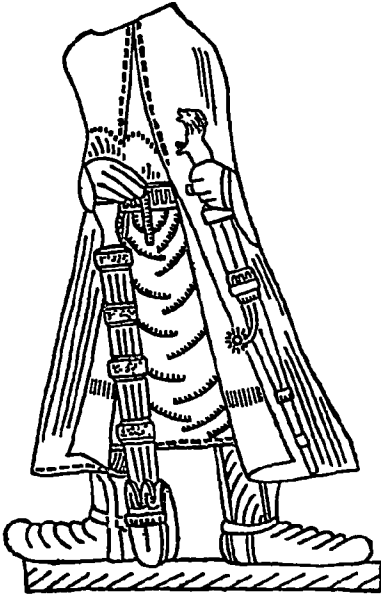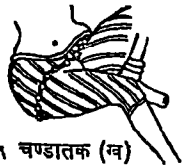
चित्र सख्या

१ कचुक (पृ० १३१) कचुक या चोली पहने श्रीकठ जनपद (थानेश्वर) की
स्त्री । (अहिच्छत्रा के खिलौने, सख्या ३०७)

२ चोलक (क) (पृ० १३३) मथुरा से प्राप्त कनिष्क की मूर्ति में खुले गले का
चोलक ।

३ चोलक (ख) (पृ० १३३) मथुरा से प्राप्त चष्टन की मूर्ति में तिकोनिया
गले का चोलक ।

४ चण्डातक (क) (पृ० १३४) चण्डातक पहने चामरधारणी परिचारिका
(औंध कृत अजन्ता फलक ७३)

५ चण्डातक (ख) (पृ० १३४) चण्डातक पहने लक्ष्मी । (अमरावती स्कल्पचर्स,
फलक ४, चित्र २९)

फलक १
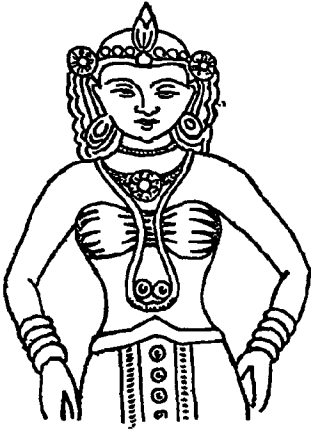
१ कचुक

३ चोलक (ख)
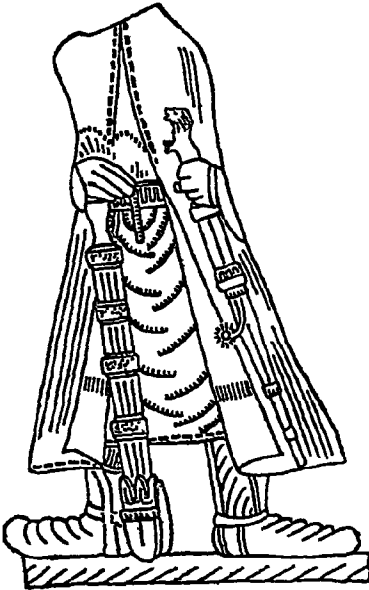
२ चोलक (क)

४ चण्डातक (क)
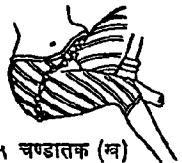
५ चण्डातक (ख)

फलक २

चित्र सख्या

७ उष्णीप (पृ० १३५) भरहुत, सांची तथा अमरावती की कला में अकित विभिन्न प्रकार के उष्णीप (क से घ तक)। (अमरावती० फलक ७)

७ पट्टिका (पृ० १३५) मस्तक पर अशुक नामक रेशमी वस्त्र की उष्णीप पट्टिका। (अजन्ता फलक २८)

८ कौपीन (पृ० १३५) कोपीन पहने तापस। (अमरावती० फलक ९, चित्र १)

९ चीवर (पृ० १३६) चीवर पहने वौद्ध भिक्षु। (वही, चित्र १४)

१० उत्तरीय (पृ० १३५) तरगित उत्तरीय। (देवगढ गुप्तकालीन मदिर की मूर्ति से)
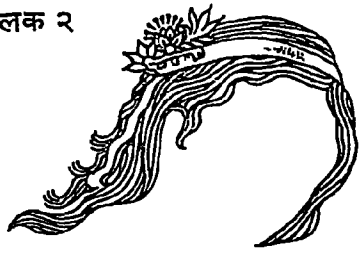
फलक २
६ उष्णीप (क)
७ पट्टिका
(ख)
८ कौपीन
९ चीवर
(ग)
(घ)
१० उत्तरीय

फलक ३

चित्र सख्या

११ किरीट (पृ० १४०) किरीट धारण किये इन्द्र। (अमरावती० फलक ७, चित्र ८)

१२ मुकुट (पृ० १४१) अजन्ता गुफा १ में वज्रपाणि। बोधिसत्त्व के चित्र में अकित मुकुट। (अजन्ता, फलक ७८)

१३ अवतस (पृ० १४१) नीले कमल का बना अवतस। (अमरावती० फलक ८, चित्र २०)

१४ कर्णिका (पृ० १४३) पुष्प की पखुडियो को ऊपर की ओर मोडकर बनाये गये अवतस। (वही, फलक ७, चित्र १८)

१५ कर्णपूर (पृ०१४२) पत्राकुर का कर्णपूर। (अजन्ता फलक ३३)

१६ कर्णोत्पल (पृ०१४३) खुली पखुडियो वाला कर्णोत्पल। (वही)

१७ कुण्डल (पृ० १४४) गोल आकार का कुण्डल। (वही), दोहरी लडी तथा वाली युक्त कुण्डल। (चित्र १५)

१८ एकावली (पृ० १४४) अजन्ता गुफा १ में वज्रपाणि बोधिसत्त्व के चित्र में मध्यमणि से युक्त एकावली। (वही, फलक ७८)

१९ कठिका (पृ० १४६) गले में कण्ठी पहने लक्ष्मी। (अमरावती० फलक ४, चित्र २९)

फलक ३

११ किरीट

१२ मुकुट

१३ अवतंस

१४ कर्णिका

१५ कर्णपूर

१६ कर्णोत्पल

१७ कुण्डल
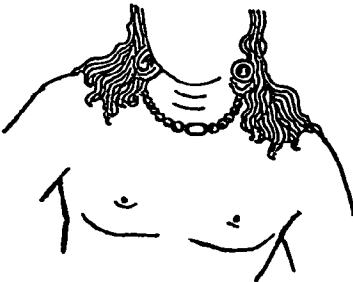
१८ एकावली

१९ कण्ठिका

फलक ४

चित्र सख्या

२० हार (पृ० १४६) वज्रपाणि बोधिसत्त्व के चित्र में अंकित हार। (अजन्ता फलक ७८)

२१ हारयष्टि (पृ० १४६) हारयष्टि या इकहरी माला। (अमरावती० फलक ८, चित्र ६)

२२ अगद और केयूर (पृ० १४७) अगद और केयूर नामक भुजा के आभूषण। वही, चित्र ७-८)

२३ ककण (पृ० १४७) ककण नामक कलाई का आभूषण। (वही, चित्र ९, ११)

२४ वलय (पृ० १४७) वलय नामक कलाई का आभूषण। (वही, चित्र १५)

२५ मेखला (पृ० १४९) मेखला नामक करधनी जिसे पहनकर चलने से आवाज होती थी। (वही, चित्र २६)

२६ रसना (पृ० १४९) दोहरी लडी की रसना। (वही, चित्र २८)

२७ काची (पृ० १४८) इकहरी लडी की ढीली-ढाली करधनी या काची। (वही, चित्र ३४)

२८ घर्घरमालिका (पृ० १५०) घर्घरमालिका नामक करधनी। (वही, चित्र २७)

२९ हिंजीरक (पृ० १५०) हिंजीरक नामक आभूषण। (वही, चित्र १७,१८)

३० मजीर (पृ० १५०) मजीर नामक आभूषण जिसमें भीतर चादी के ककड भरे रहते थे जिससे चलते समय आवाज होती थी। (वही, चित्र १९)

३१ नूपुर (पृ० १५०) थाली में नूपुर लिये परिचारिका। अलक्तक मण्डन समाप्त हो तो नूपुर पहनाये। (अमरावती० फलक ९, चित्र १८)

३२ हसक (पृ० १५१) हसक नामक पैर का आभूषण। (हर्षचरित० फलक ९, चित्र ३८)

फलक ४
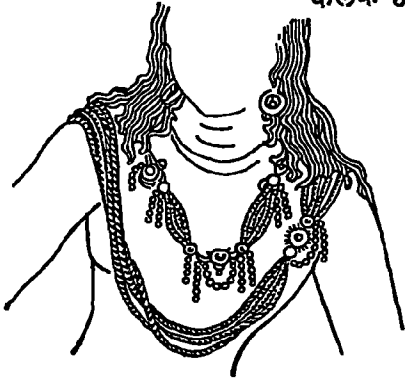
२० हार

२१ हारयष्टि
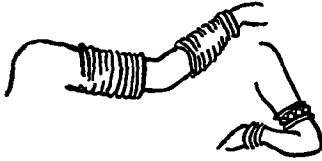
२३ ककण

२२ अगद और केयूर

२४. वलय

२५ मेखला २६ रसना

२७ काची

२८ घर्घरमालिका
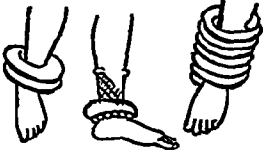
२९ हिंजीरक ३० मजीर

३१ नूपुर
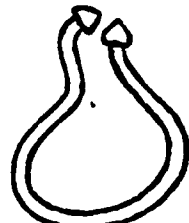
३२ हसक

फलक ५

चित्र फलक

३३ अलकजाल (पृ० १५३) राजघाट (काशी) से प्राप्त एक मृण्मूर्ति । (कला और संस्कृति पृ० २४७)

३४ मौलि (पृ० १५६) चूर्ण विशेष द्वारा घुँघराले बनाये गये बालो की त्रिविभक्त मौलिबद्ध केश रचना । (वही पृ० २५१)

३५ केशपाश (पृ० १५४) पत्र और पुष्प मजरी से सजा कर मुकुट की तरह बांधे गये केश । (वही पृ० २५१)

३६ कुन्तलकलाप (पृ० १५३) मोर की पूँछ के अग्रभाग की तरह सँभारे गये कुन्तल । (वही पृ० २४८)

३७ वेणिदण्ड (पृ० १५७) वेणिदण्ड या इकहरी चोटी । अमरावती० फलक ८, चित्र २३)

३८ जूट (पृ० १५०) जूट या जूडा । (अमरावती० फलक ९, चित्र २)

३९ धम्मिल (पृ० १५५) एक विशेष प्रकार का धम्मिल । (वही, फलक ९, चित्र ३)

फलक ५

फलक ६

चित्र संख्या

४० असिधेनुका (पृ० २०३) कमर की पेटी में खोसी हुई असिधेनुका सहित पदाति युवक। अहिच्छत्रा से प्राप्त गुप्तकालीन मिट्टी की मूर्ति। (हर्षचरित० फलक २ चित्र १२)

४१ कर्तरी (पृ० २०४) कतरी नामक एक विशेष प्रकार की छोटी छुरी। (अमरावती० फलक १०, चित्र २)

४२ कटार (पृ० २०५) दोनों ओर मुँहवाली नुकीली कटार। (अमरावती० फलक १०, चित्र ६)

४३ अशनि (पृ० २०७) इन्द्राणी की मूर्ति के हाथ में स्थित अशनि या वज्र। (भारत कला भवन, वाराणसी)

४४ अंकुश (पृ० २०९) गज के मस्तक पर प्रहार किया जाता अंकुश।

४५ कोदण्ड (अ) (पृ० २००) लपेटा हुआ कोदण्ड। (अमरावती० फलक १०, चित्र ४)

४६ कोदण्ड (ब) (पृ० २००) चढाया हुआ कोदण्ड। (वही, चित्र ११)

४७ गदा (अ) (पृ० २१३) बड़े आकार की गदा। (वही, चित्र १५)

४८ गदा (ब) (पृ० वही) छोटे आकार की गदा। (वही, चित्र १८)

४९ त्रिशूल (अ) (पृ० २१७) प्रहार किया जाता त्रिशूल। (वही, चित्र १४)

५० त्रिशूल (ब) (पृ० वही) हाथ में स्थित त्रिशूल। (वही, चित्र १६)

५१ दण्ड (पृ० ११४) हाथ में दण्ड या डण्डा लिये प्यादा। अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी की मूर्ति संख्या १९३। (हर्षचरित० फलक १७ चित्र ६१)

५२ प्रास (पृ० २११) (अमरावती फलक १०, चित्र १)

फलक ६
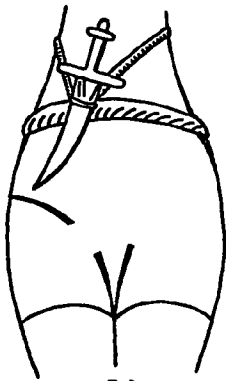
४० असिधेनुका
४१ कर्तरी
४२ कटार
४३ अशनि
४४ अकुश
४५ कोदण्ड (अ)
४६ कोदण्ड (ब)
४७ गदा (अ)
४८ गदा (ब)
४९ त्रिशूल (अ)
५० त्रिशूल (ब)
५१ दण्ड
५२ प्रास
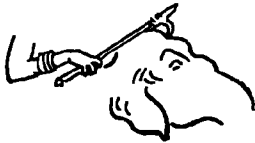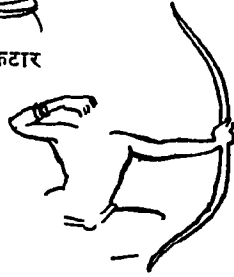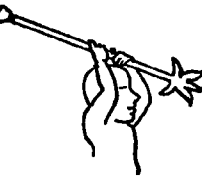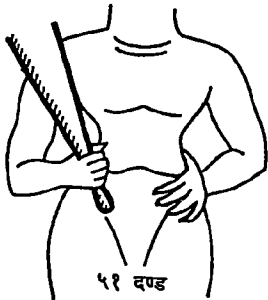
फलक ७

चित्र सख्या

५३ भस्त्रा या नाराचपजर (पृ० २०३) भस्त्रा या धौंकनीनुमा तरकश। (हर्षचरित० फलक १८, चित्र ३)

५४ कुठार (पृ० २११) कुठार या परशु। (अमरावती० फलक १०, चित्र ३)

५५ यष्टि (पृ० २१६) यष्टि या असियष्टि को कमरमें लटकाये हुआ सैनिक। (अमरावती० फलक १०, चित्र ८)

५६ पाश (पृ० २१८) श्री जो० एच० खरे कृत मूर्तिविज्ञान, फलक ९४, चित्र ३०)

५७ वागुरा (पृ० २१८) अहिच्छत्रा से प्राप्त सूर्य मूर्ति पर अकित पार्श्वचर के हाथ में वागुरा या कमन्द। (चित्र ९७)
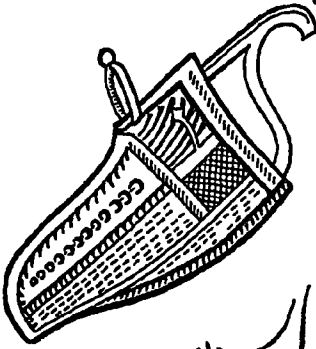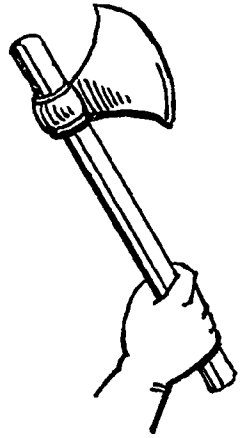
फलक ७
५३ भस्त्रा या नाराचपजर
५४ कुठार
५५. यष्टि
५६. पाश
५७ वागुरा
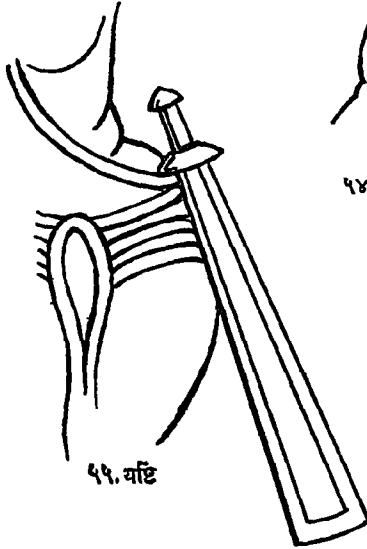
फलक ८

चित्र सख्या

५८ शख (क) (पृ० २२५) मुख पर बजाने के लिए कलश लगा हुआ शख।
(व्रजमाधुरी फलक १, चित्र ८)

५९ शख (ख) (पृ० २२५) वाद्य योग्य शख। (वही, चित्र १०)

६० दु दुभि (पृ० २२७) दुदुभि नामक अवनद्ध वाद्य। (वही, फलक ३, चित्र १२)

६१ ढक्का (पृ० २२८) ढक्का या ढोल। (वही, चित्र ७)

६२ ताल (पृ० २२९) ताल की जोडी। (वही, फलक ४, चित्र १२)

६३ डमरुक (पृ० २६०) डमरुक या डमरू। (वही, फलक ३, चित्र १३)

६४ वल्लकी (पृ० २३२) वल्लकी या एक विशेष प्रकार की वीणा। (वही, फलक १, चित्र १)

६५ डिण्डिम (पृ० २३४) डिण्डिम या डिमडिमी। (वही, फलक ३, चित्र ९)

६६ करटा (पृ० २३०) करटा नामक अवनद्ध वाद्य। (वही, फलक ३, चित्र ६)

६७ रुजा (पृ० २३१) रुजा नामक वाद्य की जोडी। (वही, फलक ३, चित्र १३)
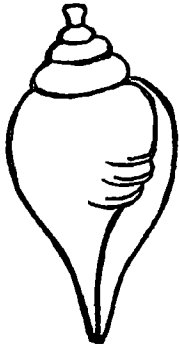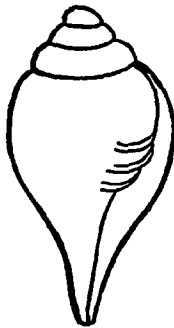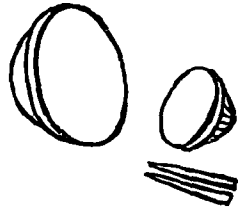
फलक ८
५८ शख (क)
५९ शख (ख)
६० दुदुभि
६१ ढोल
६२ ताल
६३ डमरुक
६४ वल्लकी
६५ डिण्डिम
६६ करटा
६७ रुजा
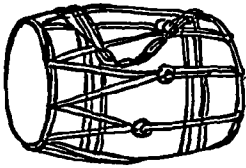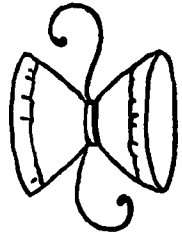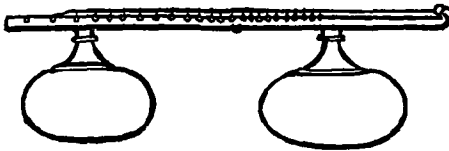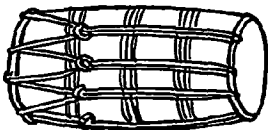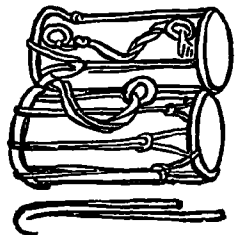
फलक ९

चित्र सख्या

६८ वेणु (पृ० २३१) वेणु या वासुरी। (ब्रजमाधुरी, फलक २, चित्र १)

६९ तूर (पृ० २३३) तूर या तुरही। (कलकत्ता सग्रहालय, ७६)

७० मृदग (पृ० २३३) मृदग या मर्दल। (वही, २७९)

७१ घण्टा (अ) (पृ० २३१) बडा घण्टा। (वही, १८५)

७२ घण्टा (ब) (पृ० २३१) छोटा घण्टा। (वही, १८३)

७३ आनक (अ) (पृ० २२८) आनक या नगाडा। (वही २०४)

७४ आनक (ब) (पृ० २२८) एक अन्य प्रकार का आनक या नौवत। (वही २०४)

७५ भेरी (पृ० २३३) भेरी नामक अवनद्ध वाद्य। (वही २६६)

चित्रो के रेखाकन के लिए मै श्री वीरेश्वर बनर्जी तथा श्री कर्णमान सिंह का आभारी हूँ।

■

फलक ९
६८ वेणु
६९ तूर
७० मृदग
७१ घटा (अ)
७२ घटा (ब)
७३ आनक (अ)
७४ आनक (ब)
७५ भेरी
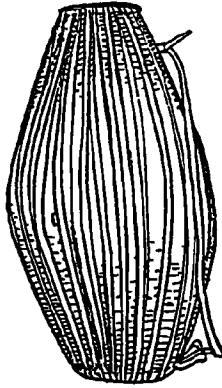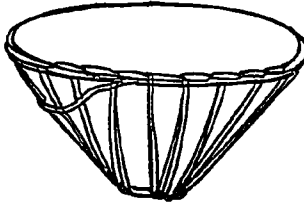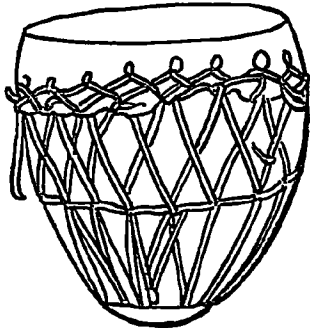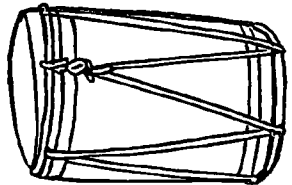
सहायक ग्रन्थ-सूची

यशस्तिलक के संस्करण और अध्ययन ग्रन्थ

[१] यशस्तिलक पूर्व खण्ड, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०१
[२] यशस्तिलक उत्तर खण्ड, ,, ,, १९०३
[३] यशस्तिलक पूर्व खण्ड (द्वि० सं०) ,, ,, १९१६
[४] यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर (अंगरेजी), जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर, १९४९
[५] यशस्तिलकचम्पूमहाकाव्यम् पूर्वार्ध (संस्कृत-हिन्दी), महावीर जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९६०
[६] उपासकाध्ययन (संस्कृत-हिन्दी), भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९६४

पाण्डुलिपियाँ

[७] यशस्तिलक, भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना
[८] यशस्तिलक, दि० जैन तेरह पंथियों का बडा मंदिर, जयपुर
[९] यशस्तिलक पंजिका, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी द्वारा करायी गयी हस्तलिपि

प्राचीन ग्रन्थ

[१०] अर्थशास्त्र (संस्कृत) – श्री गणपति शास्त्री की व्याख्या सहित, त्रावनकोर, १९२१-१९२५ (भाग १-३)
[११] अन्तःकृतदशा (प्राकृत-हिन्दी) – श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित
[१२] अनेकार्थ संग्रह (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९२९
[१३] अपराजितपृच्छा (संस्कृत) – गायकवाड ओरियंटल सीरिज, बडौदा, १९५०
[१४] अभिधानचिन्तामणि (संस्कृत), भाग १-२ – यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, वी० नि० सं० २४४१, २४४६
[१५] अभिज्ञानशाकुन्तलम् (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२६
[१६] अमरकोष (नामलिंगानुशासन) (संस्कृत) – ओरियंटल बुक एजेंसी, पूना, १९४१
[१७] अमरुशतक (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९२९

[१८] अश्वशास्त्र (सस्कृत) – सरस्वती महल लायब्रेरी, तजोर, १९५२
[१९] अष्टाध्यायी (सस्कृत) – चौखम्भा सस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३०
[२०] आचाराग (प्राकृत हिन्दी) – श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित
[२१] आचारागचूणि (प्राकृत) – ऋषभदेव केसरीमल, रतलाम, १९४१
[२२] उत्तररामचरित (सस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३०
[२३] कल्पसूत्र (प्राकृत) – सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जोधपुर
[२४] कर्पूरमजरी (प्राकृत) – कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता, १९४८
[२५] कादम्बरी (सस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, (अष्टम स०) १९४०
[२६] कामसूत्र (सस्कृत), भाग १ २ – लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई वि० सवत् १९२१
[२७] काव्यप्रकाश (सस्कृत हिन्दी) – चौखम्भा सस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९५५
[२८] किरातार्जुनीय (सस्कृत) – चौखम्भा सस्कृत सीरिज, वाराणसी, वि० स० १९९६
[२९] काव्यादर्श (सस्कृत हिन्दी) – ब्रजरत्नदास द्वारा सपादित, वाराणसी, वि० सवत् १९८८
[३०] कुमारसभव (सस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३५
[३१] कुवलयमाला (प्राकृत) – भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९५९
[३२] गजशास्त्र (सस्कृत) – सरस्वती महल लायब्रेरी, तजोर, १९५८
[३३] गीतगोविन्द (सस्कृत) – मास्टर खेलाडीलाल एण्ड सस, वाराणसी
[३४] गोम्मटसार, भाग १-२ (प्राकृत) – रायचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९२७-२८
[३५] चरकसहिता (सस्कृत) – चौखम्भा सस्कृत सीरिज, वाराणसी, वि० स० १९९५
[३६] जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, भाग १ २ (प्राकृत) – सेठ देवचन्द लालभाई जैन, बम्बई, १९२०
[३७] जसहरचरिउ (अपभ्रश) – अम्बादास चवरे दि० जैन ग्रन्थमाला कारजा, बरार, १९३१
[३८] तत्त्वानुशासनादिसग्रह (सस्कृत) – माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
[३९] दशरूपक (सस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२८
[४०] द्वयाश्रयकाव्य, भाग १-२ (सस्कृत-प्राकृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१५, १९२१

[४१] दीघनिकाय (पाली) – बाम्बे युनिवर्सिटी पब्लिकेसन्स, १९४२

[४२] नलचम्पू (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३२

[४३] नागानन्द (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३१

[४४] नाट्यशास्त्र, भाग १-२-३ (संस्कृत) – गायकवाड ओरियंटल सीरिज, बडौदा, १९३४, १९५४, १९५६

[४५] नाममाला (संस्कृत) – जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, बम्बई, वी० नि० स० २४६३

[४६] नायाधम्मकहा (प्राकृत-हिन्दी) – श्री अमोलक ऋषि-द्वारा अनुवादित

[४७] नीतिवाक्यामृत (संस्कृत) – माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि० स० १९७९

[४८] नैषधचरित्र (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९३३

[४९] पद्मावत (हिन्दी) – साहित्य सदन, चिरगांव (झांसी), वि० स० २०१२

[५०] पद्मपुराण (संस्कृत-हिन्दी), भाग १-२ ३ – भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९५८,१९५९

[५१] प्रश्नव्याकरणसूत्र (प्राकृत) – मुक्तिविमल जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, वि० सं० १९९५

[५२] प्रासादमण्डन (संस्कृत) – पं० भगवानदास जैन द्वारा संपादित, जयपुर, १९६१

[५३] भगवतीसूत्र (प्राकृत-हिन्दी) – श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित

[५४] भट्टिकाव्य (संस्कृत-हिन्दी), भाग १-२ – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९५१

[५५] भावप्रकाश (संस्कृत हिन्दी), भाग १-२ – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३८, १९४१

[५६] मनुस्मृति (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३५

[५७] महापुराण (संस्कृत), भाग १-२-३ – भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५१, १९५४

[५८] महापुराण (अपभ्रंश), भाग १-२-३ – माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९३७, १९४०

[५९] महाभारत (संस्कृत) – चित्रशाला प्रेस, पूना

[६०] मानसोल्लास (संस्कृत) – दी सेन्ट्रल लायब्रेरी, बडौदा, १९२५

[६१] मालतीमाधव (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२६

[६२] मालविकाग्निमित्र (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३५

[१८] अश्वशास्त्र (सस्कृत) – सरस्वती महल लायब्रेरी, तजोर, १९५२
[१९] अष्टाध्यायी (सस्कृत) – चौखम्भा सस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३०
[२०] आचाराग (प्राकृत हिन्दी) – श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित
[२१] आचाराग चूर्णि (प्राकृत) – ऋषभदेव केसरीमल, रतलाम, १९४१
[२२] उत्तररामचरित (सस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३०
[२३] कल्पसूत्र (प्राकृत) – सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जोधपुर
[२४] कर्पूरमजरी (प्राकृत) – कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता, १९४८
[२५] कादम्बरी (सस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, (अष्टम स०) १९४०
[२६] कामसूत्र (सस्कृत), भाग १ २ – लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई वि० सवत् १९२१
[२७] काव्यप्रकाश (सस्कृत हिन्दी) – चौखम्भा सस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९५५
[२८] किरातार्जुनीय (सस्कृत) – चौखम्भा सस्कृत सीरिज, वाराणसी, वि० स० १९९६
[२९] काव्यादर्श (सस्कृत हिन्दी) – ब्रजरत्नदास द्वारा सपादित, वाराणसी, वि० सवत् १९८८
[३०] कुमारसमव (सस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३५
[३१] कुवलयमाला (प्राकृत) – भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९५९
[३२] गजशास्त्र (सस्कृत) – सरस्वती महल लायब्रेरी, तजोर, १९५८
[३३] गीतगोविन्द (सस्कृत) – मास्टर खेलाडीलाल एण्ड सस, वाराणसी
[३४] गोम्मटसार, भाग १-२ (प्राकृत) – रायचन्द्रजैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९२७-२८
[३५] चरकसहिता (सस्कृत) – चौखम्भा सस्कृत सीरिज, वाराणसी, वि० स० १९९५
[३६] जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, भाग १ २ (प्राकृत) – सेठ देवचन्द लालभाई जैन, बम्बई, १९२०
[३७] जसहरचरिउ (अपभ्रश) – अम्बादास चवरे दि० जैन ग्रन्थमाला कारजा, वरार, १९३१
[३८] तत्त्वानुशासनादिसग्रह (सस्कृत) – माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
[३९] दशरूपक (सस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२८
[४०] द्वयाश्रयकाव्य, भाग १-२ (सस्कृत-प्राकृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१५, १९२१

[४१] दीघनिकाय (पाली) – बाम्बे युनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, १९४२
[४२] नलचम्पू (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३२
[४३] नागानन्द (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९५१
[४४] नाट्यशास्त्र, भाग १-२-३ (संस्कृत) – गायकवाड ओरियंटल सीरिज, बड़ौदा, १९३४, १९५८, १९५६
[४५] नाममाला (संस्कृत) – जैन साहित्य प्रचारक कार्यालय, बम्बई, वी० नि० स० २४६३
[४६] नायाधम्मकहा (प्राकृत हिन्दी) – श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित
[४७] नीतिवाक्यामृत (संस्कृत) – माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि० स० १९७९
[४८] नैषधचरित्र (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९३३
[४९] पद्मावत (हिन्दी) – साहित्य सदन, चिरगांव (झांसी), वि० स० २०१२
[५०] पद्मपुराण (संस्कृत हिन्दी), भाग १-२ ३ – भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९५८,१९५९
[५१] प्रश्नव्याकरणसूत्र (प्राकृत) – मुक्तिविमल जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, वि० स० १९९५
[५२] प्रासादमण्डन (संस्कृत) – पं० भगवानदास जैन द्वारा संपादित, जयपुर, १९६१
[५३] भगवतीसूत्र (प्राकृत-हिन्दी) – श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित
[५४] भट्टिकाव्य (संस्कृत हिन्दी), भाग १-२ – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९५१
[५५] भावप्रकाश (संस्कृत हिन्दी), भाग १-२ – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३८, १९४१
[५६] मनुस्मृति (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३५
[५७] महापुराण (संस्कृत), भाग १-२-३ – भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५१, १९५४
[५८] महापुराण (अपभ्रंश), भाग १-२-३ – माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९३७, १९४०
[५९] महाभारत (संस्कृत) – चित्रशाला प्रेस, पूना
[६०] मानसोल्लास (संस्कृत) – दी सेन्ट्रल लायब्रेरी, बडोदा, १९२५
[६१] मालतीमाधव (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२६
[६२] मालविकाग्निमित्र (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३५

[६३] मेघदूत (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९४०
[६४] मृच्छकटिक (संस्कृत-हिन्दी) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९५४
[६५] याज्ञवल्क्यस्मृति (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस बम्बई, १९३६
[६६] रघुवंश (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२५
[६७] रामायण (वाल्मीकिकृत, संस्कृत) – मद्रास ला जर्नल प्रेस, १९३३
[६८] रायपसेणियसुत्त (प्राकृत) – श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित
[६९] वर्णरत्नाकर (मैथिली) – रायल एसियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल, कलकत्ता, १९४०
[७०] वरांगचरित (संस्कृत) – माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९३८
[७१] बृहत्स्वयंभू स्तोत्र (संस्कृत-हिन्दी) – वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली
[७२] वास्तुसारप्रकरण (संस्कृत) – पं० भगवानदास जैन द्वारा सम्पादित, जयपुर, १९३६
[७३] विक्रमोर्वशीयम् (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी
[७४] विश्वलोचनकोष (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१२
[७५] समरांगण सूत्रधार (संस्कृत) – गायकवाड ओरियंटल सीरिज, बडौदा, १९२४
[७६] समराइच्चकहा (प्राकृत), भाग १-२ – रायल एसियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, १९२६, द्वि० सं०
[७७] संगीत पारिजात – हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९६३
[७८] संगीत रत्नाकर – अडयार लायब्रेरी, १९५१
[७९] संगीतराज – संगीत कार्यालय, हाथरस, १९४१
[८०] साहित्यदर्पण – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३६
[८१] सूत्रधारमंडन का देवतामूर्तिप्रकरणम् (संस्कृत) – मेट्रोपोलिटन पब्लि० हाउस, कलकत्ता, १९३६
[८२] सौन्दरानन्द (संस्कृत) – रायल एसियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, १९३९
[८३] शतपथब्राह्मण (संस्कृत) – अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, वि० सं० १९९४, १९९७ भाग १-२
[८४] शब्दरत्नाकर (संस्कृत) – यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, वी० नि० सं० २४३९
[८५] शिशुपालवध (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, १९२९
[८६] शृंगारशतक (शतकत्रयम् के अन्तर्गत) (संस्कृत) – भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९४६

[८७] हरिवंशपुराण (सहित हिन्दी) – भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९६२
[८८] हस्त्यायुर्वेद (संस्कृत) – आनन्दाश्रम, पूना
[८९] हर्षचरित (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१२, नृ० सं०
[९०] ऋग्वेद (संस्कृत) स्वाध्याय मण्डल, औंध, १९४०

आधुनिक ग्रन्थ और शोध-निबन्ध

[९१] आयने अकबरी, भाग १-३ – रायल एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, १९२७, १९४८, १९९४
[९२] गाइड टू द म्यूजिकल इन्स्ट्रूमेन्ट इन द इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, १९१७
[९३] द एज ऑव् इम्पीरियल कन्नौज – भारतीय विद्याभवन, १९५५
[९४] वैदिक इन्डेक्स, १-२ – मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९५८
[९५] अग्रवाल, वासुदेवशरण – कला और संस्कृति, साहित्य भवन लि० इलाहाबाद, १९५२
[९६] ,, कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन – चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९५८
[९७] ,, पाणिनिकालीन भारतवर्ष – मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, वि० सं० २०१२
[९८] ,, हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन – बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९५३
[९९] ,, कीर्तिलता – साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, १९६३
[१००] अत्रिदेव विद्यालंकार – प्राचीन भारत के प्रसाधन – भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
[१०१] अल्तेकर, अनन्त सदाशिव – राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स–ओरियण्टल बुक एजेंसी, पूना, १९३४
[१०२] आप्टे – संस्कृत-अँगरेजी डिक्शनरी (परिवर्धित संस्करण) – प्रसाद प्रकाशन, पूना
[१०३] ओमप्रकाश – फूड एण्ड ड्रिंक इन एंशियन्ट इण्डिया – मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, १९६१
[१०४] कनिंघम – एंशियण्ट ज्योग्राफी ऑव् इण्डिया, कलकत्ता १९२४
[१०५] कासलीवाल, कस्तूरचन्द्र – प्रशस्ति संग्रह–अतिशय क्षेत्र, श्री महावीरजी, जयपुर

[१०६] कासलीवाल, कस्तूरचन्द्र – राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की सूची, भाग १ २-३-४, जयपुर

[१०७] के० भुजबली शास्त्री – कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी

[१०८] कुलकर्णी, ई० डी० – वोकबुलरी ऑव् यशस्तिलक, बुलेटिन ऑव द डेकन कालिज रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना

[१०९] चुन्नीलाल शेष – अष्टछाप के वाद्ययन्त्र, ब्रजमाधुरी, ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा, वर्ष १३, अंक ४

[११०] जगदीशचन्द्र जैन – लाइफ इन ऐंशियण्ट इण्डिया ऐज डिपिक्टेड इन द आगमाज, न्यू बुक कम्पनी लिमिटिड, बम्बई १९४७

[१११] जे० एन० बनर्जी – द डेवलपमेण्ट ऑव् हिन्दू आइकोनोग्राफी, युनिवर्सिटी ऑव् कलकत्ता, १९५६

[११२] नाथूराम 'प्रेमी'–जैन साहित्य और इतिहास, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई

[११३] ,, – सोमदेवसूरि और महेन्द्रदेव, जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा

[११४] पी० बी० देसाई – जैनिज्म इन साउथ इण्डिया एण्ड सम जैन एपिग्राफ्स, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर, १९५९

[११५] पी० सी० चक्रवर्ती – द आर्ट ऑव् वार इन ऐंशियण्ट इण्डिया, द युनिवर्सिटी ऑव् ढाका, रमना ढाका, १९४१

[११६] बी० सी० ला – हिस्टारिकल ज्योग्राफी ऑव् ऐंशियण्ट इण्डिया, सोसायटी एशियाटिक डि पेरिस, फ्रान्स

[११७] ,, – ज्योग्राफी ऑव अरली बुद्धिज्म, लन्दन, १९३२

[११८] भगवतशरण उपाध्याय, – कालिदास का भारत, भाग १ २, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९५४, १९५८

[११९] भटशाली – आइकोनोग्राफी ऑव् बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मेनिकल स्कल्पचर्स इन द ढाका म्यूजियम, ढाका म्यूजियम कमेटी, ढाका, १९२९

[१२०] मिराशी हिस्टारिकल डेटाज इन दण्डिनाज दशकुमारचरित, एनाल्स ऑव् भण्डारकर, ओ० रि० इ०, भाग २६

[१२१] मोतीचन्द्र – जैन मिनिएचर पेंटिंग्ज फ्राम वेस्टर्न इण्डिया, साराभाई मनीलाल नवाब, अहमदाबाद, १९४९

[१२२] मोतीचन्द्र – भारतीय वेशभूषा, भारती भण्डार, प्रयाग, वि० सं० २००७
मोतीचन्द्र – सार्थवाह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५३

[१२३] मोनियर विलियम्स – संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी

[१२४] मोहनलाल महतो – जातककालीन भारतीय संस्कृति, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद् पटना, १९५८

[१२५] आर० एस० त्रिपाठी – हिस्ट्री ऑव् कन्नौज, मोतीलाल बनारसीदास, १९५९

[१२६] राखालदास (अनुवादक, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा) – प्राचीन मुद्रा, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, वि० सं० १९८१

[१२७] राय कृष्णदास – भारत की चित्रकला, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९९६ वि० सं०

[१२८] रे डेविड – बुद्धिस्ट इण्डिया, सुशील गुप्ता लिमिटेड, १९५०

[१२९] वाटर्स – ऑन युआनच्वांग ट्रावेल्स इन इण्डिया, रायल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन, १९०४, १९०५ (भाग १-२)

[१३०] वी० राघवन् – यन्त्राज एण्ड मेकैनिकल कण्ट्राइवन्सेज इन एंशियण्ट इण्डिया, इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑव् कल्चर, बेंगलोर, १९५६

[१३१] वी० राघवन् – नीतिवाक्यामृत आदि के कर्ता सोमदेव, जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा

[१३२] वी० राघवन् – सोमदेव एण्ड किंग भोज, जनरल ऑव द युनिवर्सिटी ऑव गौहाटी, भाग ३, १९५२

[१३३] वी० राघवन् – ग्लीनिंग्ज फ्राम सोमदेव सूरीज यशस्तिलक, गंगानाथ झा, रिसर्च इंस्टीट्यूट जनरल, भाग २, ३, ४

[१३४] सरकार – द वाकाटकाज एण्ड द अश्मक कन्ट्री, इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वाटरली, भाग २२

[१३५] सरकार – द सिटी ऑव् बंगाल, भारतीय विद्या, जिल्द ५

[१३६] सरकार – स्टडीज इन द ज्योग्राफी ऑव् एंशियण्ट एण्ड मिडि-एवल इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, १९६०

[१३७] सालेटोर – द सदर्न अश्मक, जैन एण्टिक्वेरी, भाग ६

[१३८] सालेटोर – लाइफ इन द गुप्ता एज, पापुलर बुक डिपो, बम्बई, १९४३

[१३९] सालेटोर – मिडिएवल जैनिज्म, करनाटक पब्लिशिंग हाउस, बम्बई

[१४०] एस० आर० शर्मा – जैनिज्म एण्ड करनाटक कल्चर, करनाटक हिस्टॉ-रिकल रिसर्च सोसायटी, धारवार, १९४०

[१४१] शिवराममूर्ति – अमरावती स्कल्पचर्स इन द मद्रास ग० म्यूजियम, मद्रास, १९५६

[१०६] कासलीवाल, कस्तूरचन्द्र – राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की सूची, भाग १ २ ३-४, जयपुर

[१०७] के० भुजवली शास्त्री – कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी

[१०८] कुलकर्णी, ई० डी० – वोकबुलरी ऑव् यशस्तिलक, बुलेटिन ऑव द डेकन कालिज रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना

[१०९] चुन्नीलाल शेष – अष्टछाप के वाद्ययन्त्र, ब्रजमाधुरी, ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा, वर्ष १३, अंक ४

[११०] जगदीशचन्द्र जैन – लाइफ इन ऐंशियण्ट इण्डिया ऐज डिपिक्टेड इन द आगमाज, न्यू बुक कम्पनी लिमिटिड, बम्बई १९४७

[१११] जे० एन० बनर्जी – द डेवलपमेण्ट ऑव् हिन्दू आइकोनोग्राफी, युनिवर्सिटी ऑव् कलकत्ता, १९५६

[११२] नाथूराम 'प्रेमी'–जैन साहित्य और इतिहास, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई

[११३] ,, – सोमदेवसूरि और महेन्द्रदेव, जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा

[११४] पी० वी० देसाई – जैनिज्म इन साउथ इण्डिया एण्ड सम जैन एपिग्राफ्स, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर, १९५९

[११५] पी० सी० चक्रवर्ती – द आर्ट ऑव् वार इन ऐंशियण्ट इण्डिया, द युनिवर्सिटी ऑव् ढाका, रमना ढाका, १९४१

[११६] वी० सी० ला – हिस्टारिकल ज्योग्राफी ऑव् ऐंशियण्ट इण्डिया, सोसायटी एशियाटिक डि पेरिस, फ्रान्स

[११७] ,, – ज्योग्राफी ऑव अरली बुद्धिज्म, लन्दन, १९३२

[११८] भगवतशरण उपाध्याय, – कालिदास का भारत, भाग १ २, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९५४, १९५८

[११९] भटशाली – आइकोनोग्राफी ऑव् बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मेनिकल स्कल्पचर्स इन द ढाका म्यूजियम, ढाका म्यूजियम कमेटी, ढाका, १९२९

[१२०] मिराशी हिस्टारिकल डेटाज इन दण्डिनाज दशकुमारचरित, एनाल्स ऑव् भण्डारकर, ओ० रि० इ०, भाग २६

[१२१] मोतीचन्द्र – जैन मिनिएचर पेंटिंग्ज फ्राम वेस्टर्न इण्डिया, साराभाई मनीलाल नवाब, अहमदाबाद, १९४९

[१२२] मोतीचन्द्र – भारतीय वेशभूषा, भारती भण्डार, प्रयाग, वि० स० २००७
मोतीचन्द्र – सार्थवाह, विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५३

[१२३] मोनियर विलियम्स – संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी

[१२४] मोहनलाल महतो – जातककालीन भारतीय संस्कृति, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना, १९५८

[१२५] आर० एस० त्रिपाठी – हिस्टरी ऑव् कन्नौज, मोतीलाल बनारसीदास, १९५९

[१२६] राखालदास (अनुवादक, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा) – प्राचीन मुद्रा, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, वि० सं० १९८१

[१२७] राय कृष्णदास – भारत की चित्रकला, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९९६ वि० सं०

[१२८] रे डेविट – बुद्धिस्ट इण्डिया, सुशील गुप्ता लिमिटेड, १९५०

[१२९] वाटर्स – आन युवानच्वाग ट्रावल्स इन इण्डिया, रायल ऐशियाटिक सोसायटी, लन्दन, १९०४, १९०५ (भाग १-२)

[१३०] वी० राघवन् – यन्त्राज एण्ड मैकेनिकल कण्ट्राइवन्सेज इन ऐंशियण्ट इण्डिया, इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑव् कल्चर, बेंगलोर, १९५६

[१३१] वी० राघवन् – नीतिवाक्यामृत आदि के कर्ता सोमदेव, जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा

[१३२] वी० राघवन् – सोमदेव एण्ड किंग भोज, जनरल ऑव द युनिवर्सिटी ऑव गोहाटी, भाग ३, १९५२

[१३३] वी० राघवन् – ग्लीनिंग्ज फ्राम सोमदेव सूरीज यशस्तिलक, गंगानाथ झा, रिसर्च इंस्टीट्यूट जनरल, भाग २, ३, ४

[१३४] सरकार – द वाकाटकाज एण्ड द अश्मक कन्टरी, इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वाटरली, भाग २२

[१३५] सरकार – द सिटी ऑव् बंगाल, भारतीय विद्या, जिल्द ५

[१३६] सरकार – स्टडीज इन द ज्योग्राफी ऑव् ऐंशियण्ट एण्ड मिडि-एवल इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, १९६०

[१३७] सालेटोर – द सदर्न अश्मक, जैन एन्टिक्वेरी, भाग ६

[१३८] सालेटोर – लाइफ इन द गुप्ता एज, पापुलर बुक डिपो, बम्बई, १९४३

[१३९] सालेटोर – मिडिएवल जैनिज्म, करनाटक पब्लिशिंग हाउस, बम्बई

[१४०] एस० आर० शर्मा – जैनिज्म एण्ड करनाटक कल्चर, करनाटक हिस्टॉ-रिकल रिसर्च सोसायटी, धारवार, १९४०

[१४१] शिवराममूर्ति – अमरावती स्कल्पचर्स इन द मद्रास ग० म्यूजियम, मद्रास, १९५६

[१४२] हीरालाल जैन – जैन शिलालेख संग्रह, भाग १, माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई

[१४३] एच० सी० चकलदार – सोशल लाइफ इन एंशियण्ट इण्डिया, स्टडीज इन कामसूत्र, ग्रेटर इण्डिया सोसायटीज, कलकत्ता, १९२९

पत्र-पत्रिकाएँ आदि

[१४४] अनेकान्त, वीरसेवा मन्दिर, सरसावा

[१४५] इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वाटरली, कलकत्ता

[१४६] इम्पीरियल गजट ऑव् इण्डिया

[१४७] इण्डियन हिस्ट्री काग्रेस प्रोसीडिंग्ज

[१४८] जनरल ऑव् गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट, इलाहाबाद

[१४९] जैन ऐण्टिक्वेरी, आरा

[१५०] जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा

[१५१] भारतीय विद्या, बम्बई

[१५२] बुलेटिन ऑव् द डेक्कन कालिज रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना

[१५३] ब्रजमाधुरी, मथुरा

[१५४] श्रमण, वाराणसी

■

अनुक्रमणिका

ख

छ

ज

थ

द

न

फ

ब

भ

ल

ह